

तद्भव

आधुनिक रचनाशीलता पर केन्द्रित विशिष्ट संचयन

अनुक्रम

पूर्णांक - 29

अप्रैल - 2014

जीवन

तो फिर विपथन ही सही...(III) भानु भारती 1

लेख

सन् 1857 का विद्रोह : सुराज के लिए संघर्ष **मैनेजर पांडे** 17 / विज्ञापनों में स्त्रियां (नवजागरणकालीन हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित विज्ञापनों के संदर्भ में) **आशुतोष पार्थेश्वर** 35

कहानियां

चूक मो. **आरिफ** 42 / खजाना **मनोज कुमार पांडेय** 78

पत्र

नामवर सिंह के पत्र 91

कविताएं

पांच कविताएं **मलय** 105 / कविताएं **नवल शुक्ल** 110/ कविताएं **कुमार अम्बुज** 116 / छः कविताएं **श्रीप्रकाश शुक्ल** 126 / कविताएं **प्रियदर्शन** 133 / कविताएं **नीलोत्पल** 136

वृत्तांत

अर्थात् औरों की कथा : IV **अरुण कमल** 142

यात्रा

बुद्ध, बारूद और पहाड़ **मधु कांकरिया** 151

लम्बी कहानी

छबीला रंगबाज का शहर **प्रवीण कुमार** 163

समीक्षाएं

प्रभुता का पराभव अर्थात् ईश्वरता का 'उपसंहार' **नारायण सिंह** 218 / जहां से अनहद शुरू होता है **अनिल त्रिपाठी** 223 / लिखना अपनी आंख पाना है! **विशाल श्रीवास्तव** 228 / मानुष गंध से उर्वर होती है कविता की जमीन **रविशंकर उपाध्याय** 233 / कहानी का कमल ब्यूह **विन्ध्याचल यादव** 237 / यथार्थबोध, आधुनिक चेतना एवं भविष्यदृष्टि **राजीव कुमार** 241 / असुरक्षित भविष्य का खौफ और तनाव **बसंत त्रिपाठी** 246

तो फिर विपथन ही सही... (III)

भानु भारती

मध्यांतर (जारी)

‘पशुगायत्री’ उसकी अब तक की प्रस्तुतियों में सबसे लम्बी अवधि तक और सबसे अधिक खेली गयी प्रस्तुति है। सन् 1984 से 30 साल यह नाटक बराबर खेला जाता रहा है, और आज भी इसकी मांग बनी हुई है। देश का शायद ही कोई ऐसा प्रांत होगा जहां यह प्रस्तुति न खेली गयी हो। इसके कितने प्रदर्शन अब तक हुए हैं इसका कोई लेखा जोखा उसके पास नहीं है, क्योंकि ‘रेकार्ड’ बनाने या रखने में उसकी कभी कोई दिलचस्पी नहीं रही। फिर भी, मोटा मोटी दो सैकड़ों के आसपास तो यह संख्या होगी। और यह तब है जब वह अपनी प्रस्तुतियों को ‘प्रमोट’ करने में हमेशा फिसड्डी रहा है। इस नाटक का मंचन जहां दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता आदि बड़े महानगरों के भव्य प्रेक्षागृहों में कई कई बार हुआ है, वहीं उदयपुर के आसपास के गांवों और पंजाब, हिमाचल तथा उत्तराखंड आदि प्रांतों के छोटे कस्बों के चौराहों पर भी यह नाटक खेला गया है। अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में भी यह नाटक लगातार मांग में रहा है। इतना ही नहीं, उदयपुर सम्भाग की ‘गवरी’ में भी इस नाटक के कई संस्करण खेले जाने लगे हैं। इस प्रयोग की व्यापक सफलता ने जहां उसे रंगमंच की सामर्थ्य और प्रासंगिकता के प्रति नये सिरे से आश्वस्त किया, वहीं बड़ी चुनौतियां भी उसके लिए खड़ी कर दीं। ‘आभिजात्य’ और ‘गंवई’ के बीच की खाई को ही नहीं, इस प्रस्तुति ने भाषा, स्थान और सभ्यतामूलक अंतरों को भी पाट कर एक ऐसे नाट्यानुभव की रचना की जो दर्शकों को कहीं भी गहरे में संस्पर्शित करता है। अपनी सहज सरलता में भी यह प्रस्तुति एक भव्य आनंदलोक की रचना में समर्थ है। नाट्यशास्त्र में भरत ने नाटक को जो चाक्षुष काव्य की संज्ञा दी है यह प्रस्तुति उसे पूरी तरह फलितार्थ करती है।

लेकिन, किसी भी असफलता से ज्यादा मारक सफलता होती है। वह एक 'बूबी ट्रेप' (चोर फंदे) की तरह होती है, जिसमें आप गफलत में फंसते हैं, और जब तक आपको फंसावट का अहसास होता है, बहुत देर हो चुकी होती है। यह महज इत्फाक नहीं है कि अधिकतर लोग अपनी एक ही प्रस्तुति की सफलता को सारी उम्र फेंकते रहते हैं, जब तक कि वह तार तार हो बिखर नहीं जाती।

वह ऊपर कह चुका है कि रंगमंच में हम या तो किन्हीं बनी बनायी पद्धतियों का अनुसरण करते हैं या फिर अपनी ही पद्धतियों का अनुसरण करते हैं या फिर अपनी ही पद्धतियों में आबद्ध होते जाते हैं, उतने ही रूढ़ और अप्रासंगिक होते जाते हैं। और यह भी, कि रंगमंच की हर प्रस्तुति यदि उसे प्राणवान होना है तो, 'क्लीन स्लेट' से शुरू होती है। ऐसे में 'पशुगायत्री' की इस सफलता ने उसे जितना प्रसन्न किया उससे अधिक परेशान कर दिया। प्रस्तुति का व्यापक स्वीकार उसे उतना नहीं परेशान कर रहा था जितना कि उसकी कलात्मक सफलता। 'पशुगायत्री' के कलात्मक हासिल से आगे बढ़ना क्या अब उसके लिए सम्भव होगा? जिस सात्विक सौन्दर्य और काव्य सत्य की सर्जना इस नाटक में सम्भव हुई है, उसका पुनर्सृजन, उन्हीं नाटकीय अवयवों के माध्यम से, क्या फिर सम्भव है? उसके ये भील प्रस्तोता और 'पशुगायत्री' में समावेशित 'गंवरी अनुष्ठान' के तत्व क्या इस आंगन के पार भी कोई और द्वार खोलने में समर्थ होंगे?

जिस तरह उसने 'पशुगायत्री' नाटक के आलेख को एक काव्य रूपक में घनीभूत कर दिया था, उसी तरह उसने 'गंवरी अनुष्ठान' का सारतत्व भी इस नाट्य प्रस्तुति में रच दिया था। ढोल, मादल और थाली के अनुष्ठानिक संगीत से परिचालित यह प्रस्तुति 'गंवरी अनुष्ठान' में प्रयुक्त मुखौटे, वेशभूषा, नृत्य गतियों एवम आंगिक चेष्टाओं में अभिव्यक्त भील सर्जना के चरम का एक ऐसा अनूठा संयोजन थी जिसके बाद 'गंवरी' के तत्वों को लेकर कुछ और नया रच पाने की गुंजाइश कम से कम उसे सम्भव नहीं लग रही थी। तब उसे 'गंवरी' से इतर भी भील जीवन को देखने समझने की आवश्यकता महसूस हुई। बिना 'गंवरी' के मूल स्रोतों को खंगाले अब इस दिशा में और आगे बढ़ना सम्भव नहीं होगा उसे समझ पड़ रहा था और यह भी कि इसके लिए भील संस्कृति से एक सघन (Inter actoin) की आवश्यकता होगी, जोकि एक लम्बी और मुश्किल प्रक्रिया है। 'गंवरी' तो उस संस्कृति का 'तैयार उत्पाद' था, जिसका कल्पनापूर्ण उपयोग 'पशुगायत्री' के लिए उसने कर लिया, लेकिन अब आगे कुछ रचने के लिए तो उसे और गहरे में खोदना तलाशना होगा। उसे हैरत हुई कि कैसे लोग चार हल्दी की गांठों के सहारे पूरी जिन्दगी पंसारी बने रहते हैं।

उसने चुनौती स्वीकार की, और अपने भील दल के साथ व्यक्तिगत स्तर पर मेलजोल आरम्भ किया। अब वह कई कई दिन गांवों में उनके घरों पर रह जाता। उनकी भजन मंडलियों में शामिल होता। 'बाव जी के थान' (मालिक का स्थान यानी देवरा) पर आयोजित साप्ताहिक 'कचहरी' में हाजरी देता, उनके विवाह शादियों में शिरकत करता और घंटों उनसे बतियाता। उनके गीत कहानियां सुनता। इस क्रम में उसे भीलों का सामाजिक और सांस्कृतिक विस्थापन पहली बार समझ में आया।

मेवाड़ी के आदिवासी बहुल इलाकों में हर गांव के हाशिये पर एक भीलवाड़ा है यानी कि भीलों की बस्ती। गांव में रहते हुए भी वे अलगथलग हैं और गांव की मुख्यधारा में उनका स्थान लगभग नगण्य है। गांव के लोग उन्हें 'भीलड़ा' के अपमानजनित सम्बोधन से पुकारते हैं हालांकि गांवों के हाशियों पर बसे ये भील अपने को भील नहीं 'गमेटी' (ग्रामवासी) कहते हैं, और जो अपने से आर्थिक रूप से पिछड़े हैं, उन्हें स्वयं भी भीलड़ा कहते हैं। ग्रामीण जीवन की मुख्यधारा में अपने को शामिल करवाने के लिए सांस्कृतिक और सामाजिक स्तर पर इन भीलों ने बहुत से समझौते किये हैं। इस अंचल

के बहुसंख्यक भील हिन्दू मुख्यधारा में शामिल होने के लिए गोविन्द गुरु जो स्वयं भील थे, द्वारा चलाये गये 'भगत आंदोलन' के प्रभाव में न केवल मांस मदिरा का सेवन छोड़ चुके हैं, बल्कि अपनी आदिवासी संस्कृति भी त्याग चुके हैं। अब उनकी औरतें भी लम्बे घूँघट काढ़ती हैं, और लड़के लड़कियों के उन्मुक्त 'ठेकने' (सम्मिलित सामूहिक नृत्य) भी अब प्रतिबंधित हैं। अपने धार्मिक और सामाजिक आचार व्यवहार में वह अब हिन्दू रीति रिवाजों की नकल करने लगे हैं। इस क्रम में जंगलों से सदियों पुराना उनका रिश्ता अब पूरी तरह खत्म हो गया है। पारम्परिक रूप से जो भील जंगल के उत्पाद और शिकार पर जिन्दा थे, अब दूरदराज की पहाड़ियों पर छोटी छोटी पथरीली जमीनों पर वर्षा में मक्का की एक ही फसल के सहारे बदहाली का जीवन जी रहे थे। शहद ही नहीं औषधियों में काम आने वाली जड़ी बूटियों के ये प्रसिद्ध संग्राहक अब अपना वह पुश्तैनी ज्ञान पूरी तरह भूल चुके हैं, साथ ही भूल चुके हैं अपनी जातीय स्मृतियाँ, खानपान और वेषभूषा। वे भूल चुके हैं अपनी बांसुरी और तीर कमान, और इसके साथ ही अपना प्रसिद्ध आत्माभिमान। उदयपुर के 'भारतीय लोककला मंडल' के संग्रहालय में, बहुत पुराने नहीं सन् 1957-58 में खींचे गये, भील जनजीवन के जो चित्र उसने देखे थे अधोवस्त्रों में निर्द्वंद्व हंसती खिलखिलाती भील युवतियाँ, तीर कमान लिए हृष्टपुष्ट भील युवक, लंगोट लगाये निर्जन में बांसुरी बजाता भील कुमार, एक दूसरे के गले में हाथ डाले मस्ती में नाचते भील लड़के लड़कियाँ वह 1986-87 में दूरदराज के गांवों में भी उसे देखने को नहीं मिला। वर्षा पर पूरी तरह से निर्भर मक्की की इकलौती फसल के सहारे जीवन काट रहे ये भील अब शरीर ही नहीं मन से भी काफी बुझते चले जा रहे थे। रोड़ा बा और दंतहीन माना बा जैसे कुछ बूढ़े लोगों में थोड़ी बहुत जातीय स्मृति की कौंध बची थी, जो बहुत कुरेदने पर थोड़ी लपलपा जाती थी। लेकिन अब उनके न रहने पर, और 'ग्लोबलाइजेशन' के चलते गांवों में भी बाजार का पसारा हो जाने से वह कौंध भी कहीं बाकी नहीं बची है। अस्सी के दशक में जो भील अपनी मक्की की फसल से कटोरा भर कर गांव के बनिये से नमक तेल ले आते थे और नकद पैसे की जिन्हें बहुत कम आवश्यकता होती थी, अब उन्हें अपने मोबाइल फोन से लेकर प्लास्टिक के जूतों और रेडीमेड पैण्ट शर्ट्स के लिए कदम कदम पर नकद पैसे की दरकार है। इसके चलते अब वे छोटे काश्तकार से पत्थरों की खदानों में या अहमदाबाद, मुम्बई की दूकानों कारखानों में काम करने वाले मजदूर हो गये हैं, और 1984-85 का उनका जीवन भी बहुत पीछे छूट चुका है।

भीलों के इस विस्थापन में पश्चिमी प्रभाव से उत्पन्न हमारी आधुनिक राष्ट्रवादी राजनैतिक सोच का बहुत बड़ा हाथ रहा है। देश को एक सूत्र में बांधने का जज्बा कितना भी पवित्र रहा हो, लेकिन इसके चलते शासन का जो एकरैखिक ढांचा खड़ा किया गया उसने देश की बहुलता को कितनी क्षति पहुंचायी है इस तरफ हमारा ध्यान कम ही गया है। आजादी के बाद जो प्रजातांत्रिक व्यवस्था हमने अपने लिए चुनी उसकी मूल प्रेरणा पश्चिमी देशों में विकसित प्रजातांत्रिक प्रणालियाँ रही हैं जिनका बल बहुसंख्यकता पर रहा है। अतः चाहते न चाहते भी हमारे यहाँ आजादी के बाद जो सत्ता तंत्र विकसित हुआ, उसमें अल्पसंख्यकों के लिए स्वाभाविक तौर पर गुंजाइश कम है। सारी राजनीति संख्याबल पर केन्द्रित होकर रह गयी है। तो ऐसे में छोटी छोटी संस्कृतियाँ इस तंत्र में जगह पाने के लिए यदि बहुसंख्यकों की संस्कृति द्वारा उदरस्थ कर ली जायें तो हैरत क्यों? यों कहने को आदिवासियों के लिए बहुत सी योजनाएँ हैं लेकिन जल, जंगल और जमीन की अवस्था का जो एकरैखिक शासकीय ढांचा हमने खड़ा किया है, उसने देश के आदिवासियों को भी उसी तरह विस्थापित कर दिया है जिस तरह साम्राज्यवाद ने हमसे हमारी पहचान छीन कर हमें अपने ही घर में विस्थापित कर दिया है, जिसका जिद्द वह पहले कर चुका है।

लेकिन, उसकी खुशकिस्मती से, 1985-86 में अभी रोड़ा बा और माना बा जैसे बुजुर्ग मौजूद थे जिनके कुछ रेशे अभी भी अपनी जड़ों से जुड़े थे। तो उन्हीं के बुढ़ाते कंधों का सहारा लेकर उसने कोई राह ढूंढने की कोशिश की और उनके (भीलों के) इस विस्थापन को ही विषय बना कर नाटक करना चाहा। लेकिन विषय तो नाटक से बरामद होता है, सो नाटक क्या होगा यह सवाल था।

इस बीच 'पशुगायत्री' की प्रस्तुतियां पूरे देश में यहां वहां खेली जा रही थीं, और वह लगातार अपने भील दल के साथ यात्राएं भी कर रहा था। लगातार के इन प्रदर्शनों और यात्राओं ने भी उसे इस दल के और निकट आने का मौका दिया। प्राकृतिक आपदा भी इसमें सहायक हुई। यह वह समय था जब पूरा उदयपुर अंचल सूखे की गिरफ्त में था। लगातार तीन वर्षों तक बारिश न होने से भयंकर अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी, और इस आपदा से अंचल के ये भील आदिवासी सबसे अधिक प्रभावित थे। वर्षा पर आश्रित इनकी खेती तो पूरी तरह चौपट हो ही चुकी थी, पीने के पानी का भी घोर संकट था। पशुओं के लिए भी चारा पानी नहीं रह गया। ऐसे में उनकी संस्कृति का अभिन्न अंग वे बकरियां भी उनसे बिछड़ गयीं, जिन्हें मगरों (पहाड़ियों) पर चराते हुए भील बालक बालिकाएं यौवन की दहलीज पर कदम रखते थे, और विशिष्ट शैली के गीतों द्वारा अपने कोमल, सुकुमार उद्गार व्यक्त करते थे। पहाड़ों में बकरियां चराते हुए गाये जाने वाले गीतों की मनोभूमि और शैली अपने आप में अनूठी होती थी। अब चारागाह और बकरियों के न रहने पर वे गीत भी खत्म हो चुके हैं, और कुपोषण के शिकार इनके बच्चे तमाम बीमारियों से घिरे हैं।

इसी दौर में उसे अखबारों में खबरें पढ़ने को मिलीं कि आदिवासियों ने सड़कों पर वाहन रोक कर लोगों को लूट लिया। उसे बताया गया कि अकाल के दिनों में जब हर तरह से मजबूर हो जाते हैं तो ये आदिवासी भील डाके डालते हैं, जिन्हें यह दहाड़ा पाड़ना कहते हैं। इस लूट के बारे में उसे यह भी पता चला कि यदि कोई बिना प्रतिरोध के अपना सब कुछ सौंपने को तैयार हो जाये तो भी ये भील उसे लड़ने के लिए उकसाते हैं। फिर भी कोई प्रतिरोध न करे तो भी लूटने से पहले आदिवासी पुरुषार्थ के चलते, कम से कम एक लाठी तो वे सामने वाले को जड़ते ही हैं। क्योंकि भील आचारसंहिता में आपातकाल में किसी से लड़ कर कुछ छीन लेना जायज है, बिना लड़े कुछ ले लेना नाजायज। इन्हीं दिनों में उसे यह दिलचस्प जानकारी भी मिली कि वर्षा न होने पर यह भील आपस में मिल कर गांव के बनिये की तिजोरी लूटते हैं, क्योंकि इनकी मान्यता है कि बनिया बादल चुरा कर अपनी तिजोरी में बंद कर लेता है। इसी से बारिश नहीं होती। तिजोरी की इस लूट को भील 'बादल छुड़ाना' कहते हैं। आजकल यह प्रथा एक कर्मकांड में बदल चुकी है। बनिया एक नारियल और सवा रुपया रख कर तिजोरी बाहर रख देता है, जिसे ये आदिवासी पूरे अनुष्ठानिक तरीके से अपने तीर तलवार चमकाते हुए लूटते हैं।

उपरोक्त सबकी तस्दीक जब उसने रोड़ा बा और दल के अन्य लोगों से करनी चाही तो उन्होंने बहुत सहजता से यह सब स्वीकार किया। जब उसने उनसे जानना चाहा कि क्या वे भी इन 'दहाड़ों' में शामिल रहे हैं, तो उन्होंने उतनी ही सहजता से जवाब दिया कि जब उन्हें नाटक से ठीकठाक कमाई हो रही है, तो 'दहाड़े पाड़ने' की कहां आवश्यकता है! लेकिन हां उनके गांव के दूसरे लोग इन दहाड़ों में अवश्य शामिल रहते हैं। 'पशुगायत्री' से दल के सदस्यों को हो रही आय, और विभिन्न स्थानों की उनकी यात्राओं ने अकाल से पीड़ित अन्य भील आदिवासियों को भी उससे जुड़ने के लिए प्रेरित किया। जब भी प्रदर्शन के लिए कहीं जाना होता तो आठ दस अतिरिक्त लोग दल के साथ आ धमकते, और साथ चलने की जिद करते। रोड़ा बा और दल के अन्य सदस्य भी चाहते कि उन्हें भी नाटक में खपा लिया जाये। उसके लिए समझाना कठिन हो जाता कि नाटक में ऐसा सम्भव नहीं होता। फिर यात्रा का भी दल के रिजर्वेशन से लेकर सब कुछ पहले से निश्चित होता है। लेकिन लोगों का इसरार

फिर भी बना रहता। तब उसे कहना पड़ा कि अब जो नया नाटक वह करेगा, उसमें उन सब लोगों को भी जगह देगा। तो अब नये नाटक के लिए उस पर दबाव केवल आंतरिक ही नहीं रह गया। लेकिन वह अगला नाटक होगा क्या यह सवाल बराबर बना हुआ था। इतना तो वह जान रहा था कि भील जनजीवन से अंतर्क्रिया के आधार पर उसे खुद ही कुछ रचना होगा, लेकिन उसका कोई खाका भी अभी स्पष्ट नहीं था। 'पशुगायत्री' चालू था सो थोड़ा सुकून था। लेकिन अब चेतन में एक बेचैनी बराबर बनी हुई थी।

भील दल के साथ की ये यात्राएं अधिकतर रेल से होतीं। डब्बे में सबकी बर्थ रिजर्व रहती, पर भील दल केवल दो बर्थों पर सिमटा गुड़ीमुड़ी लम्बी लम्बी यात्राएं करता, और उनकी बर्थों पर कोई और ही लोग सोये रहते। उसके लाख प्रयत्नों के बाद भी यह स्थिति आज तक ऐसी ही बनी हुई है। उसका खयाल है कि उस डब्बे में चलने वाला टी.टी. अवश्य उनका शुक्रगुजार होता होगा। रेल की इन यात्राओं में उसे और एक अनुभव लगातार होता रहा है उसके सहयात्री उसे ठेकेदार समझते रहे हैं जो अपने साथ मजदूर लेकर जा रहा है। कलकत्ता की राजधानी से एक यात्रा के दौरान तो एक साहब ने आश्चर्य किया कि वह मजदूरों को भी राजधानी की एसी चेयरकार से ले जा रहा है।

लेकिन, इन सब यात्राओं से अलग थी आतंकवाद के चरम के दिनों में पूरा पंजाब लांघ कर बस से की गयी हिमाचल की यात्रा। उसे हिमाचल के चम्बा से आरम्भ कर नहान तक, एक श्रृंखला में 'पशुगायत्री' की प्रस्तुतियों के लिए आमंत्रण था। यह पूरी यात्रा उसके दल को बस से करनी थी। सड़क मार्ग से चम्बा पहुंचने के लिए लगभग पूरा पंजाब पार करना था। पूरा रास्ता लगता रहा मानो किसी कर्पूर से गुजर रहे हों। सब तरफ सन्नाटा, सड़कें, खाली खेत, बाजार सब खाली। हर तरफ बस बंकर और राइफल ताने चौकस निगाहें। पूरे रास्ते बमुश्किल तमाम एकआध बस गुजरी होगी, जिसमें पुलिस मिलिट्री नहीं, आम सवारियां हों। वह चुपचाप दम साथे बैठा था। भील दल भी शायद सहज नहीं था। उसे नहीं लगता कि उसके भील साथी उस समय की पंजाब की स्थिति से अवगत थे, याकि उन्हें यह अहसास भी था कि वे पंजाब से होकर गुजर रहे हैं, लेकिन शायद वातावरण में प्राप्त निर्जनता और जगह जगह पर पुलिस मिलिट्री की चौकसी ने उन्हें भी सशंकित कर दिया था, वरना इतने घंटों की यात्रा में उन्हें कम से कम लघुशंका तो होती।

बस पठानकोट पहुंची तो शाम के आठ बज रहे थे और अच्छाखासा अंधेरा हो चुका था। चम्बा के लिए अब आगे का रास्ता पहाड़ी था। रात पठानकोट में बिताने के अलावा कोई चारा नहीं था। वह चाह रहा था कि कहीं कोई दिखे तो रात बिताने का ठिकाना पूछे। पर सारा शहर सांय सांय, दूकानें सब बंद और सड़क पर कोई चिड़िया का बच्चा तक नहीं। एक जगह थोड़ी रोशनी दिखी तो उसने बस का रुख उधर करवाया। एक छोटा सा ढाबा था जिसके बाहर दो चारपाइयां पड़ी थीं, और पंजाब रोडवेज की बस किनारे लगी थी। दो सिख ढाबे पर बैठे खाना खा रहे थे। बस से उतर कर उसने ढाबे वाले से रात रुकने की जगह के लिए पूछी। ढाबे वाले ने टका सा जवाब दे दिया। खाना खा रहे सिखों में से एक ने ढाबे वाले को मोटी सी गाली बकी, और उससे पूछा कितने लोगों के लिए जगह चाहिए। उसने बताया करीब बीस लोग हैं। सिख खाना छोड़ कर उठ पड़ा "आओ मेरे साथ।" ढाबे से चार कदम पर ही धर्मशाला था। सिख ने दरवाजा खटखटाया तो किसी ने नहीं खोला। तब उसने गालियां देते हुए दरवाजा पीटा। वह ठेठ पंजाबी में चिल्ला कर कह रहा था "परदेसी हैं, रात रहना है, दरवाजा खोल।" काफी पीटने पर दरवाजा बिना खोले भीतर से किसी ने कहा "इत्थे जगा नहीं हैगी।" अब तो सिख आगबबूला। और भी मोटी मोटी गालियां देकर बोला "अब रात में लोग कहां जायेंगे? दरवाजा खोल।" मुश्किल से दरवाजा खुला तो सिख दरवाजा खोलने वालों को धकिया

कर अंदर दाखिल हुआ और बोला “बीस लोग हैं रात रहेंगे। कमरे खोल और बिस्तर दे।” धर्मशाला वाले ने बड़बड़ाते हुए एक एक कर कमरे खोले। अच्छी भली बड़ी धर्मशाला थी, और पूरी खाली थी। उसने सिख का आभार जताया और कहा कि वह जाकर खाना खाये, अब हम लोग देख लेंगे। लेकिन, सिख तब तक ठहरा रहा जब तक सबकी ठीक से व्यवस्था नहीं हो गयी। सबको धर्मशाला में टिका कर वह ढाबे पर वापस गया यह बताने कि वे सब खाना भी खायेंगे। ढाबे वाले ने फिर टका सा जवाब दिया कि वह अब बंद कर रहा है, और इतने लोगों को खाना नहीं खिला सकता। इस पर वह फिर उस पर बिफरा “खिलायेगा कैसे नहीं खिलाना पड़ेगा।” जिन सिख महोदय की कृपा से उस रात उसके दल को खाना सोना मिला वे पंजाब रोडवेज की बस के ड्राइवर थे और साथ में था उनका कंडक्टर। दोनों भरपूर शराब पीये हुए थे। लेकिन इस अनुभव ने पंजाब को लेकर उसकी सारी शंकाएं दूर कर दीं पंजाब में जब तक सिख हैं, पंजाब को कुछ नहीं होता।

यों तो ये भील अरावली की पहाड़ियों में बसते हैं, लेकिन हिमालय की पहाड़ी ऊंचाइयों का उनका यह पहला अनुभव था। वे रोमांचित भी थे और डरे हुए भी। चम्बा से धर्मशाला का रास्ता कुछ ज्यादा ही ऊंची चढ़ाइयों से होकर गुजरता है। लगातार घुमावदार सड़क के साथ साथ पांच सौ, सात सौ फीट गहरी खाइयां। सड़क भी बस इतनी चौड़ी कि बड़ी बस के चारों पहिये उसमें समा जायें। जरा सड़क चूकी तो सीधे खाई में। पहाड़ भी कच्चे, सो भूस्खलन से सड़क पर मिट्टी भी काफी रहती है। इस पर बारिश भी होने लगी तो सड़क पर अच्छीखासी कीचड़ की स्थिति हो गयी। बस लगातार ऊंची और ऊंची चढ़ाइयां चढ़ रही थी। यकायक सारे भील जोर जोर से ‘पर्वतराज की जय’ का नारा बुलंद करने लगे। यह शायद उनकी उस बीहड़ रास्ते के अपने डर पर काबू पाने की कोशिश थी। वह बस की अगली सीट पर बैठा था। अचानक उसका ध्यान गया कि बस के पहियों की सड़क पर पकड़ वैसी नहीं है जैसी होनी चाहिए। वह उठ कर ड्राइवर के पास गया तो उसे बेहद घबराया हुआ पाया। उसने पास बैठ कर पूरे इत्मीनान से पूछा बात क्या है? ड्राइवर ने कहा “स्टीयरिंग बिल्कुल फ्री हो गया है बस पर मेरा कंट्रोल ही नहीं। उसने सुन रखा था कि कई दफा स्टीयरिंग व्हील का क्लिप टूट जाता है तो स्टीयरिंग फ्री हो जाता है और ड्राइवर का गाड़ी पर कोई नियंत्रण नहीं रह जाता। बस एकदम खड़ी चढ़ाई चढ़ रही थी, और उसे रोक कर कहीं खड़ी करने की गुंजाइश भी नहीं थी। फिर कीचड़ से भरी इतनी संकरी सड़क पर ब्रेक लगाना भी खतरनाक हो सकता था। उसने पूरे धैर्य का अभिनय करते हुए कहा “कुछ नहीं धीरे धीरे चलते रहो।” और दम साधे वहीं बैठा रहा। वह भीतर ही भीतर एक गहरे पश्चाताप से गुजर रहा था कहां वह इतनी बड़ी बस लेकर इन दुर्गम पहाड़ी रास्तों पर चला आया सबके प्राण संकट में डालने! पहले तो पंजाब की हकीकत जानते हुए उसे सड़क मार्ग से आना नहीं था। कोई भी अनहोनी घट सकती थी। और अब तो किसी भी क्षण सबको लिये लिये बस सीधे खाई में जा सकती है। वह अपने को किसी भी जोखिम में डाले, लेकिन दल के अन्य लोगों का जीवन जोखिम में डालने का उसे क्या हक है! यही सब उसके भीतर चल रहा था। जब बादल छंटे और धूप खिली। बस ने चढ़ाई खत्म कर ली थी और अब अपेक्षाकृत समतल सड़क पर थी। सड़क पर वैसा कीचड़ भी नहीं था। ड्राइवर ने कहा “साब स्टीयरिंग को ठीक काम कर रहा है, वहां कीचड़ ज्यादा होने से शायद पहियों का ग्रिप ठीक नहीं बन रहा था।” अब उसने नारा लगाया ‘पर्वतराज की जय’। सब चौंक कर उसे देखने लगे, केवल ड्राइवर हंस दिया।

भीलों के साथ अपनी इन यात्राओं का स्मरण करते हुए एक और यात्रा की स्मृति उसे हो आयी है, जो रेल या बस द्वारा नहीं, पैदल थी। वह अपने स्कूटर से रोड़ा बा के यहां गया था, वहां से उसे उनके साथ किसी कार्यवश पास के दूसरे गांव जाना था। सर्दियां अभी शुरू हो रही थीं। शाम

का समय था, और मौसम खुशगवार। निकलने को हुए तो यकायक उसने कहा “अच्छा मौसम है, पैदल चलते हैं।” इस पर रोड़ा बा की प्रतिक्रिया थी “हां, हिंडता हिंडता धरारा दर्शन हऊ ढै।” यानी कि पैदाल चलते हुए धरती के दर्शन अच्छे होते हैं। उनके इस एक वाक्य ने उसे भीतर तक झनझना दिया। यही तो, यही तो है वह जीवनदृष्टि जिसके चलते अपनी सारी विपन्नता में भी यह भीतर इतने भरे हैं। धरती का यह दर्शन ही तो हमसे छूट गया है, जिसने हमें अंदर इतना खोखला कर दिया है। रफ्तार की दीवानगी हमें किसी कदर अनुभवशून्य बना रही है इसका अहसास इतनी शिद्दत से पहले उसे कभी नहीं हुआ था। उस दिन उसे समझ आया गांधी क्यों तेज रफ्तार आवागमन के खिलाफ थे और दूरियों के सम्मान की बात करते थे। विश्व का आज का संकुचन हमें अपने भीतर कितना संकुचित और एकरैखिक बना चुका है, शायद अब धीरे धीरे हमें अहसास होने लगा है।

‘पशुगायत्री’ को हुए दो साल बीत रहे थे। लगातार अनावृष्टि के चलते अकाल की विभीषिका विकटतम रूप ले चुकी थी। गांवों से लोगों का पलायन बढ़ता ही जा रहा था। उसके दल के भी कई लोग उदयपुर में मजदूरी के लिए आने लगे थे। उन्हें जब कोई काम नहीं मिलता तो उसके पास चले आते और उससे नया कुछ शुरू करने का तकाजा करते। लेकिन, अब उनके साथ अकाल के हालात के सिवा किसी और विषय पर चर्चा असम्भव हो चली थी। ऐसे में उसने अकाल को ही एक मूलभाव (मोटिफ) के रूप में उनके साथ नाटक में अन्वेषित करने का फैसला किया। साथ ही इस बार महिलाओं को भी नाट्य प्रयोग में जोड़ने का संकल्प किया। ‘गवरी अनुष्ठान’ में महिलाओं की कोई भूमिका हो तो, पुरुष ही महिलाओं के भी अवतार में होते हैं। लेकिन बिना महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के भील सभ्यता के साथ उसकी यह अंतर्क्रिया अधूरी होगी, इसका भान उसे था। उनकी सभ्यता से गहरे अंतर्सम्बंध के लिए उनकी वर्तमान सामाजिक, सांस्कृतिक मनोभूमि में डायनामाइट लगाना जरूरी है, और इसमें महिलाओं की भूमिका अहम होगी। रंगमंच की लेबोरेट्री में ऐसे विस्फोटक प्रयोग सम्भव हैं, यदि ज्ञानपूर्वक और जिम्मेदारी से किये जायें।

अब तक वह जान चुका था कि पुरुषों के समकक्ष भील औरतों का नाटक में वास्तविक सम्मिलन बहुत बड़ी चुनौती होगी। पहले तो दल के पुरुषों (दल में अभी तक सिर्फ पुरुष ही थे) को ही मानसिक रूप से इसके लिए तैयार करना टेढ़ी खीर होगी और उससे भी दुसाध्य होगा उन दबी ढंकी औरतों का ‘आंतरिक अनावरण’, जिसकी मांग नाटक अभिनेता से करता है इसीलिए तो नाटक को ‘नेक् इड आर्ट’ भी कहा जाता है।

परंतु इस तरह की सैद्धांतिक चर्चा तो दल के सदस्यों से सम्भव नहीं थी अतः आवश्यकता थी एक ऐसे ठोस नाटकीय तानेबाने की जिसके आधार पर महिलाओं की नाटक में अनिवार्यता उन्हें समझ आ सके खासकर रोड़ा बा को। क्योंकि एक वही थे जो उसके आशय कुछ कुछ समझते थे, और उनका अपने समाज में रसूख भी था, जिसके चलते सब लोग उनका कहा मानते थे।

यहां असली मुश्किल यह थी कि नाटक में स्त्री पात्रों के होने भर से काम चलने वाला नहीं था, क्योंकि दल में कई ऐसे लोग थे जो स्त्री भूमिका बखूबी निभा सकते थे। ‘पशुगायत्री’ में कसाई की कमनीय बेटी की भूमिका खुद रोड़ा बा के छोटे भाई स्वरूप जी निभाते थे जिसकी हर कहीं प्रशंसा होती थी। स्वरूप जी की उपस्थिति ने उस भूमिका में ऐसा कुछ अतिरिक्त रच दिया था जो किसी निपुण महिला अभिनेत्री के लिए भी सम्भव नहीं होता। वैसे भी उस प्रस्तुति का सारा विधान ही ऐसा था जिसमें महिलाओं की उपस्थिति व्यवधान होती।

तो एक ऐसा कथानक चाहिए था जिसमें स्त्री की उपस्थिति सबको अनिवार्य लगे, बावजूद स्वरूप जी तथा अन्य स्त्री पात्रों के लिए उपर्युक्त लोगों के रहते। लेकिन नाट्य रचना की प्रक्रिया

भी बहुत कुछ काव्य रचना की तरह होती है। नाटक भी अचानक फूटता है, और देखते देखते अपने को आप ही गढ़ लेता है। इसमें कोई योजना काम नहीं करती। कम से कम उसका तो यही अनुभव रहा है, औरों की वह नहीं कह सकता। सो वह इंतजार में था।

नाटक नुमाया हुआ जब उसे इसकी जरा भी कल्पना न थी। वह किसी काम के सिलसिले में उदयपुर से दिल्ली की यात्रा कर रहा था। बस से पूरी रात का सफर था। वह आधी जाग, आधी सोयी हालत में था कि एक रील चलनी शुरू हो गयी भूषण अकाल की स्थिति। सारी जाति देवता के स्थान पर जाकर गुहार करती है। भोपा (पुजारी) भाव में आता है। देवता कुंवारी कन्या की बलि मांगता है। लोग जाति की सारी कुंवारी कन्याओं को प्रस्तुत कर प्रार्थना करते हैं देवता जिसे चाहें चुन लें। भोपा अपनी भाव समाधि में मोरपंखों की झाड़ू गौरी के सिर पर फेर कर उसे चुनता है। गौरी की बलि की तैयारियां शुरू हो जाती हैं, पर इस बीच वह वहां से निकल भागती है। लोगों में हड़कम्प हो जाता है, और हर तरफ गौरी की ढूंढ मच जाती है।

रात में सुनसान जंगल में भयभीत गौरी सवाल करती है कि उसने तो अभी जीवन जाना ही नहीं तो उससे क्या कसूर हो सकता है? उसे क्यों सजा दी जा रही है? उसका गाना सुन कर देवता तो नहीं पसीजते पर कुछ डाकू जरूर उसका पता पा जाते हैं। गौरी उनके हथे चढ़ जाती है, और सरेबाजार नीलाम कर दी जाती है। एक बूढ़ा व्यापारी उसे खरीद लेता है, और अपने छकड़े में बिठा कर चल देता है। गौरी उसे बातों में लगा कर उसका विश्वास हासिल कर लेती है और व्यापारी के ही फरसे से उसकी हत्या कर देती है। हिंसा की इस विस्फोटक मनःस्थिति में वह लगभग एक अनुष्ठानिक नृत्य करते हुए शेर पर काबू पाती है और उस पर सवार हो जाती है।

डाकूओं का खूंखार सरदार गोमा मीणा शेर पर सवार गौरी को साक्षात् दुर्गा जान कर भाव विह्वल हो बेहोश हो जाता है, तो गौरी उससे अपने वस्त्र बदल लेती है। अब वह गोमा के वेश में है, जिससे सब भय खाते हैं।

उधर सब तरफ ढूंढ कर थक चुके गौरी के सहजन उसका एक आटे का पुतला बना कर देवता को बलि चढ़ा देते हैं, इस वचन के साथ कि गौरी अगर कभी जीवित उनके हाथ लगी तो वह उस देवता को अर्पित कर देंगे।

गोमा के वेश में पेड़ के नीचे सोयी गौरी को एक औरत कंकरी मार कर जगाती है, और उलाहना देती है कि वह घर क्यों नहीं चलता यहां क्यों सोया है। गौरी उसे बताती है कि आज जंगल में उसे साक्षात् देवी के दर्शन हुए और उसने व्रत लिया है कि वह अकाल समाप्त होने तक स्त्री गमन नहीं करेगा। इस पर औरत कहती है कि ठीक है वह अपना व्रत निभाये लेकिन घर तो चले। घर पर गोमा के साथी अनाज की गाड़ी लूटने की योजना उसे बताते हैं। गौरी उनके साथ अनाज लूटने चल देती है।

अब तक अकाल से स्थिति और भी विकट हो चुकी है। लोग आपस में एक दूसरे को खा रहे हैं, अपने बच्चे भी। तभी गोमा के रूप में लूटे हुए अनाज की गाड़ी गौरी उनमें बांट देती है। फिर वह बनिये की तिजोरी से बादल छुड़ा कर लोगों को अपने साथ जंगल में ले आती है। जंगल में ये लोग अपनी विस्मृत सभ्यता का पुनर्शांघन करते हैं, और पारस्परिकता का नया जीवन शुरू करते हैं।

बारिश होती है। सब फिर हराभरा हो जाता है। लोग गोमा का आभार प्रकट करने के लिए उसके लिए साफा लेकर आते हैं, तो वह कहती हैं कि वह तो गोमा नहीं है। लोग इसे मजाक समझते हैं, और पूछते हैं कि तो फिर वह कौन है? तब वह अपनी असलियत उन पर जाहिर करती है। पर उसकी असलियत लोगों को संकट में डाल देती है। उन्हें देवता को दिया हुआ वचन याद आ जाता

है। वे उसे घेरना चाहते हैं कि उसे देवता की बलि के लिए प्रस्तुत करें। गौरी प्रतिरोध नहीं करती, कहती है अभी भी अगर उन्हें लगता है कि उसकी बलि से ही उनका भला होने वाला है तो वह प्रस्तुत है। पर तभी वह औरत, जो पत्नी के रूप में अब तक गौरी के साथ रह रही थी, अपने घाघरे को लांघ देकर तलवार खींच लेती है। यह असली गोमा है। लोग भाग खड़ होते हैं। अब गौरी शर्म से आंखें झुका कर गोमा से क्षमा मांगती है कि उसने उसके नाम का बेजा इस्तेमाल किया। गोमा उत्तर देता है कि वह तो उसकी कुम्हार है जिसने उस कच्ची मिट्टी को गढ़ा है। वे एक दूसरे के साथ युगल नृत्य करते हैं। उनके साथ पर्वत पेड़ भी सब नाचते हैं। पर्वत मंच पर धीरे धीरे आगे बढ़ आता है, गौरी और गोमा उसके पीछे गायब हो जाते हैं।

यह पूरी कथा टूटे बांध से छूटे पानी के वेग की तरह आयी। कहीं कोई अटकाव भटकाव नहीं। कहीं ठहर कर कुछ सोचना नहीं पड़ा सब जैसे पहले से रचा बसा। वैसे उसे सपने भी लम्बे आते हैं, उनका भी गठन नाटकों जैसा रहता है।

वह शीघ्रता से दिल्ली के अपने काम निपटा कर वापस उदयपुर लौटा, और रोड़ा बा के यहां सबको इकट्ठा किया। उसने नाटक की कहानी उन्हें सुनायी। ज्यादातर लोगों की प्रतिक्रिया थी आपको ठीक लगती है तो करते हैं। रोड़ा बा खामोश थे। उसने सवाल किया तो बोले “बात की थाह घणी गहरी है। नवो संसार रचावारी बात है।” तब वह बोला “हां रोड़ा बा पर यह नवो संसार बसेगा कैसे?”

“बसै, क्यूं नी बसै?”

“हां, पण औरतां चाही रही हैं। गौरी औरत नहीं रमे तो काम नहीं चालेगा। सारी बात ही एक बालकी की कर गोमो बणे और गोमो वणा रे हागे औरत बणर किस तरां रैवे याही है।” यहां यह बता देना प्रसांगिक होगा कि गोमा मीणा का भील मानस में वैसा ही स्थान है जैसा सुल्ताना डाकू आदि का उत्तर भारत में। गोमा की बहादुरी और दरियादिली के किस्से आज भी भीलों में प्रचलित हैं। ‘गवरी’ में भी गोमा मीणा का प्रसंग खेला जाता है।

नाटक में औरतें चाहिए इस बात ने सबको चौंका दिया। रोड़ा बा और दो चार को छोड़ कर सबकी तुरत प्रतिक्रिया थी “औरतां तो नी रम सके।”

उसने सवाल किया “तो फिर नाटक की करव्हैगा?”

“वा तो म्है नीं जाणा।”

अब उसने रोड़ा बा की ओर देखा। वे गहरी सोच में थे। बोले “औरतां से तो मुश्किल है।”

“क्यों, मुश्किल क्यों है? सबरे लुगायां हैं, भैन बेटियां हैं।”

“नीं, लुगायां से तो नीं वहेगा।” दल में से एक बोला।

रोड़ा बा ने भी कहा “लोग ठीक नी समझे।”

“क्यों नाटक करने में गलत क्या है? कोई बुरा काम तो कर नहीं रहे। और आप लाओगे तो कोई कुछ नहीं बोलेगा।”

इस पर माना बा बोले “हां महाराज (रोड़ा बा को सब भोपा होने के कारण महाराज ही कहते थे) लाई सके।”

रोड़ा बा का जवाब था “वा, देखां (चलो देखते हैं)।”

उसके लिए उनकी इतनी प्रतिक्रिया काफी थी। उन्हें नाटक की कथावस्तु अच्छी लगी है, और नाटक के लिए औरतें जरूरी हैं इससे वह भी सहमत हैं, तो अब तो वे प्राणपण से जुट जायेंगे लोगों को समझाने में, और रोड़ा बा की जिसमें सहमति हो, वह न हो ऐसा हो ही नहीं सकता।

वही हुआ भी। सप्ताह भर बाद वे नाटक की तैयारी के लिए उदयपुर आये तो उनके साथ पांच महिलाएं भी थीं। इनमें तीन तो रोड़ा बा के अपने घर से थीं दो बहनें और छोटे भाई स्वरूप की पत्नी। एक कनजी, दल के मादलिये (मादल आदिवासी तालवाद्य बजाने वाले) की पत्नी थी। इस तरह सब दल के लोगों के अपने घरों से ही थीं। ये महिलाएं आ तो गयीं लेकिन सब लम्बे घूंघटों में, क्योंकि दल में सबसे उनका कोई न कोई रिश्ता था। कोई ससुर था तो कोई जेठ जिनके सामने वे हमेशा से घूंघट करती आयी थीं। घूंघट तो एक बात, वे मर्दों के साथ एक दरी पर बैठने को भी तैयार नहीं थीं। दूर एक कोने में, बकरियों की तरह झुंड में बैठती थीं, मर्दों की तरफ भरसक पीठ करके। उसकी पत्नी ने उन्हें देखा तो बोली “आपको लगता है आप इनसे अभिनय करवा लेंगे, आप क्या अपने आप को भगवान समझते हैं?” उसने हंस कर कहा “बिल्कुल नहीं पर मैं इस जाति का इतिहास जानता हूं। इन औरतों की दादी नानी जंगलों में उधाड़े बदन घूमती थीं। इन पर यह परत बहुत नयी है, इसे पिघलने में बहुत वक्त नहीं लगेगा।”

शुरु में उसने इन औरतों पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। दल में जो नये पुरुष शामिल हुए थे उनके साथ कुछ आशु अभ्यास करता रहा। फिर धीरे धीरे उसने नाटक की कथावस्तु को लेकर अभ्यास आरम्भ किये (इस भील दल के साथ किये किसी भी नाटक की कोई लिखित स्क्रिप्ट आज तक नहीं है। सब कुछ रिहर्सल में इम्प्रोवाइज होता है, संवाद भी। हां कभी कभी कुछ गीत जरूर कागज पर लिख लिये जाते हैं, वरना सब कुछ स्मृति के भरोसे ही तीस वर्षों से चला आ रहा है। सबसे पहले उसने अकाल की विभीषिका पर एक बहुत ही मार्मिक गीत, जो इस जाति की स्मृति का हिस्सा है, को लेकर इम्प्रोवाइज करना शुरु किया। कैसे भूखे प्यासे लोग, जो अपने पैरों पर खड़े होने में भी अशक्त हैं, जमीन पर घिसटते हुए इस गीत को गावेंगे। गीत का पारम्परिक गायन ही इतना मार्मिक है कि उसे बिना छेड़े लोगों के घिसटने की हांफ और कराहें भी आसानी से गायन का हिस्सा बन गयीं। इन आशु अभ्यासों का असर उन औरतों पर ये हुआ कि अब वे हमारी तरफ पीठ करके नहीं बैठती थीं, और घूंघट के पीछे से इन अभ्यासों को उत्सुकता से देखती थीं।

इस दौरान अकाल और उससे जुड़ी उनकी जातीय स्मृति को वह लगातार कुरेद रहा था। ‘छप्पनिया अकाल’ सबसे भीषण अकाल था यह इन भीलों की स्मृति में गहरे पैठा हुआ है यहां तक कि अकाल का एक पर्यायवाची ही हो गया है ‘छप्पनिया’। छप्पनिया अकाल के बारे में उसने औरों से भी सुन रखा था तो शायद यह ‘छप्पनिया’ अकाल देशव्यापी अकाल रहा होगा लेकिन काफी खोजबीन के बाद भी इस अकाल की कोई ठोस जानकारी उसे नहीं मिली। लेकिन जनस्मृति में यह अकाल बना हुआ है। ऊपर उसने जिस गीत का जिक्र किया वह भी उसी ‘छप्पनिया’ के दौर का है, जो अभी भी लोगों की जबान पर है। अकाल को यह भील ‘काल’ कहते हैं, और काल समय का भी पर्यायवाची है। तो जो समय के चक्र को बाधित करता है वह अकाल है? या फिर वह उस कालचक्र का ही हिस्सा है जो मानवीय नियति से अभिन्न रूप में जुड़ा है, और जिसे भोगने के लिए हम सब अभिशप्त हैं? भीलों के अनुसार यह दोनों है काल का अपनी पटरी से उतर जाना भी और मानवीय नियति भी। जहां मानवीय नियति कालचक्र से जुड़ी है, वहीं मानव के कर्म भी काल के इस चक्र को प्रभावित करते हैं। अगर मानव काल से संचालित है, तो काल भी मानव कर्म से संचालित है। और इसमें उन्हें कोई अंतर्विरोध नहीं लगता।

और यह अकाल हमें प्रभावित किस किस तरह से करता है? रोड़ा बा का एक वाक्य में उत्तर था ‘मिनख ने मिनख नी रैवा दे’ आदमी को आदमी नहीं रहने देता। तो फिर आदमी के आदमी न रहने की चरम अभिव्यक्ति क्या होगी?

“मिनख मिनख ने खाये, और कई आदमी आदमी को खाये, और क्या?”

“तो ठीक है, चलो खाओ एक दूसरे को।”

इस पर जब सब हंस दिये तो उसने गम्भीर रह कर कहा “नहीं, हंसना नहीं है खाना है एक दूसरे को। हंसता मिनख है, तुम अब मिनख नहीं रहे, ‘छप्पनिया’ ने तुम्हें मिनख नहीं रहने दिया। अब तुम सिर्फ भूखे हो। खाओ एक दूसरे को।” इस पर कुछ लोग कुत्तों की तरह गुराते हुए एक दूसरे को काटने के लिए झपटे। एकाध शेर की तरह गुराता हुआ अपने पंजे चमकाने लगा। तब उसने फिर कहा “न जिनावर, न मिनख सब भूखा हो, और भूख बस खाणों जाणे है (न जानवर, न मनुष्य तुम सिर्फ भूखे हो और भूख सिर्फ खाना जानती है)। तो बस खाओ, जो भी सामे पड़े उणने ही।” एकदम फर्क पड़ गया, अब वे सिर्फ भूखे थे कुछ भी निगल जाने को आतुर। कुछ ही देर में इस गंगी भूख को देख पाना असम्भव हो गया, जो लोग बैठे इस अभ्यास को देख रहे थे उठ कर बाहर चले गये। औरतों ने भी उस तरफ से मुंह फेर लिए। यह अभ्यास समाप्त करके, उसने औरतों को उठाया एक एक कपड़ा लपेट कर उनके हाथों में दे दिया और कहा यह बच्चा है जिसे लोरी गाकर उन्हें सुलाना है। समय लगा, रोड़ा बा ने भी उकसाया। धीरे धीरे, पहले एक ने, फिर दूसरे ने लोरी गाना शुरू किया।

“बच्चा ने गोद में हज्जलो और थपकी दो (बच्चे को ठीक से गोद में लेकर थपकी दो)।” अब उन्होंने थोड़ा थोड़ा हिलना और गोद में रखे कपड़े को थपथपाना शुरू किया। जब उसे लगा कि अब वे थोड़ा ‘रिलैक्स’ हुई हैं तो उसने यकायक कहा “बच्चा ने उठार दांतां से चींथो दो (बच्चे को उठा कर दांतों से फाड़ खाओ)।” तो वे सब सहम कर जड़ हो गयीं। उसने फिर कहा “उठाओ चींथो बच्चा ने।” कोई प्रतिक्रिया नहीं।

“रोड़ा बा, समझाइये इनको।” कह कर वह सिगरेट पीने बाहर निकल गया।

लौट कर उसने फिर बच्चे को लोरी गाकर सुलाने के लिए कहा लेकिन इस बार वे पहले से भी अधिक असहज थीं। रोड़ा बा ने थोड़ी डांट लगायी तो उन्होंने लोरी गाना शुरू भी किया पर कोई भाव नहीं। आगे उनसे बच्चे (कपड़े) को दांतों से चींथने के लिए कहा जायेगा यह सोच कर ही उनमें जबरदस्त तनाव व्यापा हुआ था।

“अच्छा लोरी छोड़ो तुम्हारे पास जो कपड़ा है (इस बार उसने जानबूझ कर ‘बच्चा’ नहीं कहा) उसे जोर से दांतों में चींथो।”

सबने कपड़ा घूंघट में अंदर कर लिया। उसने जाकर सबके घूंघट हटा दिये तो उन्होंने तुरंत वापस खींच लिये, और मुंह घुमा कर बैठ गयीं। रोड़ा बा ने समझाया “या नाटक है नाटक में शर्म नीं करां।” पर वे टस से मस नहीं। रोड़ा बा ने उसे इशारे से तसल्ली दी।

उस दिन उसने फिर काम वहीं खत्म कर दिया।

अगले दिन उसने उनके साथ अकाल का कोई जिक्र ही नहीं किया। ‘गवरी’ में खेले जाने वाले, मक्खी के छत्ते से शहद निकालने वाला प्रसंग उनसे करने को कहा। यह तो उनका किया जाना था सो सब पुरुषों ने खूब रचबस के किया। इस प्रसंग को ‘भंवर’ कहा जाता है जिसमें पति पत्नी जंगल में शहद निकालने जाते हैं और मधुमक्खियां (भंवर) उन पर आक्रमण कर देती हैं। यह मक्खियां दरअसल असुर शक्तियां हैं जिनका भील दम्पती द्वारा आह्वान करने पर देवी संहार करती हैं, और छत्ते का शहद दम्पती की हंडिया में भर देती हैं।

फिर उसने ‘गवरी’ से ही दूसरा प्रसंग ‘सेई का शिकार’ उनसे करवाया। सेई नेवले से थोड़ा बड़ा जानवर होता है, जिसके पूरे बदन में बड़े बड़े कांटे होते हैं, जिन्हें खतरे के समय वह तीर की

तरह से किसी भी दिशा में छोड़ सकता है। भील पारम्परिक रूप से इस जानवर का शिकार करते रहे हैं। 'गवरी' में इस प्रसंग में एक अपने शरीर पर रजाई या ऐसा ही कुछ मोटा कपड़ा बांध कर सेई बनता है जिसका शिकार कई लोग घेर कर लट्ठों से करते हैं।

यह सब करते हुए आज वे सब पूरी मस्ती में थे, क्योंकि यह उनका परिचित और सुखद था। इन प्रसंगों में दल में नये आये पुरुष ज्यादा जोश दिखा रहे थे। अब उसने उनसे ठेकना नाचने को कहा, जिसे युवा लड़के लड़कियां एक दूसरे की कमर में हाथ डाल कर नाचते हैं और जो अब प्रतिबंधित है। 'ठेकना' सुन कर सब सहम गये और एक दूसरे को देखने लगे। तब रोड़ा बा उठे "आओ री छोरियां, ठेकनो करां।" सहमती झिझकती महिलाएं उठ कर खड़ी हुईं। रोड़ा बा ने उनकी कमर में हाथ डाला तो दूसरे भी आगे बढ़े।

शुरू में तो 'ठेकने' के नाम पर बस खानापूर्ति जैसा ही था लेकिन धीरे धीरे सब खुलने लगे। लड़कियों के घूँघट भी अपनी जगह से सरकने लगे और देखते देखते सभी नाच में ऐसे तन्मय हुए कि सारी सुध भूल गये। फिर तो घंटों नाच चलता रहा और सबके घूँघट उड़ गये। आज, सात दिन बाद, उसने उन लड़कियों के चेहरे देखे, और इस नाच के दौरान ही उसने गौरी की भूमिका के लिए कनजी की पत्नी दाखु का चयन किया।

इसके बाद तो इन लड़कियों के घूँघट ही नहीं ओढ़नियां भी छूट गयीं। फिर तो जैसे कोई 'फ्लड गेट' खुला। दस दिन के भीतर इन लड़कियों में जो परिवर्तन आया उसने सभी को चकित कर दिया। सबसे बड़ा चमत्कार था दाखु का अपने चरित्र से अद्भुत तादात्म्य। सेठ की हत्या करने के बाद, शेर की सवारी और फिर गोमा से वस्त्र बदलने के साथ उसका पूरा व्यक्तित्व ही जैसे बदल जाता था। हमारे देखते दूसरे ही क्षण 'परकाया प्रवेश' अच्छे अच्छे अभिनेताओं के बस का नहीं होता। दाखु में एक और परिवर्तन लक्षित करके वह हैरान हुआ, और प्रसन्न भी। रिहर्सल के दौरान अब वह दूसरी लड़कियों के साथ न बैठ कर पुरुषों के साथ बैठती थी, और एक अलग तरह का आत्मविश्वास उसमें झलकता था। उसके प्रति पुरुषों का व्यवहार भी अब मित्रों वाला हो गया था।

अब तक नाटक का नामकरण हो चुका था 'कालकथा'। छोटे छोटे आशु अभ्यासों के सहारे नाटक इम्प्रोवाइज किया जाता, संवाद निश्चित किये जाते। एक दूसरे को खाते हुए लोग कैसे और कब मंच के पार्श्व में चले जायेंगे और मंच के अग्र भाग पर सुगना हाथ में कपड़े की गुड़िया लिए बैठी हुई ही सरकते हुए प्रवेश करेगी, फिर कहां रुक कर और कैसे वह लोरी शुरू करेगी और किस बिन्दु पर वह गुड़िया को अपने दांतों में जकड़ लेग यह सब आशु अभ्यासों से ही निश्चित होता। इसी तरह बाजार में बिकने के लिए आयी लड़कियों को कैसे गिद्ध और कौए घेर लेंगे, सेठ का प्रवेश कैसे और कब होगा, कैसे बोली लगेगी आदि भी। इन अभ्यासों के दौरान कुछ दृश्यों को इम्प्रोवाइज करने के लिए वह उन्हें खुला छोड़ देता लेकिन कुछ दृश्यों में वह स्वयं ही सब निश्चित करता।

इस तरह के 'एपिसोडिकल नाटक' का यह उनके लिए पहला अनुभव था सो एक दृश्य करके उन्हें लगता था पूरा हो गया और वे शिथिल पड़ जाते, फिर दूसरा दृश्य आराम से नये सिरे से शुरू करते। ऐसे में नाटक की लय बार बार टूटती। एक दृश्य से दूसरे दृश्य के अंतर्सम्बंध और नाटक के ग्राफ और लय के प्रति उन्हें जागरूक करने में उसे खासी मशक्कत करनी पड़ी। 'गवरी' के प्रसंगों और नाटक के दृश्यों में क्या अंतर है इसे उन पर स्पष्ट करना पड़ा। लेकिन अंततः नाटक ने अपनी वांछित लय और गति पकड़ ली। आधुनिक रंगदृष्टि और भील जातीय संस्कार के बीच यह प्रस्तुति एक पुल बनी, जहां एक का दूसरे पर आरोपण नहीं था, बल्कि आदान प्रदान था, जिसने दोनों को कहीं गहरे में सम्पन्न किया।

दाखु तो इस नाटक की सबसे बड़ी उपलब्धि साबित हुई। जहां कहीं भी यह नाटक खेला गया, सब जगह दाखु के अभिनय ने लोगों को चमत्कृत कर दिया। कोई इसे मानने को तैयार नहीं था कि दाखु का यह पहला मंचप्रवेश है। दाखु समेत अब भील औरतें भी उसके दल का स्थायी हिस्सा हैं और भील समाज की भी इसमें पूरी सम्मति है।

प्रस्तुति की सर्वत्र प्रशंसा और भील सभ्यता में एक सार्थक अंतर्क्रिया के बाद भी उसे लगा कि कहीं न कहीं रंगमंच के उसके पूर्वाग्रह इस नाटक में घुस आये हैं। पूरा नाटक कहानी के बोझतले दब सा गया है। इसी से मंच सामग्री (लोहे के पाइपों से बनी बैलगाड़ी, पहाड़ का लकड़ी से बना स्ट्रक्चर, फाइबर ग्लास से बनी चट्टानें और भी कुछ) का भी इतना तामझाम नाटक में इकट्ठा हो गया है। 'पशुगायत्री' जैसी स्वतःस्फूर्त सरलता और भारहीनता इस प्रस्तुति में कहीं टुकड़ों टुकड़ों में ही है। इतने वर्षों की शिक्षा और संस्कारों से मुक्ति इतनी आसानी से थोड़े ही मिल जायेगी मियां! सो अभी और... अभी और...

बिरले ही वे घर होंगे जहां फालतू का काठ कबाड़ इकट्ठा न हो। हमारी अलमारियों के खाने, दराजें, जूतों के रैक सब ठसाठस भरे रहते हैं। उन कपड़ों, जूतों, सामानों से जिन्हें हम कभी इस्तेमाल नहीं करते, या कभी कभार ही करते हैं। सफर में भी हम आवश्यकता से अधिक लदेफदे रहते हैं। एक अजीब तरह की अरक्षितता का भाव हमसे यह सब कबाड़ जमा करवाता है।

ऐसी ही ठूसठांस हम कलाओं में भी करते हैं। सब कुछ कह डालने की हड़बड़ी में हमारी कहानी इतनी भारी हो जाती है कि उसे साधने के लिए यहां बल्ली, वहां खपच्ची लगाते ही सब बीत जाता है, और हासिल 'खोदा पहाड़ा निकला चूहा'। दरअसल हमें न तो अपने ऊपर विश्वास होता है और न ही अपने दर्शक पर। इसी के चलते हमारे पिटारे में जो कुछ है सब खोल कर रख देते हैं। पता नहीं किसे क्या पसंद आ जाये? ऐसे में अगर हमारे पिटारे में ज्यादा कुछ नहीं होता तो हम यहां वहां से उठा लेने से भी गुरेज नहीं करते।

इस तसल्ली के बावजूद कि 'कालकथा' में 'गवरी' के पार भी भील संस्कृति से एक सार्थक संवाद सम्भव हुआ है, और अब यह अंतर्सम्बंध और गहराया है। उसे संतोष नहीं था। उसे लग रहा था कि अभी भी उसका पुनर्निर्मुखीकरण (री ओरिएण्टेशन) ठीक से नहीं हो पाया है। अपने कबाड़ से मुक्ति के लिए तराश अभी बाकी है। यह प्रश्न भी उसके मन में उठ रहा था कि भील जीवनदृष्टि का सार क्या है, और उसकी आज के उनके जीवन में और दूसरों के जीवन में क्या प्रासंगिकता हो सकती है?

लेकिन भीलों के पास कोई गीता तो है नहीं कि उसमें से कुछ ढूंढा जा सके। उनके पास तो अपना कोई बीजक भी नहीं। ऐसे में, एक रात भीलों के 'जागरणे' (रतजगा) में उसने वह कथा सुनी। नवरात्री के दिनों में गांव गांव में ये जागरणे होते हैं, जिनमें पूरी रात ढाक पर कथागायन होता है। ढाक डमरू की शक्ल का लेकिन उससे कुछ बड़ा ताल वाद्य है। वादक ढाक की डोरी घुटने में पहन कर ढाक को अपने पांव के अंगूठे में फंसा उसे लकड़ी से बजाता है। ढाक अनूठा ताल वाद्य है, और क्योंकि वादक लगातार अपने पांव की गति से उसकी डोरी में खिंचाव पैदा करता है, फिर उसे ढीला छोड़ता है, इससे जो ध्वनि और लय पैदा होती है वह श्रोता को चलने की अनुभूति कराती है। मानो आप किसी यात्रा पर हैं। लगातार चल रहे हैं। रात की नीरवता में ढाक की लय पर गायी जाने वाली कथा आपको अद्भुत कल्पनालोकों की सैर कराती है। कथा का स्थाई होता है 'नदिया पुरानी है रे भाई, नदिया पुरानी है'। अनंत से बहती इस नदी में ये कथा टापू है, जिनकी यात्रा यह कथागायक अपने श्रोताओं की करवाता है। ये कथाएं बीते समय की बातें नहीं हैं, अभी जो घट

रहा है उसका 'आंखोंदेखा' बयान हैं। तो, जिस कहानी का जिक्र वह कर रहा था सार यह है धारिया भील जंगल में लकड़ी काटने जाता है और एक बड़ के पेड़ को काटने के लिए चुनता है। कुल्हाड़ी के पहले वार पर पेड़ से 'पानी रा पोवर' (पानी के झरने) फूटते हैं। धरिया प्रसन्न होता है और पेड़ पर कुल्हाड़ी का दूसरा वार करता है। इस बार पेड़ से 'दूधां रा पोवर' (दूध के झरने) फूटते हैं। प्रसन्नता के अतिरेक में जब वह तीसरी कुल्हाड़ी मारता है तो खून फूट कर बहता है और देखते देखते खून का समुद्र पैदा हो जाता है, जिसमें पूरी सृष्टि डूबने लगती है। खून के इस समुद्र में सब नष्ट हो रहा है और बड़े बड़े दानव पैदा हो रहे हैं। धारिया को अपनी भूल का अहसास होता है तो वह वनदेवी को मदद के लिए पुकारता है। घायल देवी पहाड़ों में जाकर सो गयी है। बड़ी अनुनय विनय के बाद वनदेवी जागती है तो पूछती है तूने मुझे यह घाव क्यों दिया? पश्चाताप से भरा धारिया कहता है नासमझी में उससे यह गलती हुई है। अब रक्षा करो। देवी का उत्तर है यह गम्भीर घाव यों ही नहीं भरेगा, इसके लिए उसे पाताललोक जाकर अमरबीज लाना पड़ेगा। लेकिन पाताललोक के रक्षक वासुकी तो उसे भस्म कर देंगे, वह अमरबीज कैसे लायेगा पूछने पर देवी इसके अलावा कोई और उपाय न होने का कह कर धारिया को पाताल भेज देती है। खून के समुद्र में दानवों का संहार करता धारिया किसी तरह पाताललोक पहुंचता है तो वासुकी की जहरीली फुफकारें उसे भस्म कर देती हैं। तब वनदेवी स्वयं पाताललोक पहुंचती है, तो वासुकी उसे भी उसी प्रकार भस्म कर देता है। तब वनदेवी कमल के फूल से दूसरा जन्म लेती है और सुगंधित फूलों की माला गूंथ कर वासुकी को पहनाने पहुंचती है। माला पहनाने के बहाने वह एक एक करके वासुकी के सिर काटना शुरू करती है, तो वासुकी की पत्नी पदमा नागन को समझ में आता है कि यह तो कोई शक्ति है। तब वह अपने पति के प्रार्थनों की प्रार्थना करते हुए देवी से उसका मनोरथ पूछती है। यह जान कर कि देवी को अमरबीज चाहिए, वह बताती है कि उसे तो आदिपुरुष शिव से प्राप्त करना होगा। पदमा और देवी अपनी तपस्या से शिव को प्रसन्न करती हैं और देवी उनसे अमरबीज प्राप्त करके धारिया को पुनः जीवित करती है, फिर दोनों मिल कर पृथ्वी पर सृष्टि की पुनर्चना करते हैं।

कहानी सुन कर उसे लगा जैसे उसकी साध पूरी हुई। हर सभ्यता में सृष्टि के विनाश और उसकी पुनर्चना के मिथक हैं, परंतु बड़ पर तीसरे प्रहार से सृष्टि के विनाश का मिथक किसी सभ्यता के पास नहीं है। और 'अमरबीज' की कल्पना! वह भी किसके पास है? ऊपर से यह कहानी प्रकृति से मानव के रिश्ते की कहानी लगती है, पर गहराई में कहानी के और भी आशय हैं। एक सभ्यता की पूरी जीवनदृष्टि समायी है इस कहानी में। जिन भीलों या आदिवासियों पर आरोप लगाया जाता है कि वे जंगल नष्ट कर रहे हैं उनकी है यह 'जीवनदृष्टि'।

कहानी ने उसे उद्देलित कर दिया था, और वह इस पर आधारित नाटक करने को अधीर था। उसने तुरंत दल को उदयपुर में इकट्ठा किया और पूर्वाभ्यास आरम्भ कर दिया। कहानी में अनावश्यक विस्तार, जैसे कि धारिया का जमीन में छेद करके बांस गाड़ना और उसमें से होकर पाताललोक में उतरना आदि, और दूसरे आवंतर प्रसंग निकाल कर मूल कथानक बरामद किया, लेकिन कथागायन की शैली को वैसा ही रखा, सिर्फ उसमें सुगनाबाई की 'हाई पिच्छ' आवाज भी जोड़ दी। मुख्य गायक जो गाते हैं उसे सुगना अपने ऊंचे और कुछ तीखे स्वर में दोहराती हैं। सुगना की आवाज में कुछ ऐसा है जो 'हांट' करता है। इसी तरह से मादल और थाली को ढाक के 'काउंटर पायन्ट' के रूप में जोड़ दिया। इससे कथागायन का प्रभाव और अधिक सघन और भावोत्पादक बन गया। दोनों मुख्य गायकों को सिर से लेकर पूरे बदन पर जूट पहनाया। गायकों और वादकों का मंच पर प्रवेश सुगना के आह्वान गीत के साथ अनुष्ठानिक तरीके से होता है। वे मंच की एक परिक्रमा सी

करके मंच के दाहिने आगे चौकी पर बैठ जाते हैं और फिर शुरू होता है गायन 'नदिया पुरानी..'. देखते देखते मंच हवा में लहराते पेड़ों की भंगिमा में नृत्य करते अभिनेता से भर जाता है, साथ ही नदी दाखिल होती है लम्बे नीले कपड़े में हल्की लहरें उठाते दो अभिनेता उसे लाते हैं। और दूसरी ओर निकल जाती है। फिर धारिया दाखिल होता है कंधे पर कुल्हाड़ी रखे। गायक जैसे उसे प्रॉम्ट करते हैं "हिंगन फिरे नी भाल धारिया, हिंगन फिरे नी भाल।" (अच्छी तरह घूम फिर कर देख धारिया) धारिया पेड़ों का निरीक्षण करता है, तब तक दूर दूर छितरे पेड़ (अभिनेता) सिमट कर विशाल पेड़ में बदल जाते हैं। पहली कुल्हाड़ी के साथ दोनों विंग्स से वही कपड़े की नदियां कल कल बहती आती हैं और पेड़ बने अभिनेता भी उन कपड़ों के नीचे घुस आते हैं नदियां बाहर निकलने लगती हैं तो ये अभिनेता उनसे बाहर आकर फिर वृक्ष हो जाते हैं। यह सारा कार्यव्यापार संगीत की लय पर लगभग नृत्य गतियों में सम्पन्न होता है। तीसरी कुल्हाड़ी पर रक्त का समुद्र भी पूरे मंच को ढकेलने वाले बड़े लाल कपड़े से बनता है। नदियां मंथर गति और सुदर्शन अंदाज में दाखिल हुई थीं, रक्तसमुद्र उतने ही झपाटे से दाखिल होकर सब कुछ को छा लेता है। पेड़ बने अभिनेता अब समुद्र हैं। वे कपड़े के अंदर उसमें समुद्र की तरह लहरें उठा रहे हैं। तभी इस लाल कपड़े को बीच से चीर कर डूबता उतराता धारिया बाहर आता है। उसे भीतर एक दूसरे अभिनेता (?) ने कंधे पर उठाया हुआ है, और वह बराबर उसको हिचकोले खिला रहा है। यह लाल कपड़ा बीच में से थोड़ा खुला है जिसमें से निकल कर धारिया समुद्र के ऊपर उठ आया है। वह हाथ चलाता हुआ अपने को डूबने से बचाने का नाट्य करता है। जब धारिया पाताललोक जाता है तो कपड़े को अपने सिर के ऊपर पकड़ कर यही अभिनेता फुफकारते वासुकी नाग बन जाते हैं। देवी के पाताललोक में भस्म होने के बाद यह लाल कपड़ा गायब हो जाता है, और सारे अभिनेता अब कमल का फूल बने जो धीरे धीरे खिलता है तो देवी उसके अंदर से जन्म लेती लगती है। अभिप्राय यह कि कथा सुनते हुए हमारी आंखों के सामने दृश्य जैसे तैरते हुए आते हैं, उसी तरह की 'फ्लूडिटी' इस नाटक में अटैम्पटेड थी। एक दृश्य में से पलक झपकते कब दूसरा दृश्य निकल आया इसका भान दर्शकों को दृश्य बदल जाने के बाद ही होता था। यह सारी मंच क्रियाएं संगीत और कथा गायन के साथ समक्रमिक थीं। ऐसे में खतरा था कि नाटक बैले या नृत्यनाटिका होकर न रह जाये लेकिन नाटक के चरम दृश्यों में अभिनेता टेकओवर कर लेते थे। जैसे कि धारिया का देवी को पुकारना और देवी तथा उसके बीच की बातचीत। इसी तरह पदमा नागन और देवी के बीच के संवाद या देवी का माला गूँथ कर वासुकी से माला पहनने का अनुरोध। इसके चलते नाटक नृत्यनाटिका नहीं नाटक ही बना रहा।

नाटकीय कार्यव्यापार में इस तरह की फ्लूडिटी हासिल करने के लिए उसने केवल अभिनेताओं की शारीरिक क्रियाओं को माध्यम बनाया, मंच पर एक कुल्हाड़ी को छोड़ कर और कुछ भी ठोस नहीं था। बस कपड़े थे समुद्र, नदियों के और थे अभिनेताओं के शरीर। हां, अंत में एक डमरू भी था। उसके लिए सबसे कठिन थी अमरबीज की अभिकल्पना। कहानी में तो आपने कह दिया देवी ने शिव से अमरबीज प्राप्त किया और उससे सृष्टि की पुनर्रचना की। लेकिन नाटक में तो अमरबीज को भी प्रकट होना होगा और उसके द्वारा सृष्टि की रचना की प्रक्रिया भी दर्शकों को दर्शानी होगी। एक निर्देशक के रूप में, इस नाटक में सबसे कड़ा इम्तिहान उसका यही था। तो अमरबीज बना डमरू। नाट्य से ही तो सृष्टि का उद्भव माना गया है, और इसीलिए तो शिव के पास डमरू है उनके 'सृष्टि नृत्य' के लिए। अब तो सब आसान हो गया। शिव डमरू बजाते हुए देवी के साथ एक युगल नृत्य करते हुए डमरू देवी को सौंपते हैं, देवी के डमरू नाद से धारिया का अवतरण होता है, देवी से डमरू प्राप्त कर डमरू की लय पर देवी के साथ नाचते हुए धारिया सृष्टि का सृजन करता है।

कथा समाप्त होती है, और गायक वादक भी जैसे आये थे उसी अनुष्ठानिक रूप में, अपनी माया समेट कर मंच को खाली छोड़ निकल जाते हैं।

‘अमरबीज’ भी पशुगायत्री की तरह आज तक पूरे देश में खेला जा रहा है। दर्शकों पर ‘अमरबीज’ जो प्रभाव छोड़ता है वह पशुगायत्री भी ज्यादा सघन होता है। लगता है आप किसी लम्बे स्वप्न से जागे हैं लेकिन ढाक की लय आपके भीतर देर तक समायी रहती है,जैसे आपकी सांसों में उतर गयी हो। नाटक के दृश्य एक निरंतर प्रवाहमान नदी में बहते आपके मानसपटल पर तिरते चले आते हैं।

‘अमरबीज’ करके उसे लगा कि रंगमंच में उसका दूसरा जन्म हुआ है। प्रेतबाधाएं सब छंट गयी हैं और वह बिल्कुल हल्का हो गया है। अपने कला माध्यम से ऐसा एकात्म्य उसने पहले कभी नहीं महसूस किया था।

सन् 1857 का विद्रोह : सुराज के लिए संघर्ष

मैनेजर पांडे

इतिहास जिनकी उपेक्षा करता है, साहित्य उनकी चिन्ता करता है और उनकी आवाज बन कर उन्हें नया जीवन देता है।

सन् 1857 के भारतीय महाविद्रोह के इतिहास लेखन का इतिहास बहुत लम्बा है, वह सन् 1858 से 2011 तक फैला हुआ है। ये इतिहास विभिन्न दृष्टिकोणों, विचारधाराओं और उद्देश्यों से 1857 के विद्रोह की व्याख्या करते हैं। आरम्भिक इतिहास उपनिवेशवादी दृष्टि से लिखे गये और बाद में राष्ट्रवादी दृष्टि से। बीसवीं सदी में मार्क्सवादी और सबाल्टर्न दृष्टियों से भी 1857 के संघर्ष के इतिहास लिखे गये। इन सभी इतिहासों में 1857 के संघर्ष के नायकों, सेनानियों, नवाबों, राजाओं और रानियों का उल्लेख है, लेकिन उस युद्ध में लड़ने, शहीद होने और खूंखार दमन का शिकार होने वाले साधारणजन की चर्चा नहीं है। 1857 का युद्ध एक जनयुद्ध था, उसमें साधारण जनता ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया था और बाद में वही सबसे भयावह दमन के दौर से गुजरी। उस जनयुद्ध में भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों, पुरुषों और स्त्रियों ने अंग्रेजी राज के विरुद्ध युद्ध किया था। उसमें सभी जातियों, पेशों और हैसियत के लोग शामिल थे। यह बात उस युद्ध से सम्बंधित लोकगीतों, गीतों और साहित्य के विभिन्न रूपों के माध्यम से हमारे सामने आती है। इस जनयुद्ध से यह भी साबित होता है कि हर वर्ग और हैसियत के लोगों को देशभक्त होने का अधिकार है। इतिहास तथ्यों की चर्चा करता है, लेकिन दारुण और दर्दनाक स्मृतियों की नहीं, जबकि पराजित और पराधीन मनुष्यों की स्मृति बहुत लम्बी होती है। ऐसी स्मृतियों को सजीव, प्रभावशाली और दीर्घजीवी बनाने का काम साहित्य करता है, विशेष रूप से लोकसाहित्य; क्योंकि लोकसाहित्य की रचना लोक करता है और इस तरह वह अपनी स्मृतियों को दीर्घजीवी बनाता है। 1857 से सम्बंधित लोकगीतों और लोकभाषाओं में लिखे गीतों में अनेक प्रकार की स्मृतियां व्यक्त हुई हैं। अंग्रेजी राज से लोक के संघर्ष और अंग्रेजी उपनिवेशवाद की लूट, दमन

और तबाही के अनुभवों की स्मृतियां लोकगीतों में ही हैं।

सन् 1857-58 में भारत में अंग्रेजी राज के विरुद्ध जो जनयुद्ध हुआ था उसके उद्देश्य, स्वरूप और महत्व पर सबसे अब तक जो विचार विमर्श हुआ है उसका आधार वास्तविक, कल्पित और मनगढ़ंत ऐतिहासिक सच और झूठ रहे हैं। यही नहीं, ऐसे सम्पूर्ण लेखन में विभिन्न प्रकार के ज्ञानियों की दृष्टि और समझ प्रकट हुई है, लेकिन युद्धक्षेत्र की जनता की चेतना और भावना नहीं। उस जनयुद्ध में शामिल जनता की चेतना और भावना को जानने के लिए उस जनता के रचे लोकगीतों को पढ़ना जरूरी है।

उन लोकगीतों से जाहिर होता है कि भारतीय जनता ईस्ट इंडिया कम्पनी के कुराज के कारण तबाही, बर्बादी और यातना की जिस दारुण दशा को झेल रही थी उससे मुक्ति और सुराज की स्थापना के लिए वह युद्ध कर रही थी। सन् 1857 के विद्रोह के एक सेनानी कुंवर सिंह से सम्बंधित एक लोकगीत में उनकी राजनीतिक आकांक्षा और उसके अधूरा रहने का दुख इस तरह व्यक्त हुआ है

कुल्ही गुनलका रामा, मटिया में मिलि गइले,
नाहीं लेबे पवलीं हम सुराज

सुराज हिन्दी की विभिन्न लोकभाषाओं का अत्यंत लोकप्रिय शब्द है। यह जितना लोकप्रिय है उतना ही पुराना भी है। तुलसीदास के समय में यह बहुत लोकप्रिय रहा होगा, इसीलिए उन्होंने रामचरितमानस में इसका कम से कम पांच बार प्रयोग किया है। अयोध्याकांड में सुराज शब्द का प्रयोग तीन बार है

(क) जाई सुराज सुदेश सुखारी।

होहिं भरत गति तेहि अनुहारी।।

(ख) राम बास बन सम्पतिभ्राजा।

सुखी प्रजा जनु पायी सुराजा।।

(ग) अलिगन गावत नाचत मोरा।

जनु सुराज मंग चहु ओरा।।

फिर किष्किंधाकांड में सुराज शब्द का प्रयोग दो बार है

(घ) अर्क हवास पात बिनु भयऊ।

जसु सुराज खल उद्यम गयऊ।।

(ङ.) विविध जंतु संकुल महि भ्राजा।

प्रजा बाढ़ जिमि पायी सुराजा।।

तुलसीदास के अनुसार सुराज के पांच लक्षण हैं। पहला, सुराज होने से देश सुदेश हो जाता है। दूसरा, सुराज के कारण जनता सुखी होती है। तीसरा, सुराज होने पर चारों ओर मंगल होता है। चौथा, सुराज में दुष्टों की गतिविधियां समाप्त हो जाती हैं और पांचवां, सुराज के कारण जनता की उन्नति होती है। इनमें से एक भी लक्षण ईस्ट इंडिया कम्पनी के राज में भारत में न था। इसका तात्पर्य यह है कि वह कुराज था, इसीलिए उसके विरुद्ध सुराज की स्थापना के लिए 1857 का संघर्ष हुआ। बाद के समय में स्वाधीनता आंदोलन के दौर में भी सुराज शब्द का हिन्दी क्षेत्र में प्रयोग अत्यंत लोकप्रिय था। आम जनता स्वाधीनता आंदोलन के सभी छोटे बड़े नेताओं और कार्यकर्ताओं को सुराजी कहती थी।

इस लोकगीत में केवल सुराज न पा सकने का दुख ही व्यक्त नहीं हुआ है बल्कि सुराज के सपने के अधूरा रह जाने के एक बड़े कारण का स्पष्ट उल्लेख भी है। सन् 1857 के जनयुद्ध में भारतीय पक्ष की पराजय के अनेक कारण बताये गये हैं, लेकिन प्रायः इतिहासकारों ने उस कारण की चर्चा नहीं की है जिसका उल्लेख इस लोकगीत में है

रामा देशवा के कुछ त अदमियां रे ना।
रामा भइले देश के द्रोहिया रे ना।
एक त हम आस कइलीं राजा डुमराव के
उहो भागी चलले जइसे बन में खरहा।

हाल की खोजों से यह बात सामने आयी है कि उस युद्ध में भारतीय पक्ष की पराजय का एक बड़ा कारण असंख्य भारतवासियों का देशद्रोह था, जिसका उल्लेख इस लोकगीत में है। गदर के गद्दारों का उल्लेख एक और लोकगीत में भी है। गदर के गद्दारों की चर्चा इस भोजपुरी गीत में की गयी है

रामा देशवा के कुछ त अदमिया रे ना।।
रामा हो गइले देशद्रोहिया रे ना।
रामा मिलि गइले आयर के संगवा रे ना।
रामा भारी दल लेके उनके सथवा रे ना।
रामा आरा पर कइले चढ़इया रे ना।।

गदर के गद्दारों के बारे में एक अवधी लोककवि के गीत में कहा गया है

भाई बंद और कुटूम कबीला सबका करौं सलामा।
तुम तो जाय मिल्यो गोरन ते हमका हैं भगवाना।।

एक कौरवी लोकगीत में गदर के कुछ गद्दारों को इस तरह याद किया गया है

गंगाराम याहूदी ने जी देखो तो क्या काम किया।
अंग्रेजों से मिला रहा, और लड़ने का बस नाम किया।
फौज ने मांगा खाने को, ना उनका कोई काम किया।
भूखे लड़ते रहे गाजी अरु, किनको सुमू शाम किया।

खड़ी बोली के एक लोकगीत में गद्दार सामंतों का यह उल्लेख है

सूबे के राजवार फिरंगी से मिल गये।
जितने लड़े समर में सब उत्तर चले गये।
दो एक निमक हराम किरिस्तान हो गये।
सदहा लड़ाई मारि कै राना निकल गये।

गदर के गद्दार दो तरह के थे। एक थे छोटे बड़े असंख्य सामंत और दूसरे थे अंग्रेजी राज के बहुत सारे जासूस। इन गद्दारों की करतूतों की खोज और विवेचना का काम हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के अनेक लेखकों ने किया है। हिन्दुस्तान के शम्सुल इस्लाम ने ‘जासूसों के खुतूत और दिल्ली हार गयी’ नाम से एक किताब सम्पादित की है जिसमें देशी जासूसों के एक सौ आठ खत हैं। शम्सुल इस्लाम ने इस किताब की एक लम्बी भूमिका भी लिखी है, उस भूमिका में गदर के गद्दारों के बारे में एक अंग्रेज इतिहासकार जे.डब्ल्यू. केई की यह राय उद्धृत की है “यह गदर युद्ध की एक अद्भुत विशेषता थी कि हालांकि अंग्रेज स्थानीय नस्लों के विरुद्ध लड़ रहे थे, पर उन्हें वास्तविकता में इसी देश के स्थानीय लोगों ने समर्थन दिया। ये समर्थक जिन्हें हम अपना राष्ट्रीय शत्रु मानते थे उनकी सहायता के बिना हम एक दिन भी जीवित नहीं रह सकते थे।”¹

1857 के युद्ध की एक और विडम्बना है जिस पर इतिहासकारों ने कम ध्यान दिया है वह विडम्बना यह है कि उस जनयुद्ध में भारतीय पक्ष की पराजय और अंग्रेजी राज के विजय की सबसे बड़ी वजह भारतीय सामंतों, जमींदारों और छोटे बड़े राजे महाराजों की गद्दारी तथा अंग्रेजी सत्ता की मदद थी। इस तथ्य को अंग्रेज इतिहासकार केई और पत्रकार रसेल ने स्वीकार किया है। 1857 के

एक भारतीय सेनापति नानासाहेब ने अपने अंतिम पत्र में यह ठीक ही लिखा है “शैतान रजवाड़ों ने अपने स्वार्थ के लिए इस देश को अंग्रेजों के हवाले कर दिया, जबकि अंग्रेजों की हमारे सामने कोई हैसियत ही नहीं थी।”²

शमसुल इस्लाम ने अपनी किताब ‘1857 की हैरतअंगेज दास्तानें’ में अंग्रेजी सरकार के दस्तावेजों के आधार पर उन भारतीय राजाओं महाराजाओं का ब्यौरा दिया है, जिन्होंने गदर के साथ गद्दारी की और अंग्रेजी राज की मदद की। उन दस्तावेजों के अनुसार ग्वालियर के सिन्धिया, हैदराबाद के निजाम, इंदौर के होल्कर, जयपुर के महाराजा, जोधपुर के महाराजा, रामपुर के नवाब, रीवा के राजा, रतलाम के राजा, टिहरी के महाराज, टोंक के नवाब, भोपाल के नवाब, पटियाला के महाराजा, जिंद के राजा, नाभा के राजा, कपूरथला के राजा पटौदी के नवाब और जम्मू कश्मीर के राजा की मदद से अंग्रेजी सेना जीत गयी और भारतीय विद्रोही हार गये। ऐसे गद्दार छोटे बड़े सामंत बिहार में भी थे। उनमें से कुछ की जानकारी शाद अजीमाबादी के उपन्यास ‘पीर अली’ में है।

जिन छोटे बड़े जमींदारों, राजाओं और महाराजाओं ने गदर से गद्दारी की और अंग्रेजी राज की मदद की उनको विद्रोह के दमन के बाद अंग्रेजी राज से तरह तरह के ईनाम तथा पदवियां मिलीं। यही नहीं विद्रोही देशी सामंतों की जायदाद भी गद्दारों को सौंप दी गयी। इस प्रसंग में एक और विडम्बना यह है कि 1947 में जब भारत आजाद हुआ तब गदर के गद्दार राजाओं, महाराजाओं को स्वतंत्र भारत की सत्ता में भी अनेक प्रकार की राजगद्दियां मिलीं। इस बात का स्पष्ट उल्लेख रामविलास शर्मा की 1947 में ही लिखी एक कविता में इस प्रकार है

धरती के मालिक हैं सब गद्दार गदर के,
जमींदार, ताल्लुकदार,
सुंदर शरीर पर कुष्ठ रोग से।

सुराज का अर्थ स्वराज भी था, यह बात भी लोकगीतों और गीतों के माध्यम से हमारे सामने आती है। अजीमुल्ला खां के लिखे 1857 के ‘बागी सैनिकों का कौमी गीत’ में यह स्पष्ट कहा गया है

आज शहीदों ने है तुमको अहले वतन ललकारा
तोड़ो गुलामी की जंजीरें बरसाओ अंगारा
हिन्दु मुसलमां सिख हमारा भाई भाई प्यारा
यह है आजादी का झंडा इसे सलाम हमारा।।

अवध की बेगम हजरत महल की गजल के एक शेर में भी आजादी की तमन्ना इस तरह व्यक्त हुई है

एक तमन्ना थी कि आजाद वतन हो जाये
जिसने जीने न दिया चैन से मरने न दिया

1857 के संग्राम में भाग लेने वाली अजीजन के अनेक गीतों में आजादी की पुकार बार बार व्यक्त हुई है। उनका एक गीत यह है

आजादी का बिगुल बजा है
और क्रांति का साज सजा है
देरी का है अब समय नहीं
सुनो नाना जी का फरमान।।
जागो, उठो, अब हुआ बिहान

एक गोंडी लोकगीत में आजादी की आकांक्षा इस रूप में व्यक्त हुई है
 हम भारत के गोंड बैंगा, आजादी ख्यार।
 अंग्रेजन ला मार भगाओ, भारत ले रे।
 हम भैया छाती अड़ाओ, हम तो खून बहाओ भारत ख्यार।
 अंग्रेजन ला मार भगाओ, भारत ले रे।

इन लोकगीतों से यह स्पष्ट है कि सुराज का अर्थ स्वराज ही था। उस युद्ध में शामिल भारतीयजन यह समझते थे कि स्वराज में ही सुराज होगा।

सन् 1857 के जनयुद्ध में जो लोग सुराज के लिये लड़ रहे थे वे यह जानते थे कि अंग्रेजी राज कुराज है। यद्यपि भारत में राज करने वाले अंग्रेज शासकों ने 1757 से 1947 तक कभी यह नहीं माना कि उनका राज कुराज था, लेकिन जो ईमानदार अंग्रेज अधिकारी उस कुराज के गवाह थे, उनमें से कुछ उसे कुराज कहते भी थे। ऐसे एक अंग्रेज अधिकारी ने 1833 ई. में अंग्रेजी में एक लम्बी कविता लिखी थी, जिसका शीर्षक था 'इंडिया'। कविता जब छपी तब उसके साथ कवि का नाम नहीं था। वह अनाम कविता 1834 ई. में लंदन में छपी थी। उसके बाद लगभग एक सदी से कुछ अधिक समय तक वह अंधेरे में खोयी रही। 1972 में यह फिर प्रकाश में आयी और प्रकाशित हुई इस कविता के एक हिस्से में अंग्रेजी राज का जो चित्र है उसे देखिये और सोचिये कि वह कैसा राज है कुराज या सुराज।

हम उनके बीच एक अभिशाप की तरह हैं
 हमारा नाम ही उनके लिए आतंककारी है
 कोई सहानुभूति नहीं, कोई दया नहीं, कोई पछतावा नहीं,
 हमारा लक्ष्य है लाभ, हमारा साधन है शक्ति
 हम हमेशा लेते हैं, कभी देते नहीं,
 हम यह चिन्ता नहीं करते कि वे जीते हैं या मरते हैं।।³

ऐसे राज के विरुद्ध विद्रोह करना स्वाभाविक है और विद्रोह न करना आश्चर्यजनक, इसीलिए उस अंग्रेज कवि ने 1833 में 1857 के महाविद्रोह की भविष्यवाणी करते हुए अंग्रेजी राज को इन शब्दों में सावधान किया था

क्या तुम यह जानते हो कि
 कैसा जलप्रलय आ रहा है
 चक्करदार लहरें तुम्हें चारों ओर से घेर रही हैं
 मैं तुम्हें आने वाले प्रलय से सावधान कर रहा हूँ।
 ओ ब्रिटेन! इसे रोको, ये रक्त की लहरें हैं।।⁴

इसके बाद कवि ने जैसे रक्तर्जित भयावह दृश्यों का चित्रण किया है वैसे दृश्यों का सामना 1857-58 के विद्रोह के समय अंग्रेजों को कई बार करना पड़ा।

भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी का राज कैसा था, वह किसानों के साथ कैसे क्रूर व्यवहार कर रहा था, यह आप एक अन्य अंग्रेज कवि के शब्दों में देखिये। 8 मई 1858 को मजदूर नेता और कवि अर्नेस्ट जोन्स ने भारत के किसानों के शोषण और दमन के बारे में लिखा था "उन्हें (भारत के किसान) याद है कि इसके बाद जब खेती करना असम्भव हो गया, उन्होंने अपने खेत छोड़ने की कोशिश की क्योंकि वे उन पर फसल पैदा करने की स्थिति में ही नहीं थे, लेकिन वास्तव में उन्हें उन जमीनों पर कर देने के लिए मजबूर कर दिया गया जिन पर उन्हें हल चलाना भी नहीं था। उन्हें यह भी याद

है कि जब वे मांगी जा रही रकम अपने सम्बंधियों से जुटाने में विफल रहे, किस तरह उन्हें यातनाएं दी गयी थीं। किस तरह उन्हें दिन की तपती दोपहरी में पांव से बांध कर उल्टा लटकाया गया था या फिर पांव में पत्थर बांध सिर के बालों से लटकाया गया था। कैसी लकड़ी की पैनी पिपेण्ट नाखूनों में धंसायी गयी थी। कैसे बाप बेटों को एक साथ बांध कर, एक साथ उन पर कोड़े बरसाये जाते थे, जिससे एक की तकलीफ से दूसरे की पीड़ा और बढ़ जाये। किस तरह औरतों को कोड़े मारे जाते थे। किस तरह उनकी छाती पर बिच्छू बांधे जाते थे और आंखों में लाल मिर्च का चूरा बुरक दिया जाता था।”⁵ यही कारण है कि 1857 के विद्रोह में भारत के किसानों ने और सैनिकों के रूप में किसानों के बेटों ने भाग लिया था, शहीद हुए थे और बाद में खूंखार दमन के शिकार भी हुए।

हिन्दी क्षेत्र की विभिन्न लोकभाषाओं के लोकगीतों के रचनाकार किसान ही थे। आइये, यह देखें कि इन लोकगीतों में अंग्रेजी राज की कैसी तस्वीर है। एक भोजपुरी लोकगीत में अंग्रेजी राज के कुराज के प्रभाव का वर्णन यह है

हो गइली कंगाल हो विदेसी तोरे रजवा में।
 सोने की थारी जहां जेवना जेवत रहनी,
 कटवा के डोकिया ले भइलीं मुहाल।
 भारत के लोग आजु दाना बिनु तरसे भइया,
 लंदन के कुतवा उड़ावे मजा माल,
 हो विदेसी तोरे रजवा में।

इसके साथ ही मनोरंजन प्रसाद सिंह के भोजपुरी गीत फिरंगिया की इन पंक्तियों को पढ़िए
 सुंदर सुधर भूमि भारत के रहे रामा, आज इहे भइल मसान रे फिरंगिया
 अन्न धन जन बल बुद्धि सब नास भइल, कौनो के ना रहल निसान रे फिरंगिया
 जहंवा थोड़े ही दिन पहिले ही होत रहे, लाखे मन गल्ला और धान रे फिरंगिया
 उन्हें आज हाय रामा! मथवा पर हाथ धरि बिलखि के रोवेला किसान रे फिरंगिया
 ब्रज के एक लोकगीत में अंग्रेजों को फिरंगी डाकू कहा गया है

री बहिना मेरी भारत में फिरंगी डाकू धंसि गये।
 जिन्ने डारी ये लूट मचाय। री बहिना मेरी...
 री बहिना मेरी माल खजाने सबु ले गये।
 जिन्ने दीने ए लोट चलाये। री बहिना...
 री बहिना मेरी गायन के खिरक खाली है गये।
 जिन्ने दीनी ए सब कटवाय। री बहिना...
 री बहिना मेरी दूध दही सुपनो है गयो।
 दुरलभ है गयी छाछ। बहिना मेरी...

ऐसा नहीं है कि कम्पनी राज तो कुराज था पर 1858 के बाद ब्रिटेन की राजशाही के राज में भारत में सुराज आ गया था। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के अनेक भारतीय और अंग्रेज लेखकों ने ब्रिटिश शासन में भारत की लूट, तबाही, बर्बादी और यातना का सप्रमाण विवेचन किया है। बांग्ला के प्रसिद्ध लेखक सखाराम गणेश देउस्कर ने 1904 ई. में बांग्ला में एक पुस्तक लिखी थी, जिसका हिन्दी में ‘देश की बात’ से पहला अनुवाद 1908 में और दूसरा 1910 में हुआ था। उसमें अंग्रेजी राज द्वारा भारत के शोषण और दमन का विस्तार से विवेचन किया गया है। उसके एक अध्याय का शीर्षक है ‘किसानों का सर्वनाश’, एक और अध्याय का शीर्षक है ‘कारीगरों का सर्वनाश’ और बाद

में एक और अध्याय है 'देशी कारीगरी का नाश'। इन अध्यायों के शीर्षक बता रहे हैं कि उनमें क्या लिखा गया है। किसानों का सर्वनाश अध्याय में काशी के बारे में देउस्कर जी ने लिखा है "अंग्रेजों के हाथ में इस प्रदेश को पड़ते ही नौ वर्ष में यह स्वर्णभूमि, श्मशानभूमि हो गयी। बेचारे किसान हर तरह से मारे गये।" यही दशा देश भर के किसानों की हुई।

सन् 1921 में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने एक किताब लिखी थी 'अवध के किसानों की बर्बादी'। यह किताब द्विवेदी जी ने अपने नाम से नहीं 'एक किसान' के नाम से लिखी थी। उसकी भूमिका शिवप्रसाद गुप्त ने लिखी थी। शिवप्रसाद गुप्त ने भूमिका में लिखा है कि "किसानों की अवस्था गुलामों से भी ज्यादा गिरी हुई है। इसकी एकमात्र औषधि उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता देना है।" महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अवध के किसानों पर करों के बोझ, उनको वसूल करने की प्रक्रिया में होने वाले जुल्म और ज्यादाती तथा बेदखली का विस्तृत विवेचन करते हुए उनकी दुर्दशा को पाठकों के सामने रखा है। गांधी जी ने भारत में और अन्यत्र भी अंग्रेजी साम्राज्यवाद की रीति नीति और करतूतों का जो अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया था उसके आधार पर उन्होंने 1929 में लिखा था "जहां तक साम्राज्यवाद का सवाल है तो मैं जहां भी देखता हूं वहां झूठ, धोखा, घमंड, अत्याचार, नशाखोरी, जुआबाजी, व्यभिचार, रात दिन लूट और डायरवाद ही दिखायी देता है। साम्राज्य की वेदी पर सब कुछ का बलिदान किया जाता है। वह केवल अपने व्यापार के लिए जीता है और उसकी रक्षा के लिए मरता भी है।" ⁶ ऐसा साम्राज्यवादी राज कुराज नहीं तो और क्या है और उसके विरुद्ध विद्रोह पर आश्चर्य क्यों!

सन् 1857 के विद्रोह के बारे में जो इतिहास लिखे गये हैं उनमें बहादुरशाह जफर, उनके बेटों, अवध की बेगम हजरत महल, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, नाना साहेब, तात्या टोपे, अजीमुल्ला खां और कुंवर सिंह के नाम सामने आते हैं। सबाल्टन इतिहासकार गौतम भद्र ने एक लेख में 1857 के विद्रोह के चार अल्पज्ञात विद्रोहियों के बारे में लिखा है। उन विद्रोहियों में बडौत के शाहमल, मथुरा के देवी सिंह, छोटा नागपुर के कोल आदिवासी गोनू और उत्तर प्रदेश के मौलवी अहमदुल्लाशाह मुख्य हैं। ⁷

हिन्दी क्षेत्र की लोकभाषाओं के लोकगीतों में 1857 के विद्रोह में भाग लेने और शहीद होने वाले अनेक पुरुषों और स्त्रियों के नाम ही नहीं उनकी संघर्षगाथा भी मिलती है। भोजपुरी के लोकगीतों और गीतों में मंगल पांडे, कुंवर सिंह, उनके भाई अमर सिंह और पटना के पीर अली के नाम मिलते हैं। बुंदेली में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के बारे में अनेक लोकगीत हैं पर उनके साथ ही पारीछत की वीरता का प्रभावशाली वर्णन है। वह लोकगीत इस प्रकार है

मुरगा बोले पतारन में
हथनी मारे हजारन में।
पारीछत दहाड़े हजारन में।
ढड़कें फिरंगी पहारन में।।
पाठे कौ झिन्ना रुकत नैया
पारीछत कौ हांती टरत नैया।
पूरी हथिनिया गरद मिला जाये
पारीछत कौ तेगा कतल कर जाये।।

एक और लोकगीत में लक्ष्मण सिंह की वीरता का वर्णन इस प्रकार है

लक्ष्मण सिंह फिरत हैं दौआ
मारत जात लखत अंगरेजन, काटत ककरी जौआ
भगत फिरत अंगरेजा बेकल, दौआ हो राओ हौआ।

बांदा से कोठी तक मारी, फौज फिरंगी कौआ ।
 सुन लो तब कोउ कान खोल के भाग चले लखनौआ ।
 एक अन्य गीत में श्यामलगिरी के शौर्य और युद्ध कौशल का वर्णन इस प्रकार है
 श्यामलगिरि भेरई आ धमके ।
 तीन सहस नाथु ले धाये, अंगरेजन पै चमके ।
 कानपूर से भगे फिरंगी पुन बिठूर आ धमके ।
 होन लगी तकरार रार है, आन फिरंगी ठमके ।
 एक लोककवि गंगा सिंह ने बहादुर सीला देवी और अन्य स्त्रियों के युद्ध का चित्रण किया

है

बांदा लुटो रात के गुइयां, सोउत रई चिरैयां
 सीला देवी लरी दौर के संग में सहस मिहरियां
 अंगरेजन तों करी लराई मारे लोग लुगइयां
 गिरी गुसाईं तब दौरे हैं लरन लगे मऊ मइयां
 बुंदेली के एक और लोककवि रामधनी ने पदम कर की रानी भवानी का यशगान करते हुए

लिखा है

उमदानी है आज भवानी, पदमाकर की रानी
 जागा जागा सभा रोय क सुना रइ है बानी
 सागर से वा नागपुर सों घड़ा रई रन पानी
 मानों गुरिया बेंच बांध के बनवा लेउ क्रियानी
 भाला बरछी गोला बोला ले लो रे प्रिन ठानी
 रामधनी अब रार ठनी है, देस दुखी तब जानी ।

एक और बुंदेली लोकगीत में खानपुर के मर्दान सिंह के युद्ध कौशल के बारे में यह कहा गया

है

लोहागढ़ कठिन मवात,
 फिरंगी झांसी भरोसै ना रहियो ।
 जहं तोप चलें, गोला चलें, भालन की है मार,
 जहं सीस हथेली ले चले,
 जमराज के सिरदार ।
 फिरंगी झांसी भरोसैं ना रहियो । लोहागढ़...
 का कहिये खानपुर बारे की,
 मर्दान सिंह नृपत जुझारे की ।

सन् 1857 के भारतीय विद्रोह और संघर्ष के दो मुख्य केन्द्र थे दिल्ली और लखनऊ ।
 उन्नीसवीं सदी के आरम्भ से ही अवध कम्पनी राज की आंखों का कांटा बना हुआ था, उस पर कब्जा
 करने की इच्छा जोर मार रही थी । एक इतिहासकार क्रिस्पीन बेट्स ने सन् 1825 में एक घुड़सवार
 अंग्रेज सैनिक और अवध के एक जमादार के बीच बातचीत को उद्धृत किया है । उस सैनिक ने जमादार
 से पूछा कि क्या अवध की जनता ब्रिटिश राज के अधीन रहना चाहती है । जमादार ने जवाब दिया
 “हम दुखी जरूर हैं, पर हमें माफ कीजिये । ब्रिटिश राज के अधीन होने पर अवध के नाम और हमारे
 राष्ट्र के सम्मान का अंत हो जायेगा ।”⁸ जब 1856 ई. में कम्पनी राज ने अवध पर कब्जा किया

तब अवध का आहत आत्मसम्मान उग्र होकर 1857 के विद्रोह के रूप में प्रकट हुआ। लखनऊ का संघर्ष भीषण था। दिल्ली में बहादुरशाह जफर के बेटों और दूसरे शहजादों का हत्यारा हडसन लखनऊ में ही लूटमार करते हुए मारा गया।^१ इतिहासकार रिचर्ड गॉट ने लिखा है कि खूंखार हत्यारा जेम्स नील भी लखनऊ में ही मारा गया।

पूरा अवध अंग्रेजी राज के खिलाफ उठ खड़ा हुआ। प्रायः इतिहासों में बेगम हजरत महल का नाम मिलता है। लेकिन उन अनेक की कोई चर्चा नहीं होती जो अपनी जान हथेली पर लेकर लड़े और शहीद हुए। ऐसे वीरों की शहादत की स्मृतियां अवधी भाषा के लोकगीतों और गीतों में दर्ज हैं। उन शहीदों को विद्वान इतिहासकार जानें या न जानें, लेकिन आम जनता उन्हें खूब जानती है और उनको आदर के साथ याद भी करती है। अवधी के एक लोककवि भागू ने चहलारी के राजा बलभद्र सिंह की शौर्यगाथा को इस रूप में गाया है

राजा कहिये चहलारी वाला जेहिक बांट परी तरवार।
 ब्याह क कंगना कर मां बाजे लक्खी मोर देय बहार।।
 हाथी घिरिगा जब राजा का महावत गया सनाका खाय।
 बोला महावत तब राजा ते भैया दीनबंधु महाराज।।
 मरजी पावों सहजादे की तुरतै चहलारी दऊं पहुंचाय।
 सुनिकै राजा राहुटु होइगा करिया नैन लाल होइ जांय।।
 बोला राजा चहलारी वाला जेहिका बलभद्र सिंह नाव कहाय।
 हटजा हटजा मेरे आगे से तेरा काल रहा नियराय।।
 धरम छत्री का यू नाही है भागै रण ते पीठ देखाय।

गोंडा के राजा देवीबख्शा सिंह एक विद्रोही थे, जिनके बारे में यह लोकगीत है

राजा देबी बकस लोह वंका जिनका रत्ती भर न संका।
 बहि बजवाय दीन है डंका
 राजा एक सर बंधाय दीन लाय,
 जब राजा कै राज रहा, तब सुखी सबै संसार रहा।

अवध के एक और विद्रोही वीर रायबरेली के राणा बेनीमाधव थे, जिनके बारे में एक लोककवि दुलारे ने यह लोकगीत लिखा है

अवध मां राना भयो मरदाना।।
 पहिल लड़ाई भई बक्सर मां सेमरी के मैदाना।
 हुवां से जाय पुरवा मां जीत्यो तबै लाट घबड़ाना।।
 नक्की मिले मान सिंह मिलिगे मिले सुदर्सन काना।
 छत्री बेस एक ना मिलिहै जानै सकल जहाना।।
 भाई बंध और कुटूम कबीला सबका करौं सलामा।
 तुम तो जाय मिल्यो गोरन ते हमका हैं भगवाना।।
 हाथ मां भाला बगल सिरोही घोड़ा चले मस्ताना।
 कहैं 'दुलारे' सुन मोर प्यारे यों राना किया पयाना।।

राणा बेनीमाध की बहादुरी के बारे में और भी अनेक लोकगीत और गीत लोकप्रचलित हैं।

ब्रजभाषा के लोकगीतों में भी अनेक विद्रोहियों की स्मृतियां प्रचलित हैं। एक विद्रोही अमानी के बारे में यह लोकगीत है

अमानी मानै तो मानै घोड़ी ना मानै
 के अंगरेज चढ़े घोड़िन पै, कित्ते उल्टे पैदर आये
 कित्ते पकरि कुअन में डारे, कित्ते उल्टे भाजे
 करौ अमानी ने जब पीछो, बीन बीन के मारे
 अमानी मानै तो मानै घोड़ी ना मानै।

इन लोकभाषाओं के साथ साथ मालवी, गौड़ी, हिमाचली, हरियाणवी और कौरवी आदि लोकभाषाओं के लोकगीतों में 1857 के विद्रोह और बाद के दमन की स्मृतियां आज भी जीवित हैं। इन लोकगीतों के साथ ही बहादुरशाह की गजलों में 1857 के विद्रोह और बाद की बर्बादी के गम की गूँजे अनेक रूपों में मौजूद हैं तो बेगम हजरत महल की गजल में आजादी की तमन्ना और उसके लिए सब कुछ कुर्बान करने की तत्परता व्यक्त हुई है। उर्दू की दूसरी गजलों में भी 1857 के विद्रोह की आग की गर्मी मौजूद है। अजीजन के गीतों में आजादी की चाहत और उसे पाने के लिए सब कुछ गंवाने की तैयारी के स्वर सुनायी देते हैं।

राजस्थानी के लोकगीतों और गीतों में अपनी मातृभूमि पर अंग्रेजों के कब्जे से उपजे अपमान का बोध, आजादी के लिए मर मिटने का जोश और महाविद्रोह के समय की शहदातों की स्मृतियां मौजूद हैं। राजस्थानी के कवि बांकीदास ने 1830 के आसपास अंग्रेजी राज के आने के बारे में राजस्थान के राजाओं को चेतावनी दी थी और उनमें अपनी मातृभूमि की रक्षा का दायित्वबोध जगाया था। साथ ही उन्हें उनकी वीरता की परम्परा की याद दिलाते हुए ललकारा भी था। राजस्थानी के एक और बड़े कवि हैं सूरजमल्ल मिसण, जो 1857 के विद्रोह के समय मौजूद थे। वे उस समय कई स्तरों पर सक्रिय थे। एक ओर वे 'वीर सतसई' की रचना कर रहे थे, जिसमें 1857 का संघर्ष प्रतिबिम्बित है तो दूसरी ओर वे उसी समय अनेक राजपूत जमींदारों को पत्र लिख कर उस विद्रोह में शामिल होकर युद्ध करने की प्रेरणा दे रहे थे। उनके ऐसे पांच पत्र प्राप्त हैं, जिन्हें वीर सतसई के सम्पादकों ने भूमिका में उद्धृत किया है। सूरजमल्ल मिसण की राजनीतिक सूझबूझ को समझने के लिए उनके पहले पत्र का यह अंश देखने लायक है "ये राजा लोग देशपति जो जमीन के स्वामी हैं, ये सबके सब निकम्मे, कायर और हिमालय के गले ही निकले। इस क्रांति ने अंग्रेज को चालीस से लेकर 60-70 वर्ष तक पीछे डाल दिया है, तो भी ये राजा लोग कायरता दिखा रहे हैं और (अंग्रेजी की) गुलामी करते हैं। परंतु मेरी यह बात आप याद रखिये कि जो इस बार अंग्रेज रह गया तो वही सर्वशक्तिमान हो जायेगा, पृथ्वी का मालिक कोई भी न रह सकेगा, सब ईसाई हो जायेंगे।" ¹⁰ तीसरी ओर वे 1857 के विद्रोह के एक बहादुर आउवा के राजा खुशाल सिंह की तारीफ का गीत लिख रहे थे।

1857 से सम्बंधित राजस्थानी लोकगीतों में सबसे अधिक लोकगीत आउवा के राजा खुशाल सिंह के युद्ध कौशल, उनकी निर्भीकता और बलिदान के वर्णन चित्रण से सम्बंधित हैं। एक लोकगीत यह है

ढोल बाजै, थाली बाजै, भेलो बाजै बांकियो,
 अजंट ने ओ मारने दरवाजे नांकियां,
 जुझै आउवो!
 हे ओ जूझै आउवो, आउवो मूलकां में चावो ओ,
 जूझै आउवो।

1857 के विद्रोह के बारे में अधिसंख्य इतिहासकारों की राय है कि वह केवल हिन्दी क्षेत्र तक सीमित था। यह पूरी तरह सही नहीं है। यह सच है कि हिन्दी क्षेत्र में वह जितना व्यापक और प्रचंड

था, उतना देश के अन्य भागों में नहीं। लेकिन वह था अखिल भारतीय और सर्वव्यापी। पूरे देश की जनता कम्पनी शासन के कुराज से पीड़ित, प्रताड़ित, दमित, आक्रांत और आक्रोशित थी, इसलिए जब 1857 के विद्रोह की आग भड़की तब उसकी आभा और गर्मी चारों ओर फैली। अब तक यह माना जाता रहा है कि इस विद्रोह से पूर्वी भारत अप्रभावित था। लेकिन हाल में पूर्वी बंगाल के चटगांव में विद्रोह का प्रमाण उस क्षेत्र की एक लोकगाथा के रूप में सामने आया है। गोपाल प्रधान ने लोकभाषा में मौजूद 1857 की उस महागाथा को प्रस्तुत किया है। गोपाल प्रधान ने अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है “1857 में अब के बांग्लादेश के चटगांव में फौजी छावनी में विद्रोह हुआ। विद्रोही त्रिपुरा के रास्ते मेघालय में जयंतिया राजा के यहां जाना चाहते थे। त्रिपुरा में घुस कर वे सिलचर तक आये लेकिन रास्ते में बदरपुर की पहाड़ियों और जंगलों में भटक गये। कुछ जासूसों की गद्दारी के कारण वे अंग्रेजी फौज के हत्ये चढ़ गये और मारे गये। उनके विद्रोह और समापन की त्रासद कथा लोगों की जुबान पर अब भी है। ‘जंगीयार गीत’ नाम से इसी घटना की लोकगाथा कछार जिले के देहाती क्षेत्रों में गायी जाती है।”¹¹ गोपाल प्रधान ने उस महागाथा का परिचय देते हुए यह भी लिखा है कि वह बांग्ला के एक रूप सलेटी में है जो सिलहट क्षेत्र की बोली है। यह लम्बा गीत प्यार छंद में है, जो पूर्णतया गेय है, इसीलिए वह आज भी वहां की जनता की स्मृति में ही नहीं जिन्दगी में मौजूद है।

यह एक लम्बा शोकगीत है जिसके आरम्भ में चटगांव में विद्रोह की शुरुआत, फिर विद्रोहियों की सीमित शक्ति के कारण पराजय, पलायन और बाद में अंग्रेजी राज के एक भारतीय जासूस की गद्दारी के कारण विद्रोहियों के अंत की कथा है। इसे ‘जंगीयार गीत’ कहा जाता है अर्थात् जंगी सिपाहियों का गीत। इस पुस्तक की भूमिका में गोपाल प्रधान ने एक और महत्वपूर्ण बात लिखी है। वे कहते हैं “गाथा को पढ़ते हुए एक और बात की ओर अनायास ध्यान जाता है और वह है कथा में प्रस्तुत सूबेदारनी का प्रबल चरित्र। अपनी तेजस्विता से वह बहुत कुछ बेगम हजरत महल और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की याद दिला देती है। 1857 के प्रसंग में स्त्रियों की यह स्थिति एक प्रश्न को जन्म देती है। अंग्रेजों के आने के बाद भारत में स्त्रियों को घर में कैद रखने की प्रवृत्ति बढ़ी? दस्तावेजों और लोकमन से उपजी इन कथाओं से लगता तो यही है। तो शायद यह मिथक ही है कि मुगल शासन में स्त्रियां घर के भीतर कैद थीं। अगर ऐसा होता तो कहां से झुंड के झुंड ये स्त्रियां 1857 में सैनिक वेश धारण कर लड़ाई में कूदी होतीं।”¹²

1857 का भारतीय विद्रोह एक जनयुद्ध की तरह लड़ा गया और जनयुद्ध प्रायः उत्तने सुनियोजित नहीं होते जितने सरकारों के युद्ध। जनयुद्धों की कार्रवाई, दिशा और गतिविधियां जनता की चेतना, भावना और कल्पना के अनुसार संचालित होती हैं। लेकिन इतिहासकार हर युद्ध के विवेचन में योजना की खोज करते हैं और उसे न पाकर निराश होते हैं। 1857 जैसे जनयुद्धों की प्रक्रिया और स्वरूप को समझने के लिए ग्राम्शी का वह कथन उपयोगी है जिसे रुद्रांगशू मुखर्जी ने उद्धृत किया है। ग्राम्शी ने लिखा है कि “पंडित और विद्वान लोगों का ऐतिहासिक राजनीतिक दृष्टिकोण केवल उन्हीं विद्रोहों और आंदोलनों को वास्तविक और विचारणीय मानता है जो पूरी तरह योजनाबद्ध और सचेत ही नहीं बल्कि उनके अमूर्त सिद्धांत के अनुरूप हों। उनकी दृष्टि में शुद्ध सहजता इतिहास में नहीं होती।”¹³ रुद्रांगशू मुखर्जी ने ठीक ही लिखा है कि 1857 के विद्रोही सिपाहियों की चेतना, ग्राम्शी के शब्दों में, लोकमत से आलोकित और दैनिक अनुभवों से निर्मित हुई थी। जनता के आंदोलनों, विद्रोहों और क्रांतियों में क्रियाशील चेतना का स्वरूप ऐसा ही होता है।

1857 का जनयुद्ध भले ही सरकारों के युद्ध की तरह सुनियोजित न हो लेकिन विद्रोहियों के सामने उसका उद्देश्य स्पष्ट था। इसे समझने के लिए उस विद्रोह से सम्बंधित तीन घोषणापत्रों पर

ध्यान देना जरूरी है। पहला घोषणापत्र बहादुरशाह जफर का है, जिसे उन्होंने 25 अगस्त, 1857 को एक अपील के रूप में जारी किया था, जो कि इस प्रकार है

हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुसलमान भाइयो... उठो।

खुदा ने जितनी बरकतें इंसान को अता की हैं उनमें सबसे कीमती बरकत आजादी है। क्या वह जालिम फिरंगी जिसने धोखा देकर हमसे यह बरकत छीन ली है, हमेशा के लिए हमें उससे महरूम रख सकेगा? क्या खुदा की मर्जी के खिलाफ इस तरह का काम हमेशा जारी रह सकता है? नहीं, कभी नहीं।

फिरंगियों ने इतने जुल्म किये हैं कि उनके गुनाहों का प्याला अब लबरेज हो चुका है। यहां तक कि अब हमारे पाक मजहब को खत्म करने की नापाक ख्वाहिश भी उनमें पैदा हो गयी है। क्या तुम अब भी खामोश बैठे रहोगे? खुदा यह नहीं चाहता कि तुम खामोश रहो क्योंकि खुदा ने हिन्दू मुसलमानों के दिलों में उन्हें अपने मुल्क से बाहर निकालने की ख्वाहिश पैदा कर दी है।

खुदा के फजल और तुम लोगों की बहादुरी से जल्दी ही अंग्रेजों को इतनी कामिल शिकस्त मिलेगी कि हमारे इस मुल्क हिन्दुस्तान में उनका जरा भी निशान न रह जायेगा। हमारी फौज में छोटे और बड़े की तमीज भुला दी जायेगी और सबके साथ बराबरी का बरताव किया जायेगा क्योंकि इस पाक जंग में अपने मजहब की हिफाजत के लिए जितने लोग तलवार खींचेंगे वे सब बराबर नाम के भागी होंगे। वे सब भाई हैं, उनमें छोटे बड़े का कोई भेद नहीं। इसलिए मैं फिर अपने तमाम हिन्दू भाइयों से कहता हूँ उठो और ईश्वर के बताये इस बड़े काम को पूरा करने के लिए मैदान ए जंग में कूद पड़ो।

...कई हिन्दू और मुसलमान सरदार जिन्होंने अपने मजहब की हिफाजत के लिए अपने मकानों को छोड़ दिया था और जो भारत में अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ फेंकने के लिए भरसक कोशिश कर रहे हैं, मेरे पास आये और जेहाद चलाने में हिस्सा ले रहे हैं। यह तय ही है कि मुझे आने वाले वक़्त में जल्द ही पश्चिम से मदद मिलेगी, इसलिए आम जनता की जानकारी के लिए यह इश्तिहार, जिसमें कई धाराएं हैं, जारी किया जाता है। यह सभी का फर्ज है कि वे इस पर ऐहतियात के साथ सोचें और इसे मानें। जो दल इस काम में शरीक होना चाहते हैं लेकिन उनके पास कोई साधन नहीं है, उन्हें रोजाना मुझसे तनख्वाह मिलेगी। सभी इस बात को जान लें कि हिन्दुओं और मुसलमानों की पुरानी कितारें, दिव्यशक्ति वाले लोगों की लिखी चीजें और ज्योतिषियों और पंडितों का गणित सभी इस बात की ताईद करते हैं कि अंग्रेजों के पैर भारत या कहीं और भी नहीं जमने पायेंगे।

इसलिए सभी को यह उम्मीद छोड़ देनी चाहिए कि ब्रिटिश हुकूमत जारी रहेगी।

मेरा साथ दीजिये और आम लोगों की भलाई में काम करके बादशाह का यकीनी बनिये...।¹⁴

इस अपील या घोषणापत्र से यह स्पष्ट है कि 1857 के विद्रोह के तीन मुख्य लक्षण थे

1. भारत की आजादी हासिल करना, 2. अंग्रेजी राज की गुलामी से मुक्ति और 3. भारत के सभी धर्मों और समुदायों की रक्षा और उनके बीच एकता कायम करना।

दूसरे घोषणापत्र को आजमगढ़ घोषणापत्र कहा जाता है। वह 29 सितम्बर 1857 को देल्ही गजट में प्रकाशित हुआ था।¹⁵ इस घोषणापत्र की शुरुआत इस तरह होती है “हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुसलमान सब लोग यह जानते हैं कि वे काफिर और धोखेबाज अंग्रेजों के अत्याचार और दमन से तबाह हो रहे हैं।” इस घोषणापत्र के पांच हिस्से हैं। पहले में भारत के जमींदारों की तबाही की चर्चा है और कम्पनी की जमींदारी व्यवस्था की आलोचना की चर्चा भी। दूसरे में भारत के पुराने व्यापार और व्यापारी वर्ग की बर्बादी का ब्यौरा है, अंग्रेजी राज की व्यापार नीति की आलोचना है और अंग्रेजी

राज से आजादी के बाद की नयी व्यापार नीति का खुलासा है। तीसरे हिस्से में अंग्रेजी राज में भारतीय कर्मचारियों के अपमान और दुर्दर्शा की चर्चा के बाद नयी शासन व्यवस्था में भारतीय कर्मचारियों की बेहतर स्थिति का उल्लेख है। चौथे हिस्से में कम्पनी राज में भारतीय कारीगर और कारीगरी के विनाश का विवेचन है और अंग्रेजों से आजादी के बाद के बादशाही शासन में कारीगरों और कारीगरी के स्वतंत्र विकास की सम्भावना की बात है। पांचवे हिस्से में हिन्दू धर्म और इस्लाम की रक्षा में पंडितों और फकीरों की भूमिका का विवेचन करते हुए बादशाही शासन में उनकी भली भांति देखरेख का वादा है। आजादी की किसी भी लड़ाई में एक तो गुलामी की पूरी व्यवस्था की आलोचना होती है और दूसरे आजादी के बाद की व्यवस्था में सबकी बेहतरी की योजनाओं की घोषणा होती है। ये दोनों बातें इस घोषणापत्र में मौजूद हैं।

तीसरा घोषणापत्र अवध की बेगम हजरत महल का है। वह घोषणापत्र या बयान ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र के जवाब में जारी किया गया था। महारानी विक्टोरिया का घोषणापत्र 1858 के 1 नवम्बर को भारत में पढ़ कर सुनाया गया था। उसका एक हिस्सा यह है

*“हम घोषणा करते हैं कि हमारी राजकीय इच्छा के अनुसार आस्था और धार्मिक विश्वास के कारण न तो किसी के साथ पक्षपात होगा न कोई परेशान किया जायेगा और न किसी के साथ ज्यादाती होगी। सभी कानून के सामने समान होंगे और सबकी सुरक्षा होगी। यह भी हमारी इच्छा है कि हमारी प्रजा के साथ नस्ल और धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं होगा। वह अपनी शिक्षा, बुद्धि और ईमानदारी के अनुरूप हमारी सेवा में कार्य करेगी।”*¹⁶

इस घोषणापत्र के अनुसार उन सभी विद्रोहियों को क्षमादान देने का आश्वासन दिया गया था जो शांतिपूर्वक अपने घर लौट जायेंगे। केवल उन्हीं लोगों को दंड दिया जायेगा जो अंग्रेजों के हत्यारे होंगे, हत्याकांड में सहायक होंगे और विद्रोह के नेता या सहायक होंगे। बल्कि वे सभी लोग जो 1 जनवरी 1859 तक समर्पण करेंगे उन्हें माफी मिलेगी। विक्टोरिया के घोषणापत्र में यह भी कहा गया था कि ईस्ट इंडिया कम्पनी का विघटन होगा और भारत की सत्ता ब्रिटिश राजसत्ता के अधीन होगी। इस घोषणापत्र के अनुसार भारत से सम्बंधित अतीत की गलतियां दुहरायी नहीं जायेंगी, कम्पनी के साथ की गयी सभी संधियों का सम्मान भी होगा। साथ ही किसी राज्य को हड़पने की कोशिश नहीं होगी और हर व्यक्ति को धार्मिक मामले में स्वतंत्र होगी।

बेगम हजरत महल विक्टोरिया के घोषणापत्र के अभिप्रायों, इरादों, कुटिलताओं और चालाकियों को समझ रही थीं। वे जानती थीं कि इस घोषणापत्र का लक्ष्य है विद्रोहियों के बीच फूट पैदा करना और उन्हें प्रतिरोध छोड़ कर समर्पण के लिए प्रेरित करना। उन्होंने सोचा कि यह प्रतिरोध के लिए आत्मघाती होगा, इसलिए उन्होंने विक्टोरिया के घोषणापत्र के जवाब के रूप में अपना घोषणापत्र जनता के सामने रखा। बेगम हजरत महल का घोषणापत्र यह है

“बेवकूफ होगा जो यह विश्वास करेगा कि ब्रिटिश राजसत्ता ने हमारी गलतियों या उनकी नजर में अपराधों के लिए हमें माफ कर दिया है। सब जानते हैं कि उन्होंने हमारे छोटे और बड़े अपराधों को कभी माफ नहीं किया, वे चाहे अनजाने में किये गये हों या जानबूझ कर। महारानी भी कहती हैं कि वे कम्पनी द्वारा किये गये सभी समझौतों का सम्मान करेंगी, जबकि कम्पनी ने सारे भारत को हड़प लिया है और उसने कभी किसी संधि का सम्मान नहीं किया। क्या महारानी इसी स्थिति का सम्मान करना चाहती हैं? अगर महारानी किसी का राज हड़पना नहीं चाहती तो वे हमारा देश हमें लौटा क्यों नहीं देतीं, जो हमारी जनता चाहती है। यह भी घोषणा की गयी है कि बिना किसी धार्मिक भेदभाव के कानून सबके लिए एक समान होगा। यह सोचने की बात है कि न्याय का धर्म से क्या लेना देना? जहां तक धार्मिक

मामलों में दखल न देने की वादे की बात है तो उस पर कैसे विश्वास किया जा सकता है जब सड़क बनवाने के नाम पर मंदिर और मस्जिद तोड़े जा रहे हैं; जब ईसाई धर्म की शिक्षा देने के लिए पादरी गांवों में भेजे जा रहे हों और जब ऐंग्लिकन चर्च के रीति रिवाज को सीखने वालों को धन दिया जा रहा हो।

यह भी लिखा है कि जिन लोगों ने हत्या की है या विद्रोह का नेतृत्व किया है या विद्रोहियों की मदद की है उनको छोड़ कर बाकी लोगों को माफी मिले। लेकिन ये बाकी लोग कौन हैं जबकि सारी जनता ने विद्रोह किया है। यह भी कहा गया है कि जो भी विद्रोह में शामिल हैं उन्हें दंड दिया जायेगा। यह घोषणापत्र परस्पर विरोधी बातें कहता है। अंत में यह भी कहा गया है कि जब शांति स्थापित हो जायेगी तब सड़कें बनेंगी और नहरें भी ताकि जनता का जीवन बेहतर हो। इसका तात्पर्य यह है कि सरकार के पास भारतवासियों के लिए मजदूर की नौकरी के अलावा और कुछ देने के लिए नहीं है। अगर जनता इस सबके अभिप्रायों को नहीं समझती तो हम क्या कर सकते हैं।¹⁷ अपने घोषणापत्र के अंत में बेगम हजरत महल ने एक नारा भी दिया है “धोखा मत खाओ”।

बेगम हजरत महल का यह घोषणापत्र उनकी हिम्मत, बहादुरी, राजनीतिक समझबूझ और दूरदर्शिता का प्रमाण है। लंदन के अखबार ‘दि टाइम्स’ ने 1858 में बेगम हजरत महल के बारे में ठीक ही लिखा था “अवध की बेगम ने अपने सभी सेनानायकों से अधिक युद्ध कौशल और साहस का परिचय दिया है।”

सन् 1857 के विद्रोह के दमन के दौरान अंग्रेज सैनिकों, सेनानायकों और अधिकारियों ने बर्बरता का जैसा नाच किया उसकी तुलना या तो लातीनी अमेरिका में स्पेनी साम्राज्यवादियों की बर्बरता से की जा सकती है या फिर उत्तरी अमेरिका में अंग्रेजी साम्राज्यवाद की बर्बरता से। अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने जिस तरह अनंत मौत, विनाश, अकाल, भुखमरी, रेड इंडियंस का संहार, दासों का व्यापार, गिरमिटिया मजदूरों की हत्या आदि के सहारे अपना कब्जा और राज कायम किया उसी तरह भारत में विद्रोह के दमन का अभियान चलाया। जैसे लातीनी अमेरिका और उत्तरी अमेरिका में उपनिवेशवादियों की सर्वग्रासी बर्बरता का एक कारण वहां के निवासियों के विरुद्ध नस्ली घृणा थी वैसे ही भारतीय विद्रोहियों के दमन के दौर की बर्बरता के मूल में नस्ली घृणा और रंगभेद से उपजी भावना थी।

कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स ने लंदन से अमेरिका के एक अखबार ‘न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून’ में भारतीय विद्रोह, उसके विस्तार और दमन के बारे में लगातार लेख लिखे थे। मार्क्स ने 4 सितम्बर 1857 को जो लेख भेजा वह 16 सितम्बर 1857 को अखबार में छपा था। उस लेख में मार्क्स ने भारत से अपने घरों को भेजे अंग्रेज अधिकारियों के पत्रों को उद्धृत किया जो अंग्रेजों की दमन नीति और नस्ली घृणा के सबूत देते हैं।¹⁸ एक पत्र में लिखा था “हमारे हाथ में जीवन और मृत्यु की शक्ति है। हम आपको आश्वासन देते हैं कि हम किसी को छोड़ेंगे नहीं।” दूसरे पत्र में लिखा था “कोई भी दिन ऐसा नहीं गुजरता जब हम 10 से 15 आम लोगों को फांसी नहीं देते।” एक उत्साही अधिकारी ने लिखा था “होल्म दर्जनों लोगों को ईंटों की तरह लटकाता है।” एक और व्यक्ति ने अनेक लोगों को फांसी देने का उल्लेख करते हुए लिखा है कि “उसके बाद हमारा जश्न शुरू होता है।” एक और व्यक्ति ने लिखा है “हम थोड़े की पीठ पर बैठे हुए फौजी अदालत चलाते हैं और प्रत्येक निगर (निग्रो) को या तो फांसी देते हैं या गोली मार देते हैं।” इस आखिरी पत्र से जाहिर है कि अंग्रेज भारतवासियों को काला आदमी समझते थे और उनसे वैसी ही घृणा करते थे जैसे अमेरिका में नीग्रो लोगों से।

इतिहासकार बेट्स के अनुसार अमृतसर के कमिश्नर फ्रेडरिक कूपर ने स्वयं स्वीकार किया कि उसने जुलाई 1857 में 237 पकड़े गये सिपाहियों को फांसी पर चढ़ाया। 45 सिपाही बंद कमरे

में सांस घुटने से मर गये।¹⁹ रिचर्ड गॉट ने लिखा है कि बनारस में कर्नल मिल द्वारा फांसी पर चढ़ाये गये लोगों की कई कतारें थीं।²⁰ 9 जून 1857 को सैनिक कानून लागू किया गया और जो भी पकड़े गये उन्हें फांसी दे दी गयी। कुछ लोगों को पेड़ों से लटकाया गया तो कुछ लोगों को हाथियों की गर्दन से। यही हाल इलाहाबाद में भी था। वहां गांव के गांव जला दिये गये। रिचर्ड गॉट ने दिल्ली पर अंग्रेजों के कब्जे के बाद जो जनसंहार हुआ उसके बारे में एक दर्शक का यह बयान दर्ज किया है *“दिल्ली में जब हमारे सैनिक घुसे तब जो मिला उसे संगीन घोष कर मार दिया गया।”* ऐसे लोगों की संख्या बहुत थी क्योंकि एक एक घर में 40-50 लोग छिपे हुए थे। ये विद्रोही नहीं थे, दिल्ली के नागरिक थे। वे हमसे माफी मांग रहे थे पर उन्हें निराशा हाथ लगी। इसी समय कैप्टन हडसन ने बहादुरशाह जफर के बेटों और अन्य शहजादों की बर्बर हत्या की।²¹

केवल अमृतसर का कमिश्नर अकेला हत्यारा अधिकारी नहीं था। कार्ल मार्क्स ने 5 अप्रैल, 1858 के एक लेख में लिखा था कि आगरा का एक मजिस्ट्रेट स्वयं लोगों को फांसी देता था या फिर गोली मारता था। एक और मजिस्ट्रेट ने दावा किया कि उसने 95 लोगों को फांसी दी है और जल्दी ही वह 100 की संख्या पूरी करेगा।

ब्रिटिश अनुमान के अनुसार अवध पर कब्जे के दौरान डेढ़ लाख लोग मारे गये, जिनमें 35 हजार सिपाही थे और बाकी आमजन थे।²² लखनऊ पर कब्जे के बाद अंग्रेज सिपाहियों, सेनानायकों और अधिकारियों ने लूट और डकैती का जो अभियान चलाया था उसका ब्यूरा लंदन टाइम्स के पत्रकार विलियम रसेल ने अपनी रिपोर्ट में दिया था। उसका विश्लेषण करते हुए फ्रेडरिक एंगेल्स ने एक लेख में लिखा था *“चंगेज खां के उन्मादी गिरोहों के सैनिक टिड्डियों के दल की तरह जिस शहर में जाते थे वहां का सब चट कर जाते थे। फिर भी उनका आक्रमण ईसाई, सभ्य, बहादुर और भले अंग्रेज सैनिकों के आक्रमण की तुलना में वरदान लगता है क्योंकि वे जल्दी ही लौट जाते थे, जबकि अंग्रेज अपने साथ उस दलाल समूह को लाते हैं जो लूट को एक व्यवस्था का रूप देते हैं, वे डकैती को दर्ज करते हैं, उसको बोली लगा कर बेचते हैं और यह ध्यान रखते हैं कि अंग्रेज अपनी बहादुरी के पारितोषिक से वंचित न हों।”*²³ यही है उपनिवेशवाद की कार्यशैली की रूपरेखा। अंग्रेजी सेना द्वारा दमन का एक बर्बर तरीका था विद्रोही सिपाहियों और नागरिकों को तोप के मुंह पर बांध कर उनकी वीभत्स हत्या करना। 22 मई 1857 को पेशावर के करीब एक सैनिक विद्रोह हुआ था जिसे जल्दी ही दबा दिया गया। 40 सिपाहियों को तोप के मुंह पर बांध कर विस्फोट करके उड़ा दिया गया। यह दारुण दृश्य देखने वाले एक ब्रिटिश कैप्टन ने अपने पिता को पत्र में लिखा था *“यह दृश्य वीभत्स था, लेकिन परम संतोषदायक था।”*²⁴

कानपुर पर कब्जे के समय अंग्रेजों ने दमन की प्रक्रिया में जिस वीभत्सता का परिचय दिया वह अकथनीय है। रिचर्ड गॉट ने लिखा है कि बनारस और इलाहाबाद के कसाई कर्नल नील ने पकड़े गये सिपाहियों को गोली मारने के पहले उन्हें बीबीगढ़ के फर्श पर गिरे खून को चाटने के लिए मजबूर किया।²⁵

अंग्रेजी सेना के दमन का जो दावानल फैला उसकी लपटों की कुछ जलन लोकगीतों में भी व्यक्त हुई है। बुंदेली के लोककवि फकीरे खान के एक गीत में उसकी अभिव्यक्ति इस तरह हुई है

चूना मूँड़न पै बुझवा दये।

हांत पांव में कीला ठोंके, पीछे से संदवा दये।

तेरा दिन चार मइना लों, गोड़न खून मिटा दये।

जार दयो है बिला बिलजुरा लुटो जन भगवा दय।

अंगरेजन खां बुलाइनन ने, बंटाधार करा दये।

खान फकीरे, कालों कइये, ऐसे हाल करा दये ।
दूसरे लोककवि दादूराम के गीत में अंग्रेजी सेना की करतूतों का वर्णन यह है
घिर गये खानपुर वारे हैं ।
चौतरफा से घेरा पर गये गंसे गांव के द्वारे हैं ।
उरझा सेन फिरंगी लूटें, जारे पुर घर सारे हैं ।
गाये मार डार दर्ई दौरन, छेकें जन अति वारे हैं ।
‘दादूराम’ टेर कें कै रये छांड चलो घर द्वारे हैं ।

अंग्रेजों ने दमन के माध्यम से आतंक का जो राज कायम किया उसका चित्रण एक कौरवी लोकगीत में यह है

मेरी थर थर माथा कापे री
गोरों के डर के मारे
बागों के माली भागे री
गोरों के डर के मारे
तालों के धोबी भागे री
गोरों के डर के मारे ।

अंग्रेजी सेना ने सुराज का नाम लेना भी अपराध घोषित कर दिया था । यह बात एक लोकगीत में इस तरह है

बुंदेलखंड के गांउन गांउन, फेर, ढोड़े पिटवाओ ।
जो सुराज की नाम लेवेंगे, तो हम कीला टुकवाओ ।
गांवन गांवन पी.ए. फिशर नें करो दमन भौतई भारी ।
अंगरेजन के गुलाम राजा, तिनेक हम गुलाम भारी । ।

1857 के भारतीय विद्रोह के बिखरने के बाद अंग्रेजी राज के सैनिकों और सेनापतियों ने दमन, लूट, हत्या और भयानक आगजनी का जो खूंखार अभियान चलाया था उसको ब्रिटिश सत्ता, जनता और बुद्धिजीवियों की नजर में जायज ठहराने के लिए अंग्रेजों ने औरतों, बच्चों और जवानों के साथ भारतीय विद्रोही सैनिकों के अत्याचारों की कल्पित कहानियों का खूब प्रचार प्रसार किया । उस प्रचार का असर ब्रिटिश संसद, वहां के अखबार और बुद्धिजीवियों पर पड़ा । लंदन के अखबार ‘दि टाइम्स’ ने घोषणा की “एक चर्च के विनाश के बदले हम 50 मंदिर नष्ट करेंगे । प्रत्येक ईसाई की हत्या के बदले हम 1000 विद्रोहियों की हत्या करेंगे ।”²⁶

दूसरों की कौन कहे उसी दुष्प्रचार से प्रभावित होकर महान उपन्यासकार चार्ल्स डिकेन्स ने लिखा था “मैं भारत में प्रधान सेनापति बनना चाहता हूं । मैं इस पूर्वी नस्ल में आतंक पैदा करूंगा और कहूंगा की खुदा की आज्ञा से मैं उनके वंश का विनाश करने और धरती से उनके अस्तित्व को मिटा देने के लिए सब कुछ करूंगा क्योंकि वे अनेक अत्याचारों के अपराधी हैं ।”²⁷

जिस समय ब्रिटेन में यह सब किया जा रहा था, उसी समय वहां कुछ ऐसे भी लोग थे जो भारत में रहने वाले अंग्रेज सेनापतियों और अधिकारियों की कल्पित कहानियों का सच जानते थे । उनमें एक थे पत्रकार विलियम रसेल जो विद्रोह के समय भारत में थे और यहां की हर घटना से परिचित थे । उन्होंने विद्रोहियों के अत्याचार की कहानियों का खंडन किया । दूसरे थे सर आस्टिन हेनरी नाम के वामपंथी राजनीतिज्ञ और लिबरल सांसद । उन्होंने दिल्ली, कानपुर, झांसी और अन्यत्र अंग्रेजी औरतों और बच्चों पर विद्रोहियों के अत्याचार की सभी कहानियों को लज्जास्पद कल्पना कहा ।²⁸

इस लेख के अंत में इस प्रश्न पर बात करना जरूरी है कि 1857 के भारतीय जनयुद्ध का भारतीय स्वाधीनता आंदोलन पर क्या प्रभाव पड़ा। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की दो धाराएं थीं। एक धारा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष करने वाली क्रांतिकारी धारा थी जिसे विप्लववादी भी कहा जाता है। दूसरी धारा वैध और अहिंसक धारा थी। क्रांतिकारी धारा आरम्भ से 1857 के विद्रोह से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण करती रही लेकिन वैध और अहिंसक धारा 1857 के विद्रोह को याद करने में संकोच करती थी। फिर भी उस पर 1857 के संघर्ष का प्रभाव दिखायी देता है। 2009 में अंग्रेजी की प्रसिद्ध पत्रिका 'न्यू लिटरेरी हिस्ट्री' का एक विशेषांक निकला था जिसका शीर्षक था 'भारत और पश्चिम'। उसमें फैजल देवजी का एक लेख है 'द म्यूटिनी टु कम'। इस लेख की कुछ मान्यताएं दिलचस्प हैं और भारत के स्वाधीनता आंदोलन से 1857 के विद्रोह के सम्बंध में विचारणीय भी। एक तो यही कि भारत में आधुनिकता और राष्ट्रीयता का जन्म 1857 के विद्रोह से होता है। दूसरी मान्यता यह है कि 1857 के विद्रोह के दौरान विद्रोहियों ने देशवासियों से यह अपील की थी कि वे अंग्रेजों के लिए काम न करें और उनका बहिष्कार करें। यही नहीं बल्कि अंग्रेजी राज से सहयोग के लिए गदर के गद्दारों की निन्दा भी होती थी। फैजल देवजी ने विद्रोहियों की इस समझ और कोशिश में गांधी जी के सत्याग्रह का बीज पाया है। 1857 के विद्रोह के दौरान हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जो एकता कायम हुई, उसका प्रभाव स्वाधीनता आंदोलन पर बहुत दिनों तक बना रहा। भारत के स्वाधीनता आंदोलन का लक्ष्य था स्वराज्य के माध्यम से सुराज्य स्थापित करना। यही लक्ष्य 1857 के विद्रोह का भी था।

सन् 1857 के संग्राम में संघर्ष करने वाले तथा शहीद होने वाले भारतीय जन और उनके संघर्ष तथा शहदत के गीत गाने वाले लोककवि यह उम्मीद करते थे कि भविष्य के कृतज्ञ भारतवासी उनके संघर्ष और बलिदान को जरूर याद करेंगे। यही उम्मीद ब्रजभाषा के इस लोकगीत में व्यक्त हुई है

*भूल न जइयो भारतवासी उन वीरन की कुर्बानी ।
हंसते हंसते प्रान गंवायें अमर रखो मां कौ पानी ।।*

छत्तीसगढ़ी के एक लोकगीत में 1857 के संघर्ष को 'आजादी का पहला राग' कहा गया है

*धधके लगिस वीर बंगाल
दिल्ली के रंग होंगे लाल
माचिस रक्त होले फाग
आजादी के पहिली राग ।
कापिस अंग्रेजी शासन
डोलिस लंदन के आसन*

जो समाज अपने अतीत के इतिहास को भूलता है वह भविष्य में भयंकर भूलें करता है।

संदर्भ

1. जासूसों के खतूत, सं. शम्सुल इस्लाम, 2008 वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 33
2. 1857 के हैरतअंगेज दास्तानें, सं. शम्सुल इस्लाम, 2008 वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 104
3. India, Edit. B.M. Sankhader, 1972, Kumar Brothers, New Delhi, P. 79
4. India, Edit. B.M. Sankhader, 1972, Kumar Brothers, New Delhi, P. 25-26
5. नया पथ, मई 2007, पृ. 186
6. Main Stream, August 31, 2013, P. 29

7. Subaltern Studies IV, Ed. Ranjit Guha, 1990 Oxford University Press, New York, P. 229
8. Subaltern and Raj, Crispin Bates, Routledge, 2010, P. 56
9. Britian's Empire, Richard Gott, 2011, Verso, London, P. 466
10. वीर सतसई, सूर्यमल्ल मिश्रण, सं. कन्हैयालाल सहल और अन्य, राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर, पृ.53
11. 1857 : एक महागाथा, प्रस्तोता गोपाल प्रधान, 2011, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013, पृ. 7
12. 1857 : एक महागाथा, प्रस्तोता गोपाल प्रधान, 2011, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2013, पृ. 8
13. War and Society in Colonial India, Edit. Kaushik Roy, Oxford University Press, India, 2012, P 117
14. आजकल, मई 2007 नयी दिल्ली, पृ. 40-41
15. Subaltern and Raj, Crispin Bates, Routledge, 2010, P. 68-70
16. In the City of Gold and Silvers, Kenize Mourad, Full Circle Publishing, New Delhi, 2013, P. 396-397
17. In the City of Gold and Silvers, Kenize Mourad, Full Circle Publishing, New Delhi, 2013, P. 398-399
18. Karl Marx on India, Edit. Iqbal Husain, Tulika Books, New Delhi, 2006, P. 90
19. Subaltern and Raj, Crispin Bates, Routledge, 2010, P. 78
20. Britian's Empire, Richard Gott, 2011, Verso, London, P. 456
21. Britian's Empire, Richard Gott, 2011, Verso, London, P. 464
22. In the City of Gold and Silvers, Kenize Mourad, Full Circle Publishing, New Delhi, 2013, P. 396
23. Karl Marx on India, Edit. Iqbal Husain, Tulika Books, New Delhi, 2006, P. 176-177
24. Britian's Empire, Richard Gott, 2011, Verso, London, P. 454
25. Britian's Empire, Richard Gott, 2011, Verso, London, P. 462
26. In the City of Gold and Silvers, Kenize Mourad, Full Circle Publishing, New Delhi, 2013, P. 283
27. In the City of Gold and Silvers, Kenize Mourad, Full Circle Publishing, New Delhi, 2013, P. 283
28. Karl Marx on India, Edit. Iqbal Husain, Tulika Books, New Delhi, 2006, P. 148

विज्ञापनों में स्त्रियां

(नवजागरणकालीन हिन्दी पत्रिकाओं में प्रकाशित विज्ञापनों के संदर्भ में)

आशुतोष पार्थेश्वर

बाजार अगर 'माया' है तो विज्ञापन इस 'ठगिनी' के 'नैना'। विज्ञापन मौजूदा दौर में जरूरत बन चुके हैं उत्पादक के लिए भी और उपभोक्ताओं के लिए भी। अगर विज्ञापनों को सावधानीपूर्वक देखा जाये तो उनसे इन दोनों वर्गों की पड़ताल अच्छी तरह हो सकती है। उनके निर्माण की प्रक्रिया, उनकी भाषा, उनके मुहावरे, संदेश, इन सबसे विज्ञापनों के समय और समाज की पहचान की जा सकती है। जब एक शीतल पेय के विज्ञापन में 'ये दिल मांगे मोर' का नारा उछाला जाता है तो यह हिन्दी और अंग्रेजी की सहउपस्थिति या कहीं भाषिक मिक्सचर का ही नमूना मात्र नहीं होता बल्कि बाजार के दबाव में आकार ग्रहण करती हुई उस उपभोक्तावादी संस्कृति का भी सूचक होता है जिसमें 'संतोष' को गये जमाने की चीज मान लिया गया है।

भारत में विज्ञापनों का विधिवत सिलसिला उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से शुरू हुआ। तब से लेकर आज तक विज्ञापनों की रीति नीति में बहुत बदलाव आ चुका है। सपाट, इकहरे, विवरणात्मक विज्ञापनों से बात अब बहुत आगे बढ़ चुकी है। इस बीच बाजार ने नये नये मुहावरे गढ़ लिए हैं और उसकी ताकत के सामने सभी लाचार नजर आते हैं। इस समूचे परिदृश्य में विज्ञापनों में स्त्रियों की उपस्थिति का आकलन भारतीय समाज को समझने के कई सूत्र दे सकता है। बीसवीं सदी की आखिरी दहाइयों में जब भारतीय बाजार वैश्विक पूंजी के लिए खुला और जब दूरदर्शन भारतीय परिवारों की एक 'आवश्यकता' के रूप में चिह्नित किया जाने लगा, तब से विज्ञापनों का 'सेंसुअस' होना भी अनिवार्य समझा जाने लगा। यह पूरा दौर कितना संवेदनशील और आक्रामक है इसकी पहचान इस बात से की जानी चाहिए कि अस्सी के दशक में सौन्दर्योत्पादों के विज्ञापनों में दिखने वाली स्त्रियां इक्कीसवीं सदी आते आते पुरुषों के अंतर्वस्त्रों के विज्ञापनों में भी दिखायी पड़ने लगीं। क्या यह भी

कम रोचक सचाई है कि इसी दौर में भारतीय समाज की 'शुचिता', 'गौरव' एवं 'महानता' का आख्यान करने वाले कई कई धारावाहिक दूरदर्शन पर आये, अतीतगान वाले राजनीतिक आंदोलन चले और बाबा गुरुओं की एक पूरी फौज भी सामने आयी!

ऐसे में नवजागरणकालीन पत्रिकाओं में प्रकाशित विज्ञापनों में स्त्रियों की उपस्थिति को देखने पर कुछ अलग और स्वतंत्र निष्कर्ष प्राप्त होते हैं तो कुछ वर्तमान अभिलक्षणों के बीजरूप। इस दौर के विज्ञापनों को देख कर एक बात तो साफ तौर से कही जा सकती है कि विज्ञापनों में स्त्रियों की उपस्थिति अधिकांशतः उन्हीं जगहों पर है जहां उत्पाद स्त्रियों से किसी रूप में जुड़े हुए हैं। आज की तरह पुरुषों के अंतर्वस्त्रों और सौन्दर्योत्पादों के विज्ञापनों में वे नहीं मिलती हैं। हालांकि, कुछ ऐसे विज्ञापन भी हैं जिनमें 'स्त्री' प्रत्यक्षतः उपस्थित नहीं है, पर समूचे विज्ञापन की संरचना और उत्पाद का संदर्भ अनिवार्यतः उसी से जुड़ा हुआ है। इस तरह इन विज्ञापनों के तीन समूह बनाये जा सकते हैं पहला, जैसे विज्ञापन जो स्त्री स्वास्थ्य से सम्बंधित दवाओं और पुस्तकों के हैं दूसरा, जैसे विज्ञापन जो सौन्दर्योत्पादों के हैं तीसरा उन उत्पादों के विज्ञापन जिनमें पुरुषों की मर्दानगी, शक्तिवर्द्धक दवाएं एवं पुत्रोत्पत्ति के उपायों का उल्लेख है।

पुरुषकेन्द्रित भारतीय समाज की कई परतें इन विज्ञापनों में खुलती हैं। विज्ञापनों की इस दुनिया में स्त्रियों का प्रवेश भी कम गौरतलब नहीं है। उनका प्रवेश गर्भधारण और पुत्रोत्पत्ति से जुड़े हुए उत्पादों के विज्ञापनों के रास्ते होता है। भारतीय समाज के लिए यह सनातन चिन्ता का प्रश्न है! 'हिन्दी प्रदीप' में इस विषय की एक पुस्तक का विज्ञापन प्रकाशित हुआ। विज्ञापन के अनुसार डॉक्टर प्रसादीलाल ज्ञाने गर्भवती की रक्षा के लिए आयुर्वेदिक और डॉक्टरी (अंग्रेजी) उपायों का वर्णन इस पुस्तक में किया है।

इसी अंक में स्त्रियों की पत्रिका 'स्त्री दर्पण' का विज्ञापन भी प्रकाशित है। प्रयाग से निकलने वाली इस पत्रिका की सम्पादिका श्रीमती रामेश्वरी देवी और मैनेजर श्रीमती कमला देवी हैं। विज्ञापन साफ साफ कहता है *"स्त्री दर्पण/स्त्रियों और लड़कियों के पढ़ने योग्य हिन्दी भाषा में पहिला मासिक पत्र। धर्म, साहित्य, सामाजिक सुधार, राजनीति आदि विषयों पर अधिकतर स्त्रियों के ही लेख इस पत्र में लिखे रहते हैं।"*

विज्ञापन में इस पत्रिका पर 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' की सम्मति भी सम्मिलित है *"कन्याओं और महिलाओं के लिए यह पत्र अत्युत्तम है और उपयोगी है। हम बड़े आदर से इसका स्वागत करते हैं। समस्त शिक्षित घरानों में इसको जगह मिलनी चाहिए। हमारा ख्याल है कि यदि यह पत्र चलता रहा तो स्त्री शिक्षा की बहुत बड़ी उन्नति होगी।"*²

स्त्री शिक्षा की दृष्टि से ऐसे साहित्य की ऐतिहासिक भूमिका रही है। हालांकि, इस भूमिका का एक दूसरा रूप भी है। कुछ खास साहित्य स्त्रियों को 'सुगृहिणी', 'सुचरित्र', 'सुशीला' बनाने वाले थे। यह साहित्य 'नारी, तुम केवल श्रद्धा हो' के भाव और लक्ष्य से संचालित थे। समाज में स्त्रियों के लिए निश्चित दायम दर्जे में कोई परिवर्तन हो, यथास्थिति खत्म हो, वे बराबरी की भागीदार बनें, आदि उनका लक्ष्य न था। स्त्रियों को मर्यादा, शील एवं परम्पराओं के घेरे में कैद करने के लिए इनमें वेद, पुराण, स्मृतियों और न जाने कहां कहां से संदर्भ भरे जाते थे। 'प्रताप' में प्रकाशित 'गृहिणी कर्तव्य' का विज्ञापन द्रष्टव्य है *"गृहिणी कर्तव्यधस्त्री शिक्षा की अद्वितीय पुस्तक/...यदि आप अपनी बहिनों, कन्याओं तथा बहुओं को गृह सम्बंधनीय सब कर्तव्यों की शिक्षा देकर सच्ची गृहिणी बनाना चाहते हैं, तो उन्हें गृहिणी कर्तव्य अवश्य पढ़ाइये। श्रुति स्मृति पुराण तथा विविध भाषाओं की विविध पुस्तकों के आधार पर बड़े परिश्रम से इस ग्रंथ की रचना हुई है। इस एक ही पुस्तक को पढ़ कर स्त्रियां बाल्यावस्था से*

लेकर वृद्धावस्था तक के सब कर्तव्यों की समुचित शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं।...”³

एक अन्य पुस्तक का विज्ञापन भी द्रष्टव्य है “गृहस्थी में रहते हुए दाम्पत्य जीवन का सच्चा उपदेश देने वाली यह एक अपूर्व पुस्तक है। वार्तारूप में ऐसे मनोरम और सुशील ढंग से लिखी गयी है कि कम पढ़ी लिखी नववधुएं और कन्याएं तुरंत ही इसे पढ़ डालती हैं। इसका पाठ करने से उनके जीवन की निराशा, अशांति और क्लेश भाग जाते हैं। उन्हें आनंद ही आनंद भास होने लगता है।”⁴

ये पुस्तकें स्त्रियों की दुनिया को विस्तार देने वाली नहीं बल्कि समेटने वाली थी।

इस दौर के कुछ विज्ञापनों को देख कर यह सोचने को बाध्य होना पड़ता है कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के समानांतर देश के पुरुषों के समक्ष अपनी मर्दानगी और शक्ति को सिद्ध और प्रदर्शित करने के अतिरिक्त क्या कोई और कार्य न था! क्या कामेच्छा की संतुष्टि ही सबसे बड़ा विषय था! ये विज्ञापन जितनी अधिकता और निरंतरता के साथ विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं, उसके कारण क्या हैं? पहले एक विज्ञापन देखें “अस्त्री कोकशास्त्र/तस्वीरों वाला स्त्री पुरुषों के जाति, भेद और लक्षण सहित गर्भधारण के नियम/84 आसनों के नाम/मनचाही संतान पैदा करने की विधि...”⁵

पुरुष केन्द्रित समाज व्यवस्था में स्त्री के इर्दगिर्द कायम छद्मों को समझने के लिए यह एक अच्छा उदाहरण है। पहले वह भोग्या बने और पुनः संतानोत्पत्ति की मशीन! असल सत्य तो इसके बाद खुलता है, वह है ‘मनचाही संतान’। यह मनचाही संतान क्या हो सकती है, यह यहां पर नहीं कहा गया है, पर वह उतना भी अप्रकट नहीं है। कुछ अन्य विज्ञापनों में उसका सीधा सीधा उल्लेख है “एक अद्भुत औषधि ‘मीठा फल’/एक गोली खाने से पुत्र ही पैदा होता है। श्रीमान् पंडित ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य आविष्कारक अमृतधारा की इस दवाई ने भी संसार को आश्चर्य में डाल दिया है। गर्भ रहने के पश्चात तीसरा मास जब शुरू हो उस समय गर्भस्थ के अंग इत्यादि बनते हैं उस समय मीठा फल की 1 खुराक ही अपने ईश्वर प्रदत्त प्रभाव से ऐसी तब्दीली करती है कि पुरुषेन्द्रियां बनती हैं यदि गर्भ में लड़की हो तो भी लड़का हो जाता है। जिसके घर लड़कियां ही लड़कियां होती हैं उनके लिए यह एक न्यामत है। यह एक अद्भुत और नयी वस्तु देख कर लोग संदेह में पड़ जाते हैं, इसलिए इस दवाई के साथ यह प्रतिज्ञा की जाती है कि लड़की पैदा हो तो मूल्य लौटा दिया जायेगा। किसी तसदीक की आवश्यकता नहीं है, केवल यह लिखना पर्याप्त है कि हमारे घर में लड़की पैदा हुई। तत्काल मूल्य वापस कर दिया जायेगा।”⁶

“जैसे गंध बिन फूल, नमक बिन भोजन नीरस होता है, वैसे ही जिनकी गोद में लाडले लाल नहीं उनके लिए औलाद बिन घर नहीं जग सूना है इसलिए मुफ्त पुत्रदावटी (शर्तिया लड़का ही हो) सेवन करो। बहनो व भाइयो! इस वटी के गुण में तो शायद ही किसी को शक हो क्योंकि अनजान से अनजान व्यक्ति भी जानता है कि इस पुत्रदावटी के सहारे ही कौशल्या महाराणी की गोद रामचंद्र जैसे सुपुत्र से भरी थी, साथ ही यह भी सब जानते हैं कि इसी की खोज में आज सैकड़ों बहनें सच्चे साधु न पाकर लफंगों के फदे में फंस कर क्या कुछ नहीं खो बैठतीं। हां अलबत्ता यह एक संदेह हो सकता है कि यह वटी ऐसे गुणों वाली है, इसमें क्या प्रमाण, सो इसके लिए इसकी असलियत इस प्रकार है कि मेरी सास (जो करीब 70 वर्ष की वृद्धा होंगी) को किसी साधु ने यह वटी मुफ्त बांटने के लिए दी थी, सो अपने जीवनकाल में उन्होंने सैकड़ों बहिनों को इसका सेवन कराया और आज उस ही के फलस्वरूप अनेकों बहिनें कई कई पुत्रों की माता हो रही हैं, मरते समय वे इस वटी को मुझे बतला गयीं और आज कई वर्षों से मैं भी इसका अनुभव कर रही हूं। इतना फल देख मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि अपने पठित भाई बहनों के कानों तक भी इस के गुण पहुंचाऊं, अब

लाभ उठाना न उठाना आप लोगों के हाथ है, इसके गुण इस प्रकार हैं। पुत्रदावटी नं. 1 जिनके प्रदर, प्रसूत तथा अस्वाभाविक बांझपन आदि दोषों से गर्भ स्थित ही न होता हो, जो लाखों रु. जादू टोना आदि में स्वाहा कर चुके हों और फिर भी पुत्ररत्न न पाकर दुखी हों, वे दोनों नम्बर की वटी को मंगावें। साथ ही अपनी अवस्था, प्रदरादिदोष का पूरा हाल (यदि कोई हो), पति की अवस्था आदि सब खुलासा हाल भेजें ताकि वटी के सेवन में सुविधा हो। पुत्रदावटी नं. 2 जिनके लड़कियां ही लड़कियां होती हों, संतान जीवित न रहना, दुर्बल होना, गर्भस्राव आदि दोषों के कारण पुत्ररत्न से वंचित हों और अब गर्भवती ही इसका सेवन करे साथ ही गर्भ के दिन मास आदि सब खुलासा लिखें...”⁷

समाज में किस्से राम और कृष्ण के ही सुनाये जाते हैं, बेटियों की कहानियां न लिखी गयीं, न कही गयीं, न सुनी गयीं। बेटियां भारतीय समाज में अनचाही होती हैं! ये पहले भी अनचाही थीं और आज भी। इनकी बारी आती भी है तो बेटों के बाद ही। इतने विस्तार से इन विज्ञापनों के उल्लेख के बाद तत्कालीन समाज पर कुछ विशेष टिप्पणी की आवश्यकता नहीं रह जाती।

इन पत्रिकाओं में स्त्रियों की स्वास्थ्य सम्बंधी समस्याओं और उनकी आयुर्वेदिक दवाओं के विज्ञापन भी खूब छपे। इन विज्ञापनों में विभिन्न सम्मतियां भी छपती थीं।

पत्रिकाओं में स्त्रियों को एक विशेष प्रकार की देहयष्टि प्रदान करने वाली आयुर्वेदिक दवाओं के विज्ञापन भी छपते थे। स्त्रियों के इस हक से कौन इंकार करना चाहेगा, पर इन विज्ञापनों का सच इतना सपाट नहीं है। इन विज्ञापनों के साथ एक दूसरा विज्ञापन भी चस्पान मिलेगा, या आसपास दिखायी दे जायेगा, और वे विज्ञापन होते थे पुरुषों की कामशक्ति यौवनेच्छा बढ़ाने वाला। इन विज्ञापनों को साथ साथ देखने पर ही स्त्रियों को विशेष देहयष्टि प्रदान करने वाले विज्ञापनों का सच उद्घाटित होता है। यह बीसवीं इक्कीसवीं सदी के उन विज्ञापनों की तरह है जिसमें कोई स्त्री गोरा होकर पुरुषों को आकर्षित करने में ही अपने रूप की इतिश्री समझती है। एक साथ प्रकाशित ये विज्ञापन द्रष्टव्य हैं, विज्ञापक है “मनस्वी औषधालय, 7910 लाटूश रोड, कानपुर मुफ्त तिलस्मी जड़ी/बचपन की कुचालों से नामर्द से नामर्द भाई वैसी ही ताकत प्राप्त करने के लिए विषैली तिलाओं व स्तम्भन (इमसाक) के लिए नशीली चीजों से बचेखुचे स्वास्थ्य को भी न खोयें, क्योंकि इस जड़ी के सिर्फ मुंह में डाले रखने से तब तक बदन में ऐसी फुर्ती व शक्ति पैदा होती है कि आप घंटों आनंद में मग्न रहेंगे और अंत तक शिथिल भी न होंगे न विषैली और न नशीली। ...उरुजे पिस्तान तैल भी/यह सुगंधित तेल समस्त स्तन रोगों को नष्ट कर 7 रोजों में स्तनों को पुष्ट व कठोर बनाता है कि फिर जन्मभर एकसां रहते हैं, तथा सिरदर्द, थकावट दूर कर दिमाग को तर व सुगंधिमय बनाता है। हमारे जगत्प्रसिद्ध धातुपुष्ट चूर्ण (मू. 2 रु.) साथ लेने पर जड़ी या तैल मुफ्त...”⁸

‘कश्मीरी कोकशास्त्र’⁹ के वे विज्ञापन जो स्त्रियों को ‘पद्मिनी’, ‘चित्रनी’, ‘शंखनी’, ‘हस्तनी’ आदि वर्गों में विभाजित कर अंततः उसकी समूची इयत्ता को भोग्या रूप में स्खलित करने पर केन्द्रित होते हैं, इस दौर में निरंतर प्रकाशित होते हैं। बूढ़े को जवान बनाने का दावा करने वाले वैद्यक हकीमी¹⁰ के विज्ञापन भी इसी गोत्र के हैं।

विज्ञापनों में स्त्रियों के चित्र का आरम्भिक उपयोग ‘डोंगरे का बालामृत’¹¹, ‘चंद्रामृत’¹², ‘शिरोगनाशक’¹³ आदि के विज्ञापनों में मिलते हैं। आगे चलकर सौन्दर्योत्पादों और वस्त्रों के विज्ञापनों में भी उनका उपयोग हुआ। कामिनिया ऑइल¹⁴, कामिनिया स्नो¹⁵, कामिनिया ह्वाइट सोप¹⁶, सुंदरी स्नो¹⁷, हिमानी स्नो¹⁸, कोकोला साबून¹⁹, क्यूटीकूरा मलहम²⁰, क्यूटीकूरा साबुन²¹, अफगान स्नो²², बनारसी साड़ी²³ आदि के विज्ञापनों में स्त्री छवि का इस्तेमाल किया जाता है। इन उत्पादों में स्त्री छवि का उपयोग आज के उदारवादी दौर के विज्ञापनों की तरह आक्रामक और द्वयर्थी नहीं है। इसकी तुलना

यदि उस समय की शक्तिवर्द्धक या विशेष देहयष्टि वाली दवाओं के विज्ञापनों में उपस्थित अनुपस्थित 'स्त्री' से की जाये, तो वे विज्ञापन अधिक अश्लील जान पड़ेंगे।

स्त्री स्वास्थ्य पर केन्द्रित विज्ञापनों को देखें तो यह सवाल उठता है कि क्या स्वस्थ स्त्री का सबसे बड़ा लक्ष्य गर्भधारण एवं संतानोत्पत्ति मात्र है। स्त्री स्वास्थ्य की इतनी चिन्ता क्या मात्र इसी कारण है! 'चांद' में प्रकाशित एक ऐसे ही विज्ञापन में, जिसमें 'भारत की राष्ट्रपताका श्रीमती सरोजिनी नायडू की बहुमूल्य सम्मति' प्रकाशित है, यह कहा जाता है "वीर प्रसविनी (मा) के बिना देश का कल्याण नहीं! पर रोगी शरीर में वीरता कहाँ? अतः रोगी शरीर को स्त्रीरोग की दवा अवश्य खानी चाहिए।"²⁴

स्वतंत्रता आंदोलन के समानांतर समाज में स्त्रियों की भूमिका को पहचानने का सिलसिला भी शुरू हुआ। गांधी ने अपनी राजनीति में स्त्रियों को स्थान देकर उसे ठोस और व्यापक रूप दिया। स्त्रियों की स्थिति में बदलाव की शुरुआत यहीं से होती है। उनकी शिक्षा रोजगार²⁵ की चिन्ता की जा रही थी, उनकी पहचान के प्रति सम्मान की इस पहली आहट का पता उस दौर के विज्ञापनों से भी चलता है।

यह संदर्भ वैवाहिक विज्ञापनों के उल्लेख के बिना अधूरा रहेगा। वैवाहिक विज्ञापन दो प्रकार के हैं वर की आवश्यकता, वधू की आवश्यकता। डॉक्टर वर के लिए वधू की आवश्यकता का एक विज्ञापन देखें "एक नवयुवक डॉक्टर के लिए, जो एम.बी.बी.एस. है और यू.पी. के मेडिकल सर्विस में है एक सुशिक्षिता, सुंदर और स्वस्थ हिन्दू कन्या की आवश्यकता है। कन्या की आयु 18 से 20 वर्ष तक होनी चाहिए। जाति पाति का कोई ख्याल नहीं है केवल कन्या सुयोग्य होना चाहिए। अन्य आवश्यक बातें जानने के लिए निम्नलिखित पते से पत्र व्यवहार करना चाहिए।"²⁶

'जात पांत' का भेद न होना अच्छी बात है, पर 'अन्य आवश्यक बातें' का खतरा भी इस विज्ञापन में उपस्थित है। लेकिन इससे भी बड़ा रहस्य कन्या के 'सुयोग्य' होने में है। इसकी कसौटी क्या होगी, इसका खुलासा इस विज्ञापन में नहीं है।

'वर की आवश्यकता' वाला विज्ञापन इससे इतर समाज की दूसरी सच्चाई व्यक्त करता है "मुझे अपनी दो कन्याओं के लिए जिनमें एक की उम्र 11 वर्ष है और सातवें क्लास तक अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत पढ़ी है और दूसरी की उम्र 10 वर्ष की है जो छठवें क्लास में पढ़ रही है, स्वजातीय वरों की आवश्यकता है। लड़कियां अभी पढ़ रही हैं और भी पढ़ाने की इच्छा है। वर उच्चकोटि का शिक्षित और अच्छे घराने का धनाढ्य होना चाहिए। विशेष बातों के लिए पत्र व्यवहार करें।"²⁷

"एक सुप्रसिद्ध खत्री घराने की 16 वर्ष की लिखी पढ़ी कन्या के लिए योग्य, स्वरूप और उच्च घराने के वर की आवश्यकता है। लड़की घर के कामकाज में निपुण है। सीना, पिरोना बहुत अच्छा जानती है। मध्यमा तक संस्कृत पढ़ी है। अंग्रेजी पढ़ रही है। लड़के की आयु 22-24 वर्ष की और कम से कम बी.ए. पास होना चाहिए। साहित्य प्रेमी वर को विशेष तरजीह दी जायेगी। वर कोई खत्री हो, ऊंच नीच का विचार नहीं है, किन्तु खत्री होना जरूरी है। साथ ही जायदाद और रुपयों की भी जरूरत नहीं है केवल वर अच्छा होना चाहिए।"²⁸

पहले विज्ञापन में बच्चियां 13 और 10 वर्ष की हैं तो दूसरे विज्ञापन में 16 वर्ष की। उस समय के लिए यह एक बेहद आम बात है। उल्लेखनीय बात यह है कि पहले विज्ञापन में 'और भी पढ़ाने की इच्छा' है। दोनों ही विज्ञापनों में 'अंग्रेजी' के प्रति आकर्षण और जाति का बंधन समान रूप से उपस्थित है। पहले विज्ञापन में वर के धनाढ्य होने पर बल है तो दूसरे में यह महत्वहीन है। 1925 में प्रकाशित ये विज्ञापन स्त्री शिक्षा के प्रसार का परिचय तो देते हैं पर अभी भी वह स्त्री के लिए एक अलंकरण है, उसकी इयत्ता से जुड़ा हुआ प्रश्न नहीं बन पाया है, इसे भी स्पष्ट कर देते हैं।

इसी प्रसंग में विधवा विवाह और वेश्या विवाह से सम्बंधित सूचनाओं विज्ञापनों को भी देखना चाहिए। उन्नीसवीं सदी में हुए समाजसुधार आंदोलनों और तत्कालीन राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन ने समाज में ऐसे उत्साही माहौल को बनाने में भूमिका निभायी थी। विधवा विवाह जैसे आयोजन व्यक्तिगत प्रेरणा और सामूहिक प्रयास, दोनों से सम्पन्न होते थे। प्रेमचंद ने भी 1907 में बाल विधवा शिवरानी देवी से विवाह किया था। इस राह की अपनी मुश्किलें थीं। समाज इन चीजों के लिए सहर्ष तैयार न था। 'प्रताप' में 1922 में विधवा विवाह से सम्बंधित एक विज्ञापन से इसका जायजा लिया जा सकता है "देश में दो करोड़ के लगभग हिन्दू विधवाएं हैं। लाखों की आयु पंद्रह वर्ष से कम है जिनमें एक एक वर्ष की दूध पीने वाली बच्चियां भी सम्मिलित हैं। विधवा विवाह सहायक सभा, बनारस दिसम्बर तक केवल 50 विवाह उच्च कुलों में करा सकी है। कृपया इस सभा के कार्यों में तन, मन, धन से सहायक बनिए और अनेकों दुखियारियों को जीवनदान देकर ईश्वरप्रिय न्याय प्रदर्शित कीजिये। इस सभा की ओर से विधवा आश्रम भी स्थापित है जहां पुनः विवाह की इच्छुक असहाय और अनाथ विधवा विवाह को प्रविष्ट करायी जा सकती हैं।"²⁹

वेश्याओं के साथ समस्या इससे कई गुना अधिक थी। 'चांद' में 'वेश्या अंक' के प्रकाशन के पश्चात दो वेश्याओं ने विवाह हेतु 'चांद' को पत्र लिखा। अब वे ग्रहस्थ जीवन में प्रवेश करना चाहती थीं। इनमें से एक की 13 वर्ष और एक की 10 वर्ष की कन्या थी। ये अपनी कन्याओं का भी विवाह 'लिखे पढ़े युवकों' से करना चाहती थीं। इस सूचना में इन वेश्याओं ने अपने जीवन का यथार्थ और पीड़ा व्यक्त की है "जब हम वेश्यावृत्ति का घृणित पेशा करती हैं तब तो बड़े बड़े राजा बाबू लोग आकर हमारे तलवे चाटते हैं पर जब हम लोग विवाह करना चाहती हैं और एकांत पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहती हैं तो क्या मध्यम श्रेणी के लिखे पढ़े लोग भी हमसे विवाह नहीं कर सकते?"³⁰

इस समस्त चर्चा के बाद नवजागरणकालीन विज्ञापनों में उपस्थित 'स्त्री' के सम्बंध में हम मोटे तौर पर कुछ बातें कह सकते हैं पहली बात स्त्रियों को लेकर समाज की परम्परित धारणा का परिचय ये विज्ञापन बहुत स्पष्टता से देते हैं। स्त्रियों का स्वास्थ्य एक अहम प्रश्न बन कर उभरता है, पर इस प्रश्न का सबसे अहम बिन्दु गर्भधारण ही है। दूसरी बात पुरुषों की कामेच्छा और शक्तिवर्द्धक दवाओं के विज्ञापन जिनमें प्रकटतः स्त्री उपस्थित नहीं होती थी, पर ये विज्ञापन स्त्री को एक भोग्या के रूप में अवकलित करने वाले ही थे। तीसरी बात इसी समय से विज्ञापनों में स्त्रियों की तस्वीरों का उपयोग शुरू हो जाता है। सौन्दर्योत्पादों, वस्त्रों और दवाओं के विज्ञापन में वे दिखायी देने लगती हैं पर तब तक स्त्री की छवि अशालीन नहीं हुई थी। इसकी तुलना में स्त्रियों को विशेष देहयष्टि प्रदान करने वाली दवाओं और उत्पादों के विज्ञापन अश्लील हैं। चौथी बात स्त्रियों की शिक्षा एवं कल्याण के लिए कई संस्थाएं काम कर रही थीं, एवं उनके विज्ञापन भी प्रकाशित होने लगे थे। वैवाहिक विज्ञापनों में पढ़ी लिखी लड़कियों और पढ़े लिखे लड़कों की मांग की जा रही थी। समाज में विधवा विवाह और वेश्या विवाह जैसे विषय भी अब उठ रहे थे।

संदर्भ

1. हिन्दी प्रदीप, संवत् 1966, जिल्द-2, संख्या-2, पृ. 40
2. उपरिवत, पृ. 41
3. प्रताप, 1 जनवरी 1917, पृ. 16
4. हंस, अप्रैल 1931

5. प्रताप, 28 फरवरी 1916, पृ. 12
6. उपरिवत, 17 मई 1921, पृ. 16
7. उपरिवत, 13 मार्च 1922, पृ. 13
8. उपरिवत, 21 सितम्बर 1921, पृ. 12
9. उपरिवत, 6 मार्च 1922, पृ. 18
10. द्रष्टव्य: प्रताप, 11 सितम्बर 1922, पृ. 19

माधुरी, दिसम्बर 1930 में प्रकाशित 'चिकित्साचंद्रोदय' का विज्ञापन भी देखा जा सकता है। 'प्रताप' में प्रकाशित विज्ञापन का शीर्षक है 'एक बार दुर्व्यसनों से तंदुरुस्ती बरबाद कर फिर कैसे मरते मरते मौत के मुंह से बचा'। इसके पश्चात एक पूरे पृष्ठ के वृत्तांत का निचोड़ यही है कि विज्ञापित औषधि का उपयोग कर धातुक्षीणता, स्वप्नदोषादि से मुक्त हो सकते हैं। यानी, फिर बैतलवा डाल पर! बात घूम के वहीं आ जाती है। 'माधुरी' के विज्ञापन का भी यही हाल है। 'हंस' के अप्रैल 1931 में प्रकाशित 'मदनमस्त पाक' और 'ब्राह्मी बादाम पाक' के विज्ञापन भी इसी कोटि के हैं।

11. प्रताप, 17 जनवरी 1916, पृ. 15
 12. उपरिवत, 22 जनवरी 1917, पृ. 12
 13. उपरिवत, पृ. 19
 14. चांद, मई जून 1925
 15. सरस्वती, नवम्बर 1939
 16. उपरिवत
 17. चांद, जुलाई 1925
 18. माधुरी, दिसम्बर 1930, हिमानी स्नो के प्रशंसकों में पंडित जवाहर लाल नेहरू का भी नामोल्लेख विज्ञापन में मिलता है।
 19. सरस्वती, नवम्बर 1939
 20. सरस्वती, अक्टूबर 1939
 21. सरस्वती, दिसम्बर 1939
 22. माधुरी, दिसम्बर 1930
 23. चांद, जनवरी 1928, जून 1928
 24. चांद, अगस्त 1927, बंध्यात्व और गर्भाशय के रोगों को दूर करने वाली औषधियों और पुस्तकों के भी विज्ञापन इन पत्र पत्रिकाओं में खूब प्रकाशित होते थे। माधुरी में अप्रैल 1931 के अंक में श्रीमती गंगाबाई, गर्भजीवन औषधालय, अहमदाबाद के दो उत्पादों गर्भजीवन, गर्भरक्षक के विज्ञापन प्रकाशित हैं।
 25. चांद में जुलाई 1927 के अंक में 'अध्यापिका की आवश्यकता' शीर्षक से एक विज्ञापन प्रकाशित है। यह विज्ञापन 'हेडमास्टर सर राम सिंह हाईस्कूल, मऊस्टेट, मध्यभारत' की ओर से प्रकाशित है।
 26. चांद, मई जून 1925
 27. उपरिवत
 28. उपरिवत
 29. 'प्रताप' 6 मार्च 1922, पृ. 16
- चांद में जुलाई 1927 के अंक में भी ऐसा विज्ञापन मिलता है। उल्लेखनीय है चांद ने अप्रैल 1923 का अंक 'विधवा अंक' नाम से ही निकाला था। समाज ऐसे अंकों और प्रयासों की नोटिस लेता था। 'चांद' के मई 1930 के अंक में श्रद्धानंद अनाथ महिलाश्रम के मंत्री का एक पत्र प्रकाशित है "श्री. समपादकजी, 'चांद'; आपकी पत्रिका के अप्रैल अंक में जिन दुखी और असहाय स्त्रियों का हाल छपा है, उन्हें सूचना दे दीजिये कि वे यदि चाहें तो हमारे आश्रम में आ सकती हैं, यहां उनके लिए संतोषजनक प्रबंध हो जयेगा।"
30. चांद, मई जून 1925

चूक

मो. आरिफ

उनका भेजा हुआ रुक्का हाथ में है। चोपड़ा लेकर आया है। छोटी सी चिट है यह उर्दू में छोटी सी तहरीर। चलिये, कहानी खत्म होते होते अगर सब ठीक रहा तो पढ़ कर सुना दूंगा। पढ़ कर क्या सुनाऊंगा, उर्दू आती किसे है। खाली नाम का मुसलमान हूं। गौर किया आपने, खाली नाम का मुसलमान! खाली खतना करा लेने और नाम रख लेने से कोई मुसलमान हो जाता है क्या? खाली नाम का मुसलमान होना गुनाह है। खाली नाम का मुसलमान किसी काम का नहीं। मुझे बहुत कुछ करना चाहिए... वाल्देन ने खाली नाम देकर निकम्मा और निठल्ला छोड़ दिया। हिन्दी इंग्लिश कम्प्यूटर मोबाइल और इंजीनियरिंग से क्या होता है। खाली पेट भरता है, दुनिया में कामयाबी मिलती है, लेकिन इस दुनिया से परे भी एक दुनिया है, अगर उसे न संवारे तो यह सब धरा का धरा रह जायेगा, यहीं इसी दुनिया में। यह दुनिया तो फानी है, आगे की भी सोचो भाई, जहां अनंत काल तक के लिए तुम्हारा ठिकाना बनेगा। हम तीनों में सलमान ही कुछ काम का आदमी है। उसी ने उस रुक्के को पढ़ कर सुनाया और वही पढ़ कर आपको भी सुनायेगा। सलमान मेरी बगल वाली बेंच पर बैठा है... थका हारा सा, जैसे दो दिनों से खाया पीया न हो। वो, अपने में मसरूफ आ जा रहे हैं... गाड़ियां हैवी ट्रैफिक के कारण रेंग रही हैं। हमारे नजदीक एक आवारा कुत्ता आकर बैठ गया है, एक बूढ़ा भिखारी और उसके दो भिखमंगे पिल्ले दूसरी बगल में बैठे मिल बांट कर कुछ खा रहे हैं। उनका पीजाहट का पैकेट मैं देख सकता हूं... किसी ने ओवर ईटिंग के डर से उन्हें थमा दिया होगा।

सामने उस पार इमली का दरख्त सन्न खड़ा है। वहां अंधेरा है, उस पर बसेरा लेने वाले परिन्दे दिन भर आवारागर्दी करके वापस आ चुके हैं, उनके चूं चूं चीं चीं का शोर इतना जबरदस्त है कि लगता है कि आज तो ये रतजगा ही कर डालेंगे। बैंगलोर के मशहूर ब्रिगेड के एक कोने में खड़ा यह इमली का पेड़ परिन्दों को फ्री में मिला है, जो चाहे सो करें। सलमान उसी दरख्त की जानिब देख

रहा है, देखे जा रहा है। मैं समझता हूँ कि वह क्या सोच रहा है। वह इन चहचहाती चिड़ियों से रस्क कर रहा है। है वह किसी और बात पर गुस्सा, लेकिन बैठे बैठे गुस्सा रहा है इन नन्हीं नन्हीं जानों पर और उनकी म्यूजिक पर। मैं जब किसी पर या किसी से गुस्सा होता हूँ तो उसे मारने का मन करता है। जान से नहीं, हाथ से, लात से, घूसे से। उसे चिकोटियां काटने का मन करता है। या ताज्जुब है, उसे गुदगुदी करने का मन करता है। यह मेरा दूसरा तरीका है। साले को इतनी गुदगुदी करूँ, इतना गुदगुदाऊँ कि साला हंसते हंसते हंसते हंसते ऐसा दिखने लगे कि लोग समझें पागल है। हंसते हंसते उसका दम फूलने लगे, सांस रुके और वहीं टें। मन कर रहा है कि उठूँ और किसी को पकड़ कर अभी गुदगुदाने लगूँ। लेकिन मुझे अपनी किलर इस्टिंक्ट... किलर इस्टिंक्ट बोले तो मारक क्षमता.. . पर संदेह होने लगा है। जिसके लिए बदनाम हैं हम, यहां से लेकर वहां तक, जहां तक चली जाये आपकी तिरछी नजर।

सलमान जब गुस्से में होता है तो वह सीधे बंगाली में वह कविता गाता है जिसमें सर उठा कर बिना झिझके बिना डरे बिना लज्जित और बेआबरू हुए हिन्दुस्तान में सांस लेने और खरामा खरामा अपने सपने की ओर बढ़ने की कामना की गयी है। लेकिन आज वह यह सब नहीं कर रहा। इमली के पेड़ से फुर्सत मिले तब न। उसका तकियाकलाम है अयोध्या गुजरात जिन्दाबाद। कहता है गुजरात से आगे बढ़ो भाई, वहीं अटके हुए हो। नसीर सनक कर कहता है हां, अयोध्या के आगे फैजाबाद है और गुजरात के आगे राजस्थान वहां तक बढ़ो भाई... और फिर हंसी का फव्वारा। नसीर से तेज फव्वारा सलमान का होता और उससे थोड़ा कम तेज मेरा। मतलब कि नसीर अगर दस बार हा हा हो हो करता तो सलमान आठ बार हा हा और आठ बार हो हो करता। कुल मिला कर सोलह बार। मेरा इनसे अलग ही था। मैंने हा हा हो हो दोनों एक साथ कभी नहीं किया। मुझसे निकलता ही नहीं था। फिलहाल तो सलमान मेरे साथ कितनी देर से बैठा है लेकिन एक बार मुस्कराया तक नहीं। कुत्ता आया तब भी नहीं, भिखारी खा पीकर चले गये तब भी नहीं फिर मैं सोचता हूँ आखिर मुझे क्या हो गया है कुत्ते के आने पर कोई हंसता मुस्कराता है क्या, और भिखारी को कभी मुस्कराते देखा है। भिखारी के साथ जो पिल्ले थे, बहुत अच्छे थे। पता नहीं आप समझे कि नहीं। पता नहीं मैं समझा पाया कि नहीं। सलमान का फव्वारा सूखा नहीं है। उसी ने उस रुक्के का तर्जुमा हमारे लिए किया था, और उसमें भी उसने हंसी का मुकाम ढूँढ लिया था। जबरदस्त सेंस ऑफ ह्यूमर है उसका, और जबरदस्त टाइमिंग! फिलहाल तो अंधेरे में खड़े उस पेड़ को ताके जा रहा है। चूँ चूँ चीँ चीँ बंद हो चुकी है। वे सभी सो चुके हैं। खाली रह गये हैं हम लोग।

यह कोई बहुत पहले की बात नहीं है। यह बस अभी की है। जब हम अपनी अलग अलग किन्तु एक जैसी दुनिया से निकल कर बेंगलोर, जी हां अयोध्या गुजरात नहीं बेंगलोर आये। हम सब अकेले ही आये थे। आईवीएम और टीसीएस के इंटरव्यू में न जात पूछा न पांत, और तो और, न धरम पूछा न करम। नहीं तो जरूर फंस जाते। घर वालों ने कान भर दिया था कि नौकरियां हैं तो लेकिन वे किसी और के लिए होती हैं। इतनी दूर आकर पढ़ाई करने और मनचाहे पगार वाली नौकरी पाने के बारे में तो हम पहले सोचते भी नहीं थे। लेकिन जब इक्कीस साल दो महीने की उम्र में ही एक हजार रोज वाली नौकरी से लगे तो मुंह से निकला बेंगलोर जिन्दाबाद। दोस्तो, नौजवानी उफान पर है। युवा और महत्वाकांक्षी होने के लिए सबसे मजेदार समय कोई रहा है तो यही है, और यहीं है, बेंगलोर में। दुनिया भर के नौजवान कभी इतने फायदे में नहीं रहे। बारिश में सभी भीग रहे हैं। हाथ में हुनर है तो बहती गंगा में हाथ धो लो। पहली बार वक्त की ऐसी दरियादिली रिकार्ड की गयी है, हर सौदा नफे का है भाई।

भाई से याद आया। हम तीन जन थे। तीनों हुनरमंद। तीनों कम्प्यूटर के उस्ताद, साफ्टवेयर के तेज खिलाड़ी। जी हां हम तीन थे एक मुल्क, एक मजहब, एक जबान, एक रंग, एक काम हम तीनों का। तीनों का एक साथ आना जाना खाना पीना उठना बैठना घूमना फिरना और एक साथ नौकरी चाकरी। हम भाई नहीं थे। पर भाई जैसे थे। एकदम जैसे भाई। जैसे भाई भाई। गो कि यह पोलिटिकली करेक्ट नहीं था, पर यह था। सिनेमा और टीवी में ऐसा देखा न गया, किताबों कहानियों में ऐसा पढ़ा न गया, नाटक नौटंकीयों में इसकी मिसाल नहीं, और चौक चौराहों पर कभी गलबहियां डाले हम दिखायी दिये तो भौंहें वैसी न रहीं।

जिन छोटे कस्बों और शहरों से हम आये थे वहां हमारे कौम का सदस्य होने का अर्थ निकाला जाता था कम पढ़ा लिखा, कट्टर, कुछ कम नहाने वाला (गंदा अंदर से भी, बाहर से भी)। रोज मांस खाने वाला, बकरी मुर्गी के साथ हमबिस्तर होने वाला, पंचर बनाने वाला, कपड़ा सिलने वाला, पप्पू और बबलू के नाम से सबकी गाड़ी चलाने और बनाने वाला। और तो और, अंदर से पाकिस्तानी। कम से कम आधा तो अवश्य। बैंगलोर आने के बाद हम ब्रांडेड जींस और ब्रांडेड शर्ट और ब्रांडेड जूते पहनने लगे। वह भी अपने पैसों से। भूल जाइये हमारी गोल टोपी, बेढंगी पैण्ट और उटंगी कमीजें। अब हम खाली नाम के... थे। इस गैप में जो समझ में आये, भर लें। हमारी पीठों पर औरों की तरह हमारा साजोसामान सजा होता था। जहां चाहा, जिस जगह भी... कैफे में, रेस्तरां में, रेल के एसी कोच में, स्टेशन पर, एयरपोर्ट पर और हवाई जहाज के अंदर साजोसामान उतारा, कानों में म्यूजिक और सामने लैपटाप और काम शुरू। सारा हिन्दुस्तान मुट्ठी में, सारी दुनिया हमारी जेब में। औरों की तरह वीकेंड का हमें भी बेसब्री से इंतजार रहता। वीकेंड पर मैं अपना कैमरा लेकर फोटो शोटो लेने निकल जाता, सलमान गिटार शिटार सीखने चला जाता और नसीर अपनी गर्लफ्रेंड सोनिया के साथ घूमने सूमने। हमारी इंग्लिश संवरने लगी। ह्वाटेवर! कूल! चिल आउट चिलैन्स और वास्सप मैन जैसे प्रचलित जुमलों की आदत पड़ने लगी। फिर हम स्टार्ट अप बिजनेस के बारे में डिस्कस करने लगे, सपने देखने लगे। अपनी कम्पनी अपना बैंक बैलेंस। अपनी गर्लफ्रेंड अपने फ्रेंड्स। अपना बैंगलोर अब कभी नहीं छोड़ेंगे।

आपको जान कर ताज्जुब होगा कि बैंगलोर में स्थापित होने के एक साल के अंदर... हां एक साल के अंदर ही मैंने और नसीर ने हवाई जहाज का टिकट खरीदा और दो घंटे से कम समय में ही घर आ गये। यह हमारी पहली ईद थी। डेढ़ साल भी पूरे नहीं हुए थे जब हमने अपना एक वीकेंड सिंगापुर में बिता डाला।

हम आसमान में उड़ने लगे थे। हम पैदल से इक्के से साइकिल से बस से उतर कर सीधे हवाई जहाज पर आ गये थे। अब तो हम कभी भी अमरीका, कनाडा, इंग्लैण्ड, आस्ट्रेलिया कहीं भी जा सकते थे। फाइनली, हम वहां खड़े थे, सर उठा कर, सीना तान कर। हमारी बारी आ गयी थी, और इतनी जल्दी। न हमने घूस दिया न किसी ने हमारी सिफारिश की। नौकरी देने वाले के न तो हम भाई लगते थे न भतीजे। वह तो वहां इफरात बिखरी पड़ी थी, हमने उठा लिया।

नसीर तो दूसरे साल में घुसते ही अपनी कार के चक्कर में पड़ गया और फिर जल्दी ही बंदे ने छोटी सी मुनिया सी अल्टो लाकर हमारे सामने खड़ी कर दी। हमारी सर्किल में उसका भाव बढ़ने लगा... बढ़ता गया, बढ़ता ही गया। और फिर एकदम से धड़ाम। अल्टो ने सब कुछ उलटपुलट दिया। यही तो कहानी है।

हम ऑफिस से सीधे शोरूम गये जहां अल्टो सजी धजी हमारे इंतजार में खड़ी थी। नसीर ने एक बार में ढेर सारे सिग्नेचर किये और अल्टो नसीर की यानी हमारी हो गयी। बैंगलोर में हम

जहां रहते थे वह विचित्र जगह थी। जब मैं विचित्र कहता हूं तो यह दरअसल दूसरों के लिए है। हम तो ऐसी जगह ही पैदा हुए थे, पले बढ़े थे और बैंगलोर न आते तो वहीं पड़े होते। ऐसी जगह थी जहां हम न चाहते हुए भी रह रहे थे। ऐसी जगह थी यह जहां का पता हम अपने ऑफिस कलीग को बताने में हमेशा आनाकानी किया करते। नाम से ही लगता था कैसी जगह है, वहां कौन रहता होगा, खाली वही जिनका है वह मुहल्ला। तो मुहल्ले वाले ही उस मुहल्ले में रहते थे या फिर हम जैसे जिन्हें... खैर छोड़िये, अभी इस बात को छोड़िये। अल्टो ने सीधे कहा वहां नहीं जाऊंगी। उस गलीछाप रोड पर अल्टो को चलाना टेढ़ी खीर थी। नसीर अपनी अल्टो को प्यार से दुल्हनियां कहता था और इमाम साहब से कह सुन कर मस्जिद के बगल में ही खाली जगह पर अपनी दुल्हनियां की ससुराल बना दी।

पहली बार जब हम अल्टो को लेकर आये तो हममें से कोई भी ड्राइव करना नहीं जानता था। यह अलग बात थी कि हमारे पास पैन कार्ड, इलेक्शन कार्ड, आधार कार्ड और डी.एल. सभी कुछ था। एजेण्ट स्वयं ड्राइव कर रहा था। नसीर मालिक की शक्ल में आगे वाली सीट पर और मैं और सलमान पीछे। हम बगल वाली गली से घुसे। हमें गली के आखिरी छोर, जहां हरी मस्जिद खड़ी थी, तक जाना था। मस्जिद से ही दो कदम आगे हम रहते थे। हम बोले तो चिराग नसीर और सलमान।

गली में हमारा एजेण्ट पूरी सावधानी से अल्टो को आगे बढ़ा रहा था... बीच बीच में अल्टो के गुन भी गाता जाता था उसके इंजन, उसके डोर लॉक, उसके टायर, उसकी स्टीयरिंग, उसका लेगस्पेस, म्यूजिक सिस्टम... लेकिन जैसे ही कार को किसी रिक्शे से किसी टेम्पो से किसी साइकिल से शह मिलती कि आगे सीट पर बैठे नसीर का कलेजा मुंह को आ जाता। वह आगे ऐसे झुक जाता, उसका हाथ ऐसे मचल उठता मानों अंदर बैठे बैठे ही गुराती भैंस को एक तरफ हटा देगा या ओवरलोडेड रिक्शे को एक हाथ से ही जाम कर देगा। खतरा टल जाने पर उसकी जान में जान आती। चोपड़ा कहा करता था कि सर जी अगर घरों की बालकनी से लेकर खिड़की दरवाजे छत दीवार यहां वहां सभी जगह धुले कपड़े सूख रहे हों तो समझो हमारा मुहल्ला है, अगर रिक्शे पर एक लेडिस के साथ चार बच्चे ऊपर और दो पायदान पर बैठे हों तो समझो आपका। चोपड़ा साला!

गली में निकम्मे शोहदे मजनू शेखचिल्ली इधर उधर बिखरे पड़े थे। अपने अपने कामों में मशगूल मैकेनिक मिस्त्री ड्राइवर कारीगर कपड़ा सिलने वाले बीड़ी बनाने वाले पतंग साटने वाले गुर्गा मुर्गी बकरा बकरी काटने वाले... नंगे बूचे फकीर... कई तरह के मोलवी, एक ही तरह के कठमुल्ले, पुराने शरीफजादे नये अमीरजादे सभी घरों से बाहर थे। डिजाइनर पिंजड़ों में टहलते फुदकते या बस सन्न परिन्दे... मंथर गति से आगे बढ़ती हमारी अल्टो को निहार रहे थे। अच्छा भी लग रहा था, बुरा भी लग रहा था। हम करीब करीब अपनी मंजिल पर आ पहुंचे थे कि रंगीन लुंगी बनियान पहने एक लौंडा ठेले पर मांस के बड़े बड़े लोथड़े लादे हुए सामने से आता दिखा। फिर उसके पीछे दो ठेले और। मैंने कनखियों से एजेण्ट को देखा... अभी तक उसकी नजर ठेले पर नहीं पड़ी थी... जबकि सामने बैठा नसीर उसे बातों में उलझाना चाह रहा था कि किसी तरह उसकी नजर ठेले पर न पड़े और ठेला पार हो जाये। हम बुरी तरह झेंप रहे थे। एजेण्ट ने बिना मुंह बनाये सिर्फ इतना कहा मैं पहली बार इधर आया हूं गाड़ी लेकर। मैंने मन ही मन कहा बेकार मैं ही तुम आये भाई। अगर मैंने गाड़ी ली तो तुम्हें कभी नहीं टच करूंगा। जब हम वहां पहुंचे तो मस्जिद में नमाज जारी थी। जितने लोग अंदर थे उससे कहीं ज्यादा बाहर। जिन्हें इबादत बंदगी और किसी और कामधाम से लेनादेना नहीं था वे बैठोल गेम खेलने में मस्त थे। बैठोल गेम बोले तो कैरम ताश शतरंज लूडो गुट्टी आदि। दिन भर बैठ कर खेले जाने वाले खेल।

अल्टो को वहीं इबादतगाह की आगोश में खड़ा करके एजेण्ट चला गया। और इसी रात हमारे अमीरखाने पर पुलिस ने दस्तक दी। और कहानी शुरू।

वे तीन थे वन प्लस टू के समीकरण में। नसीर गूगल की मदद से अल्टो चलाना सीख रहा था और नब्बे की स्पीड में था। सलमान लॉगिन था और मैं बिरियानी खा रहा था। खट खट सुन कर भी हमने अनसुना किया। लेकिन फिर ठक ठक इस बार जोर से। लग गया कि ठक ठक करने वाले को हमारी परवाह नहीं... और यह कि वह हमें कुछ हल्के से ले रहा है। बिरियानी की प्लेट लिए हुए मैंने खिड़की से बाहर झांका और 'पुलिस क्यों' बुदबुदाते हुए प्लेट को एक तरफ रख दरवाजा खोल दिया। वे बिना पूछे अंदर घुस आये। अब तक सलमान और नसीर भी एलर्ट हो चुके थे। हमारी और उनकी कुछ बातें हुईं। ज्यादा वही बोले। एक तो हम इस तरह की बातचीत के लिए तैयार नहीं थे, दूसरे वे तीन थे और हम... हम भी... कहने को तीन थे लेकिन सच यह था कि जिस तरह से वे हमें घूर रहे थे, हमारे कमरे का जायजा ले रहे थे, समीकरण गणित के नियम के हिसाब से नहीं रह गया था। घर पर ऐसा हुआ होता तो अब्बू और चाचा लोग और अड़ोसी पड़ोसी संभालते। लेकिन यहां हम पहली बार शासन प्रशासन के सामने थे, पहली बार इस तरह पुलिस से फेंस टू फेंस हो रहे थे। जी कहिये, शायद मेरे मुंह से निकला। आगे मुझे हूबहू याद नहीं, फिर भी वह मंजर, वह पूछताछ पेश करने की कोशिश करता हूं।

तुम तीनों के अलावा भी यहां कोई रहता है?

नहीं सर, सिर्फ हमी रहते हैं।

तुम्हारे नाम क्या हैं?

चिराग सलमान नसीर।

सलमान...नसीर... ठीक है ठीक है... क्या चिराग भी?

जी मैं भी, मैं भी मुसलमान हूं... हम तीनों ही।

ओके, कहां के हो तुम लोग?

हमने बता दिया।

कहां काम करते हो?

हमने बता दिया।

तुम तीनों दोस्त हो?

जी भाई हैं... दोस्त हैं... भाई नहीं दोस्त हैं।

साफ साफ बताओ।

जी दोस्ती है।

एक साथ क्यों रहते हो?

दोस्ती है इसलिए... और किराये का भी मैटर है।

इससे पहले कहां रहते थे?

यहीं।

यहां से पहले?

यहीं से रहना शुरू किया।

अच्छा, पुलिस वेरीफिकेशन कराया?

पुलिस वेरीफिकेशन! ?? नहीं तो।

आईडी है?

हम दिखाने चले तो कहा रुको रुको।

यहां किसी को जानते हो?

हां, मस्जिद के इमाम साहब और कुछ लोकल लोग।

नहीं नहीं इस मुहल्ले से बाहर किसी को?

कम्पनी में सभी जानते हैं, और तो कोई नहीं।

अच्छा कौन कौन मिलने आता है?

कोई नहीं।

तुम किससे मिलने जाते हो?

किसी से नहीं, हम तीन काफी हैं।

तीन काफी हो, मतलब?

आपस में ही मस्ती कर लेते हैं, किसी से...

आपस में मस्ती कर लेते हो, वेरीगुड! (हल्की सी स्माइल)

अच्छा अल्टो कौन खरीदा?

मैंने कहा वह।

डाउन पेमेण्ट कितना दिया, पैसा कहां से आया?

जी सैलरी मिली है उसी से... एमआई।

अल्टो का कागज दो।

नसीर फाइल उलटने लगा, उसने मना कर दिया रहने दो।

तुम तीनों के बीच कितने लैपटाप हैं?

तीन।

कितने सेलफोन हैं?

चार।

दो कौन रखता है?

नसीर।

क्यों भाई, दो की क्या जरूरत है? और यह महंगा ब्लैकबेरी...

आजकल तो लोग तीन तीन चार चार रखते हैं।

तुम दो क्यों रखते हो?

एक अपना था, ब्लैकबेरी गर्लफ्रेंड ने प्रेजेण्ट किया।

क्या तुम सबके पास अपनी गर्लफ्रेंड है?

नहीं एक ही से काम चलाते हैं। नसीर ने हंसते हुए कहां वे भी हंसने लगे।

अच्छा ऐसा करो, कल सुबह तुम तीनों अपने अपने आई कार्ड, सेलफोन, लैपटाप, अल्टो के पेपर्स, रेण्ट एग्रीमेण्ट के पेपर्स सब लेकर थाने आ जाना। दस बजे सुबह।

हमें कुछ समझ न आया कि यह सब क्या था? क्यों आये थे ये लोग, और अब हम क्या करें? हम किसी को जानते नहीं थे जिससे पूछते कि हमें इस तरह क्यों पुलिस स्टेशन बुलाया गया है? हमने इमाम साहब से पूछा। वे भी सोच में पड़ गये, फिर उन्होंने कहा ठीक है, बुलाया है तो चले जाओ। आकर बताना क्या हुआ।

हमने आफिस में छुट्टी का मेल भेज दिया और ठीक दस बजे सभी चीजें लेकर थाने पहुंच गये। वहां उन तीनों के अलावा उनका हाकिम भी था। वे हमसे बड़ी शालीनता से पेश आये। हमें नाश्ता करवाया। हमारे पेपर्स चेक किये। लैपटाप और सेलफोन की ओर इशारा करते हुए कहा

इसमें कुछ है तो नहीं। नसीर ने कहा इसमें तो बहुत कुछ है, सब कुछ इसी में है। उनमें से एक ने कहा गर्लफ्रेंड वाले तुम्हीं हो न। नसीर ने कहा हम तीनों ही हैं। सुन कर वे हंस पड़े। हम भी हंसे... जितना हंस सकते थे। वे बड़े मूढ़ में थे, बात बात पर हंसते थे। हम किसी बात पर हंस देते थे। हमें लगता था अगर हम नहीं हंसेंगे तो वे हम पर शक करेंगे कि अरे वाह ये तीनों तो काफी हार्ड हैं, हंसते ही नहीं। अंततः हमारी उंगलियों के निशान और पुतलियों की तस्वीरें लेकर हमें जाने को कहा। जब हमने पूछा उन्होंने ऐसा क्यों किया, क्या हमने कोई जुर्म किया है, वे कुछ नहीं बोले, खाली घूरने लगे, फिर बोले कह दिया जाओ तो जाओ... या यहां रुकना चाहते हो? अब वे बिल्कुल नहीं हंसे।

हमने उनकी तरफ देखा, कुछ समझ न आया क्या करना चाहिए। उनका घूरना जारी था। हमने धीरे धीरे चलना शुरू किया, चलने लगे और फिर चले आये। रास्ते में, याद आ रहा है, हमने कोई बात नहीं की। कमरे पर पहुंच कर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यह उनकी रूटीन चेकिंग है, ऐसा वे सभी के साथ करते होंगे।

चार दिन ही बीते होंगे कि वे फिर आ धमके। बोले बस इधर से गुजर रहे थे कि आ गये, कोई विशेष बात नहीं। जाते जाते समझा गये कि हम अपने काम से काम रखें, बेकार में किसी से दोस्ती का हाथ न बढ़ायें। कोई बिला वजह सटने की कोशिश करे तो थाने को बतायें। उन्होंने एक नम्बर भी दिया, कहा चौबीस घंटे चालू रहता है। फिर वे धीरे से बोले, इमाम साहब के साथ भी ज्यादा नजदीकियां बढ़ाना ठीक नहीं...। फिर बोले, अच्छा बताओ तुम रेगुलर नमाज पढ़ते हो। सलमान ने तपाक से कहा, ये दोनों तो जुमे में भी नहीं जाते, लेकिन मैं पढ़ता हूं। वे सलमान को घूरने लगे। दरअसल सलमान ने 'मैं पढ़ता हूं' बोलते वक्त कुछ ऐसा मुंह बनाया जैसे उन्हें हिंकारत से देख रहा हो। गुस्से में सलमान को घूरते हुए वे बोल गये संदेह पर भी धर लिये गये तो सात आठ साल कोठरी से बाहर आने में लग जायेंगे, सुना नहीं है?

वीकेंड आ रहा था। हम कमरे में बैठे इन्हीं बातों की चर्चा कर रहे थे कि नसीर बोला, सड़ गये यार पूरे हफ्ते, ये साले पुलिस वाले...। निकलते हैं यहां से चलते हैं कहीं आउटिंग पर। सलमान बोला कूल यार... सेलीब्रेट करेंगे वीकेंड। मैंने कहा यस, अभी प्लान करते हैं। सलमान बोला, लेकिन अपनी गाड़ी कौन चलायेगा? नसीर बोला वही पुलिस वाला और कौन! हम तीनों जो हंसे तो हंसते चले गये, हंसते चले गये... जैसे हंसी का रिकार्ड बनाना हो। पुलिस वाले को अपने ड्राइवर के रूप में पेश करके हमने उससे बदला ले लिया था। मजाक छोड़िये असल बात यह थी कि नयी गाड़ी थी, तीन तीन डीएल होल्डर थे, लेकिन चलानी किसी को नहीं आती थी। तो हम अपने ऊपर हंस रहे थे, पुलिसवालों के ऊपर हम क्या हंसते, हमारी मजाल! हंसी रुकी तो नसीर बोला, डोण्टवरी गाइज, सोनिया है न। वह भी चलेगी... वही ड्राइव करेगी। नसीर को जो बोलना था बोल दिया, बचे हम दोनों, हम चिल्ला पड़े ग्रेट... कम ऑन सोनिया, कम ऑन बेबी... वो विल टूच यु सम ड्राइविंग डियर...। अब कहने वाले कहेंगे, आप लोग फिर हंसे होंगे। सही, हम फिर हंसे। पुलिस वालों ने क्या कर दिया था हमारे साथ! ऐनी वे, कम ऑन सोनिया, कम आन फास्ट।

सैटरडे की सुबह सुबह सोनिया चहकती हुई आन पहुंची। नसीर मोड़ से रिव्शे पर बैठा कर उसे ले आया। जींस, टॉप और जैकेट में वह खूब स्मार्ट लग रही थी, सुंदर तो वह पहले से है। नसीर को तो वह आज खासतौर से आकर्षक और अच्छी लगी होगी। सलमान की सिर्फ आंखों से लग रहा था, मुंह से तो कुछ बोला नहीं बंदा। कोई जींस और टॉप पहन ले, सलमान तो बस उस पर फिदा हो जाता है। और मैं? मैं दिल्लीगी नहीं कर रहा, दिल से कह रहा हूं। मेरे अलग मानदंड हैं, मेरा अलग मिजाज है। खूबसूरती बोलने हंसने पहनने चलने उठने बैठने सबमें होनी चाहिए। दिल को अच्छा लगता

है, सामने वाला अंदर उतरता चला जाता है। जब भी उसका नाम, उसका खयाल, उसका चेहरा जेहन में आया, आप खुश हो जाते हैं, आपको हवा महकती सी लगती है पानी मीठा सा लगता है, सूरज मद्धम सा लगता है, चांद खूबसूरत सा लगता है, रास्ता कट जाता है, पुलिस वाले दोस्त बन जाते हैं। सोनिया को सुबह सुबह देखा तो, मेरा यकीन करो दोस्त, गुलाम अली की वह गजल फिजा में तैर गयी 'दिल में एक लहर सी उठी है अभी, कोई ताजा हवा चली है अभी।' वह खिलखिला कर हंस रही थी तुम लोग कितनी तंग गली में रहते हो... यहां तुम्हारी अल्टो कैसे आयेगी जायेगी... बदलो इस घर को यार। और तुम्हारा रूम कैसा हो रहा है... क्या लड़के ऐसे ही रहते हैं। वह एक तरफ खड़े खड़े कमेण्ट कर रही थी और हम जल्दी जल्दी हर चीज करीने से लगा रहे थे। फिर बोली, तुम लोग अभी तक तैयार भी नहीं हो, ऐसा करो... मैं अपने लिए चाय बनाती हूं तब तक तुम लोग जल्दी से कपड़े डाल लो। खाली अपने लिए? नसीर ने ताना मारा। नहीं, अपने और सलमान के लिए, तुम जाओ जल्दी तैयार हो जाओ, तुम्हारे लिए चिराग बनायेगा चाय! आंय! नसीर चौंका और हम चारों हंसने लगे, एकदम दिल से। हमारे कमरे में ताजा हवा का एक झोंका आया था।

स्टीयरिंग संभालते ही सोनिया चहकने लगी बैठो बच्चों सैर पर चलते हैं। बोलो चिराग.. हम कहां चल रहे हैं, मन्ना जी फारेस्ट, कब्बन पार्क, रामबाग लेक या कहीं और। इससे पहले हममें से कोई कुछ बोलता, वह खुद बोली, जहां भी चलो, बस हम तो तुम्हें वहां पहुंचा देंगे... तुम लोग चिलैक्स करना, मैं तो कहीं कोने में दुबक कर अपना नॉवल खत्म करूंगी। हमने डिसाइड किया रामबाग लेक ठीक रहेगा। दिन भर मस्ती करके शाम तक वापस भी आ जायेंगे। सोनिया ने अल्टो को जीपीएस पर किया, अपनी आस्तीन को थोड़ा फोल्ड किया और आंखों पर काला चश्मा चढ़ा कर आराम से ड्राइव करने लगी।

नसीर उसकी बगल में आगे बैठा म्यूजिक सिस्टम को कंट्रोल कर रहा था। शहर की हद से बाहर निकलते ही सोनिया ने स्पीड बढ़ायी और जैसा कि हम स्कूल कॉलेज के दिनों में कहते थे, अल्टो हवा से बातें करने लगी। सोनिया ही समझ सकती थी अल्टो हवा से क्या बात कर रही है, क्योंकि हम ठहरे डीएल होल्डर माइनस ड्राइविंग। हमने अपनी हिन्दी किताब में एक निबंध पढ़ा था कि चिलचिलाती धूप में चल कर आने वाला व्यक्ति ही तरु की छाया का असली आनंद महसूस कर सकता है, वैसे ही जैसे सूख कर कांटा हुआ गला ही शीतल जल की अहमियत को समझता है। शहर के जिस इलाके सैदाबाद की तंग गलियों में हम रहते थे, और जहां रहते हुए पिछले दिनों हम पुलिसिया पूछताछ से दो चार हुए थे, ऐसी स्थिति में शहर की सीमाओं से निकल खुली सड़क में खुली हवा में हिन्दी इंगलिश म्यूजिक सुनते हुए तेज रफ्तार से भागती अल्टो जिसे आस्तीन मोड़े, काला चश्मा सर पर चढ़ाये नसीर की गर्लफ्रेंड सोनिया चला रही थी यकीन मानिये, ऐसा महसूस हो रहा था जैसे चिलचिलाती धूप में दूर से चल कर आये थके हारे व्यक्ति को किसी घने पेड़ की शीतल छाया नसीब हो गयी हो। नसीर हमराज फिल्म का गाना बजा रहा था तुम अगर साथ देने का वादा करो, मैं यूं ही...। सोनिया ने वादा किया कि शाम को ट्रिप खत्म होने से पहले वह नसीर को ड्राइव करना सिखा देगी। बीच बीच में वह नसीर को टिप्स देती जाती थी... फिर कुछ और दूरी तय करने के बाद उसने नसीर को सटा लिया, और स्टीयरिंग पर उसके हाथों को दिशा देने लगी। शांताराव ढाबे पर इडली डोसा कॉफी का नाश्ता लेने के बाद हम आगे बढ़े तो सोनिया साइड सीट पर थी और नसीर ड्राइविंग सीट पर। सीट बदल बदल कर बैठने का सिलसिला चलता रहा जब तक कि हम रामबाग लेक नहीं पहुंच गये। झील के जल विस्तार को देख कर हमारे शरीर में जैसे बिजली दौड़ गयी। मत समझिये कि बिजली का झटका खाने वाले हम अकेले थे। हमारे पहुंचने से पहले ही वहां सैकड़ों हमउम्र

लड़के लड़कियां छप्प छप्प कर रहे थे। लगा कुछ तो इतना सारा पानी एक साथ पहली बार देखे थे। अब उनका क्या कहें, उनकी सुनाने लगेंगे तो अपनी भूल जायेंगे। हमारा यह था कि हमने पहले से ही पानी देखा हुआ था, फिर भी वहां पहुंचते ही सबको देख कर ऐसा लगा कि अरे हम तो पिछड़ गये। जल्दी कूदो, छप्प छप्प करो नहीं तो पानी कहीं चला जायेगा। हमने झट कपड़े उतारे, अपने अपने वालेट मोबाइल सोनिया को थमाये और आव देखे न ताव झम्म... झम्म। हमारी देखादेखी सोनिया ने हमारी धरोहर को अल्टो में लॉक किया, अपना जैकेट उतार फेंका ओर जींस शर्ट में ही पानी में झम्म झम्म। नसीर चिल्लाया इधर नहीं आना... इधर नहीं आना, इधर गहरा है। रिटर्न में वह भी चिल्लाया उधर नहीं जाना उधर नहीं जाना उधर और गहरा है। सोनिया ड्राइव करना जानती थी तो नसीर तैरना। हम दोनों को दोनों ही नहीं आता था। इसलिए हम झम्म करने के बाद एक जगह खड़े होकर छप्प छप्प कर रहे थे। और नसीर? आप अपनी आंखें बंद कर लीजिए तो बतायें। नसीर मियां अपनी गर्लफ्रेंड को तैरने की एबीसीडी सिखाने लगे। शिष्य गुरु बन गये और गुरु शिष्य। जिन अंगों से आदमी तैरना सीखता है उनको छुए बिना, चाहे कितना बड़ा गुरु हो, तैरना नहीं सिखा सकता। सर पैर और हाथ ये तीन पुर्जे हैं जो शरीर को तैराते हैं। नसीर ने सोनिया के इन्हीं तीन पुर्जों को खूब छुआ, खूब छुआ, खूब छुआ। इतना कि वह जब झील से बाहर आयी तो तैराक बन चुकी थी। हम तीनों ने फिर खूब डुबकी लगायी और नहाते हुए सोनिया ने हमारा विडियो बनाया, ढेर सारी पिक्चरें लीं हम पोज मारते रहे, वह फुदक फुदक कर क्लिक करती रही। फिर हमने अपने अपने मोबाइल से सेल्फी कैप्चर किये। सलमान ने मेरे कैमरे में नसीर और सोनिया को एक साथ कैद किया। और फिर हमें भूख लग आयी। हमने जम कर फास्टफूड आइस्क्रीम कोल्डड्रिंक का सेवन किया। शाम से पहले ही हम वहां से रवाना हो गये। रास्ते में सलमान ने नसीर को चढ़ाया भई तुमने आज की आज में झ्रइविंग सीख ली और सोनिया ने स्वीमिंग, एक पार्टी तो बनती है। नसीर तो नहीं चढ़ा लेकिन सोनिया हमारी दिलदार दोस्त है। उसने होटल ताज के स्क्वैकी रेस्तरां में डिनर के लिए चार सीटें बुक करवा लीं। हम उछल पड़े। फाइवस्टार डिनर के लिए हमने उसकी पीठ पर प्यार से घूंसे जड़ दिये। नसीर ने जरा जोर का घूंसा जड़ते हुए कहा थैंक्स डियर, कल तुम्हारे अकाउंट में पैसे पहुंच जायेंगे। सोनिया ने अपनी गर्दन झटकी जिसका मतलब था चलो हटो, पहले कभी किया है क्या!

मौज मस्ती के बाद सैटरडे को जो सोये तो संडे को ही आंख खुली। आंख खुलवायी गयी!

भारत सरकार के कारिन्दे ठक ठक कर रहे थे। आंख मिचमिचाते हुए नसीर ने दरवाजा खोला। फिर से वही तीनों थे। वन प्लस टू की शक्ल में। वे इस बार सादी वर्दी में थे। इंस्पेक्टर की रिवाल्वर उसकी व्हाइट शर्ट से बाहर झांक रही थी। सादी वर्दी में वे ज्यादा ही पुलिसवाले दिख रहे थे। पता नहीं आपने तीन डार्क स्किन वाले हट्ट पुष्ट व्यक्तियों को सफेद कपड़ों में एक साथ कभी देखा है... विशेषकर जब एक के पास रिवाल्वर हो। हम अपनी अंडियों में ही सोये थे और उसी तरह जगा दिये गये थे। नसीर अंडी में ही सामने खड़ा था। हम अंडियों में ही लेटे बैठे के बीच की मुद्रा में अपनी जगह से उन्हें देख रहे थे। सलमान बड़बड़ाया अब यह क्या भाई, सुबह सुबह ही फंसे... क्या गलती हो गयी।

पहले की मुलाकातों में हमने उन्हें खाकी में देखा था और उन्हें देख कर किसी तरह का डर नहीं लगा था। इससे पहले हम उनसे पूर्ण जाग्रत अवस्था में मिले थे, लेकिन इस बार जगाये गये थे कच्ची नींद से। जगाने वाले सादी वर्दी में थे। हम चौंक गये थे... कुछ कुछ सहमे डरे भी शायद। नसीर हां हूं कर रहा था। हम इसी तरह उठगे कोने में पड़े अपनी जींस और शर्ट की तरफ देख रहे थे। वे तीनों नसीर को अंदर करते हुए अंदर चले आये।

कपड़े पहन लो। इंस्पेक्टर बोला।

हम यही तो चाहते थे।

कल कहां गये थे?

हम चौंके, लेकिन बता दिया।

हर वीकेंड पर इसी तरह जाते हैं।

नहीं जायेंगे तो बोर हो जायेंगे। पांच दिन बहुत काम करते हैं

हमने यह नहीं पूछा था। हां न में बोलो।

जी नहीं, कभी कभी।

कितना खर्च हुआ?

जितना भी, सब मिल कर बांट लिया।

किसने स्पांसर किया यह ट्रिप?

नहीं कौन करेगा। हम हंस दिये।

वह लड़की कौन थी?

हम चुप्प। एकदम चुप्प। इन्हें यह सब कैसे मालुम?

बोलो कौन थी?

हम नसीर की ओर देखने लगे।

वही है हमारी जीएफ। वह बोला।

हमारी मीन्स क्या? तीनों की? उसने मजाक जैसा किया।

नहीं सिर्फ मेरी। नसीर तल्ल था।

नाम क्या है?

हम चुप्प। एकदम। जिसकी जीएफ थी वह भी।

बोलो तुम्हारी गर्लफ्रेंड का नाम बोलो।

चुप्पी बरकरार रही।

वही स्पांसर करती है क्या, काफी रिच है, उसे भी कोई स्पांसर करता होगा?

उसका नाम सना खान है। वह कुछ स्पांसर नहीं करती है।

नसीर ने रूखेपन से जवाब दे दिया।

लेकिन फोन पर तो तुम उसे सोनिया बुलाते हो। फोन पर! हम चौंके। तुम्हें यह सब कैसे पता इंस्पेक्टर, क्या हमारा फोन सुनते हो? पर हम बोले नहीं। नसीर ने झल्लाहट के साथ अपनी गर्दन दूसरी तरफ मोड़ ली और फुसफुसाया फक!

इसका मतलब है तुम चार हो... मतलब कि तुम चारों एक ही हो... चौकड़ी है तुम्हारी। हम समझते थे वह सोनिया सिंह या सोनिया राव या ऐसे ही कुछ होगी।

हम उस इंस्पेक्टर को टकटकी बांधे देखे जा रहे थे, बोले कुछ नहीं।

है न तुम चारों की चौकड़ी! उसने कुरेदा

चौकड़ी? ऐसी कोई बात नहीं सर...। 'सर'। नसीर थोड़ा ढीला पड़ गया था। इंस्पेक्टर की बातें न जाने कौन सी दिशा में जा रही थीं। हम चाह रहे थे वह सना को इस पूछताछ से हटाये। हमें बिल्कुल अच्छा नहीं लग रहा था। पर हम चुप थे।

कल ताज में उसी ने पे किया? वह फिर बोला।

हम चुप रहे। हमारा बस चलता तो हम चुप न रहते, बहुत कुछ बोलते, वह यह सब कैसे पूछ सकता है।

क्या, सही? उसने हमारी आंखों में आंखें डाल दीं।

सलमान ने संभाला सर, आपको तो सब मालुम है। दरअसल सना नसीर को बहुत चाहती है... उसी ने पे कर दिया। कभी यह पे कर देगा। हमारा ऐसे ही चलता है।

कैसे चलता है, और बताओ। वह हमें बच्चा समझ रहा था।

यही कि कभी हम पे कर देते हैं... कभी कोई और तो कभी कोई। बेंगलोर में सब ऐसा ही करते हैं।

हम भी तो बेंगलोर में रहते हैं हम तो ऐसा नहीं करते।

हमें इंस्पेक्टर से ऐसी उम्मीद नहीं थी। हम समझते थे पढ़ा लिखा बंदा है। वे तीनों हंसने लगे थे। हम और सलमान उन्हें खाली देख रहे थे। नसीर ने मुंह बिचकाया ह्याटेवर!

अच्छा बताओ कि कहां रहती है?

बीटीएम के आउट में, आइबीएम में काम करती है, बारह लाख का पैकेज है। नसीर ने साफ साफ बता दिया।

वह पॉश एरिया है, तो तुम लोग यहां क्यों रहते हो?

हम चुप रहे।

किसी ने कहा है यहां रहने के लिए? कार कहां रखते हो?

मस्जिद के बगल में। इमाम साहब ने कहा रख लो।

इमाम साहब?

जी, उन्होंने कहा जगह खाली है रख लो।

इमाम साहब ने कार के पैसे भी दिये क्या? अच्छा ये बताओ, जब तुम लोग ड्राइव नहीं करते तो कार क्यों खरीदी? क्या मिस्ट्री है?

नसीर ने कहा बताता हूं। गाड़ी होगी तभी तो ड्राइव करेंगे। गर्लफ्रेंड ताना मारती थी। इसलिए खरीद लिया।

ये ब्वात हुई... तुम्हारी गर्लफ्रेंड तेज लड़की है... ड्राइव भी करती है। तुम लोगों में लड़कियां इस तरह कहां होती हैं...।

जी सर जी सर आप ठीक कहते हैं... नहीं होती हैं लेकिन अब... कुछ चेंज...

अच्छा चलते हैं... फिर आयेंगे। इंस्पेक्टर ने नसीर को बीच में ही काटा और तीनों बाहर निकल गये।

बाखुदा हम नहीं चाहते थे ये तीनों फिर यहां आयें... खास तौर से सादी वर्दी में... रिवाल्वर अंदर खोंस कर। उनके कुछ ज्यादा ही चक्कर लग चुके थे और अब हमें यह काफी डिस्टर्ब कर रहा था। हमने महसूस किया कि शायद जिस जगह हमारा बसेरा था... जहां हमारी कार खड़ी होती थी... जिन लोगों के साथ हम दिखायी पड़ते थे, जिनके होटलों में हम सस्ती बिरियानी और चाय टोस्ट खाते थे वह पुलिसवालों को खटकता था। अब इनका बार बार आना या हमें थाने बुलाना, हमारे मूवमेण्ट पर नजर रखना, हमें बहुत भारी पड़ रहा था। हम इसके इंप्लीकेशन को भी समझ रहे थे। और आज तो इन्होंने इसमें सना को भी घसीट लिया। सलमान ने कहा सही बात यार; पैसा कमा के, गाड़ी रखके भी ऐसी गंदी जगह रहेंगे तो यही होगा। ये लोग हम पर शक कर रहे हैं कि हम यहां किसी मिशन पर हैं... किसी एक्टिविटी में इन्वाल्व्ड हैं। कलीग्स को ऐड्रेस बताने में शर्म आती है, देखो उस दिन एजेण्ट कैसा कैसा कह रहा था। हमें जगह बदल देनी चाहिए। नसीर ने भी हां में हां मिलायी एक

तो अल्टो के लिए यह जगह प्रापर नहीं है, यहां कोई दूसरी पार्किंग भी नहीं जिसे किराये पर लें... सैदाबाद गली में गाड़ी ड्राइव करना भी... और तो और हमारी बंदी भी यहां आने में नाक भीं सिकोड़ रही थी और आने के बाद कैसा मजाक उड़ा रही थी।

पुलिसवालों के जाने के बाद हम इस मुद्दे पर बहुत देर तक उलझे रहे। मुझसे अगर आप ईमानदारी से पूछें तो मैं तो इस मुद्दे पर और भी गहराई से सोच रहा था। अरे भाई, जहां बाप दादा गंधा गये, उसके परे भी दुनिया है। ऐसी दुनिया है, ऐसी गलियां हैं, रास्ते हैं, बरामदे हैं, मुंडेरों हैं, जहां लोग रहते हैं। जहां रिक्शों पर सात सात सदस्यों का एकल परिवार सिकुड़ा मुकुड़ा तुसा नहीं बैठा रहता जहां हर घर में एक एक नहीं, दो दो तीन तीन कारों होती हैं और उन्हें रखने की जगह मयस्सर रहती है। चलो भाई चलो, सलमान और नसीर, चलो, बकरी मुर्गी के पाखाने से सनी गलियों बरामदों और कबूतरों चीलों से सजे छतों मुंडेरों को छोड़ कर कहीं और रहनवारी की जाय। सलमान ने अपनी कही भइये, अगर भविष्य में अपनी कम्पनी डालनी है और गूगल और अगेजॉन से टकराना है तो हमें वहां रहना चाहिए जहां ये पुलिसवाले पर मारने की हिम्मत न कर सकें। जहां हम पर कोई शकोसुबहा न करे। और जगह तो इनकी मजाल नहीं किसी से ऐसे पेश आयें जैसे ये साले हमें सता रहे हैं। ये हमारी पुतलियों की फोटो खींचने का क्या मतलब? साग मूली समझ रखा है! साले खुद तो क्राइम करवाते हैं, और हमें क्रिमिनल समझ रहे हैं।

और नसीर का अपना ही इंटेरेस्ट है ऐसी जगह रहो जहां सोनिया आ जा सके। जैसे ही मैंने यह कहा, वह सेंटी हो गया नहीं यार ऐसी बात नहीं, मेरी बात समझो... साले को पागलों की तरह पढ़ाई लिखाई की, मेहनत की, नौकरी से लगे, ब्रांडेड कपड़े पहनने लगे, बैंगलोर का कौन सा रेस्तरां है जिसमें खाना नहीं खाया, गाड़ी नहीं थी गाड़ी भी ले ली, चलाना नहीं आता था गर्लफ्रेंड ने चलाना भी सिखा दिया। लेकिन भाई, सच कहता हूं ध्यान से सुनना ब्रदर और गलत कहूं तो दस जूते मारना, गर्लफ्रेंड तब तक बेगम नहीं बनने को राजी होगी जब तक यह साली सड़ियल जगह नहीं बदलते। हम उसकी दिल्लीगी सुन कर जो हंसे तो हंसते चले जाते थे। लेकिन उसकी बात खत्म नहीं हुई थी चलो कोई स्टेटस की जगह तलाशो जैसे कम्पनी के और लड़के रहते हैं। न तो वहां अयोध्या और गोधरा की कसम खाने वाले टकरायेंगे न ही ये साले खाकी वर्दी वाले...। हमारी हंसी रुकी तो तय पाया कि कल पहली फुर्सत में नयी रिहाइश तलाशेंगे।

दूसरे दिन शाम को मैं और सलमान ब्रिगेड पर तफरी मार रहे थे कि सामने से सना आती दिखायी पड़ी हमारी तरफ ही आ रही थी। बड़े अच्छे मूड में थी... वह हमेशा ऐसे ही रहती है। आते ही चहकती ब्यायज, तुम लोग यहां क्या कर रहे हो आफिस से जल्दी छूट गये क्या... अरे हमारा बंदा कहां है... आई एम डाइंग टु सी हिम... अच्छा तब तक तुम लोग बताओ कैसी लग रही हूं... अच्छा पहले ये कैंडीज लो और अब बताओ... कैसी लग रही है सना खान आज। मैंने कहा कूल। सलमान ने कहा डेडली। वह बोली थैंक्स बट नो थैंक्स, पहले बोलो हमारे 'वो' कहां हैं?

जल्दी ही नसीर आ गया और हम काफी कैफेडे में बैठ कर सलमान के लैपटाप पर पिकनिक की पिक्स देखने लगे। शार्ट्स में नहाते हुए हमारी तस्वीरों को देख कर वह बनावटी गुस्से में बोली शेम शेम नंगू नंगू तुम लोग... कपड़े नहीं हैं क्या तुम्हारे पास। पर कुछ तस्वीरें उसने पसंद भी कीं जैसे कि वो जिसमें हम चारों एक दूसरे के कंधे पर हाथ रखे हुए अल्टो के बगल में खड़े थे, एक वह जिसमें वह सर पर सलमान की कैप और गले में नसीर का स्कार्फ फंसाये खड़ी है, वह भी जिसमें वह नसीर को ड्राइविंग सिखा रही है, और वह भी जिसमें नसीर उसके तीनों पुर्जों को बारी बारी से

पकड़ कर स्वीमिंग सिखा रहा है। एक तस्वीर वह भी थी जिसमें पेड़ की आड़ में नसीर उसको किस जैसा कुछ कर रहा है। इस तस्वीर को स्क्रीन पर जूम करते हुए वह चिल्लाया अच्छा बताओ ये किसने क्लिक किया, बताओ बताओ किसने किया? मैंने सलमान को फंसा दिया। सलमान को सोनिया ने खूब घूंसे जड़े। और तब जाकर छोड़ी जब सलमान कॉफी और केक के पैसे देने को राजी हो गया। फिर हमने अपने अपने फेसबुक पर पिक्स पोस्ट किये और झमाझम लाइक की बौछार होने लगीं। हममें सबसे कंजूस वही था। बट सरप्राइज ऑफ सरप्राइजेज, आज उसने एक दरियादिली दिखायी। मोबाइल के रिमाइंडर पेज पर 'सोनिया बर्थडे' दिखाते हुए मेरे कान में फुसफुसाया आज इस कुड़ी का जन्मदिन है, इसके लिए मेरे पास गिफ्ट है। उसने अपने बैग से सोनिया की पसंद की अंग्रेजी की नॉवेल और मूवी की दो टिकटें निकालीं और बोला सोनिया की बर्थडे पर तुम दोनों जाकर मूवी देख लो। किताबें देख कर सोनिया सचमुच खुश हो गयी और हम्बल भी हाऊ थाटफुल ऑफ यू, सलमान, थैंक्स डियर। मूवी की टिकटें सोनिया को दिखाते हुए नसीर ने भी सलमान को थैंक्स कहा और अपनी महबूबा से बोला चल भई सोंडिये, आज की शाम सलमान के नाम। और सुन, किताबें चिराग के पास रखवा दे, मूवी में इनका कोई काम नहीं, बेकार में डिस्टर्ब करेंगी। चिराग पढ़ता रहेगा। आखिर अपनी चौकड़ी में तेरे बाद चिराग ही तो है जिसकी समझ में ये किताबें आती हैं। 'चौकड़ी' सुन कर हमें पुलिस वाले याद आ गये, और हमने उन पर दिल खोल कर लानत भेजी कि उनकी वजह से हमें अब दरबंदर होना पड़ेगा।

जाते जाते सोनिया ने हमें एक बात बतायी जो हमारे किये डिस्टर्बिंग थी लेकिन उसने उसे खास तवज्जो नहीं दी थी। बोली, पुलिसवाले रूटीन चेकिंग में हमारे पीजी में आये थे। डिटेल्स ले रहे थे। कहां की हूं, कहां काम करती हूं, कब से बैंगलोर में हूं, और यह कि उन तीनों में से मेरा ब्यायफ्रेंड कौन है। कौन है? सलमान ने तपाक से पूछा। तीनों, मैंने पुलिसवालों को बता दिया, सोनिया आंख मटकाते हुए बोली और नसीर का हाथ पकड़ कर फुर्र हो गयी बर्थडे सेलीब्रेट करने।

साले हाथ धो के पीछे पड़ गये हैं, सलमान बुदबुदाया।

उनके जाने के बाद हम रियल एजेण्ट्स के बारे में चेक करने लगे। इसके अलावा हम यह भी देख रहे थे कि क्या कुछ ऐसी जगहें हैं जहां हम बिना बिचौलियों के जाकर बात कर सकते थे। घर तलाशना कोई हंसी खेल नहीं। नेट पर चोपड़ा, शेरा चोपड़ा, के नाम से एक एजेण्ट विराजमान था। काफी अच्छी प्रोफाइल थी उसकी, एक फुल पेज की। काम की गारंटी, बजट के अनुसार रिजल्ट देने में उस्ताद होने का दावा, मिनिमम कमीशन। हमने कॉल किया। जो जवाब आया उससे लगा प्रोफाइल भले भारी है, लेकिन सामने वाला हल्का फुल्का ही है पर है चलतापुर्जा वाला। बोला, इस समय कहां बैठे हो सर जी, पांच मिनट में पहुंच सकता हूं बैंगलोर में कहीं से कहीं भी। बातचीत से लग रहा है आप भी नॉर्थ के हो... अपनी ही तरफ के, चोपड़ा उड़ती चिड़िया के पर गिन लेता है साब जी। देखो, यहां धंधा करने आया हूं और आज दस साल हो गये, कहीं भी पता कर लो चोपड़ा के बारे में। सारे इंजीनियर भाइयों को मैं ही बसाता हूं... हह हा हा हा।

हम हां हं अच्छा, ठीक, ओके कर रहे थे, वह फोन छोड़ने का नाम नहीं ले रहा था। छोटे से... एकदम इत्ते से 'कट' पर काम करता हूं। सुन लो जी, अगर दो पैसे लेता हूं तो काम करके देता हूं... खुश कर देता है चोपड़ा उनको जो उसको याद करते हैं। क्योंकि मेरा तो फंडा है सामने वाला सैटिस्फाइड है तभी दो पैसे देगा सर जी। धंधा करता हूं तो दो पैसा हमें भी बचना चाहिए। ...हां बताइये, कहां आ जाऊं? वैसे आप तो आईटी के बंदे लग रहे हो और आईटी के बंदों का हैंगाउट प्लेस ब्रिगेड है, वहीं हो न... ठीक है मैं आता हूं। हूं... ब्रिगेड पहुंच के मैं कॉल करता हूं।

चोपड़ा आया। मस्त बंदा था। कार और फास्ट बाइक के जमाने में भी वह स्कूटर से आया। फोन किया तो हमने बता दिया हम कहां खड़े हैं। उसने दो मिनट में अपनी पुरानी सी स्कूटर हमारे पैरों के सामने लगा दी। चोपड़ा हूं बाऊ जी... वह दांत निपोरते हुए सामने खड़ा हो गया। कहीं बैठोगे... अच्छा बैठो तो बैठो... नहीं तो खड़े खड़े देख लेते हैं। आपकी प्रेफरेंस क्या है, बोलिये। अभी दो बंदों को सेटल करके आ रहा हूं, बात करा दूं कहो तो। वह अपना मोबाइल निकालने लगा। मोबाइल पर किसी का कॉल आ गया। वह कहने लगा बैठो बैठो, पानी पानी पिलाओ, डिटेल्स नोट करो बस मैं पांच मिनट में पहुंचा, जाने मत देना बे, इनका काम भी करना है, और उनका भी काम करना है, सबका काम करूंगा भाई, काम करने के लिए ही पैदा हुआ है चोपड़ा, बिना काम के रोटी नहीं मिलती सर जी, है कि नहीं। बताओ क्या करूं आपके लिए? फिर मोबाइल बजा तो साइलेण्ट पर करते हुए बोला, देखा जी, फोन से बात बनती नहीं, लेकिन लोगबाग हैं कि सोचते हैं कि बस मूवमेण्ट न करना पड़े और काम हो जाये, वह भी नम्बर एक का काम। काम है तो आ जाओ, ऑफिस में। जो बात मुंह पे होती है, वही ठीक होती है। इसीलिए भाग के आ गया। भाग के कहां आये, स्कूटर से आये, सलमान बड़ी देर के बाद कुछ बोला। चोपड़ा ने सलमान को देखा, फिर देखा वाह जी वाह, क्या कहा है सर जी, दिल जीत लिया आपने। अब जल्दी से बोलो, क्या रिक्वायरमेण्ट है। सलमान उसकी चैटर पर मुस्कुराये जा रहा था।

मैंने बोलना शुरू किया देखो चोपड़ा जी हमने शुरू किया ही था कि उसने टांग अड़ा दी भाई देखो हम बिजनेस करने नहीं निकले हैं... बिजनेस करते तो आपको ऑफिस में आना पड़ता... जैसे दो बंदे उधर मेरा वेट कर रहे हैं। हम तो भाई समझ कर इधर आपके पास चल कर आ गये... कहना यह है कि मेरा नाम शेरा चोपड़ा है, मेरे नाम में 'जी' नहीं लगा है, खाली चोपड़ा कहो सर जी। चलो बोलो। सलमान ने फिर मुस्की काटी। मैंने कहा ठीक है आगे से ध्यान रखूंगा बात यह है भाई कि हमें घर चाहिए। हम जहां रह रहे हैं...। घर? उसने चौंक कर फिर हमारे वाक्य को पूरा होने से रोक दिया घर तो बहुत बड़ी चीज हुई बाऊ जी। घर तो पीछे छोड़ कर आप इधर को आ गये। घर तो छोड़ कर हम भी इधर पड़े हुए हैं। यहां घर कैसे आपको मिल सकता है... ठिकाना कहिए, कमरा कहिए, अड्डा कहिए, प्लैट कहिए, डेरा कहिए। वही, मेरा मतलब उसी से है, एक ढंग का कमरा.. छोटा मोटा प्लैट... ऐसी जगह जहां... एक छोटी सी फोर व्हीलर है... उसे भी जगह मिल जाये।

पूरी बात को चोपड़ा ने ध्यान से सुना लेकिन फोर व्हीलर पर अटक गया। सलमान समझ गया, वह दूसरी ओर ताकने लगा। उसकी मुस्कराहट रुक नहीं रही थी। चोपड़ा ने धीरे से कहा, छोटी सी फोर व्हीलर! नैनो है क्या? भाई देखो, नहीं लिया है तो मत लो। ले लिया है तो बदल लो। कोई दूसरी लो सर जी, जिससे फोर व्हीलर का एहसास हो, लगे कि आपके पास गाड़ी है, जगह तो मैं दिलाऊंगा, एक नहीं दो पार्किंग स्पेस के साथ। खुद भी चौड़े होकर रहो, फोर व्हीलर को भी रखो। अब बोलो।

उसकी बातों से अब मुझे भी उलझन होने लगी थी। लेकिन एक बात थी, आदमी बातूनी था, पर था काम का। मैंने धीरे से कहा, चोपड़ा यार अल्टो है, जल्दी से काम की बात कर लेते हैं। किस एरिया में? झट बोलो, अभी फाइनल किये देता हूं, यहीं खड़े खड़े। फिर उसने बैंगलोर के तमाम इलाकों के नाम गिना डाले जहां हमें ठिकाना मिल सकता था। कई इलाकों के नाम तो हमने सुने भी नहीं थे। देखो भाई, जगह प्रापर होनी चाहिए! प्रापर मतलब? वह फिर से अटक गया। देखा जी, आप टेकी हो, आईटी से हो तो... प्रापर तो मिलेगी ही। अब बताओ किधर चाहिए?

हमने अपना प्रेफरेंस बताया बीटीएम ले आऊट इंदिरा नगर, मालेश्वरम, फ्रेजर टाउन...। इसी बीच सलमान के मोबाइल से मैंने नसीर को एसएमएस किया ड्यूड क्या सीन है।

उसका जवाब आया मूवी इज बिग बोर लेकिन हम एन्ज्वाय कर रहे हैं। मैंने सलमान से कहा लिख दो संभल के बच्चे। नसीर ने फिर कुछ रिप्लाइ नहीं किया अलबत्ता सोनिया का मैसेज आया एह... तुम्हारा दोस्त बड़ा भोला है... डरपोक हा हा हा।

चोपड़ा ने रुक रुक कर इन जगहों का नाम कुछ इस तरह दोहराया बीटीएम ले आउट.. ओके इंदिरा नगर... ओके

मालेश्वरम ठीक है फ्रेंजर टाउन... यस यस। फिर उसने मेरी ओर देखा जगह तो प्रापर है, पाश है क्लास लोग रहते हैं यहां, रेण्ट लगेगा बाऊ जी। फिर भी कितना, मैंने पूछा। अच्छा रुको मैं देखता हूं... मेरे ऊपर छोड़ दो आप... मैं देखता हूं... जितना बारगेन मिलेगा मैं आपको दूंगा... आप ऐसा करो लगे हाथों अपनी आईडी की कॉपी दे दो... मैं कल आपको डील देता हूं... बेस्ट डील। मेरे वालेट में आईडी की फोटो कॉपी पड़ी थी मैंने दे दिया। चिराग! वह बुदबुदाया... क्या मतलब, आप? आप क्या हैं... चिराग? आप गुजराती हैं। नहीं नहीं मैं यूपी का हूं... हम सभी वहीं से हैं, क्यों? वह आईडी देखता खड़ा रहा फिर बोला, कुछ कनफ्यूजन हो रहा है बाऊ जी... आज कल देखना पड़ता है, मकान मालिक को बताना पड़ेगा... डोण्टमाइंड... आप क्या हो? हिन्दू या मुसलमान, आजकल ऐसे नाम चलने लगे हैं कि कुछ पता नहीं चलता।

हिन्दू या मुसलमान से क्या, किराया देंगे, रहेंगे, दैट्स आल। सलमान ने और करीब आते हुए कहा।

दैट्स आल नहीं बाऊ जी... इश्यू है... यहां पर इश्यू है... अगर आप मुस्लिम हैं तो इन इलाकों में... पहले तो मिल जाता था... पर अब आपको घर नहीं मिलेगा। कोई बंदा नहीं तैयार होगा कितना भी किराया दे दो... एक तो आप अकेले नहीं... आप दो हो।

दो नहीं, तीन हैं। मैंने उसे सुधारा।

तीन नहीं, चार हैं, चौकड़ी है, सलमान ने हंसते हुए कहा। चोपड़ा ने पहले मुझे देखा, फिर सलमान को। क्या मतलब? आप चार लोग रहोगे? नहीं, तीन। मैंने उसे करेक्ट किया। आप तीनों मुस्लिम हो? वह मेरी आंखों में झांक रहा था। मैं चुप रहा। उसने कहा, कोई चांस नहीं सर जी, दूर दूर तक कोई चांस नहीं, कोई नहीं रखेगा आपको... शायद एक अकेले आप होते तो शायद...। वह गर्दन हिलाने लगा।

क्यों, क्यों हम भारत मां के पेट से नहीं पैदा हुए क्या? मैंने मजाक किया।

देखिये, मेरे 'क्यों क्यों' पर चोपड़ा ने बिगड़े हालात और बिगड़े माहौल पर लम्बी चौड़ी बातें कीं। हम दोनों चुपचाप सुनते रहे। ऐसा नहीं था कि बड़े भोले थे और चोपड़ा की बातें नहीं समझ रहे थे। हम छोटी जगहों से थे तो हमें बहुत कुछ पता था... पर इसी से तो उबरना चाहते थे, इसी सबसे बाहर निकलने के लिए तो हम उतनी दूर से बेंगलोर आये थे। जहां तक मेरा सवाल है, जहां तक सलमान का सवाल है, जहां तक नसीर का सवाल है, हम इससे परे देखना चाहते थे। 92 में हम बच्चे रहे होंगे, लेकिन इतने बच्चे भी नहीं थे, गोधरा और अहमदाबाद के समय तो हम बड़े हो चुके थे। अमरीका में हुए नाइन इलेवेन, पारलियामेण्ट अटैक, तमाम शहरों में बम ब्लास्ट, बम्बई और गुजरात के दंगे... सब मिक्सडअप था हमारे जेहन में। एक को दूसरे से अलग करके देखना हम नहीं जानते थे। हमारे मुहल्लों में चर्चा होती थी कि एक की वजह से दूसरा होता है और दूसरे की वजह से पहला। फिर हमसे पूछा जाता था कि तुम किधर हो? बस यही हम समझ नहीं पाते थे कि हम किधर हैं, हमें किधर होना चाहिए? हमें वहां घुटन होती थी। लॉजिकल होने में परेशानी होती थी। इनकी कहो तो वो नाराज उनकी कहो तो ये। अपनी कहने की गुंजाइश नहीं बन पाती थी। सोचते,

भला पढ़ाई लिखाई करने का फायदा ही क्या जब मन की कह न पाओ। हम इस पचड़े से, इस मकड़जाल से बाहर निकलना चाहते थे... और जब निकले तो सीधे बैंगलोर पहुंचे। घुटन कम हो गयी, लॉजिकल होना यहां लोग बुरा नहीं मानते थे, लेकिन कलीग्स से, बॉस से, पब्लिक प्लेस पर कुछ बातों पर बातचीत करने से हम यहां भी बचते रहे थे। आपस में भी नहीं करते थे जरूरत ही नहीं थी। लगता था उसके अलावा इस शहर में कितना कुछ है बतियाने को। यह सब ऐसे ही मजे से चल रहा था जब तक कि उस मनहूस सुबह... जब हम आउटिंग से लौट कर गहरी नींद में सो रहे थे और पुलिस वाले सादी वर्दी में, जिनमें एक के पास काले रंग की रिवाल्वर थी, आ धमके थे।

दूसरे दिन सोनिया ने हमें मालेश्वरम में ड्राप किया और अल्टो लेकर चली गयी यह कहते हुए कि दो घंटे में वह फिर वहीं से हमें पिकअप करेगी और फिर फोरम में महफिल जमेगी। मालेश्वरम में हमें किन्हीं एम नागेश्वर से मिलना था। नेट पर उनका पोस्ट था फुली फर्निशड एकमोडेशन, फर्स्ट रूम विद किचन ट्वायलेट टेरस...। टेकीज प्रेफर्ड। रेण्ट निगोशियेबुल। पार्किंग ऑन एक्स्ट्रा नॉमिनल चार्ज। सारी बातें साफ थीं। हमें ऐसी ही जगह चाहिए थी। हम वहां बस रेंट फाइलन करने गये थे। हमने बेल बजाया। फिर बजाया। अंदर कुछ हरकत हुई... खरखराहट... सरसराहट... चट चट चट। एक महिला ने दरवाजा खोला। उन्हें शायद नहीं मालुम था कि हम उनके पति से फोन पर बात करने के बाद ही उनके घर की कॉलबेल बजा रहे थे। दरवाजा खोल कर वे खड़ी रहीं कि हम कुछ बोलें हम क्यों आये हैं। इससे पहले कि हम कुछ बोलते, एक पुरुष एम नागेश्वर ही रहे होंगे की आवाज अंदर के कमरे से आयी सुनंदा बैठा दो, बुलाया है मैंने। बिना कुछ बोले रास्ते से हट गयीं वह और हम अंदर दाखिल हो गये। वह अंदर चली गयीं और हम उनके खूब बड़े से ड्राइंगरूम में रखे गद्देदार मखमली सोफे पर एक एक कर धंस गये। वही महिला फिर से वापस आयीं ट्रे में तीन ग्लास पानी रखे हुए। सेण्ट्रल टेबल पर रखीं और बोलीं पानी लो। हमने दो दो घूंट पानी ले लिया। जैसा उन्होंने कहा, वैसा हमने किया। वह बोलीं चलो जगह देख लो, फर्स्ट फ्लोर पर है। देख लो फिर बात करेंगे। हमने देख लिया। अब सिर्फ बात करनी थी। अब एम नागेश्वर जी की एंट्री।

देखिये, अगर कोई अपने ड्राइंगरूम में बैठाने के बाद काफी इंतजार के बाद आपके सामने आये तो समझिये वह बंदा कुछ होगा। एम नागेश्वर सफेद रंग की अमेरिकन पोलो टी शर्ट, नीले रंग के ट्रैक सूट का ट्राउजर और पैरों में साधारण सी हवाई चप्पल पहने हुए आये और सामने वाले सोफे पर बैठ गये। टी शर्ट और ट्राउजर पर हवाई चप्पल! इस परिधान में कोई अपने ड्राइंगरूम में बैठा है तो समझिये अपने बाप दादा के घर में या अपने और अपने बच्चों के पैसों से बनवाये घर में बैठा है... एकदम रिलैक्स्ड, कानफीडेण्ट... केयरफ्री। आपको किराये पर घर लेना है तो उनकी बात सुनिये उनकी शर्तें मानिये नहीं तो जाइये। वे आपके पीछे नहीं दौड़ने वाले। आप नहीं तो कोई और आयेगा, नहीं तो कोई और आयेगा, नहीं तो वे खुद ही उसको अपना नया ड्राइंगरूम कम स्टडी बना लेंगे। किरायेदार के किराये से उनका घर नहीं चलता है। एम नागेश्वर जी से हमारी बात कुछ इसी तरह शुरू हुई। वे हिन्दी और इंगलिश मिला कर बोलते थे। और कभी कभी दो दो मिनट तक बोलते ही नहीं थे। आई डिड माई मास्टर्स इन फिजिक्स फ्राम बैंगलोर यूनिवर्सिटी इन नाइंटीन सेवेण्टी टू फिफटीन इयर्स आफ्टर दि डेथ आफ माई फादर। आई वेण्ट टु अमेरिका, डिड माई रिसर्च इन न्यूक्लियर फिजिक्स। आई स्टेड देयर फॉर फिफटीन इयर्स। मेरे सन्सेस्टर्स की जमीन थी, इसी पर हमने यह घर बनाया, जस्ट फिफटीन इयर्स बैक। सलमान ने धीरे से कहा सर आपके सारे काम फिफटीन इयर्स के गैप पर होते हैं! वे ठठा कर हंसे और बिना हमारी परवाह किये देर तक हंसते

रहे। ये हुई न बात! बूढ़ी उम्र में टी शर्ट ट्रेक सूट और हवाई चप्पल पहन कर कोई भी आदमी किराये के ड्राइंगरूम में बैठ ही नहीं सकता। बैठ भी जाता तो इतना जोर से... मजे से हंस नहीं सकता था। जिसका अपना घर होता है या जो अपने बाप की जमीन पर बैठा होता है उसे ही यह विशेषाधिकार प्राप्त होता है। हमारा घर कहां है भाई, कोई बताओ।

हंसी रुकी तो बोले, जगह देख ली?

यस सर।

पंसद है?

यस सर।

तीनों एक साथ रहोगे?

यस सर।

तब कुछ एक्स्ट्रा लगेगा।

नो प्रॉब्लम सर।

वाटर हम, इलेक्ट्रिसिटी तुम।

राइट सर।

टाइम पर रेण्ट खुद दे जाओगे।

एग्रीड सर।

क्या करते हो?

साफ्टवेयर इंजीनियर हूँ सर।

बैंगलोर में और है ही क्या।

यस सर यस सर।

चोपड़ा, खुद आकर देख, सभी एक जैसे नहीं होते हैं। ये वाले अंकल कितने अच्छे हैं! इस ट्रेस में कितने यंग दिख रहे हैं, और हवाई चप्पल में कितने कैजुअल। खूब जोर से हंसते हैं, और छोटे छोटे सिम्पल सिम्पल प्रश्न पूछते हैं। बात पक्की हो गयी न। तू कहता था...

नाम क्या है?

नाम? (किसका... र...र...र... क्यों, इसकी क्या जरूरत पड़ गयी)

हम थोड़ा सा विचलित हो गये, गड़बड़ा गये...

नाम क्या है तुम्हारा? आईडी दिखाओ।

इस बार मेरा हाथ साइड पॉकेट की ओर बढ़ चला। चोपड़ा का चेहरा बिजली की तरह कौंध गया। पुलिस वाले दरवाजे पर ठक ठक करने लगे। मेरा नाम क्या है? अब झंझट होने वाली है, और क्या।

मैंने अपना और सलमान का आईडी बढ़ा दिया। चिराग को लेकर किसी को संशय क्यों रहे। सलमान से तुरंत सब साफ हो जायेगा।

जब तक वे हमारा आईडी देख रहे थे, हमारी सांस ऊपर की ऊपर, नीचे की नीचे...। कैसे बयान करें वह क्षण। नसीर के चेहरे का रंग थोड़ा सा उड़ सा गया, जबकि उसकी आईडी उसकी जेब में थी। जब एम नागेश्वर आंखें गड़ाये आईडी को पढ़ रहे थे कभी इसको तो कभी उसको मैंने अपनी आंखें सीलिंग फैन पर टिका दीं। कुछ पूछेंगे या बोलेंगे तभी मैं उनकी तरफ देखूंगा। नहीं तो सीलिंग फैन को ही दोस्त बनाये रूहंगा, जब तक कि वे हमारा कार्ड मुस्कुराते हुए लौटा नहीं देते... चलो कम ऑन ब्यायज, कल से शिफ्ट हो जाओ। तुम लोग आ जाओगे तो अच्छा लगेगा। मेरे बच्चे बाहर हैं, तुम लोग मेरे बच्चे की तरह यहां रहो। सुनंदा तुम्हारी आंटी होगी और मैं अंकल। वह तुम्हें इडली

बड़ा सांभर और चटनी खिलायेगी, बदले में तुम शाम की सब्जियां ला दिया करना। और हां, पार्किंग का कोई चार्ज नहीं। अब देर न करो। कल से आ जाओ। नहीं तो आज से ही।

उन्होंने दोनों कार्ड को एक एक कर बगल में खड़ी पत्नी सुनंदा को दिखाया वन, टू। फिर सेण्ट्रल टेबल पर रखा वन, टू। और फिर पहली उंगली से कैरम की गोटी की तरह हिट करके हमारी ओर सरका दिया वन, टू।

अब मैं सामने पड़े आइडी कार्ड की ओर देख रहा था और वे सीलिंग फैन को किन्चित मुस्कराते हुए ऐसी मुस्कराहट जो सब कुछ थी लेकिन मुस्कराहट नहीं थी। सब कुछ उल्टापुल्टा हो गया। उन्होंने तो ये सोचा ही नहीं था। इसका तो प्रश्न ही नहीं दिमाग में आया था कि जिसको अपने घर में अपने सर पर रखेंगे उसके नाम की स्पेलिंग ऐसे कैसे बदल गयी। ये लोग कौन हैं जो सामने बैठे हैं... ये कहां से आ गये मेरा मकान किराये पर लेने। इन्हें किसने भेजा है आखिर, किसके लिए काम करते हैं ये। जिसने फोन पर बात की थी ये वही तो हैं, लेकिन देखा सुनंदा, अब ये वो नहीं है। देखा इनकी सीनाजोरी। पानी पीया, सोफे का आनंद लिया, मकान की सैर भी कर लिये, लेकिन नाम तो बताया ही नहीं। यह तो इनकी बेईमानी है। इनको पहले सब कुछ साफ करना चाहिए था। इन्होंने बिलावजह हमें धर्मसंकट में डाल दिया।

तो आप लोग मुस्लिम धर्म से हैं?

उनसे जितना बन पड़ा था, प्रश्न को मर्यादित ढंग से पूछा था।

जी।

जी सुन कर वे फिर सीलिंग फैन की ओर देखने लगे।

फैन भांय भांय चल रहा था।

बंदूक धांय धांय दग रही थी।

कमरा सांय सांय कर रहा था।

पूरे दो मिनट तक हमारे बीच कोई संवाद नहीं हुआ। वे चुप। हम चुप। सभी लोग चुप। लेकिन ऐसे कैसे काम चलेगा। किसी को बोलना तो पड़ेगा ही। सुनंदा मैडम आ गयीं और पानी? पानी पीयोगे? जी थैंक्स, चाय पानी बिल्कुल नहीं, कमरा दिखाने के लिए शुक्रिया। अब चलेंगे।

वे अचानक बोले। सोचने से फुर्सत मिल गयी थी। देखिये, इसको कुछ दिनों के लिए होल्ड पर रख दें। लेट मी टाक टु द प्रेसिडेण्ट एंड सेक्रेटरी ऑव द सोसयटी, देन आई विल टेक ए कॉल आन दिस। पहले उनसे बात करने दीजिए। मैं आपको फोन करूंगा। सॉरी जेण्टलमेन।

आखिरी वाक्य में उन्होंने बहुत सी चीजों को मेकअप कर लिया था। सॉरी बोले थे और ब्यायज की जगह हमें जेण्टलमेन कहा था। तमाम दूसरे लोगों की तरह जले पर नमक नहीं छिड़का था। मैंने उनसे कहा इसमें सॉरी होने की कोई वजह नहीं सर, जैसा आप उचित समझें। सर अभी तो हम लोग एक जगह रह ही रहे हैं, कोई जल्दी नहीं है। लेकिन एक बात कहूं आपकी टी शर्ट के बारे में? बहुत स्मार्ट लग रहे हैं आप इसमें। कहां से खरीदा? उनके चेहरे का रंग बदल गया, मुझे प्रशंसा भाव से देखने लगे। फिर अमेरिकन पोलो के लेबल पर उंगली सहलाते हुए बोले, लड़के ने भेजा है न्यूयार्क से, एक और भी है...।

इस बार तो लगा चूँकि वे नरम पड़ गये हैं मुझे उन पर और बड़ा इमोशनल अटैक करना चाहिए। लेकिन उन्होंने ऐसे किसी हमले का अवसर नहीं दिया। दरअसल टी शर्ट वाली बात पर लड़खड़ाने के बाद तुरंत अपने आपको संभाल लिया देखिये, इस कॉलोनी में सभी मिलजुल कर रहते हैं। सबको नाराज करके हम कुछ नहीं कर सकते। मैं फोन करूंगा, या आप फिर कभी मिल लेना।

अब यहां एक बात बतायें तो आप भी हंसियेगा। हमारे दोस्त सलमान को तो आप जानते ही हैं। वही जिनकी आईडी को नागेश्वर जी ने देर तक घूरा था और फिर कैम की गोटी की तरह...। वे जरा कम ही बोलते हैं। लेकिन जब बोलते हैं तो पूरा तोलमोल कर। जैसे ही टी शर्ट वाले सज्जन ने कहा था आप फिर कभी मिल लेना, सलमान बोला, ओके सर, वी विल कम बैक टू यू ऑफ्टर फिफ्टीन इयर्स। एक पल तो उन्हें समझने में लगा, जब समझे तो ठठा कर हंस पड़े। खूब हंसते... हंसते ही चले जाते थे।

हम लोग वापस हो लिए। मालेश्वरम सुंदर साफ सुथरी शांत बड़े आबरू बड़ी हैसियत वालों की आरामगाह है, वहां पुलिस वाले किसी का दरवाजा खटखटाने नहीं पहुंच जाते। वहां सुरक्षाकर्मी आगंतुकों की जांच करते हैं तब किसी से मिलने देते हैं। बाहर से आने वाले घुसने से पहले ही नरम पड़ जाते हैं, जैसे हम। वहां सभी मिलजुल कर रहते हैं। वहां एक प्रेसीडेण्ट होते हैं, एक सेक्रेटरी होते हैं जिनसे पूछना जरूरी होता है कि किसे अपना मेहमान बनायें। अगर एम नागेश्वर जी हमें अपनी छत पर जगह दे देते तो बाकी के निवासी नाराज हो सकते थे... कम से कम नागेश्वर जी ने हमें यही बता कर चलता किया था। हम चलते जा रहे थे, पैदल ही। चलते चलते थक गये तो फिर चलने लगे। सोचते चल रहे थे कि अगर थक रहे हैं तो चल क्यों रहे हैं। नसीर ने कहा इसलिए कि अगर थक जायेंगे तो रुकेंगे कहां? कहां रुक कर सांस में सांस लेंगे। कौन सी जगह है हमारी। रुकने का ऑप्शन कहां कहां है? सलमान को कुछ सूझी, बोला ये सब क्या चल रहा है भाई। मैंने कहा सोनिया बोली थी पिकअप कर लेंगे, नहीं आयी इसलिए हम सभी चल रहे हैं, प्राब्लम क्या है। नसीर ने कहा सलमान बी सीरियस, और चिराग तू भी समझने की कोशिश कर, चलने से रुक गये तो जरूर थक जायेंगे। उम्मीद की किरण बाकी है। बीटीएम ले आउट है, इंदिरानगर है, फ्रेंजर टाउन है, बेसन टाउन है सब छान मारेंगे भाई, कुछ न कुछ जरूर निकलेगा। सैदाबाद इज हिस्ट्री नऊ। सलमान कभी सीरियस नहीं हो सकता। मेरी ठोड़ी पकड़ कर बोला, चिराग मियां, अपना नाम बदलो, सबको कन्फ्यूज कर देते हो।

हम बायीं पटरी के सहारे चुपचाप चलते जा रहे थे। सलमान फिर बोला, अल्ला मियां किस दिन काम आयेंगे उनसे भी कह कर देखो। हर मुसलमान के पहले और आखिरी हथियार वही हैं। नसीर ने समझाया, भइये इस तरह खुलेआम हथियार की बात न करो। चक्कर में पड़ जाओगे। अल्ला मियां को याद करते चलते रहो, सोनिया को भेज देंगे तो अल्टो में चलने लगेंगे। सलमान ने जस्ट पास हुई गाड़ी को गौर से देखा... फिर देखा और चौंका लो देख लो, अल्ला मियां ने सुन किया। हम समझ गये सोनिया दिखायी पड़ गयी, अब और थकने से बच जायेंगे एक तो उसका साथ मिलेगा दूसरे अल्टो में चलेंगे। उसने कहा सोनिया के दीवानों, सामने जो जीप गयी है उसमें वही तीनों थे, हमें घूरते हुए गये हैं। मैंने कहा झूठे! तुमने किसी और को देखा होगा। उसने कहा प्लेन ड्रेस में थे इसलिए मैंने पहचान किया, नागेश्वर अंकल की कसम, सुनंदा आंटी की कसम, वही तीनों थे, अल्ला मियां की कसम, वही तीनों थे। अल्ला मियां ने सुन ली ब्रदर हमारी चीख पुकार। वे देखते हुए गये हैं। नसीर बोला ठीक हुआ, कसम अल्ला की खाओगे, और हाफिज खुदा से चाहोगे तो तुम लोगों के साथ यही होगा। यह हंसने की बात थी, और हम हंस दिये। मेरा गुस्सा सलमान पर था सारी गलती इस मुसलमान लड़के सलमान की है। इसने देखा ही क्यों उनको। वो घूर रहे थे तो क्या, उनका तो काम है यह... आखिर इसे क्या पड़ी थी उन्हें देखने की और हमारे कानों में चुगली करने की। नसीर ने भी सलमान को दोषी करार दिया। सलमान ने प्रेम से कहा फांसी चढ़ा दो यार मुझे रह लेना अकेले तुम। दोनों इतने में सोनिया कॉलिंग... तुम लोग बारबेक्यूनेशन पहुंचो, मैं गुड न्यूज लेकर वहीं आ रही हूं। फ्री में बारबेक्यूनेशन का टिकट पाते ही हमने तपाक से ऑटो पकड़ा और फटाक से वहां जा पहुंचे।

बारबेक्यूनेशन! एकदम अलग ही नेशन है यह... जैसे कोई यूरोपियन, कनेडियन या अमेरिकन नेशन। जहां न कोई नंगा भूखा, न कोई प्यासा न कोई नंगा। अपनी करंसी अपना झंडा। एकदम इंडियेण्ट नेशन अपना कानून अपना संविधान। आफिशियल अनाफिशियल दोनों लैंगुएज इंगलिश। टैक्स के बदले में राइट टू फ्री नॉनवेज फूड। नेशन की ओर से पूरा किचन आपके टेबुल पर मय तंदूर के। क्या खाना चाहते हैं, खुद फ्राई कीजिए, खुद रोस्ट कीजिए, खुद ग्रिल कीजिए। खुद पकाइये, खुद खाइये। सारे नागरिक यही करते दिखते हैं। बनाना रिपब्लिक की तर्ज पर इसे आप फूड रिपब्लिक भी कह सकते हैं। यहां के नागरिक कहते हैं वर्क हार्ड, ईट हार्ड। काम करके थक गये हैं तो यहां आइये। जितनी देर तक खाइयेगा लगेगा कि ये खायें कि वो खायें कि सब खायें। और आप सब खाइयेगा। लेकिन अगर कम खाइयेगा तो लगेगा काश! और थक कर आये होते! बॉस को बकियेगा कि और काम क्यों नहीं लिया, क्यों जल्दी छोड़ दिया! खाना खाते खाते हमने सोनिया से मालेश्वरम वाले अंकल की बातें शेयर कीं। सलमान की फिफ्टीन इयर्स वाले रिमार्क पर वह दिल खोल कर हंसी। वहां बैठे सभी लोग हंस बोल खा रहे थे। खाने से ज्यादा बोल रहे थे। फ्री होकर आजाद होकर बोल रहे थे। फिर तो हम भी फ्री फील करने लगे यहां तक कि हम एक दूसरे का नाम लेकर बात करने लगे चिराग, नसीर, सलमान और सना। नसीर होश में था, उसने इधर उधर देखा और फुसफुसाया अब ऐसा भी फ्री फील न करो कि अगल बगल के लोग समझें कि इस टेबल पर सारे के सारे 'एम' हैं। सलमान ने तपाक से कहा डोण्ट वरी, इस टेबल पर सारे के सारे 'एम' नहीं हैं, एक वेटर भी तो है। बीच बीच में हम उससे भी तो बातें कर रहे हैं। मैंने वेटर को इशारा किया, वह भागता आया। मैंने धीरे से पूछा क्या नाम है तुम्हारा? सलीम, सर, सलीम अली कानपुर का हूं क्या लाऊं सर, कुछ और रखूं सीक, कलेजी, चिकन टिक्का, फिश...। मैंने कहा नहीं थैंक्स, जाओ। जैसे ही वह हटा, हम ऐसा जोर से हंसे कि लोग हमारी तरफ देखने लगे। सलमान हंसते हुए बोला आज तो एक ही टेबल पर सारे के सारे इकट्ठा हो गये! फिर हंसी का फव्वारा। लगा आज तो पेट के अंदर से कलेजी गुर्दा सीक सब मुंह के रास्ते बाहर आ जायेगा।

डिनर खत्म करके हम हॉल से बाहर निकले और सीढियों की तरफ बढ़े। हम चारों में सबसे बेवकूफ और मुंहफट सलमान है। यह सलमान जानता है, पर मानता नहीं। अपनी ताकड़ाक की आदत की वजह से वह जहां कुछ नहीं होता है वहां वह दृश्य पैदा कर देता है। रास्ते में पुलिस जीप उसी ने देखा था। अब क्या बे, चल नीचे। वह मुझे एक तरफ ले गया और फुसफुसाया तीनों कोने वाली टेबल पर बैठे हैं, यकीन न हो तो देख लो। फिर मैंने भी झांका। वही थे। सलीम अली उनके सामने हाथ बांधे खड़ा था। वे उससे कुछ पूछ रहे थे। मैं चुपचाप बाहर निकल आया। ह्वाटेवर!

खाना इतना अच्छा था... और अब सोनिया से गुड न्यूज भी सुननी थी तो अब इन तीनों के बारे में और ज्यादा सोच कर कौन अपनी रात खराब करे। सुबह ऑफिस भी है। तो अब बारी थी सोनिया के गुड न्यूज की। वह बोली देखो, अभी तक नसीर से भी नहीं शेयर किया, चाहो तो इसका इनबॉक्स, मेल बॉक्स सब चेक कर लो। क्योंकि तुम तीनों ही मेरे ब्यायफ्रेंड हो तो अकेले उससे कैसे बताती। अब तीनों के सामने बताती हूं... आज अब्बू से बात हुई... बड़े खुश थे, गुलदस्तों का बहुत बड़ा आर्डर मिला था... खुद ही फोन किये थे। तो मैंने सोचा बोल दो सना खान... लोहा गरम है। मैंने बोल दिया। कुछ देर चुप रहे फिर बोले ठीक है, तुम्हारी खुशी में मेरी खुशी। सयानी हो गयी हो... अपने पैरों पर हो, तुम्हारा फैसला ठीक ही होगा। मैंने पूछा अब्बू आप खुश हैं... खुशी से बोल रहे हैं। बोले बेटा मैं खुश हूं। फिर चुप हो गये। फिर बोले तुम्हारी अम्मी होतीं तो वह भी खुश होतीं। '...भी खुश होतीं' पर सोनिया ने बात खत्म की थी तो कुछ देर के लिए हम चुप रहे। सोनिया रिकवर

हो गयी तो सलमान ने कहा 'तुम्हारा फैसला ठीक ही होगा' बोले तो? सोनिया मेरे नजदीक खड़ी थी, वह झट नसीर से सट गयी, उसका हाथ पकड़ते हुए बोली यही। और हंसने लगी जैसे जैसे ऐसे जैसे... झंपते। सलमान ने अपना रिमार्क दिया बड़ी सयानी हो गयी सना। फिर हमने नसीर को एक शेकअप दिया सलमान ने उसका दोनों पैर पकड़ा और मैंने दोनों हाथ और लगे उसको झुलाने। सोनिया घबरायी सी अपने दोनों हाथ फैला कर लपकी अरे नहीं, अरे नहीं, अरे नहीं, वह तीन बार बोली। प्यार। और क्या।

सुबह ऑफिस जाने की तैयारी कर रहे थे कि चोपड़ा का फोन आ गया। बोला, सर जी, कई जगह हाथ पैर मारे लेकिन अगला बात समझने को तैयार नहीं। हमने गारंटी के साथ बताया कि बंदे मल्टीनेशनल में काम करते हैं, पढ़े लिखे हैं, भरपूर किराया देंगे और क्या चाहिए बोलो। कोई बोलता ही नहीं। कहते हैं आजतक पढ़े लिखे ही सारे गलत काम करते हैं... किस भेष में कौन आ जायेगा कौन जाने। बाऊ जी आप में कोई कमी नहीं, अगर आपके यहां दो चार टेररिस्ट निकल गये इसका मतलब ये तो नहीं आप बम बांध के घूम रहे हो। लेकिन हवा ऐसी बह रही है कि...। मैं हां हूं कर रहा था। सोच रहा था चोपड़ा छोड़े तो मोजे पहनूं जूते डालूं। वह बोला, देखो जी आप लोग शरीफ बंदे हो, ऐसा मेरा दिल बोलता है। मैंने कहा तू क्या बोल रहा है जल्दी बोल, कहीं निकल रहा हूं।... वहीं तो कह रहा हूं बाऊ जी कि मैं पूरी कोशिश कर रहा हूं... बार्डिंग कमीशन के लिए नहीं, बस तुम्हारे प्यार में कर रहा हूं। आप चाहो तो ले चल के बंदों की बातें सुनवा दूं। आज शाम को दो एक जगह ट्राई मारनी है, वैसे आप भी इंदिरा नगर का एक चक्कर मार लो शायद कुछ...। सब बात भूल कर चोपड़ा 'जी' पर अटकने वाला था कि मैंने फोन स्विच ऑफ कर दिया।

शाम को चोपड़ा को मैंने खुद फोन किया। दस मिनट में वह आ पहुंचा। मैंने कहा चोपड़ा भाई, अगले हफ्ते महीना पूरा होने वाला है। इसके आगे हम वहां नहीं रहना चाहते हैं। कुछ न कुछ करना होगा... कुछ करो भाई। यहां हमें पुलिस तंग कर रही है। जगह भी गंदी है, अच्छा नहीं लगता यहां। यार, सोचते हैं किसी अच्छी जगह रहें किसी अच्छी सोसायटी में... तो ये सब परेशानी नहीं आयेगी। फिर मैं चुप हो गया। चोपड़ा पहले से चुप कुछ सोच रहा था, कुछ गुन रहा था। मेरी साफगोई से वह एकदम से बैकफुट पर चला गया था। नसीर और सलमान भी उसके स्कूटर की हैंडिल ऐंठते चुपचाप खड़े थे। सोनिया एक तरफ खड़ी किसी नयी बुक का बर्लब पढ़ रही थी। सबकी चुप्पी टूटी जब चोपड़ा का मोबाइल बजा, उसने स्क्रीन सामने करते हुए कहा लो आ गया। मैं स्पीकर ऑन करके बात करता हूं तुम लोग सुन लो। हमने दोनों ओर की बातें सुनीं, इसकी भी, उनकी भी। सबकी अपनी परेशानियां और विवशताएं थीं लेकिन वजह एक ही थी। सलमान धीरे से बोला हम उनके लिए बाहरी, वे हमारे लिए बाहरी। यह सब क्या है भाई। बोला चलो सब लोग कहीं बाहर भाग चलते हैं। सोनिया ने सर उठायी सोनिया को इधर ही छोड़ कर भागना, सोनिया बाहर नहीं जाने वाली। या तो यहां रहेगी या फिर नसीर को लेकर मुरादाबाद भाग जायेगी। चोपड़ा बोला, फिलहाल तो मैं भागता हूं, चोपड़ी को मूवी ले जाना है, अंदर बैठा के तुम्हारा काम करने निकल जाऊंगा फिर आते में उसको उठा लूंगा। कुछ निकला तो कॉल करूंगा, फिर सोनिया को देख कर बोला, ये सिस्टर कौन हैं, दो एक बार आप लोगों के साथ देख चुका हूं। सलमान बोला, हमारी सिस्टर इन लॉ हैं मतलब कि होने वाली हैं। चोपड़ा कुछ समझा, कुछ नहीं समझा, स्कूटर स्टार्ट किया और फूट लिया। दो तीन दिनों के बाद नसीर ने इंदिरा नगर में एक ऐड्रेस ढूंढ निकाला। कोई नार्थ इंडियन थे, शर्मा जी, पन्नालाल शर्मा। बैंगलोर में बस गये थे, सेकेण्ड हैण्ड कारों का बिजनेस था। मकान बड़ा था, तीन तीन पार्किंग

दो दो आउट हाउस। कुत्तों और गाड़ियों के शौकीन... और किरायेदार उत्तर भारतीय हो तो उत्तम, लेकिन किराये से कोई समझौता नहीं। अगले शनिवार को हम लोगों ने वहां देखने का मन बनाया। लगे रहेंगे तो कुछ न कुछ तो निकलेगा। उन तीनों से चूहे बिल्ली का खेल आखिर कब तक खेलते रहेंगे। हमें विश्वास था शुक्ला जी नार्थ इंडियन है तो कुछ अपनापन तो होगा ही, साथ ही क्षेत्रवाद का कार्ड खेलने की गुंजाइश भी बनती थी। नसीर ने सुझाया नाम खोल कर पहले रिएक्शन देख लेते हैं। मैं इस पर चित पट कर ही रहा था कि सलमान बोल पड़ा वहीं पहुंच कर नाम बतायेंगे... कुछ नहीं तो एक गिलास पानी का नुकसान तो करके ही लौटेंगे।

पर दरअसल मेरी समस्या दूसरी है। इस इश्यू पर मेरी हमदर्दी सामने वाले के साथ होती है। उस बिचारे की अपनी मजबूरी है, अपनी विवशताएं हैं, अपने बंधन हैं। अब उसमें हम जाकर, उसके घर में बैठ कर... पानी वगैरह पीने के बाद अपना नांव गांव जाहिर करें और उसे बिलावजह एक धर्मसंकट में डालें। लेकिन बात इतनी ही नहीं थी। हमारी अपनी समस्या थी, उसका हल कौन करे? सही लोकैलिटी में एक छोटी सी रहने की जगह ही तो चाह रहे थे हम, कोई पूरा हिन्दुस्तान का ख्वाब देख रहे थे? बैंगलोर में टिके रहने का एक मनपंसद ठिकाना, किराये पर, जैसे हमारे दूसरे साथियों के पास था। इसके लिए हम पूरा किराया देने को तैयार थे, सभी शर्तें मानने को तैयार थे, और हर कोण से झुकने को तैयार थे। किसी प्रापर लोकैलिटी में शिफ्ट होना तो हम तभी से चाहते थे जब हमें हमारी पहली तनखाह मिली थी। हम आये ही थे अपने वतन से इसीलिए। लेकिन वहां से आकर हम उन्हीं गली कूचों में फंसे थे। दरअसल हम बेताब थे, वैचैन थे वहां से बाहर निकलने के लिए, लेकिन बेबस थे। हम बैंगलोर भटकते हुए नहीं पहुंच गये थे, बाकायदा रेल टिकट लिया था हमने यहां तक का। सैदाबाद में ठौर बनाने से पहले हमने सिविल इलाकों की रेकी की थी, छाना था उन्हें, खूब दौड़े धूपे थे... लेकिन शायद हमारा नाम आड़े आता होगा। पुलिसवाले हमें खोजते हुए आये, यह अलग बात है। हमारी अल्टो उनको खटक रही थी, यह भी हम समझ सकते थे, क्योंकि उनका काम है शकोशुबहा करना। वे न भी आते तो भी आज नहीं तो कल सैदाबाद हम छोड़ते ही। सैदाबाद छोड़ने के लिए ही नसीर आजमगढ़ से, मैं इलाहाबाद से और सलमान बिजनौर से यहां पहुंचे थे।

शुक्ला जी ने पानी पिलाने से पहले ही पूछा, जी आपका शुभ नाम?

हम एकदम से गड़बड़ा गये, हिटिकेट होते होते बचे। हमारी टिकटिक करती घड़ी में अचानक एक दो टिकटिक गुम हो गयी। अब पानी की जरूरत थी, शुक्ला जी को समझना चाहिए था। दीवार पर टंगा कैलेण्डर पंखे की तेज हवा से फड़ फड़ कर रहा था। वे उठे और पंखा बंद करके एसी ऑन कर दिया। हां यह अच्छा हुआ। मैंने हाथ से पसीना पोछा, और एसी की ठंडक ने चेहरे का शिकन ढंक लिया। उन्होंने दूसरी बात शुरू कर दी थी क्या करते हैं आप लोग? इसका हमने जरूर कुछ जवाब दिया होगा। कौन सी कम्पनी में? इसका भी। कहां के रहने वाले हैं? इसका भी, खाली नसीर झूठ बोला। अभी कहां रहते हैं? इसका नहीं। पानी लेंगे। हां सर। बात फाइनल होने पर एडवांस देना होगा। एग्रीड। कार पार्किंग का अलग से। जी सर। कमरे पर कोई लड़की वड़की नहीं लायेंगे। हम चुप रहे होंगे। किचन का यूज कर सकते हैं, लेकिन नॉनवेज पकाने के लिए नहीं। बाहर खा लेंगे सर। रात में दस बजे के बाद कमरे में कोई बैण्ड बाजा नहीं। इस्लाम में म्यूजिक मना है सर, कहे कि नहीं याद नहीं। चाय लो, ठंडी हो रही है। ओह! थैंक यू सर। इंटरनेट सर्विस फ्री देंगे। फ्री! कांट बिलीव सर। मुझे और मेरी बीवी को कम्प्यूटर सिखाना होगा। ऐट योर सर्विस सर। छोटे मोटे काम करना होगा। एनी टाइम सर! फ्राइडे शाम हमारे साथ खाना चाहोगे। ओह! यू आर गॉड सर। (दो इट इज अनइस्तामिक!) सैटरडे संडे बाहर मस्ती मारना। आप तो अभी भी जवान हैं सर। नाम

क्या है? चिराग, सलमान और नसीर। उन्होंने झूठ बोलने या चुप रहने की मोहलत ही नहीं दी। मुझे अंकल और इन्हें आंटी कहना। ओह डियर अंकल, डियर आंटी।

फिर जैसे कुछ कौंधा। इस बार शुक्ला जी खुद गड़बड़ा गये। हिटविकेट हो गये थे। फिर से कहो तो... अपना नाम... क्या कहा? वे हमें देखे जा रहे थे, मैं बगलें झांक रहा था। मैंने कनखियों से देखा, नसीर नीचे देखते हुए अपनी बायों हथेली को दायें अंगूठे से दबा रहा था, और सलमान! सलमान शुक्ला जी को ऐसे देख रहा था जैसे कोई मेमना हो।

बातें उनके बैंगलोर में स्ट्रगल करने, बिजनेस जमाने, फिर यहीं बस जाने से चक्कर काटती हुई अंततः उनके बेऔलाद रह जाने तक पहुंचीं। बेऔलाद! बात बनती सी लगी। तो हम किस दिन काम आयेंगे। हम इमोशनल होने लगे। नसीर का दोनों हाथ फिर से फ्री हो गया, सलमान मेमने से फिर इंसान बन गया। लेकिन शुक्ला जी, शुक्ला जी ही बने रहे। पहली मुलाकात में ही सबको औलाद बनाने लगे तो हो चुका। ऐसे बिजनेस नहीं चलता भाई। ऐसे तो रोज ही लोग टोपी पहनाने आ जायेंगे। ऊपर से आजकल के लड़के! रुको तो, कुछ और जो जाये। नॉर्थ में कई तरह की मिट्टी पायी जाती है मसलन, इलाहाबाद की कुछ तो बिजनौर की कुछ। मुरादाबाद की कुछ तो आजमगढ़ की कुछ। अंकल जहां के रहे होंगे वहां की कुछ। पहले शायद एक ही मिट्टी रही हो, बाद में तो हमने बहुत कुछ देखा। मिट्टी पलीद हो गयी।

ये वाले अंकल हमारे झांस में नहीं आने वाले थे। उन्होंने बहुत दुनिया देखी थी मुसलमानों से आज पहली बार सामना नहीं पड़ा था उनका। हम तो कल के बच्चे थे। बड़े अनुभव रहे थे उनके हमारी कौम के साथ मीठे मीठे और खट्टे। यह उन्होंने नहीं कहा। यह तो मैं कह रहा हूं अपने अनुभव से। उन्होंने कहा आप लोग क्या हैं क्या नहीं हैं इससे बहस नहीं। सलमान फुसफुसाया यह तो हम लोग भी नहीं समझ पा रहे हैं कि हम क्या हैं, क्या नहीं हैं। वे अनसुना करते हुए हमें सहज करने की कवायद करने लगे साहब, जब यूपी में थे तो हमारे अड़ोस पड़ोस में सभी आप ही लोग थे। यहां तक कि हम बचपन में मक्तब में पढ़ते थे और आज भी उर्दू में अपना नाम लिख सकते हैं। आप लोग उर्दू जानते हैं? (हम लोग? जी आगे बोलिये) मोलवी साहब हमारे पिताजी के मिलने जुलने वालों में से थे। उनकी लम्बी दाढ़ी और उनकी घड़ी आज तक याद है। इमला गलत हुआ कि इसी पर, देखिये देखिये, वे अपनी दाहिनी हथेली दिखाते हुए बोले, हां इसी पर मारते थे सटाक, सटाक। तो साहब वह हमारे घर बराबर आते थे। उनका एक पानी पीने का गिलास और चाय का कप हमारे यहां अलग रखा रहता था, साफ सूफ करके कि कब वो आ धमकेंगे चाय पिलवाइये, रामशिरोमणि जी, तनिक नमक डलवा कर। रहीम चाचा एक थे... दो घर छोड़ कर। एक पैर नहीं था उनका लेकिन पाजामा पूरा पहनते थे चौड़ी मोहरी वाला। कौन जुमा था कि वह हमारे घर मिलते हुए न जायें। नमाज पढ़ कर लौटते तो पान सुपाड़ी हमारे घर पर खाकर ही जाते थे। पिताजी कहते थे रहीम मियां जरा इस लड़के पर फूंक मार दीजिए, पढ़ लिख लेगा, लम्बी उमर पा जायेगा। देखिये, आपके सामने बैठा हूं। उन्हीं की फूंक का असर है। वे हंसने लगे, हम मुस्कराने जैसा किये। हमारे पिताजी रहीम चाचा को कहां छोड़ने वाले। मीट मछली के बड़े शौकीन थे। मीट खाना हो तो रहीम चाचा के यहां पैसा भिजवा देते... कभी नहीं भी भेजते। और रात में जाकर खा आते। तीन पाव मीट अकेले बिना रोटी चावल के निपटा देते थे। रहीम चाचा तो खाली दो पीस खाते थे उससे अधिक खाने से उनके पेट में दर्द उठ जाता था। रहीम चाचा को कुरान कंठस्थ थी और पिता जी को मानस। दोनों खूब बखान करते थे अपनी अपनी कंठ शक्ति की। छींटे हम बच्चों पर भी पड़ जाते थे। कुछ क्या, हमने तो बहुत कुछ सीखा। आपका धर्म इतना कोई कट्टर नहीं। ये तो दोनों तरफ है। 6 दिसम्बर

वाली घटना के बाद बहुत बदलाव आ गया। बदलाव क्या आया, कुछ नहीं, हमारी एक फुआ हैं... मस्जिद में अजान होती है तो वह अभी भी अपना सर ढक लेती हैं। लेकिन उन्हीं फूफा जी को... खैर छोड़िये। फिर भी बदलाव आ रहा है... सही बदलाव शिक्षा से ही आयेगा। अब आप लोगों को ही देखिये.. आप लोगों में इतना कहां पढ़ते हैं... बहुत रेयर है यह। मैं तो आश्चर्यचकित हूं कि आप लोग पढ़ाई करने इतनी दूर आ गये... और फिर यहीं नौकरी भी पा गये। वेरी गुड, वेरी गुड।

फिर न जाने कैसे बात फिल्म, क्रिकेट से होते हुए पॉलिटिक्स पर आ गयी। पॉलिटिक्स वाली बात याद है, क्योंकि इसी के बाद हम लोग उठ खड़े हुए थे। उन्होंने बात खुद छोड़ी थी। जैसे बहुत दिनों के बाद हिन्दी बोलने समझने वाले मिले थे। मन लग गया था उनका। बोले अच्छा बताइये... आप लोग पढ़े लिखे हैं, मैं कई लोगों से पूछ चुका... लेकिन आप लोग समझते होंगे... आप ही बताइये कि आपके यहां... मेरा मतलब है कि आप लोगों के समाज में सभी लोग एक ही साथ एक ही पार्टी को क्यों वोट देते हैं... एक ही कंडीडेट के पीछे क्यों पड़ जाते हैं... साहब हमारे फूफा जी, वही जिनकी पत्नी... खैर छोड़िये... हमारे फूफा जी इलेक्शन में खड़े थे, जीतते जीतते हार गये। जानते हैं कितने वोट से? सत्ताइस वोट से... ओनली ट्वेण्टी सेवन। साहब बुर्के वाली महिलाओं की लम्बी लम्बी लाइनों को देखते ही बनता है... गोद में बच्चा लिए... थैला थामे... धूप हो या छांव हो... खड़ी रहेंगी। और आपके जेण्ट्स भी उतने ही भरोसे के साथ लगे रहते हैं, बिना वोट डाले साहब लौटते नहीं। कंडीडेट को बिना हराये चैन नहीं लेते। बड़ी एकता है आप लोगों में, बड़ी अंडरस्टैंडिंग से बढ़ते हैं आप लोग। स्वर की उत्तेजना को कम करते हुए पूछते हैं अच्छा बताइये, कब और कैसे आप लोग डिसाइड करते हैं कि किसे हराना है। मैं उनके इस बात की काट करना चाहता था। बताना चाहता था कि उनकी सोच गलत है और कैसे। वे मुझे वाक्य पूरा भी नहीं करने दिये ...भाई आपके यहां अच्छा है... हमारे यहां तो दस तरह की बातें हैं... ऊंच नीच, अमीर गरीब, जात पांत... दिस दैट।

अब हमें बैठने में मजा नहीं आ रहा था। मेरे मोबाइल पर बार बार चोपड़ा की कॉल आ रही थी और नसीर के मोबाइल पर... गेस करिये किसका ...जी हां आपने सही समझा... ईएमआई वाले का। बोला, भाई साहब पुलिस के लोग आये थे, पूछ रहे थे गाड़ी की फंडिंग कहां से हुई? फोन काटते हुए शुक्ता जी से मुखातिब हो गये और हमने दिल मजबूत करके पूछा कमरे के बारे में क्या कहते हैं?

बैठिये जनाब, कहां जाने लगे। देखिये बैठिये... चाय लाना भाई। वे अपने बालों में उंगली फेरते हुए बोले बात यह है कि... कहने में खराब लग रहा है... लेकिन आप लोग बताइये क्या यह सम्भव है। हम आपके बारे में क्या जानते हैं, आप हमारे बारे में क्या जानते हैं... या एक दो घंटे में आप हमारे बारे में क्या जान लेंगे, यह तो धीरे धीरे होगा न। बातचीत होगी... विश्वास बढ़ेगा तो अपने आप सब चीजें साफ हो जायेंगी... कमरा भी मिल जायेगा। मैं तो ज्यादा कुछ नहीं सोचता। पर आप भी देखते ही होंगे... अखबार भरा रहता है, आज ये हो गया... तो आज वो हो गया... आज यहां से पकड़े गये तो कल वहां से। आज इधर धमाका हुआ तो कल उधर। बैंगलोर में कितना कुछ हो चुका है। लोग डराते हैं कि भइया अनजान व्यक्तियों को... खास कर नौजवानों को...।

हमने उन्हें वाक्य नहीं पूरा करने दिया और उठ खड़े हुए। हमारे लिये यह हंसने रोने का मुकाम था। सलमान की तो अपनी अदा है और आदत है। बिना कुछ खास बोले हुए हटेगा नहीं। अब उसकी बारी थी अंकल, डराने से याद आया कि कई दफे तो पुलिसवाले भी डर जाते हैं। कैसे? कब पुलिस वाले डर गये? उन्होंने गोल सा मुंह बनाया। सलमान ने खखार कर गला साफ किया मेरे दादाजी अस्सी पार हैं लेकिन हुक्का जम कर पीते हैं। हुक्का नहीं पीते हैं, तो बीड़ी पीने लगते हैं। बीड़ी खत्म हो गयी तो खैनी दबा लेते हैं। न टीवी न कैसर। खांसी तक नहीं आयी कभी उनको। हुक्का ऐसा

पीते हैं कि आज कल के नौजवान क्या पीयेंगे, सिगरेट पीने में तो दमा के शिकार हो जाते हैं। दादाजी हुक्का जब कस कर खींचते हैं तो हुक्के की आवाज दूर तक तैरती चली जाती है गड़ गड़ गड़ गड़ गड़ गड़ गड़...। कुछ दूर पर पुलिस चौकी है। वे मुहल्ले में दौड़ते हुए आये और हांफते हुए बोले मशीनगन कौन चलाया। सब बोले गन तो चलाया है पर मशीनगन क्या होती है। वे लोग नाराज हो गये, उन्होंने हुक्के को उठवाया और थाने के लॉकअप में बंद कर दिया।

अंकल हंसने लगे। हंसते हुए वे अच्छे नहीं लग रहे थे। हम उन्हें उसी हालत में छोड़ कर बाहर निकल आये।

बाहर लाइट नहीं थी। अंधेरा था। बेंगलोर में अंधेरा! हमने सोचा स्ट्रीट लाइट जगमगाने का इंतजार करें या अंधेरे में ही आगे बढ़ें। नसीर बोला अब मैं एक्सपर्ट हो गया हूँ... अंधेरे में भी चला लूंगा स्ट्रीट लाइट नहीं तो क्या, अपनी हेडलाइट तो है। उसी में काम चला लेंगे। वैसे भी कभी पूरा अंधेरा नहीं होता। सलमान ने पूछा, सैदाबाद? मैंने कहा, तो और कहा? नसीर ने कहा, यार, मुझे इस तरह भटकना अच्छा नहीं लग रहा। मैंने कहा, मुझे भी। सलमान ने कहा, मुझे भी। सना ने कहा होगा उसे भी। बेंगलोरियन एम नागेश्वर ने सोचा होगा अच्छा हुआ बच गये। यूपी वाले शुक्ला जी ने सोचा होगा लौंडों का क्या ठिकाना! चोपड़ा ने सोचा होगा सर जी इन लड़कों के लिए कुछ तो करना होगा। मोबाइल बजने लगा, चोपड़ा था, अरे बाऊ जी, कब से लगा रहा हूँ... देखो जी बात कहीं बन नहीं रही है, तुम्हारे लिए ही सुबह से लगा हूँ। अब देखो, तुम लोग बात को समझो। और सुनो, प्रब्लम ज्यादा हो तो चोपड़ा के यहां शिफ्ट हो जा भाई... अपनी सिस्टर इन लॉ को भी ले लो चोपड़ा का भी मन लग जायेगा दोनों लेडीज मौज करेंगी। अपनी भाभी के हाथ का राजमा चावल खाओगे तो पटियाले का बटर चिकन भूल जाओगे... दिल से कह रहा हूँ... देखो बुरा मत मानना।

सैदाबाद मोड़ पर हम दोनों को छोड़ कर नसीर सोनिया से मिलने चला गया। हमने मैगी बनायी और अपने अपने लैपटाप पर लग गये सलमान बोला आज नमाज नहीं पढ़ूंगा, वह अपने सिस्टम पर पोर्न देखने लगा। और मैं सोचने लगा... दुनिया भर के लोगों का इंटरनेट एकाउंट हैक कर लूं और चारों तरफ डिजिटल तबाही मचा दूं। नसीर ने मैसेज किया कि सोनिया से फाइट हो गयी है... दोस्ती तोड़ने का मन कर रहा है। मैंने मैसेज बैक किया तुम दोनों नाइट शो देख लो... मैं मनी ट्रांसफर कर दूंगा।

इसका मतलब था मैं होशोहवास में हूँ। मैंने नसीर और सना को बचा लिया था। मैं किसी के एकाउंट को हैक नहीं करूंगा। तबाही अच्छी चीज नहीं है। चैन से सोता हूँ। कहीं जाकर बात पक्की कर लूंगा। चोपड़ा के यहां रहना तो नहीं, लेकिन एक दिन राजमा चावल जरूर खाऊंगा। ...चादर तकिया कहां है... थक गया हूँ... सोता हूँ सुबह आफिस भी जाना है।

और तभी उनकी आमद हुई वही तीनों! लेकिन इस बार दो पुराने और एक नया बंदा था। वे सीधे अंदर चले आये। सलमान अधलेटा सो रहा था, उसके सिस्टम पर पोर्न साइट आबाद थी। मैंने घबरा कर ऑफ करना चाहा, वे बोले रहने दो। उनमें से एक पोर्न पर ही अटक गया था, बाकी दोनों कमरे का मुआयना करने लगे। तुम्हारा तीसरा साथी कहां है, इन्स्पेक्टर ने पूछा। मैंने सोच कर कहा, उसकी नाइट शिफ्ट है, देर से लौटेगा। उसने मुझे शक की नजर से देखते हुए कहा थोड़ी देर पहले तो वह फोरम मॉल पर था उसी लड़की के साथ... वहां से गायब हो गया। मैं चुप था। सलमान हल्के हल्के खरटे भर रहा था। वह बोला, अच्छा यह बताओ, उस लड़के को जानते हो? कौन लड़का, मैं सोचने लगा। उसी वेंटर को, सलीम अली नाम है जिसका... जहां तुम लोगों ने पार्टी

की थी। मैं कुछ देर तक उनको घूरता रहा क्या पूछ रहे हैं ये... क्या मंशा है इनकी... क्या समझ रहे थे हमें। मैंने धीरे से कहा, पहली बार मिला था उससे... उस दिन हमारा टेबल अटेण्ड कर रहा था। ...लेकिन लम्बी टिप दिया था तुम लोगों ने उसको? वह बोल कर मेरे और नजदीक आ गया। मैंने एकदम पीछे हटते हुए कहा नहीं कह सकता... सोनिया ने पे किया था... नहीं देखा था। अच्छा, अभी भी तुम लोग यहीं पड़े हुए हो, दूसरे वाले ने व्यंग्य से कहा, आखिर यहां क्या अच्छा लगता है? मैं चुप रहा। सलमान के खरटे और धीमे हो गये थे, वह गहरी नींद में था। अच्छा चलते हैं, उन्होंने बाथरूम के गंदे दरवाजे की तफफ घूरते हुए कहा। कम्प्यूटर बंद कर दो और तुम्हारा दोस्त वापस आये तो इस नम्बर पर बात कराना।

देर रात नसीर लौटा। पीये हुए था। यकीन मानिये, हमें नहीं पता था कि वह अकेजनली भी ड्रिंक्स लेता है। हम तीनों ही इससे दूर थे, सोनिया लेती हो तो नहीं कह सकते! यह तो पुलिसवाले ही जानते होंगे। मैंने कहा कुछ खा लो और सो जाओ। वह बोला डॉट वरी, सोता हूं मैंने कंधे पर हाथ रखते हुए धीरे से कहा क्या हुआ था सना से, तुम तो मूवी गये थे। बोला, पुलिसवालों ने सब खराब कर दिया। फोरम पर वहीं सोनिया के सामने मुझको उल्टा सीधा बोलने लगे। उससे भी दस सवाल पूछें फिर गाड़ी की चाभी ले ली... और गाड़ी थाने भेज दी। कहने लगे जब ड्राइविंग नहीं आती थी तो गाड़ी क्यों खरीदी?... तीनों में सबसे कम सैलरी तुम्हारी है तब... किसने फंड किया? किसी तरह सोनिया को ऑटो से ड्राप करके आ रहा हूं। और यह? मेरा मतलब ड्रिंक्स से था। वह समझ गया, बोला अब नहीं करूंगा... यकीन मानो चिराग। मैंने कहा कसम खाओ। उसने कहा तुम्हारी कसम, सलमान की कसम, सोनिया की कसम... अब दुबारा नहीं होगा। कुछ देर बाद मैंने देखा, वह अभी भी जग रहा था... सीलिंग ताकते लेटा था। मैंने कहा सो जा भाई, सुबह आफिस भी है... गाड़ी की प्रॉब्लम है। वह मुस्कराने लगा, अपने में ही मुस्कराये जा रहा था। फिर उठ बैठा और बोला एक मजेदार बात याद आ रही है... सुनोगे? मैंने कहा सो जाओ कल सुन लूंगा। लेकिन वह सुनाने लगा देखो ये घटना जवाहर नेहरू उ.मा. विद्यालय बांसगांव आजमगढ़ के कक्षा 10अ की है। हिन्दी शिक्षक पंडित रामकृपाल चौबे बैठे हैं। बैठे बैठे ऊब रहे हैं। बच्चे शोर मचा रहे हैं। अचानक उनकी आंख खुलती है। अपनी झेंप मिटाने के लिए उन्होंने अपनी छड़ी बड़ी जोर से डेस्क पर पटकी नसीर मियां, कल जो निबंध लिखवाया था, सुनाओ तो। मैं शुरू हो गया। शीर्षक अनेकता में एकता 'भारतवर्ष का नाम राजा भरत ...'। अरे रुको रुको... तुम तो रेलगाड़ी की माफिक शुरू हो गये, क्या तुम्हें अभी तक याद है? वह बोला हां मुझे याद है और सुनाने लगा 'भारतवर्ष का नामकरण... हमारे देश में बहुत से आक्रमणकारी आये लेकिन वे इसकी सुगंध और संस्कृति के दास बन गये। हमारा देश विश्व का अनोखा देश है जिसमें विभिन्न धर्मों जातियों सम्प्रदायों के लोग एक साथ रहते हैं। यहां भिन्न भिन्न प्रकार की भाषाएं बोली जाती हैं और अलग अलग तरह के परिधान एवं खानपान प्रचलित हैं। हमारा भारत देश एक ऐसे बागीचे के समान है जिसमें कई रंग और कई सुगंध के पुष्प खिले रहते हैं। हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई इस बागीचे के फूल हैं जो एक साथ खुशबू बिखेर रहे हैं। इसी को पंडित नेहरू ने अनेकता में एकता कहा है।' मैं सुना रहा था और पंडी जी फिर ऊंधने लगे... फिर सो गये। तब? हमने एक साथ पूछा। नसीर बोला तब क्या, पंडी जी सोते से उठे बोले मियां, एक पंक्ति भूल रहे हो... जब तक याद न पड़ जाये... उसी तरह सुनाते रहो, और वे फिर ऊंधने लगे। मैंने फिर वहीं से शुरू किया भारतवर्ष का नाम... भारतवर्ष में बहुत से आक्रमणकारी...। वह ऊंधते जरूर थे लेकिन मेरी वह भूली पंक्ति उन्हें जगा देती थी और वह कहते थे फिर से...। और मैं फिर से शुरू हो जाता था। भैया, इतनी बार पढ़ा, इतनी बार पढ़ा कि पूरा

निबंध कंठस्थ हो गया। आज तक नहीं भूला, कभी नहीं भूला, कभी नहीं भूलूंगा... कभी नहीं भूल सकता। भूल भी जाता हूँ तो वह पंक्ति याद आ जाती है, वह पंडी जी याद आ जाते हैं मझोले कद के मोटे से, धोती कुर्ता के ऊपर जवाहर जैकेट और गांधी टोपी... जैसे फिल्मों में देखते हैं... पुराने टाइप के। मैंने कहा ज्यादा सेण्टी न बनो, बताओ कौन सी पंक्ति थी जो तुम भूल रहे थे। याद करके बताओ। याद क्या करना, याद है इस फुलवारी को हिन्दू मुस्लिम सिख ईसाई सभी ने अपने खून से सींचा है।

कुछ देर के लिए हम सब चुप हो गये। लाइट गोल थी तो कमरे में अंधेरा था। अंधेरे में हम एक दूसरे को देख नहीं पा रहे थे एक दूसरे से अपने पैर फंसाये लेटे हुए थे और एक दूसरे को महसूस कर रहे थे। लाइट आती तो हम कुछ काम करते। सोनिया इस समय ऑनलाइन होती थी और नसीर को बड़ी बेसब्री से इस समय का इंतजार रहता था। टाइम पास करने के लिए वह ये पुरानी बातें सुना रहा था। कुछ देर बाद भक से लाइट जली तो हम ऑनलाइन हो गये। देखा तो वह सो रहा था। उसके मोबाइल पर सोनिया लगातार कॉल कर रही थी। कुछ देर में वह भी चुप हो गयी। हमने उसे नहीं जगाया। सोने दिया। फिर हमारा भी कुछ खास काम करने का मन नहीं हुआ। लाइट बंद की और सोने की कवायद करने लगे। फिर सो गये। सपने में वही पंडी जी आये अपने प्रिय परिधान में। छड़ी को मेज पर पटक कर हमें जगाया और बोले भारत मां एक फुलवारी है, तुम चारों इस फुलवारी के फूल हो। हम सोये सोये मुस्करा उठे। पंडी जी ने हमारी चौकड़ी को फूल कहा था! फिर हम रोने लगे।

शाम को हम तीनों फिर इकट्ठे काक्स टाउन के लिए निकले। चोपड़ा ने फोन पर बता दिया था परवेज अली मिर्जा, काक्स टाउन, बैंगलोर। उसने कहा था परवेज साहब ने अपने घर के ऊपर फ्लैट जैसा कुछ बनवा रखा है और उनके किरायेदार दो दिन पहले ही छोड़ कर गये हैं और यह कि तुम लोग जल्दी पहुंचो, काम बस बना चाहता है।

हमें कॉलबेल नहीं बजानी पड़ी। मिर्जा साहब अपने शानदार अमीरखाने के सामने ही खड़े मिल गये। हमने बिना पूछे ही अपना नाम और आने का मकसद बताया। उन्होंने 'हूँ' किया और अंदर की ओर मुड़े, हम उनके पीछे पीछे। उन्होंने बैठने का इशारा किया और तीनों से अलग अलग इंटरड्रक्शन किया। फिर बोले, कहिये मैं क्या खिदमत कर सकता हूँ। हमने एम नागेश्वर और यूपी वाले शुक्ला जी की बखिया उधेड़ कर रख दी। ये लोग मुसलमानों को समझते क्या हैं, आखिर हिन्दुस्तान में हो क्या रहा है, क्या हम सभी जेहादी हैं, टेररिस्ट हैं कि अछूत हैं जो हमें दूध से मक्खी की तरह निकाल कर फेंका जा रहा है। न कोई मकान देने को तैयार है, न पुलिसवाले चैन से बैठने दे रहे हैं। पता नहीं सही में वह था क्या, लेकिन जो हम देखे उससे जरूर लगा मिर्जा साहब की आंखों में हमारे लिए हमदर्दी तैर रही थी।

उन्होंने धीरे से पूछा, ये पुलिस वाली क्या बात है? हमने अपना समझ कर पूरी कहानी मुख्तसर में बयान कर दी।

उन्होंने गहरी सांस ली और चाय की ओर इशारा करते हुए अपने कप को होठों से लगा लिया। चाय पीते पीते कोई विशेष बात नहीं हुई, लेकिन खाली कप साँसर टेबल पर रखते हुए उन्होंने फिर से गुफ्तगू शुरू की अच्छा, आप लोग कबसे एक साथ हैं?

जबसे बैंगलोर में हैं तभी से। साथ साथ पढ़ते थे, एक ही होस्टल में रहते थे। अब जाँव भी साथ साथ करते हैं। और अब सैदाबाद में एक साथ रहते हैं, और एक साथ ही अब वहां से निकलना चाहते हैं। सैदाबाद का नाम सुन कर वे बिचके। उनकी बातों से निकल कर आया कि उनके

कुछ गरीब रिश्तेदार वहां रहते हैं और यह कि बहुत पहले उनका पूरा खानदान वहीं रहता था। कुछेक साल पहले जब इधर छोटा मोटा दंगा शंगा हुआ था तो उन्हें विद फेमिली पूरे एक सप्ताह सैदाबाद में ही रहना पड़ा था। पर उनको अफसोस था कि सैदाबाद वैसा का वैसा ही है गंदा, भी। भीड़ शोरगुल से लबरेज, शोहदों मनचलों काहिलों जाहिलों और कठमुल्लों से लबालब भरा हुआ। एक हफ्ता उन्होंने वहां कैसे बिताया, वही जानते हैं। सलमान ने बड़े सलीके से पूछा तो दंगे में आप उधर चले जाते हैं? उन्होंने सलमान पर पहले ध्यान नहीं दिया था, गौर से देखा, फिर बोले एक ही बार हुआ है, यहां अनसेफ लगता था तो हां उधर चले गये। बाकी वह जगह जाने लायक नहीं, रहने की तो छोड़िये। मतलब कि सैदाबाद से परमानेण्टली पीछा नहीं छूट सकता, नसीर ने पहली बार मुंह खोला। क्या कहें, परवेज अली मिर्जा सोचते हुए बोले कह नहीं सकते कि कल क्या हो, पर उधर से बचके रहने में ही भलाई है। देखिये, सच कड़वा होता है, लेकिन निगलने में ही समझदारी है। अब आप जैसे नौजवान सॉफ्टवेयर इंजीनियर... अगर वहां... वह भी मस्जिद और इमाम के इतने करीब रहेंगे तो पुलिसवालों की नजर तो जायेगी ही। भई आप जहां भी रहेंगे पुलिसवालों की नजर में आप रहेंगे, सीआईडी वाले आपसे गाहेबगाहे आमना सामना करते रहेंगे। इसमें आप कुछ नहीं कर सकते। इसमें आप क्या कर सकते हैं, कोई भी क्या कर लेगा, बताइये।

सलमान का नहीं कह सकता, लेकिन मुझको और नसीर को उनकी बातों में दम नजर आया। तो अब हम क्या करें, इसीलिए तो आपके पास आये हैं। यहां रहेंगे तो ठीक रहेगा, पुलिसवालों से सेफ रहेंगे। हमें और क्या चाहिए, रोज रोज की टेंशन से फ्री रहेंगे। फिर धीरे से सकुचाते हुए बोले देखिये सैदाबाद के बारे में आप ठीक कहते हैं कैसी जगह है... हम लोग ऑफिस कलीग को भी नहीं बता पाते।

वह कुछ सोचने लगे। उनकी आंखों में नमी दिखी। वह बोले, देखिये हम आपकी मदद करना चाहते हैं। मैं समझ सकता हूं आपकी परेशानियां और दिक्कतें। अगर मैं नहीं समझूंगा तो कौन समझेगा। किससे और उम्मीद की जा सकती है, लेकिन एक बात बोलूँ?

हम तीनों उन्हें देखने लगे। क्या बोलना चाहते हैं, जरूर बोलिये।

उन्होंने सिगरेट सुलगा ली थी। धुआं छोड़ते हुए थोड़ा और मुखातिब हो गये देखिये, हमारी सलाह मानिये तो एक और दोस्त बनाइये... अपनी तिकड़ी को चौकड़ी बनाइये... एक नॉन मुस्लिम, प्रेफेरेबली हिन्दू... नहीं तो सिख ईसाई कोई भी... जरूर दोस्त बनाइये। मेरी बात की गहराई को समझिये... रास्ता आसान होगा आपका इससे। आप लोगों से चूक हुई जनाब।

हमने उनकी बात सुनी और टकटकी बांधे उन्हें देखते रहे। इस पर क्या कहें किस तरह टोका टोकी करें समझ नहीं पा रहे थे। दरअसल मिर्जा साहब ने क्या कहा था और हमने क्या सुना था दोनों एक ही बात थी या उन्होंने कहा कुछ था और हम समझ कुछ और रहे थे... हमें पता नहीं था। हम तीनों टुकुर टुकुर देखे जा रहे थे उनकी ओर। सिगरेट पीते वे गम्भीर मुद्रा में बैठे थे। हम उन्हें देखे जा रहे थे कि अब कुछ और बोलेंगे, और हमें उस पर ध्यान देना है। वे हमारे सरों के थोड़ा ऊपर दीवार पर नजरें टिकाये थे। उन्होंने वहीं देखते देखते कहा आप लोग सोच रहे होंगे यह सब मैं क्या बोल रहा हूं, लेकिन यह सही है कि आप लोगों ने नासमझी की।

फिर से यह सुन कर सलमान एकदम सिकुड़ गया। नसीर नर्वस लगा, अपनी उंगली को शर्ट से बिलावजह रगड़ रहा था। उम्र में बच्चे उम्र में बच्चे, हमारी चूक पकड़ी गयी थी... हमारी गलती बतायी जा रही थी। अचानक हम इतने हल्के पड़ गये कि तर्क वितर्क करने की हिम्मत न पड़ी। इतनी बड़ी गलती हुई थी, इतनी भारी चूक हो गयी थी कि... कोई अब हमें कैसे बचाता। मिर्जा साहब की

जगह कोई और होता तो हम बैठे बैठे यह सब न सुन लेते। मिर्जा साहब तो अपने हैं, अगर ये समझ रहे हैं कि हमने गलत किया है तो हमने किया है। अब वे जितनी चुपपी साथे हुए थे... जितना धुआं पे धुआं छोड़ रहे थे, उतना ही हमारा अपराधबोध हमारी आत्मग्लानि हमारी एहसासे कमतरी हम पर हावी होती जा रही थी। अपनी गलती की ही सजा तो हम भुगत रहे थे। अपनी चूक के कारण ही तो मारे मारे फिर रहे थे हम। परवेज अली मिर्जा ने अभी डैमेज कंट्रोल का एक नुस्खा बताया है। तिकड़ी में एक हिन्दू दोस्त डाल कर इसे चौकड़ी बना लें, न कोई शक करेगा, न कोई घर देने से ऐतराज करेगा। हमारी दोस्ती की पाकीजगी दांव पर थी। समाज और सरकारी अमला की नजर में यह सांठागांठ थी, मित्रता नहीं। इसकी बेगुनाही को बहाल करने के लिए हमें एक और दोस्त बनाना चाहिए। जिस समय हमारे दिलों में दोस्ती की कोपलें फूटी थीं, काश मिर्जा साहब से भेंट हुई होती!

इस दौरान मिर्जा साहब ने अपने दोस्तों की एक लम्बी चौड़ी फेहरिश्त पढ़ कर सुनायी हर तबके हर मजहब के लोग थे उसमें। खाली सैदाबाद का कोई नहीं था। लेकिन सभी से गहरी दोस्ती भी नहीं थी उनकी। जरूरत के हिसाब से वे सब कुछ मैनेज किये हुए थे। बोले इसी कालोनी में ऐसे मुसलमान हैं जो बस अपनों तक महदूद हैं, अपनों में ही मस्त हैं, जैसे आप लोग। और जब फंसते हैं तो हमारे पास दौड़ते हैं। हमें कोई टच करके देखे। खुदा न खास्ता कुछ हो गया तो हमारी ओर से जहां दो मुस्लिम खड़े होंगे वहीं चार गैरमुस्लिम खड़े हो जायेंगे। आप लोगों ने क्या कमाया बताइये। पैसा ही सब कुछ नहीं होता। हमने दोनों कमाया है, और मौका आने पर दोनों को जी खोल कर खर्च करते हैं। इस तरह के कुछ दोस्त रहने से आदमी सेकुलर लगता है, सेकुलर की छोड़िये, सेफ हो जाता है। एक और राज की बात बताऊं। बहस मुवाहसों में जहां चार लोग आपका मुंह ताक रहे हैं, कान लगाये हुए हैं पाकिस्तान को अटक करना चाहिए, सबकी तरह आपको भी उसे फेल्ड स्टेट, टेरर सेण्टर, एण्टी इंडिया कहना चाहिए और जम कर कहना चाहिए। दरअसल आप गलत नहीं कहेंगे, वह है ही ऐसा... मुसलमानों के नाम पर कलंक! अगर कराची में हमारे रिश्तेदार न होते, हमारे सगे बड़े भाई हैं वहां, हमारे बुजुर्ग चचा हैं वहां, रिजर्व बैंक ऑफ पाकिस्तान में सीनियर मुलाजिम हैं... आपके भी बहुत से होंगे... अगर ये लोग न होते, और हमारे हाथ में बम होता तो हम तो पूरे हिन्दुस्तान को दिखा कर बस कराची या लाहौर पर फोड़ देते। सच बतायें, यह मेरी दिली तमन्ना है.
.. लेकिन मजबूर हूं।

उनके इतना सब बोलने पर मेरे मुंह से निकला आप ठीक फरमा रहे हैं। वे बोले भई इससे कुछ अपना जाता है, कुछ गया क्या। याद रखिये कि आप इंडिया में रहते हैं, पाकिस्तान में नहीं। यहां के मुसलमान इस बात के मर्म को समझें तब न। अब देखिये, जब आप जैसे पढ़े लिखे नौजवान नहीं समझते तो क्या हम मौलवी मौलाना कठमुल्लों जाहिलों से उम्मीद कर सकते हैं। अगर हमारे लोग इस बात को समझ लें तो समाज भी खुश, पुलिस से भी बचे... और समझिये कि मुल्क में अमन चैन। हम उनकी बातें सुनते सोचते बैठे थे। हममें से किसी से भी कुछ बोला नहीं जा रहा था। हम निरुत्तर थे। उन्होंने अपनी बेबाकी से हमें निःशब्द कर दिया था। ऐसा खुल कर बात करने वाला और पते की बात करने वाला शख्स पहले कभी न मिला था। वे बोले, मुझे तो जो मिलता है, यही समझाता हूं कि भइया, इसी में भलाई है। अपने बच्चों को भी। पहले वे नहीं समझते थे, हंसते थे हमारे ऊपर लेकिन ठोकर लगी तो समझ में आ गयी बात। खैर छोड़िये उन्हें, जहां तक आप लोगों की बात है, देखिये अगर आप में से कोई एक भी गैर मुस्लिम होता तो फटाक से मैं तो चलता... ऊपर वाला फ्लैट दिखाता और आप कल से शिफ्ट हो जाते। फिर उन्होंने एक घूंट पानी पीया... शायद दो घूंट.
.. ठीक से याद नहीं... लेकिन इसके बाद जो बोले ठीक ठीक याद है देखिये, ऐसे में तो यहां भी

पुलिस आ सकती है। और वाजिब बात है... उन्हें शक है... उनके पास जरूर सही गलत कोई न कोई इनफारमेशन होगी। वो तो अंधे होते हैं... और अगर आ गये तो मैं तो कहीं का नहीं रहूंगा। बनी बनायी इज्जत मिट्टी में मिल जायेगी। अच्छा छोड़िये, वे नहीं भी आते हैं तब भी तो बात होगी। मिलने जुलने वाले क्या कहेंगे... तीन मुसलमान लड़कों को एक साथ कहां से सर पर बैठा लिया। कौन हैं, क्या हैं, कहां से हैं, रात में क्या करते हैं, कहां जाते हैं, कौन आता है इनसे मिलने, वगैरह वगैरह। अब मैं क्या जवाब दूंगा, बताइये।

सलमान मुझे चिकोटियां काट रहा था कि अब चलो। बहुत देर हो गयी है, सैदाबाद के लिए दो बार ऑटो बदलना पड़ेगा। रात में ऑटो वाले सैदाबाद जाने से कतराते हैं। नसीर इस वार्ता के दौरान करीब करीब चुप ही रहा था बस बीच बीच में उसकी मेसेजिंग जारी थी। सलमान चलने के लिए खड़ा हो गया तो नसीर ने मेरे कान में कहा इन्होंने तो अपनी बात साफ कर दी... अब चलो.. सोनिया की तबीयत कुछ खराब है, वह डाक्टर के यहां बैठे हैं चलते हैं। मिर्जा साहब ने एक कप और चाय की लालच दी, मैंने कहा जी नहीं, तकल्लुफ न करें, बहुत बहुत शुक्रिया, चलता हूं। और हम चले आये।

हम जितनी बार भी मकान देखने गये थे, उन जगहों से अजीब सी मनःस्थिति में लौटे थे। न तो आते वक्त सलमान ने मिर्जा साहब के यहां तोलमोल की बात की, न ही रास्ते में कुछ बोल रहा था। मैंने उससे कहा क्या बात है तुम तो कोई पंचलाइन दिये ही नहीं। वह बोला, मिर्जा साहब की बातें थीं ही ऐसी जिनकी कोई काट नहीं थी... खाली एक बात कहना चाहता था, वह यह कि अगर दोस्त बनने या बनाने में हमसे चूक हो भी गयी है तो ऑनलाइन दोस्त बना कर इसकी कमी हमने पूरी कर ली है। ऑनलाइन तो सैकड़ों नानमुस्लिम दोस्त हैं हमारे। नसीर बोला, भई यह तो वैसे ही है कि इलेक्शन में तुमने शुक्ला जी के फूफा को वोट नहीं दिया लेकिन ऑनलाइन एक्जिट पोल में उनका नाम लेकर कमी पूरी कर दी। हकीकत और फसाने में फर्क समझ भाई। ऑनलाइन में पास और ऑफलाइन में फेल।

सैदाबाद पहुंचे तो मुंह सूख कर कांटा हो गया था, माथा चकरा रहा था, दिल घबरा रहा था कि कहीं वो तीनों न आ धमकें। परवेज मिर्जा के यहां से लौटने के बाद हम जितना हैरान थे, उतना इससे पहले कभी नहीं। मुहल्ले थे, कालोनियां थीं फ्लैट थे कमरे और आउटहाउसजे थे, लेकिन हमारे लिए सभी दरवाजे बंद थे, परवेज अली मिर्जा के भी।

कल संडे है तो आज जी भर कर सो लें। सलमान बोला, चिराग मियां गलत बोल रहे हो, कल संडे है तो आज जी भर कर जग लें। मैंने उसकी तरफ देखा, फिर नसीर की तरफ। दोनों न जाने क्यों... बहुत प्यारे लग रहे थे, नसीर कुछ ज्यादा ही। दिन भर की थकान नदारद थी, बिना तकिये के, चारों खाने चित, आंखें बंद किये लेटा था। उसका चेहरा एक नर्म कोमल एहसास से भरा था। उसका रोम रोम मासूमियत से लबरेज था, ऐसे लग रहा था जैसे कोई मेमना। शायद सोनिया को याद कर रहा था। मोहब्बत में कैद शख्स ऐसा ही हो जाता है क्या हिन्दू, क्या मुसलमान। उसने आंखें खोलीं, बोला सोजा चिराग बहुत थक गया है तू। मुझे भी सोना है, कल सोनिया को लेकर डाक्टर के यहां जाऊंगा। मैंने कहा यहां आ जा भाई, मेरे पास, मेरा दिल बहुत घबरा रहा है, तुझे लेकर मैं बहुत फिकरमंद हूं। नसीर मुस्कराया, और मुझसे सट गया। मैंने उसके सर पर हाथ रखा और सहलाने लगा। वह जल्दी ही सो गया, और फिर मैं भी।

सुबह जल्दी ही नसीर निकल गया। सलमान अपने सिस्टम पर कुछ काम कर रहा था। मैं भी कुछ कुछ कर रहा था। सुबह सुबह जब हम चाय पीने निकले तो इमाम साहब टकरा गये। उनको

हम कभी कभी मुट्ठी बंद करके कुछ दे दिया कर रहे थे बदले में लाख दुआएं पाते थे खालिश उर्दू अरबी में। और फिर एक छोटी सी बिन मांगी अनचाही हिदायत नमाज पढ़ा करो बेटा, इससे रूहानी ताकत मिलती है, अल्ला भी खुश होता है। इस कायनात का शहंशाह जो ऊपर बैठा है उन्होंने उंगली ऊपर उठायी उसे अपनी बंदगी पसंद है (सलमान फुसफुसाया... उसे इतनी गंदगी पसंद है) अल्ला के अच्छे बंदे बनो (सैदाबाद के गंदे बच्चे बनो) रोज नहीं तो कम से कम जुमे की ही नमाज में शामिल हो जाया करो। फिर उन्होंने कई मुस्लिम वीआईपी के नाम गिनाये जो आफिस, कोर्ट कचहरी बिजनेस आदि बंद करके नमाज के लिए पांच मिनट का वक्त जरूर निकाल लिया करते थे, और एक हम लोग हैं!

आज भी जब हम चलने लगे तो उन्होंने वही बातें दुहरायीं, वही सलाह दी। हम हमेशा की तरह बगलें झांकते, झेंपने और शर्मिन्दा होने की एक्टिंग करते हुए... हां अबसे पढ़ेंगे, जी अबसे जरूर आयेंगे... बुदबुदाते हुए वहां से फूटना चाहते थे। लेकिन चूंकि वह हमारा हाथ अपने हाथों में लेकर बातें कर रहे थे, छुड़ा कर भागना बदतमीजी समझी जाती। हम खड़े रहे। वे बोले, एक बात और बेटा, कभी कभी तुम लोगों के साथ एक खातून को देखते हैं... तुम्हारी गाड़ी भी चलाती है... तेजतरार लड़की है... अब देखो... तुम लोगों को समझाने वाला मैं कौन होता हूं... लेकिन इस तरह गैर कौम की खातून को इधर लाना ठीक नहीं... लाना तो किसी भी खातून को ठीक नहीं... लेकिन गैर कौम की लड़की है तो तनाजा हो सकता है, बदगुमानी हो सकती है... और क्या कहें वे सही शब्द सोचने लगे देखो ये मामला कुछ भी बन सकता है। दंगे फसाद इसी तरह होते हैं, बात कुछ रहती है, और फिजूल में बदनाम होता है हमारा मजहब, और हमारे लोग। देखो, ध्यान रखना, अल्ला ताला तुम्हें लम्बी उम्र अता करे, तुम्हें खुश और आबाद रखे (फ्रेजरटाउन में चाहे सैदाबाद में रखे) जाओ जाओ अपना काम करो, बहुत वक्त ले लिया... अल्ला हाफिज! हम अल्ला हाफिज कहते हुए उनके चंगुल से बाहर निकल आये।

हमारा दोस्त सलमान कुछ ज्यादा ही सर झुका कर अदब से उनकी बात सुनने का इम्प्रेशन दे रहा था और बीच बीच में जी हां जी हां सही फरमा रहे हैं, सही कह रहे हैं बोलता जा रहा था। और कुछ पैरोडी भी। हम तीनों में या कहिए कि चारों में एक वही है जो मुसलमानों की खास लिटरेरी शगल यानी गजल और शैरो शायरी पर पकड़ रखता था। माशा अल्ला, गला भी अच्छा है। एक और फन में उस्तादी हासिल है उसको। वह है पैरोडी बनाने में गद्य पद्य दोनों में। आप सोच रहे होंगे इमाम साहब के चंगुल से छूटने के बाद जरूर उसने उनकी पैरोडी बनायी होगी या उनकी शान में कोई मजाहिया शेर रचा होगा उनकी दाढ़ी या उनके लिबास पर कोई तोलमोल वाला चुटकुला सुना दिया होगा। आप सही नहीं सोच रहे। वह कमरे में पहुंचा, कॉफी बनाया, एक कप अपने लिए, एक कप मेरे लिए। बहुत दिनों के बाद अपना गिटार उतारा, साफ किया और शुरू हो गया 'दिल में एक जहर सी उठी है अभी, कोई ताजा हवा चली है अभी' वह दो लाइनों पर ही नहीं रुका। कॉफी ठंडी होती रही आंख बंद किये हुए वह गाता रहा... आंख बंद किये मैं सुनता रहा। कुछ देर बात गजल खत्म हुई तो मैंने कहा वंस मोर। उसने फिर शुरू किया वहीं से... और अंत तक ले गया। फिर गिटार को एक तरफ रखते हुए हंस कर बोला सना खान जिन्दाबाद। मैंने भी सुर में सुर मिलाया नसीर अहमद जिन्दाबाद। फिर मैंने उसकी तारीफ कर दी जिसने ये गजल गायी दिल करता है उसका मुंह चूम लूं। उसने झट पलट कर कहा हां, इमाम साहब की उस गैर मुस्लिम खातून का नहीं जिसके लिये ये गायी गयी। फिर हम हंस पड़े।

सलमान की गजल ने कुछ देर के लिए हमारा ध्यान नसीर की तरफ से हटा लिया था, लेकिन बेचैनी थी कि कम होने का नाम नहीं ले रही थी। घर का न मिलना एक वजह हो सकती है लेकिन

वह तो हमें लम्बे समय से नहीं मिल रहा था। पुलिसवाले, निःसंदेह हमें डिस्टर्ब कर रहे थे लेकिन कभी कभी लगता था यह तो उनका रूटीन वर्क है... इसको अब इतना दिल पर लेना ठीक नहीं। पूछपाछ कर चले जाते हैं, और क्या। एक बार सैदाबाद से हटे कि यह भी परेशानी जाती रहेगी। बस किसी अच्छे रिहायशी इलाके में घर मिलने की देर थी। पता नहीं क्यों नसीर को लेकर उलझन थी। सलमान का नहीं कह सकता, वह तो मस्तमौला है, पर मैं नसीर को लेकर ही फंसा हुआ था। मिर्जा साहब के यहां से लौटने के बाद अजीब सी कैफियत हो रही थी उसकी। कैसे बच्चों जैसा बिहैव कर रहा था, कितना मासूम कितना निर्मल हो आया था उसका चेहरा! सच कहूं तो एक तरह की बेचारगी सी पनप आयी थी वहां। पहले तो ऐसा कभी नहीं था। मैंने उसे कई बार कॉल किया लेकिन उसका मोबाइल बंद जा रहा था। फिर सोनिया को मिलाया, उसका भी फोन साइलेण्ट था। और तभी चोपड़ा कॉलिंग... हुआ।

चोपड़ा बुरी तरह चिल्ला रहा था चिराग भाई सुनो तो... मैंने उसे बीच ही में काटा चोपड़ा छोड़ दो भाई... हम लोग तुम्हारे बताये मिर्जा साहब के यहां से भी हो आये वह चिल्लाये जा रहा था अरे नहीं सुनो सुनो... गड़बड़ हो गयी है तुम्हारे दोस्त को थाने में बैठा रखा है। मैंने फिर बीच में ही इसे रोका घबराओ नहीं चोपड़ा मैं दरअसल किसी अनहोनी को हर हाल में टालने की कोशिश कर रहा था घबराओ नहीं भाई वह गया होगा थाने, उसकी गाड़ी वहां है नहीं, तुम सुनो पहले... उसको जमीन पर उकड़ू बैठा रखा है... मैं यहीं हूं... मैंने आंख से देखा है और सुनो उसकी गर्लफ्रेंड बोले तो वही तुम लोगों की सिस्टर इन लॉ लेडिस सिपाही लोग उसे घेरे हुए हैं। जल्दी आओ तुम लोग जल्दी करो।

देखिये, सच को बयान करने के कई तरीके भले हों, लेकिन तरीका उसका एक और सिर्फ एक होता है। मैं सच को सच की जुबान में बयान कर देता हूं मैंने यह बात सलमान को बतायी और हम दोनों डर गये हम दोनों बिना बोले एक दूसरे को देख रहे थे... हमारा खून जैसे सूख गया और हमारा चेहरा फक पड़ गया। नसीर को उकड़ू बैठाने से ज्यादा सोनिया को पुलिस घेरे हुए थी ने हमें विचलित कर दिया। सलमान धीरे से बोला अब वे इधर ही आ रहे होंगे... हमें जरूर पकड़ेंगे। तो फिर हम क्या करें? सोनिया पुलिसवालों की गिरफ्त में और हम यहां हैं। क्या करना चाहिए... सीधे पुलिस स्टेशन भागें या कहीं छिप जायें। हमारा पैनिक बटन दब गया था। जब नहीं सोच पाये तो चोपड़ा को डरते डरते इधर से फोन मिलाया। क्या? तुम लोग वहीं हो अरे तुम इधर आओ... इनको छुड़ाने का कुछ करते हैं। मैंने कहा चोपड़ा, हम आ रहे हैं... यह तो बहुत बुरा हुआ... पर क्या कहीं वो हमें भी...। उनकी मां की, तुम आओ तो... सालों को देखता हूं... ऐसा कैसे कर सकते हैं.. आओ मैं हूं जल्दी करो।

हमें हिम्मत बंधी और हम हवाई चप्पल में ही चले। वहां जो देखा, अब आपसे क्या छिपाना, किसी से भी क्या छिपाना। एक तरफ मैं सलमान और चोपड़ा, दूसरी ओर वे सारे के सारे। ढेरों पुलिस वाले, ढेरों सिपाही, ढेरों हथियारबंद देश के रखवाले। चोपड़ा ने दिखाया, वहां देखो वहां कोने में। हमारे दोस्त को जमीन पर बैठाया था इन लोगों ने। वह सर नीचे किये बैठा था, उसके पैरों में चप्पल नहीं थी... पैण्ट घुटने से फट सी गयी थी...शर्ट और पैण्ट में मिट्टी भी लगी थी। शायद दौड़ा कर पकड़ा होगा। मेरा मानना है कि डॉ. के यहां जब वह लाइन में लगा होगा तो पुलिसवाले कहीं दूर खड़े उसको पार्क कर रहे होंगे कि वहां से निकले तो पकड़ें। इसकी नजर पहले उन पर पड़ी होगी... और एक साथ बहुत से पुलिसवालों को देख कर वह डर गया होगा और जान बचा कर भागा होगा। वहीं खड़े एक सिपाही ने बताया कि वह तो बच कर निकल गया था तो हम लोगों ने लड़की को पकड़ा। उसको

लेकर पुलिस स्टेशन आ गये और उसी से फोन करवाया। उसने कहा रेलवे स्टेशन के पास हूं। इससे कहलवाया वहीं रुको मैं भी आती हूं। फिर दो गाड़ी भर कर फोर्स गयी। हमारा दोस्त फिर भागने लगा। जान हथेली पर लेकर भाग रहा था... गिरता पड़ता। लेकिन पब्लिक आड़े आ गयी। पब्लिक ने पकड़ लिया। पुलिसवालों ने पब्लिक से हमारे दोस्त की जान बचायी और जीप में बैठा कर थाने ले आये। फिर हमने सोनिया को देखा। वह हमारे दोस्त से थोड़ी ही दूर पर खड़ी थी। सिपाही कह रहा था कि इसको बैठाने की बहुत कोशिश की गयी, अड़ गयी कि नहीं बैठेंगे। वह तो कह रही थी कि नसीर को ऐसे कैसे बैठाये हुए हैं... ढंग से बैठाइये। सिपाही ने कहा जब तक कैमरे वाले नहीं आये थे वह ऐसे ही पुलिसवालों से भिड़ी हुई थी। बाद में उसने स्कार्फ से अपना चेहरा ढक लिया। हमने देखा सोनिया की जींस शर्ट सब प्रापर थी शूज भी पहने हुए थी खाली चेहरा ढका था। अच्छा ही था जो उसने चेहरा ढक लिया था। खाली उसकी आंखें दिख रही थीं।

हम हिम्मत करके नजदीक गये। सोनिया ने हमें देखा, देखती रही फिर उसने सिर उधर कर लिया। अब हमने हमारे दोस्त को देखा। हमारे दोस्त ने हमें। अब आप रुकिये। यहां सच ही बोलना है तो सुनिये। चाहें तो हम सब कुछ लिख दें, सब कुछ बता दें कि तब क्या हुआ। हमारे दोस्त की हमसे जब आंखें मिलीं उस हालत में क्या हुआ। सच यह है कि मैं बताने की स्थिति में नहीं हूं... नहीं बता पाऊंगा। हिम्मत जवाब दे रही है। इसे अनकहा छोड़ देने की भीख मांगता हूं आपसे। हो सकता है सच पर झूठ हावी हो जाये। याकि झूठ पर सच।

हम पुलिसवालों की भीड़ में उन तीनों को ढूंढ रहे थे। दरअसल हम यहां उन्हीं को जानते थे। जितनी बार भी वे हमारे यहां आये थे हमसे पूछताछ की थी हमने उनसे पूरा कोआपरेट किया था। दरअसल हम एक दूसरे को पहचानने लगे थे। उन तीनों ने उसी होटल में खाना खाया जिसमें हमने। एक ने तो हमारे कमरे में पोर्न भी देखी थी। आखिर कुछ तो हमदर्दी हमसे होगी ही। पर वे कहीं नजर नहीं आ रहे थे। सब नये चेहरे थे। हिम्मत करके हम साहब के पास पहुंच गये। साहब ऊंचे पूरे काले कलूटे इंसान थे और टूटी फूटी हिन्दी बोलते थे या फिर कम टूटी फूटी इंग्लिश। अर्दली, ड्राइवर, चायवाले और अपने मुंशी से धाराप्रवाह कन्ड में बोलते देखा। चोपड़ा ने हाथ जोड़ लिए सर जी, ये दोनों बच्चे यहां लाये गये हैं... सर जी क्या हुआ इनको, सर जी हम इनके ही लोग हैं.. कुछ बतायेंगे क्यों? साहब ने अपनी भारी भरकम बिना रस वाली आवाज में पट पट बता दिया अरेस्ट नहीं किया है इनको। लेकिन कुछ इंटेलीजेंस इनपुट है हमारे पास उसी की छानबीन के लिए लाये हैं। अब आप लोग क्यों आ गये? अभी छोड़ देंगे घबराइये मत...। पूछिये हमने कहीं इनको इलट्रीट किया। कॉलर तक जो पकड़ा हो। वह तो खुद ही भागने लगा। ये तो कहो हमने इसे भीड़ से बचाया। लड़की से पूछो किसी ने मिसबिहेव किया। चोपड़ा ने फिर हाथ जोड़ लिए सर जी आलरेडी इनका डैमेज हो चुका है... नौकरी से समझो गये। कल पेपर में आ जायेगा... उस लड़की का सोचिये... अच्छे परिवार की है... उसके साथ तो बहुत ही बुरा हो गया। वहीं पूछ लेते और जाने देते सर जी।

इतना सारा सुन कर साहब थोड़ा हार्ड हो गये। पहले तो उन्होंने कैमरे वालों से दूर जाने को कहा और बोले अच्छे परिवार से हं? आप जानते हैं इसको? अरे भाई मुसलमान है। हमने बैकग्राउंड चेक किया है हिन्दू बन कर रह रही है यहां, पूछिये। आप कहते हैं अच्छे परिवार की है, है तो हम क्या करें। पूछताछ करके छोड़ देंगे... लॉकअप में वैसे भी जगह नहीं है। कई दिनों से पकड़ धकड़ चल रही है। पूछ लीजिए इसने अपने बाप को फोन किया है, वे आ रहे हैं।

इतने में साहब के भी साहब आ गये। चोपड़ा ने उनके सामने भी हाथ जोड़ लिए श्रीमान, बच्चों को जाने दें इनका जीवन खराब हो जायेगा। इनकी उमर ही क्या है। ये कहीं से गलत नहीं

हैं। मैं जानता हूँ इन्हें, रहम करें माई बाप। बड़े साहब पीये हुए थे। ऐसे में गोपनीय सूचना भी उगलने लगे देखो भाई, पीएम की विजिट हो रही है नेक्स्ट वीक। तो इलाके को थोड़ा सेनीटाइज कर रहे हैं... इटेलीजेंस रिपोर्ट है कि पीएम टारगेट पर हैं... उनको किडनैप करना चाहते हैं टेररिस्ट। कुछ स्लीपिंग सेल्स इसमें उनकी मदद कर रहे हैं। चोपड़ा ने जब यह सुना वह भी एक पुलिस अधिकारी से तो वह बिफर पड़ा क्या कहते हो सर जी, पागल हो गये हो आप लोग पीएम को अगवा कर लेंगे बैंगलोर से! डूब मरो पानी में सब लोग। वह मुड़ा और गर्दन लम्बी करके अपने गुस्से को थूक दिया। पिच्छ्व।

साहब और बड़े साहब को जैसे होश आया कि यह क्या हो रहा है! कैमरे वाले फिर से सटने लगे थे। उसमें कुछ हिन्दी वाले भी थे। चोपड़ा उनकी ओर मुखातिब होकर वही बात दुहराने लगा। कैमरे वालों को बाइट चाहिए थी। वे हमारे दोस्त और सोनिया की ओर बढ़ना चाहे लेकिन संतरियों ने उन्हें रोक दिया। चोपड़ा उन्हें उकसा रहा था कि जाइये जरा उन बच्चों से पूछिये। वह काला कलूटा मोटा साहब गुस्से से तिलमिला उठा वह चोपड़ा की ओर लपका और एक झन्नाटेदार तमाचा उसके गाल पर जड़ दिया। चोपड़ा लड़खड़ा गया, फिर गाल पर हाथ रखते हुए वहीं बैठ गया। गाल से ज्यादा उसके कान पर चोट लगी थी। दर्द और अपमान का घूंट पीता वह बैठा रहा। इतने में बड़ा साहब अपनी कुर्सी से उठा और छोटे साहब को एक तरफ बैठाते हुए बोला जाइये आप लोग जाइये.. . दो घंटे में इन्हें छोड़ दिया जायेगा। नहीं जायेंगे तो रात भर हम इन्हें यहीं रखेंगे और मारेंगे भी। जाइये। हम बाहर निकल कर गेट पर बैठ गये। पीछे से फिर कुछ पुलिस वाले आये और बेंत दिखाते हुए हमें घर जाने को कहा। हम गेट से दूर एक नाले के किनारे जाकर बैठ गये। फिर वहां भी कुछ पुलिस वाले आये और भगा दिया। हम और आगे जाकर एक टूटे फूटे मकान के पीछे छिप गये। वे वहां भी आ गये और हमें पीछे हटना पड़ा। फिर हम एक शराब की दूकान की ओट में छिप कर बैठ गये। वे वहां भी आ गये, दो सरकारी कुत्ते लेकर। बोले भागो नहीं तो इन्हें तुम्हारे ऊपर छोड़ देंगे। हम वहां से भी भागे। वे वहीं शराब पीने लगे। इसी क्रम में पीछे हटते हटते हम सैदाबाद आ गये। हमें लगता है देर रात जब हम सैदाबाद पहुंचे होंगे और चोपड़ा अपना गाल सहलाता चोपड़ी के पास पहुंचा होगा तभी पुलिस वालों ने नसीर अहमद वल्द वजीर अहमद और सना फातिमा खान बिनत आदम अली खान को छोड़ा होगा। ये बात तय है कि उनका इनकाउंटर नहीं किया गया था।

यह बात मैं इसलिए कह रहा हूँ कि जब हम कमरे पर पहुंचे बेचैनी जैसे एकदम से खत्म हो गयी। भूख तो न लगी हो लेकिन नींद ने धोखा नहीं दिया। हम सोये सुबह साढ़े दस बजे आंख खुली। ऑफिस तो वैसे नहीं जाना था। हर मंडे को ऑफिस से ऐसे डर लगता है जैसे छोटे बच्चों को स्कूल से। सलमान ने चाय बनायी, चाय पीकर हम जो पहला काम करना चाहे वह था अखबार खरीद कर देखना। इमाम साहब से नजर चुराते हुए मोड़ पर पहुंचे और सभी अखबारों के फ्रंट पेज से पेज नं. तीन तक देख डाला। कहीं कुछ नहीं था कोई फोटो न कोई खबर। जान में जान आयी। वापस लौटे और अब पता करना था कि दोनों छूटने के बाद कहां गये? उनका फोन अभी साइलेंट जा रहा था। लेकिन यह क्या? मेरे मोबाइल पर सात मिसकॉल थी। नसीर की। जब हम गहरी नींद में सो रहे थे तो उसने कुछ बताना चाहा था। मेरे शरीर का सारा रक्त जैसे भाप बन कर उड़ गया। सात मिसकॉल। हम सोते रहे। इतने में चोपड़ा कॉलिंग होने लगी सर जी, कर दिया न सालों ने काम। क्या? मेरे मुंह से निकला। सलमान मुझे ताकने लगा। अखबारवालों ने छाप दिया न, वह बोला। नहीं तो... नहीं मैं थरथरा उठा। लेकिन मैं समझ गया। उसने कहा दक्षिण भारत का पेज नं. पांच देख लो। उनके साथ हमारी तुम्हारी फोटो भी छपी है। बंदों को तो छोड़ दिया है लेकिन जांच जारी

रहेगी। लड़की रात में ही बाप के साथ फ्लाइट से घर गयी और तुम्हारे दोस्त से कहा गया है वह बैंगलोर छोड़ कर न जाये। यही नोटिस तुम्हारे पास भी आने वाली है।

मैंने नसीर को फोन लगाया। कोई फायदा नहीं। फिर फेसबुक और मेल का सहारा लिया कुछ नहीं हुआ। पुलिसवाले उसका कम्प्यूटर जरूर जब्त कर लिए होंगे। बड़ी मुश्किल से सना का नम्बर लगा। किसी पुरुष की आवाज आयी। उसके अबू ही हो सकते हैं, और कौन? मैंने कहा, जी सना से बात करना चाहता हूं... बैंगलोर से हूं... चिराग। कुछ देर चुप... फिर आवाज आयी सॉरी रांग नम्बर। फोन बंद हो गया। एक घंटे के बाद फिर फोन उठा, इस बार सोनिया थी। उसने हलो नहीं कहा। मेरे दस बार हलो हलो सोनिया, हलो सना, बोलो सोनिया, बोलो हमारी ड्राइवर, बोलो गर्लफ्रेंड, हलो क्या हुआ सना क्यों नहीं बोलती हो, उसकी आवाज आयी नसीर हमारे साथ एयरपोर्ट तक आया था बोला था वहां से सैदाबाद जाऊंगा। चिराग अब फोन मत करना, बाय।

सोनिया से यह हमारी आखिरी बात थी। कॉल करके वह क्या बताना चाहता था? किस मुश्किल में था वह। अब नसीर को देखना था। कहाँ गया होगा वह एयरपोर्ट से। फ्लाइट तो वह पकड़ नहीं सकता। पुलिस वालों ने उसे मना किया है बैंगलोर छोड़ने से। उसके एक दूर के रिश्तेदार शिवाजी नगर के आसपास रहते हैं, वहां गया होगा। जरूर वहीं गया होगा। हमने ड्राई किया। वहां भी नहीं था। अब हमें घबराना चाहिए था। लेकिन आश्चर्य है, घबराहट का नामोनिशान नहीं था। बल्कि मेरे सोच विचार की प्रक्रिया में एक प्रकार की क्रमबद्धता आ रही थी। मैं तार्किक ढंग से सोच रहा था मेरे सारे पैरामीटर्स सही काम कर रहे थे और मेरी मानसिक दशा एकदम सामान्य थी। मेरी शारीरिक दशा भी ठीक थी मेरे खून का दबाव, मेरी धड़कन, मेरी हरातर सब नार्मल। सलमान भी सही सलामत साबूत मेरे सामने था। यह सब इसलिए कि मैं शांतचित्त था, सारे विकल्पों पर विचार करते हुए सबसे अनिष्टकारी परिणाम या निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए स्वयं को पूरी तरह मानसिक रूप से तैयार कर लिया था मैंने। आखिर क्या हो सकता है... नसीर को। घर नहीं जा सकता या कहीं बाहर नहीं भाग सकता तो बैंगलोर में ही कहीं होगा। इसका मतलब है कि जब जब पुलिस स्टेशन पर बुलाया जायेगा, वह आयेगा। तब हम भी जायेंगे ही। और तभी हमारी उससे मुलाकात होगी। दूसरा यह कि क्या उसने सुसाइड वगैरह तो नहीं कर लिया। इसके विरोध में दो बातें थीं। पहला, वह बहुत ही मजबूत और मजेदार और दिल का अच्छा बंदा था। यह पुलिसवाले जानें न जानें हम तो जानते हैं। नसीर किसी को मार देगा लेकिन अपने हाथों मरेगा नहीं। क्या पुलिसवालों ने उसका एनकाउंटर कर दिया। नहीं, कभी नहीं। पुलिसवालों की बात से लगता था कि उन्हें सिर्फ शक था, कोई ठोस आधार उनके पास नहीं था। ऐसे में वे भला किसी की जान कैसे ले सकते हैं। दूसरे यह कि तमाम न्यूज वालों ने उसे पुलिस स्टेशन में जिन्दा देखा है और उसकी फोटो छपी है जिसमें वह जिन्दा ही दिखायी पड़ रहा है। अब पुलिस वाले कुछ करेंगे तो खुद फंसेंगे। तो फिर नसीर गया कहाँ? उतना सब तर्क वितर्क करने के बाद जब मैंने यह कहा कि फिर नसीर गया कहाँ तो सलमान फूट फूट कर रोने लगा। मैंने उसे समझाया देख सलमान, मान लो कि तुम्हें मेरा विश्लेषण और निष्कर्ष सही नहीं लग रहा है तो एक सिम्पल चीज समझो भाई यह तो तय है कि सोनिया सेफ और साउंड है। उससे तो हमने बात की है। तो अगर सोनिया जिन्दा है तो नसीर कैसे मर सकता है। ऐसे कैसे हो सकता है कि वे आशिक को मार दें जान से, और माशूक को छोड़ दें तड़पने के लिए। वे इतने निर्दयी नहीं हो सकते। सलमान फिर रोने लगा। मैंने कहा चल इधर आ... इधर आ मेरे पास... आखिर मैं तो हूं। वह मेरे पास आकर लिपट गया।

दो दिन और गुजर गये तो चोपड़ा टकरा गया। उसने परवेज मिर्जा का भेजा हुआ रुक्का

दिया। बोला उधर से गुजर रहा था तो मिर्जा साहब ने थमा दिया था। उर्दू में था तो सलमान को कुछ काम मिल गया। लिखा था मेरे बच्चो, तुम लोगों के जाने के बाद मैं रात भर सोचता रहा। तुम लोग बेगुनाह हो और तुम्हें नाहक परेशान किया जा रहा है। मैंने भी तुम्हें सपोर्ट नहीं किया। पर मेरी मजबूरी समझो। बड़े जद्दोजहद के बाद यहां तक पहुंचा हूं इसलिए थोड़ी हिचक थी कि कहीं...। लेकिन अब सोचता हूं कि नहीं... अपने लिए जिया तो क्या जिया। बेटा, तुम लोग आओ, शौक से आओ। मेरे साथ रहो। तुम्हारे मिर्जा।

जरूरी तो नहीं लेकिन यहां बताता चलूं कि सलमान ने आदतन जानबूझ पहली पंक्ति में 'सोचता' में 'च' को साइलेंट करके पढ़ा था। हंसने का मुकाम था, हंस नहीं सके।

चोपड़ा चला गया। समझाता गया कि अब यह सब छोड़ो, जहां पड़े हो, पड़े रहो। पुलिस वालों से पंगा लेना ठीक नहीं। मैं आता जाता रहूंगा।

आज कई महीने होने को आये। नसीर का कुछ पता नहीं चला। हमारी चौकड़ी टूट गयी। अब हम खाली दो बचे हैं। नसीर और सोनिया की बेपनाह मुहब्बत के गवाह रहे हैं हम दोनों। वे बिछड़ गये एक दूसरे से। किसकी नजर लग गयी उनको। किसकी बुरी नजर लग गयी सना खान की उड़ान को। हमारी नौकरियां चली गयीं। हमारी पीठ से हमारा कम्प्यूटर उतार लिया गया। हमारी जेब से हमारा सेलफोन निकाल लिया गया। कितने कमनसीब हैं हम। अपने लैपटॉप और अपने मोबाइल के बिना निहत्थे जी रहे हैं। दुनिया अच्छी नहीं लगती। बड़े बुरे फंसे हम। घर से दूर... बिना उन्हें कुछ बताये... अपने ऊपर लगे लांछन को धोने में लगे हैं। नसीर को तलाशते जब न तब पुलिस वाले आ धमकते हैं। सलमान बिखर गया है। कहता है क्या करूं कहां जाऊं क्या कर लूं। मैं उसे संभाल रहा हूं।

नसीर, तू कहां है भाई। तुम्हारे बिना अच्छा नहीं लगता प्यारे। और एक दिन सोते में वह मिल गया। मैं बड़ी तेजी से उसकी ओर लपका, कहां थे मित्र, कहां चले गये थे हमें छोड़ कर मेरे भाई। मैं उससे लिपट जाना चाहता था। लेकिन उसने कोई गर्मजोशी नहीं दिखायी। मेरा दिल रोने को हुआ, अच्छा यह बताओ कहां है हमारी गर्लफ्रेंड... तुम्हारी महबूबा सोनिया। वह चुप खड़ा था... चुपचाप। और यह क्या, वह मुड़ा और जाने लगा। मैंने कहा नहीं, बोलो तुम कहां हो, कहां रहते हो... आंखें तरस गयीं तुम्हें देखे हुए... सना का भी कुछ पता नहीं।... सचमुच उस दिन आंख लग गयी थी नहीं तो तुम्हारा मिसकाल जरूर उठाता। पुलिस वाले दौड़ा रहे थे तुम्हें तो क्यों नहीं भाग के आ गये थे सैदाबाद हमारे पास। एक बहुत धीमी हंसी, और बोला, कहीं नहीं गया हूं... यहीं भटक रहा हूं... दूढ़ता फिर रहा हूं एक नया साथी, एक नया दोस्त। फूंक फूंक कर कदम बढ़ा रहा हूं... इंशा अल्लाह इस बार चूक नहीं होगी। सलमान कैसा है, अपना खयाल रखो... चलता हूं... खुदा हाफिज।

खजाना

मनोज कुमार पांडेय

इतिहास, भूगोल और किंवदंतियां

हम पंडित रामअभिलाष के वंशज थे। जिनके बारे में गांव गिरांव के बूढ़े न जाने कितने किस्से अपने भीतर छुपाये बैठे थे। वह हमारे इलाके के लगभग मिथकीय व्यक्ति थे। हम इस बात के गर्वबोध से भरे थे कि हम रामअभिलाष के वंशज हैं। पर कई बार दूसरों के पास उनसे जुड़े किस्से कुछ ज्यादा ही मिलते और इस तरह से हमको खुद हमारे बारे में नयी नयी बातें पता चलती रहतीं।

हम यहां के मूल निवासी नहीं थे। आज के लगभग डेढ़ सौ साल पहले एक बच्चे को अपने कंधे पर बिठाये रामअभिलाष यहां प्रकट हुए थे। वह 1857 में शामिल थे। और अब जबकि विद्रोही हार गये थे और जगह जगह पेड़ों पर लटकाये जा रहे थे वह अपने इकलौते बेटे के साथ भाग निकले थे। उनके परिवार के सारे के सारे लोग पेड़ों पर लटका दिये गये थे। अब वहां उनका कुछ भी नहीं बचा था। वापसी की कोई सम्भावना भी।

अभिलाषपुर, जहां हम आज रहते हैं वहां आने के पहले वह कहां कहां भटके इसके बारे में किसी को कुछ भी नहीं मालूम। इस बारे में खुद उन्होंने भी कभी किसी को कुछ भी नहीं बताया। पर 1857 के लगभग दस सालों बाद जब वह यहां पहुंचे तो एक तेरह चौदह साल का किशोर और एक कुत्ता उनके साथ थे। वह दोनों पिता पुत्र की बजाय गुरु शिष्य की तरह का व्यवहार कर रहे थे। उस किशोर ने कभी अकेले में भी उन्हें पिता नहीं कहा बल्कि गुरुजी ही कहता रहा। यह इतना लम्बा चला कि परम्परा ही चल निकली। तब से हमारे परिवार में लगातार पिता को गुरु और पुत्र पुत्री को चेला चेला कहा जाता रहा। यहां तक कि यह परम्परा आज भी कई घरों में बची हुई है।

हम रामअभिलाष की आठवीं पीढ़ी से हैं।

जब वह यहां आये तो उन्होंने यहां के जमींदार लोचन तिवारी से अपने रहने के लिए थोड़ी सी जमीन मांगी। उन्होंने लोचन से कहा था कि जो जमीन उनके किसी काम की न हो वही उन्हें दान में दे दी जाय। और न जाने किस अदेखे के संकेत से लोचन की निगाहें अनायास ही इस टीले की तरफ उठ गयी थीं। लोचन ने उन्हें गांव के पश्चिमी तरफ का सैकड़ों सालों से खाली पड़ा टीला दे दिया। पूरा का पूरा। यह ऊंचा नीचा टीला कई बीघे में फैला हुआ था। इस पर कुछ नीम बबूल के पेड़ों के अलावा नागफनियों और रूस का पूरा एक जंगल फैला हुआ था।

कहते हैं कि यहां कभी किसी छोटे मोटे राजा का महल होता था जो सत्तावन के लगभग सौ साल पहले के किसी सत्तावन की लड़ाई में ध्वस्त कर दिया गया था। राजा और उसके परिवार के लोग मार दिये गये थे। नौकर चाकर कारिंदे सब मार दिये गये थे। शायद ही कोई बचा हो। कहते हैं कि कोई एक कुआं था जो लाशों से पाट दिया गया था। और लूटपाट के बाद किले में आग लगा दी गयी थी। ढहा दिया गया था उसे।

इसके पीछे कोई गहरी बात न होकर एक छोटी सी नाक की लड़ाई थी जो धीरे धीरे एक भयानक और असहनीय घृणा में बदल गयी थी। उनके पास इसके अतिरिक्त कोई और चारा नहीं बचा था कि वे उन्हें मार काट डालें जिनसे कि वह घृणा करते थे।

कहते हैं कि यह हमला रात के तीसरे पहर में किया गया था। मशालों की रोशनी में चमकती हुई तलवारों और खंजरों ने न जाने कितने शरीरों से उनकी चेतना छीन ली थी। और उन्हें हमेशा हमेशा के लिए गहरी नींद में सुला दिया था। हमलावरों ने अपने चेहरे पर काले कपड़े बांध रखे थे। पर आंखें तो सबकी खुली थीं जिनमें एक हत्यारी घृणा तैर रही थी। इसके बावजूद मरने वालों ने मारने वालों को पहचान लिया था और अविश्वास से उनकी आंखें फैल गयी थीं।

पर यह पूरी तरह सच नहीं है। ज्यादातर मरने वालों को तो उनके मरने का पता ही नहीं चला था। सोते सोते ही उनका गला काट दिया गया था। इसलिए क्या पता कि वे आज तक अपने को सोता हुआ ही मान रहे हों और अपने जगने का इंतजार कर रहे हों। उन्हें इस बात पर आश्चर्य हो रहा हो कि अचानक से उनकी रात इतनी लम्बी और काली कैसे हो गयी है! और इस बीच उन्हें इतने रक्तरंजित सपने क्यों आ रहे हैं! क्या पता कि बहुतों ने सपनों में ही दम तोड़ दिया हो और अभी तक यह माने बैठे हों कि नींद खुलते ही उनका सपना टूट जायेगा और वह फिर से जी उठेंगे।

पर यह सब तो सैकड़ों साल पुरानी बातें हैं। लगभग ढाई सौ साल पहले की बातें। अब तक तो वे सोते सोते भी इंतहाई रूप से थक गये होंगे और उनकी आंखें भी दुखने लगी होंगी। इसीलिए पुनर्जन्म बहुत जरूरी चीज है।

कहते हैं कि लाशों के सड़ने की बदबू वहां अगले सौ सालों तक फैली रही। लोगों के लिए इसके आसपास से गुजरना भी मुश्किल बना रहा। यह तभी दूर हुई जब रामअभिलाष वहां बसे।

रामअभिलाष ने अकेले दम कुआं खोदा। अकेले दम पर ईंटें पार्थीं और अकेले दम पर ही अपना एक छोटा सा घर खड़ा किया। जो दूर से ही दिखायी पड़ता। लोग अचरज से भर जाते कि कोई अकेला व्यक्ति यह सब कैसे कर सकता है? पर यह सब सोचते हुए वे पता नहीं क्यों उस पंद्रह वर्षीय किशोर को भूल ही जाते जो इस सब में रामअभिलाष का बराबर का भागीदार था। दोनों ने मिल कर अगले चार पांच सालों में उस टीले को इतना खूबसूरत बना दिया कि यह लोगों के लिए अचम्भा पैदा करने वाली बात रही। और यहीं से तमाम इस तरह की कथाएं जन्मीं

कि पंडित रामअभिलाष ने टीले पर के भूतों को साध लिया है और यह उन्हीं की मेहनत का फल है।

भूतों की बात तो रामअभिलाष जानें पर यह उनकी व्यवहार बुद्धि ही थी जिसने यह कर दिखाया था। उन्होंने उसी खंडहर में दबी सैकड़ों साल पुरानी ईंटें खोद निकाली थीं और मिट्टी के गारे से एक पर एक जमाते गये थे। ईंटें बाहर आकर खुश हो गयी थीं और उन्होंने रामअभिलाष का भरपूर साथ दिया था। ईंटों ने ही उन्हें एक कुएं का भी रास्ता दिखाया था जिसमें से कम से कम सौ सालों से पानी नहीं निकाला गया था। उन सौ सालों का बचा हुआ पानी रामअभिलाष पिता पुत्र ने अगले तीन चार सालों में ही खर्च कर डाला था। नतीजे में यह टीला एक हरे भरे महकते हुए उपवन में बदल गया था।

यह सब इतना धीरे धीरे और सहजता से हुआ कि इस तरफ लोगों का ध्यान ही नहीं गया और जब गया तो वे अवाक रह गये। लोचन तिवारी तक भी यह खबर पहुंची और वह एक सहज उत्सुकता के साथ टीले पर पहुंच ही गये। ऊपर किशोर पेड़ों और तरह तरह के फूलों से आती हुई खुशबू ने उनका स्वागत किया।

शायद इसमें वातावरण के सम्मोहन का भी असर रहा हो जब उन्होंने रामअभिलाष के तेजस्वी बेटे को देखा जिसे इन चार पांच सालों में उन्होंने न जाने कितनी बार देखा होगा। पर आज के देखने में कुछ खास था। यह किशोर जिसका नाम राम इकबाल था अब लगभग बीस साल का हो रहा था। और उसके चेहरे पर दाढ़ी मूंछ आये अभी थोड़ा ही समय बीता था। अचानक से लोचन तिवारी के मन में एक खयाल उभरा और किसी निश्चय की तरह भीतर बैठ गया।

उन्होंने उसी दिन रामअभिलाष के सामने यह प्रस्ताव रखा कि वह अपनी बेटी की शादी उनके बेटे से करना चाहते हैं। जिसे रामअभिलाष ने बिना किसी अतिरिक्त उत्साह के हरि की इच्छा कह कर स्वीकार कर लिया। और बदले में बहू के साथ पचासों बीघे जमीन और टीले पर एकाधिकार पाया।

यह सब बहुत पुरानी बातें हैं।

अब तो रामअभिलाष का घर रामअभिलाष के पुरवा के रास्ते अभिलाषपुर में बदल गया है। जिसमें करीब पैंतीस घर हमारे ही पट्टीदारों के हैं। बाकी पंद्रह बीस घर उन जातियों के हैं जिन्हें हमने अपने काम के लिए समय समय पर यहां ला बसाया। इस तरह से एक बाप बेटा या गुरु चेला से शुरू हुआ यह सिलसिला आज एक पूरे गांव में बदल गया है।

बीच में बहुत सारे किस्से बने बिगड़े। जैसे बहुतेरे लोगों का मानना था कि राम इकबाल रामअभिलाष के बेटे नहीं थे। रामअभिलाष का बेटा तो गदर के बाद की दस साला बदहली की भेंट चढ़ चुका था। यह तो कोई अनाथ लड़का था जिसके परिजन सत्तावन में मारे गये थे और जो इधर उधर भटकते हुए छुपते भागते रामअभिलाष से जा टकराया था। कुछ लोग तो यह भी कहते थे कि वह मुसलमान लड़का था जिसे रामअभिलाष ने हिन्दू बना कर पेश किया था।

हमारे कुछ पट्टीदार जिनके पुरखे मुसलमान हो गये थे उसे वे मुसलमान ही मानते थे और उसका नाम इकबाल बताते थे जिसे रामअभिलाष ने बदल कर रामइकबाल कर दिया था। खैर यह सभी किस्से हैं। ये कितने सच हैं कितने झूठ यह जानने का हमारे पास कोई भी जरिया नहीं था। और इससे भी बढ़ कर बात यह थी कि इन किस्सों के बावजूद हमारा जीवन चल रहा था। हम जमींदारों के दामाद और भानजे भतीजे थे। हम पूरे इलाके के मानदान थे। और धीरे धीरे करके पूरे इलाके की पुरोहिताई और गुरुआने पर हमारा कब्जा था। और क्या चाहिए था हमें। अब हम अभिलाषपुर के निवासी थे और अभिलाषपुर हमारा था।

हमारा वर्तमान यानी कौड़ी के तीन होना

जैसे जैसे हमारे घर बंटते गये वैसे वैसे हमारी जमीनें और सम्पन्नता भी बंटती गयी। और आज की तारीख में हम कौड़ी के तीन थे। गांव के कुछ दूसरे लोगों की तुलना में हमारे पास एक चमकदार भूत जरूर था पर वह भूत हमारे किसी काम का नहीं था।

हमारे पास अब थोड़े थोड़े खेत थे बस। पेड़ और बाग ज्यादातर साझा ही थे। अब हममें से कुछ लोगों को यहां से बाहर निकलने के बारे में सोचना चाहिए था। पर बाहर निकलने का खयाल ही हमारा जी डराता था। बाहर निकलते ही हमें श्रम करना पड़ता और श्रम हमें भूत की तरह से डराता था।

हमारे बीच से कुछ लोग बाहर जरूर गये थे पर वह गद्दियों पर गये थे। उन्होंने ऐसी लड़कियों से ब्याह रचाया था जिनके भाई नहीं थे। और वे ससुराल जाकर जम गये थे। इसी तरह से कुछ दूसरे अभिलाषपुर आये भी थे।

अपवाद मात्र एक थे। करीब पांच छह पीढ़ी पहले हमारे एक पट्टीदार बाहर निकले थे। और न जाने किन परिस्थितियों में उन्होंने किसी मुस्लिम जमींदार के यहां खाना पकाने की नौकरी कर ली। जब कई साल बाद वह वापस लौटे तो उनके लौटने के पहले ही उनके बारे में तमाम सूचनाएं हम तक पहुंच चुकी थीं। सो उनके बाकी पट्टीदारों ने उनके साथ रोटी का सम्बंध तोड़ लिया।

बदले में कुछ दिनों की कश्मकश के बाद एक दिन उन्होंने मौलवी बुलाया और बाकायदा मुसलमान हो गये।

वह भी हमारे ही हिस्से थे। जो खून हमारी रगों में बहता था वही उनकी रगों में भी। पर धर्म बदलते ही वह हमारे लिए बेगाने बल्कि अछूत हो गये थे। हम उनसे दुश्मनों की तरह से बर्ताव करने लगे। शायद यही वजह थी कि जब पाकिस्तान बना तो वह उसमें शामिल होने वाले जत्थे में तुरंत ही शामिल हो गये। दो बेटे भी उनके साथ ही गये। बाकी दो बेटों और उनकी पत्नी ने उनके साथ जाने से मना कर दिया। और वे यहीं रह गये हमारे साथ। अपनी पूरी ठसक के साथ। एक मस्जिद भी खड़ी कर ली है। और अब कुल मिला कर नौ घर हैं।

जो यहां से गये वह पाकिस्तान पहुंचे या नहीं, अगर पहुंच गये तो उनके वंशज वहां किस हाल में हैं इस बारे में हमें कुछ भी नहीं पता।

पर हम जो यहां रह गये थे अब छीज रहे थे धीरे धीरे। हमारे कुछ गिने चुने पट्टीदारों को छोड़ दें जिन्होंने सरकारी नौकरियां हासिल कीं और आसपास के शहरों में बस गये। वे अब अभिलाषपुर कभी कभार ही आते हैं। ज्यादातर अपनी खेती बारी का हिसाब करने। जोकि हममें से ही कोई जोत रहा होता है।

एक समय था कि जब हमारे परिवार के लोग खेती के कामों में हाथ भी नहीं लगाते थे। पहले के जमाने में बेगार, बाद में मजदूरी और अधिए पर होती रहीं खेतियां। एक घमंड भरा आप्तवचन था कि खेत में काम करना हम ब्राह्मणों का काम नहीं। और करते भी क्यों जब इतनी सस्ती दरों पर मजदूर और हलवाहे उपलब्ध थे। यह लगभग सही होगा अगर कहा जाय कि हम मेहनत करना भूल ही चुके थे।

बाद में यह समय भी आया कि अगर हम खुद से खेती में न लगते तो शायद भूखों ही मर जाते याकि हमें अभिलाषपुर छोड़ कर काम धंधे की तलाश में कहीं बाहर निकलना पड़ता।

सबसे पहले उन लोगों ने अपना काम खुद करना शुरू किया जो मुसलमान हो चुके थे। बाद में उनकी देखादेखी छेदी पंडित भी एक दिन हल बैल के साथ खेत में दिखायी दिये। यह एक न देखा

गया दृश्य था। अभिलाषपुर के ज्यादातर पंडितों ने उनके इस कदम की घनघोर भर्त्सना की। उन्हें बिरादरी बाहर करने की धमकियां दी गयीं। पर वह अविचल रहे। उन्होंने सीधे एक वाक्य से सारी धमकियों को खारिज कर दिया कि बिरादरी को देखूं या अपने बच्चों का मुंह देखूं।

धीरे धीरे सभी लोगों को छेदी पंडित के रास्ते पर चलना पड़ा। शुरुआत में शर्म के मारे कई लोगों ने रात में काम करना शुरू किया। जिससे कि काम करते हुए वह लोगों की नजरों में आने से बचे रहें। यह एक झूठमूठ का पर्दा था जिसके आरपार सब कुछ दिखता था पर इसे गिरने में भी कई साल लग गये।

पर इस सबके बावजूद स्थितियां दारुण ही होती चली गयीं। हम खानदानी रूप से बस पुरोहिती का काम जानते थे। और अब अभिलाषपुर में ही पचासों पुरोहित थे। आसपास के गांवों में भी उनकी संख्या कम नहीं थी। लोगों के मन में हमारी इज्जत नहीं रही थी। वे हमारे सामने ही हमारा मजाक उड़ाते। लालची, मुफ्तखोर, केंचुआ, ढोंगी जैसे विशेषणों से नवाजते। और हमसे बेहतर यह कौन जानता था कि हम यह सब सचमुच थे। ऊपर से पवित्र और आध्यात्मिक दिखने की कोशिश, पर भीतर से खोखले, दीनहीन लालची, मुफ्तखोर, केंचुआ, ढोंगी।

हम परजीवी थे। पर मुश्किल यह थी कि अभी तक हम जिन पर रोब गांठते हुए पल रहे थे उन्होंने हमसे रोब खाना बंद कर दिया था। पहले हम उन पर तरस खाते थे अब वे हम पर तरस खा रहे थे। उन्हें हमारा डर नहीं रहा था।

उनके पास जमीनें नहीं थीं। वे पहले भी अपनी मेहनत की कमाई खा रहे थे। और अभी भी। अभी हममें से ज्यादातर की जमीनें घट रही थीं और उसी अनुपात में उनमें से ज्यादातर सम्पन्न हो रहे थे।

खुद हमारे वे पट्टीदार जो मुसलमान हो गये थे उनकी हालत भी हमसे बेहतर थी। उन्हें टेम्पो चलाने से लेकर किसी कस्बे के किनारे चाय समोसे की दुकान चलाने तक से कोई एतराज नहीं था। और उनमें से एक लड़के ने अभी थोड़े दिनों पहले नजदीकी बाजार में बाल काटने की दुकान खोली थी। क्या धर्म बदलने से संस्कार इस कदर बदल जाते हैं? हम अक्सर सोचते पर भूल जाते कि उसके बाद उन पर से उस विनाशकारी चेतना का दबाव खत्म हो गया था जिससे कि हम जूझ रहे थे। दूसरे धर्म बदलते ही उन्हें हमारी तुलना में बहुत ज्यादा शारीरिक और मानसिक संघर्षों से दो चार होना पड़ा था। जिससे कि हम शायद कभी नहीं हुए या कि अब हो रहे हैं।

कोई नहीं जानता कि इसकी शुरुआत कैसे हुई थी पर इस मुश्किल समय में जब हमें नये सिरे से काम में जुट जाना था हम कुछ हवाई सपनों में खो गये। हमारे बीच से जो लोग काम की तलाश में या बेहतरी की तलाश में बाहर निकले हमने उन्हें नजरअंदाज कर दिया। हमें आगे की बजाय पीछे देखने में ज्यादा सुख मिलता। ऐसा करते हुए कई बार हमें एक भयानक उदासी घेर लेती पर यह उदासी भी हमें भली लगती।

यह हमें अतीत के उन चमकदार दिनों की तरफ ले जाती जहां सब कुछ सुनहरा था। हम बार बार उन्हीं दिनों की तरफ लौटना चाहते। हम फिर से रामअभिलाष या रामइकबाल के समय में लौट जाना चाहते। यह सब करते हुए हम एक आभासी दुनिया में पहुंच जाते जहां रामअभिलाष या रामइकबाल साक्षात् हमारी आंखों के सामने खड़े हो जाते जबकि हममें से किसी ने भी उन्हें नहीं देखा था। और उनकी कोई तस्वीर भी हमारे पास उपलब्ध नहीं थी।

यह उन्हीं दिनों की बात रही होगी जब हममें से बहुतों ने यथार्थ की बजाय किस्सों में रहना शुरू किया होगा। रूखे वर्तमान की तुलना में किस्सों की दुनिया उन्हें ज्यादा हरीभरी और रंगीन लगी

होगी। और वे धीरे धीरे करके एक दिन वहीं पर बस गये होंगे। उन्हें अचम्भा हुआ होगा जब उन्होंने वहां अपने अनेक पुरखों पट्टीदारों को पाया होगा। और खुश हुए होंगे कि यहां वे अकेले नहीं पड़ेंगे।

हाशिए के किस्से और उनका यथार्थ में बदल जाना

हम बचपन से ही सुनते आये थे कि हमारे चारों ओर खजाने फैले हुए हैं। हमारे नीचे जमीन में जगह जगह पर अथाह धन गड़ा हुआ है। इस बात में सचाई थी पर आंशिक ही। हर घर में कुछ न कुछ मुश्किल वक्तों के लिए गाड़ कर रखा जाता था। सिक्के, मुहरें और जेवर ही नहीं बर्तन तक जमीन में गाड़ कर रखे जाते थे। गोपनीयता और सुरक्षा के लिहाज से घर का मालिक घर के सदस्यों को भी नहीं बताता था कि उसने धन कहां गाड़ रखा है? कई बार वह यह जानकारी किसी को दिये बिना ही मर जाता था। ऐसे में वह गड़ा हुआ धन जहां का तहां गड़ा ही रह जाता था। और उसका मिल पाना पूरी तरह से संयोगों पर निर्भर करता था जो कि कभी कभार ही घटित होते थे।

मैं जब छोटा था तो ऐसे किस्से मुझे बहुत अपने से लगते थे जिनमें खजानों का जिक्र होता था। और हमारे इलाके में ऐसे किस्सों की कोई कमी नहीं थी। यह सभी किस्से हमारे सामने यथार्थ के शिल्प में आते थे। हमारे नजदीकी पुरखे या सचमुच के लोग उसमें हमेशा चरित्रों के रूप में मौजूद रहते थे। हम अपने पुरखों से कुछ इसी तरह से परिचित हुए।

बहुतेरे पुरखे भूतों के रूप में भी सामने आते थे। कुछ खजानों की रक्षा के लिए सांप बन गये थे। इसीलिए बचपन से ही सांप और भूत मेरे लिए दोहरे सम्मोहन की चीज रहे। एक तो डर, अनदेखे रहस्यों का सम्मोहन और दूसरे इस बात का कि मैं अपने न जाने किस पुरखे से अभी मिल रहा हूं।

सांपों को मैं खोजता, उनका दूर तक पीछा करता। उनके बिलों तक, पेड़ों की खोखलों तक जहां कि वे रहते थे, और उनके दुश्मन नेवले। सांप नेवले की लड़ाइयां, सांप के जहर से बचने की वृत्तियों के किस्से, नागमणि और उसके चमत्कारी असर के किस्से सबके सब एकदम यथार्थ की शक्त में हमारे सामने आते। एक दूसरे से जुड़ते हुए, और खजानों का एक महावृत्तांत तैयार करते हुए।

जब मैंने स्कूल जाना शुरू किया और अगले तीन चार साल बाद जब मैंने तरह तरह के आक्रमणकारियों के बारे में जाना तो मैं हमेशा सोचता था कि वे पूरब दिशा से आये होंगे। मुझे ऐसे सपने आते जिनमें कभी अंग्रेज आक्रमण कर रहे होते तो कभी तुर्क। यह सब के सब पूरब से ही आते दिखायी पड़ते और खजानों को लूटने के बाद उसी दिशा में वापस लौट जाते।

इसके पीछे एकदम निजी वजहें थीं। पूरब की तरफ ही हमारा सबसे नजदीकी बाजार था। लोगों का ज्यादातर आना जाना पूरब की तरफ से ही था। बेड़िया बनजारे भी पूरब की दिशा से ही आते और इसी तालाब के किनारे डेरा डालते। यह बनजारों के बारे में कायदे से कुछ भी न जानने या उनके बारे में हमारे घरों में फैले तरह तरह के किस्सों का ही असर रहा होगा कि मेरे सपने में जब अंग्रेज या मुगल आक्रमण करने के लिए आते तो वह बनजारों के ही भेस में होते। वे घोड़ों की बजाय भैंसों पर बैठ कर आते। और हमारी बस्तियां वीरान हो जातीं। लोग पेड़ों पर टंगे नजर आते। सपना खत्म होने के बाद सभी लोग पेड़ों पर से उतर आते और अपने अपने काम में लग जाते। और बनजारे वहीं तालाब के किनारे पहुंच जाते।

तालाब का नाम था सुखवा का ताल। यह एक बेहद छिछला ताल था। यह विस्तार में काफी बड़ा था पर इसे बरसात में भी खड़े खड़े पार किया जा सकता था। सम्भवतः टीला यहीं की मिट्टी

से बना था। हो सकता है कि कभी यह गहरा रहा हो पर अब यह एक छिछले ताल में बदल गया था। लगभग पूरे ही ताल में करेमुआ फैला हुआ था जिसका साग अक्सर हमारे घरों में बनता।

तालाब का नाम सुखवा क्यों है, एक बार मैंने हनुमान मिसिर से पूछा था। उन्होंने बताया कि पहले इस तरह से दुकानें नहीं होती थीं जहां सब कुछ मिल जाये। तो बनजारे आते थे कुछ सामान बेचते कुछ खरीदते और आगे बढ़ जाते। सुखवा ऐसे ही बनजारों के एक सरदार का नाम था जो अक्सर इस ताल के किनारे डेरा डालता था। उसी के नाम पर इस ताल का नाम सुखवा का ताल पड़ गया धीरे धीरे।

यह गर्मियों में इस कदर सूख जाता कि सूख कर इसकी मिट्टी चटक जाती। उसमें गहरी दरारें पड़ जातीं। इसी ताल के साथ एक बीजक जुड़ा था जिससे हमारे इलाके का बच्चा बच्चा परिचित था। बीजक था, एक लाख लगाओ तो नौ लाख पाओ पता नहीं सुखवा इस पार या उस पार। इस बीजक में एक लाख खर्च करने पर नौ लाख मिलने का आश्वासन था पर पैसा खर्च करने की विधि और उसकी जगह नहीं निश्चित थी। हम सब इसमें पूरा विश्वास रखते और नौ लाख पाने के सपने देखते।

इस तरह के बीजकों की एक लम्बी व्याप्ति थी। हर दो चार गांव के बाद कोई न कोई ऐसी जगह मिलती थी जहां इस तरह का कोई अमूर्त अनिश्चित बीजक प्रचलित होता। कहते हैं कि इस तरह के धन अमूमन बनजारों के होते थे जो चोर डाकुओं के डर के मारे वह जगह जगह छुपा देते थे। लोग इनके बारे में सोचने से भी डरते थे। लोगों का मानना था कि बनजारे अपनी धन दौलत को जीवधारी बना देते थे। जो उस धन की अनंत काल तक रखवाली किया करता था।

खजाने को जीवधारी बनाने के भी अनेक किस्से थे। सबसे ज्यादा प्रचलित किस्सा यह था कि जमीन में जहां धन गाड़ा जाता वहीं भीतर एक बच्चे भर के बैठने की जगह बनायी जाती। कुछ इस तरह से कि जब वह जगह ऊपर से पाट दी जाय तब भी बच्चे के बैठने की जगह बची रहे। वहां खजाने को छुपाने से पहले आखिरी पूजा की जाती। पूजा में किसी बच्चे को भी शामिल किया जाता जिसे अफीम या कोई और नशीली चीज पहले ही खिला दी गयी होती। बच्चा नशे की घातक मायावी दुनिया में खोया रहता। उसे खेलने के लिए खिलौने और खाने के लिए मिठाइयां दी जातीं। पूजा के बाद पूजा का दीप जलता छोड़ दिया जाता और गड्डे को करीने से ऊपर से ढक दिया जाता। गड्डे को ढकने के बाद भीतर दो घटनाएं एक साथ घटतीं। इधर दिया बुझता उधर बच्चे की सांस रुकती। इसी बच्चे की आत्मा अनंतकाल तक उस गड़े हुए खजाने की रखवाली करती।

कई बार खजाने के मालिक बिना रखवाला नियुक्त किये ही मर जाते। तब उनकी आत्मा ही खजाने के आसपास मंडराने लगती और उसकी रखवाली करती। कई बार खजाने की रखवाली कर रही आत्मा का उससे कोई सीधा रिश्ता नहीं होता पर वह खजाना देखते ही उस पर कुंडली मार कर बैठ जाती।

कई बार बनजारे अपने धन को जहां छुपाते उसके आसपास कहीं कोई पत्थर वगैरह लगा देते। और उसके साथ कोई पहेलीनुमा चीज प्रचलित कर देते। जिसके अर्थ में उस धन का राज छुपा होता। इन पहेलियों को बीजक कहा जाता। ये बीजक हम जैसे हजारों की लालसाओं के साथ जनम जनम तक खेलते पर उनका अर्थ न खुलता। लाखों में कोई बिरला ही होता जिसे उन खजानों के करीब जाने का मौका मिलता। याकि उसमें से कुछ हासिल हो पाता।

इस तरह के किस्सों में बहुत सारे सांप भी थे। सांपों को धन दौलत से बहुत प्यार था। वे अक्सर खजाने में ही रहते। ये सांप बड़े मायावी होते थे। सोना चांदी हीरा मोती के बीच रहते रहते खुद उनका शरीर भी वैसा ही हो जाता। उनके बदन पर हीरे मोती जड़े होते। आंखें ऐसा चमकदार

हीरा होतीं कि जो उनमें एक बार देख लेता वह कुछ और देखने के काबिल ही नहीं बचता। वह हमेशा के लिए अंधा हो जाता। उसे बस वही वही चमकदार आंखें ही अपने चारों तरफ दिखायी देतीं।

हमारे आसपास ऐसे हजारों किस्से तैर रहे थे। कई बार लोग ऐसे ही किसी किस्से से टकरा जाते। किस्सों से टकराने की इस घटना के बाद कई बार वे हमेशा के लिए बदल जाते। कई बार वे खुद भी किस्सों में ही समा जाते और वहां से उनकी वापसी कभी भी मुमकिन न हो पाती।

तो दूसरी तरफ ऐसे भी अनेक किस्से थे जहां किसी की समृद्धि या आगे बढ़ने को किसी न किसी किस्से से जोड़ कर देखा जाता। खुद हम भी अपने पुरखे रामअभिलाष की समृद्धि को ऐसे ही किस्सों से जोड़ कर देखते थे।

मैं खुद भी ऐसे किस्सों का हिस्सा बनना चाहता था और इसके लिए कोई भी कीमत चुकाने के लिए तैयार था। मैं खजानों का कोलम्बस बनना चाहता था। इसके लिए मैंने बहुत सारे किस्सों में अपनी आवाजाही बना रखी थी। इस मामले में मैं काफी सामाजिक व्यक्ति था। मैं अकेला नहीं था मेरे जैसे दूसरे भी अनेक थे।

खजाना पारस पत्थर था। जो कहीं भी हो सकता था। एक पल की लापरवाही भी हमें उस खजाने से इतनी दूर फेंक सकती थी जहां से दुबारा कई जन्मों तक शायद ही हम लौट पाते। किसी को भी दुबारा मौका नहीं मिलना था। इसलिए मौकों को पहचानना बेहद जरूरी था।

एक बार जब घर के लोग कहीं बाहर गये हुए थे और मैं घर में अकेला था मैंने घर के पश्चिम की ऊंची नीची जमीन की अकेले ही खुदाई की थी। मेरा पक्का अंदाजा था कि वहां कुछ न कुछ जरूर निकलना चाहिए।

मैं बिना रुके लगभग दोपहर तक खोदता रहा। मेरे पास समय बहुत कम था। शाम तक घर के लोग वापस आ जाने वाले थे। मेरी पिटाई भी लगभग तय थी पर मैं किसी भी कीमत पर अपने अनुमान की जांच करना चाहता था।

तो मैं जब लगभग निराश ही हो जाने वाला था कि मेरा फावड़ा किसी पत्थर से टकराया। मैं आहिस्ता आहिस्ता मिट्टी हटाने लगा। सारी मिट्टी हटाने के बाद मैंने देखा कि वहां जांत के दो बराबर बराबर टुकड़े मौजूद थे। उनको मैंने बाहर निकाल लिया। और खोदा तो मिट्टी की एक समूची मटकी मिली जो उल्टी पड़ी थी। उसे उठाया तो उसके नीचे एक हरे रंग का गोजर था। मैंने मटकी को जस का तस रख दिया और मिट्टी पाटने लगा। अब यहां कुछ और मिलना मुश्किल था। हरे गोजर ने मेरी उम्मीद खत्म कर दी थी।

शाम को घर पर मेरी खासी खबर ली गयी। पर जांत का वह आधा हिस्सा सिल के रूप में बहुत दिनों तक प्रयोग किया जाता रहा। जांत का दूसरा हिस्सा बगल के ही बालगोविन्द मिसिर उठा ले गये। पर इस घटना ने मुझे इस बात का भरोसा दिला दिया कि धरती के भीतर बहुत कुछ छुपा हुआ है। मैं अगर उसका थोड़ा सा भी हिस्सा खोज निकालूं तो मुझे जीवन भर कुछ और करने की जरूरत ही न पड़े।

मैं अकेला नहीं था। बहुत सारे थे जो जीवन भर कुछ भी नहीं करना चाहते थे।

खजाने की खोज उर्फ अभिलाषपुर की अभिलाषाएं

हमारी चमड़ी के सबसे भीतरी तहखानों में छुपी हुई कंगाली ही वह निर्णायक चीज रही होगी जिसने हमारी आंखों में इस कदर खजाने की चमक भर दी होगी। हमारे घरों के सबसे भीतरी तहखानों में

छुपी कंगाली ने ही हमसे एक दूसरे के घर खुदवाये होंगे। जो जितना ही ज्यादा कंगाल उसकी आंखों में अमीरी के उतने ही बड़े सपने। उसके सपनों की उतनी ही लम्बी उड़ान। और इस उड़ान का मेहनत या श्रम से कोई दूर का भी नाता नहीं।

श्रम को लेकर हमारे भीतर दोहरी बातें थीं। एक तो यह कि श्रम करने की हमारी कोई आदत ही नहीं रही थी। रामअभिलाष और रामइकबाल के शुरुआती दिनों को छोड़ दें तो हम श्रम करना कब का भूल चुके थे। इन दोनों की समृद्धि में भी उनके श्रम से बड़ा योगदान दान की जमीन और बाद में बेगार के श्रम का था। हमने अपने ऐसे किसी भी पुरखे के बारे में नहीं सुना था जो श्रम करके अमीर बन गया हो। हमने अपने आसपास ऐसे किसी को देखा भी नहीं था।

हमारे आसपास जो तमाम खेतिहर या श्रमिक जातियां थीं, वे सुबह से शाम तक पसीने में डूबी रहती थीं। फिर भी अक्सर वे नंगे बदन ही दिखायी देतीं। कपड़े उनके शरीर पर कभी कभार ही दिखते। इसके बावजूद वे अक्सर हमारे बाप दादाओं के पास आते। अनाज के लिए, रुपयों के लिए, कर्ज मांगते, गिड़गिड़ाते। अक्सर उन्हें यह कर्ज मिल भी जाता। जिसे वे एकमुश्त शायद ही कभी वापस कर पाते। हम चाहते भी नहीं कि वे हमसे पूरी तरह मुक्त हों कभी। उन्हें उनकी इस स्थिति की कीमत चुकानी पड़ती। यह समझने लायक हम जरा बाद में ही हो पाये। तब हमने भी कीमत वसूलना सीखा।

पर कीमत वसूलने के दिन बीत चुके थे। अब कीमत चुकाने के दिन थे और हम भरपूर कीमत चुका रहे थे। हम शायद किसी तरफ भाग निकलते। यहां पर फिलहाल ऐसा कुछ भी नहीं था जिसका लालच हमें रोके रखता। स्थितियां दिन पर दिन और भयावह होने की तरफ बढ़ रही थीं। ऐसे में हमारी काहिली के अलावा यह खजाना ही था जिसकी चमक ने हमें रोके रखा। हममें से हर एक को लग रहा था कि खजाना मिलते ही हमारी सारी समस्याएं सदा सदा के लिए खत्म हो जाएंगी।

खजाना हमारी मरी आंखों का सपना था। जो अपने छोटे से छोटे रूप में मिल जाता तो भी शायद हम बच जाते। क्या सचमुच?

खजाने के लिए हमने बहुतेरी कोशिशें कीं। इन कोशिशों में आत्माओं से टकराना था। इसलिए उनको खुश करना बहुत जरूरी था। वे खजाने की खोज में हमारी मदद तो कर ही सकती थीं। दूसरी आत्माओं के खिलाफ सुरागरशी भी कर सकती थीं। इस रास्ते पर तमाम दुष्ट आत्माएं भी मिल सकती थीं इसलिए बजरंगबली की सिद्धि भी जरूरी थी। और तो और इस सिद्धि को छुपा के भी रखना जरूरी था नहीं तो आत्माएं निकट ही न आतीं।

इस तरह की बहुतेरी कोशिशें साथ साथ चल रही थीं। जैसे एक कोशिश के रूप में मैं पैरों को धमकाता हुआ चलता था। लगातार कूदते हुए चलने जैसा। इससे जमीन के ठोस, कम ठोस या पोपली होने का पता चलना था। जहां भीतर कुछ होता वहां से धातुओं जैसी खनकन की उम्मीद थी। जहां भीतर जमीन खोखली होती वहां दूसरी तरह की गूंज सुनायी देती। कम से कम इतना तो पता चल ही जाता कि यहां कुछ हो या न हो पर जमीन कभी न कभी खोदी जरूर गयी है।

हर आदमी अपने तई कोशिश कर रहा था। और हम एक दूसरे की नकल भी कर रहे थे। कूदते हुए, जमीन की टोह लेते हुए चलने की नकल भी बहुतेरे लोगों ने की। हमारी चालें कुछ इस कदर बदल रही थीं कि किसी पड़ोसी गांव का कोई आदमी हमें देखता तो हमें इनसानों से भिन्न किसी और प्रजाति का समझ सकता था। हमारी आंखें अमूमन नीचे की तरफ होतीं। सर और हाथ नीचे झुके होते। हम एक दूसरे की बगल से निकल जाते और हमें पता भी न चलता क्योंकि दोनों ही पैर धमकाते हुए नीचे देखते, जमीन में कुछ खोजते हुए आगे बढ़ रहे होते।

मुश्किल यह थी कि जिस टीले पर अभिलाषपुर बसा हुआ था उसी टीले में धन दौलत छिपे होने की सबसे ज्यादा सम्भावनाएं थीं। हमारी मुश्किल यह थी कि हम ऐसा नहीं कर सकते थे कि एक तरफ से खुदाई शुरू कर दें और दूसरी तरफ तक खोदते चले जायें। यह असम्भव था।

हमें दूसरी हिकमतों से काम लेना था। और दूसरों से छुप कर काम लेना था। यह तभी सम्भव था जब वे आत्माएं हमारा साथ दें जो न जाने कब से खजानों की रखवाली में लगी हुई थीं। उन्हें वैसे भी सिद्ध करना था हमें।

हमने तमाम टोने टोटकों का सहारा लिया। तमाम काली और लाल किताबें खरीदीं। वृहद इंद्रजाल के पन्ने पलटे। पाखाने से लौटते हुए बचा हुआ पानी बेर और बबूल के पेड़ों पर इक्कीस दिनों तक चढ़ाया और भूनों प्रेतों के प्रकट होने की कामना की। इस तरह से काम सिद्ध न होते देख कर अनेक तांत्रिकों और ओझाओं की शरण में गये। अनेक घरों में रिश्तेदार के रूप में ओझा तांत्रिक आ बिराजे।

हम किनसे झूठ बोल रहे थे आखिर! छोटा सा तो था अभिलाषपुर। हम एक दूसरे के सारे रिश्ते नाते जानते थे। उन सब के साथ उठना बैठना था हमारा। फिर अचानक इतनी बड़ी संख्या में इतने सारे रिश्तेदार कहां से प्रकट हो गये थे। कौन थे वे हमारे जो हमने उन्हें अपने घरों के भीतर पनाह दी थी? वे क्या करने वाले थे आखिर?

घर घर हवन हो रहे थे। अंडे कट रहे थे। बलियां दी जा रही थीं। और इस तरह वे उन जगहों को खोजने की कोशिश कर रहे थे जहां खजाना छुपा हो सकता था। उन सबने बताया कि अभिलाषपुर के नीचे इतनी धन दौलत दबी हुई है कि उसके आगे सरकारी खजाने की दौलत भी पानी भरे। उसे निकालना ही होगा। खुद वह दौलत भी बाहर आने के लिए बेकरार है। उनके रखवाले अब अपने काम से मुक्ति चाहते हैं। वे चाहते हैं कि नये रखवाले उनकी जगह लें और उन्हें मुक्त करें।

और हैरत की बात है कि हममें से ज्यादातर रखवाले बनने के लिए राजी थे। पूरे इलाके की हवा ही जैसे बदल गयी थी। हम उस हवा में सिर से पैर तक डूबे हुए थे। कई बार उस हवा के असर से बचे हुए लोग हमें बाहर निकालना चाहते। वे हमारा मजाक बनाते। हम पर लानत भेजते। हमें गालियां बकते पर हम उनकी भाषा भूल गये थे। कई बार हम ऐसा मुंह बनाते जैसे हमें उनकी बातें समझ में ही न आ रही हों। और यह पूरी तरह से झूठ भी नहीं था। हमको खजाने के अलावा कोई और बात नहीं समझ में आ रही थी इन दिनों।

हमने वैसे लोगों से बचने का सीधा रास्ता निकाला कि कटने लगे उनसे। पहचानना ही बंद कर दिया उन्हें। ऐसे रास्तों से चलना बंद कर दिया जहां कि वे मिल सकते थे। हम अपने किस्सों में खो गये। वे मिलते भी तो हम अपने अपने किस्सों से बतियाते हुए आगे बढ़ जाते।

हममें से हर कोई अकेला था। हम अलग अलग काम कर रहे थे। इसके बावजूद हम सब के भीतर एक ही तरह के सपने घर कर रहे थे। हममें से हर किसी को भरोसा था कि उसके हाथ एक बड़ी दौलत लगने वाली है। हम लगातार इस बात की योजनाएं बनाते कि हम अपने हिस्से की दौलत कैसे खर्च करेंगे और दौलत थी की इन सारी योजनाओं के बाद भी बची रह जा रही थी।

सब कुछ बदल रहा था। आत्माएं तक अपनी दौलत वापस मांगने लगी थीं। जैसे सास के मरने के बाद उसकी करधन, हंसुली या हार किसी बहू ने पहन रखा होता तो अक्सर सास की आत्मा उस पर सवार होकर चिल्लाती उतार मेरी करधन... उतार मेरी हंसुली और बहू बेबस करधन या हंसुली उतार फेंकती। थोड़े दिन ओझाई होती और उसके बाद बहू का भी उन जेवरों से लगाव इतना गहरा होता कि वह दुबारा उन्हें पहने नजर आती और वही घटना फिर फिर से दोहरायी जाती। कोई भी पीछे हटने को न तैयार होता।

कोई नींद में ही किसी से न जाने क्या बात करते हुए चलता दिखायी देता तो कोई सोते सोते अचानक से कुछ चिल्लाते हुए जाग उठता। जैसे कोई आग सी धधकती रहती हमेशा। लोग व्याकुल बेचैन हमेशा कुछ खोजते तलाशते दिखते। आंखें हमेशा कटोरों में बिछलती रहतीं। लोगों की नींद गायब हो गयी थी। लगातार जागते रहने से सबकी आंखें सूज रही थीं। और वहशत से भरी लाल लाल आंखें कुछ इस तरह से लगती थीं जैसे उनमें से खून टपक रहा हो। उनमें एक भयानक रेगिस्तानी चमक थी।

ढाई सौ साल पुराने सपने का अंत

एक दिन अफवाह उड़ी कि सजीवन दुबे को एक गगरी भर सोने की मुहरें मिली हैं। अगले ही दिन सजीवन दुबे के यहां डकैती पड़ी। डकैतों ने सजीवन दुबे को बहुत तड़पाया पर चांदी के दो चार सिक्कों से ज्यादा कुछ नहीं पा सके। हवा में यह बात खुलेआम तैर रही थी कि सारे के सारे डकैत अभिलाषपुर के ही थे और तो और उनमें एक बाप बेटे का जोड़ा भी शामिल था।

अगले दिन राधेश्याम के घर के पीछे की दीवार खुदी पायी गयी। सुबह देखा तो वहां मिट्टी के पुराने बर्तनों के टुकड़े मिले और दो चार चांदी के सिक्के भी। अगले दिन रामजस का पिछवाड़ा खुदा हुआ था। वहां सुबह सोने का एक सिक्का गिरा हुआ मिला। हालत यह हुई कि रोज किसी न किसी तरफ से चिल्लाहट मचती कि कोई उसका घर खोद रहा है। और जब तक लोग वहां पहुंचते तब तक किसी दूसरे का अगवाड़ा पिछवाड़ा खुद जाता। फावड़े और कुदालों को उपयोग बदल गया था। अब वे खेतों में नहीं घरों में चल रहे थे।

उधर तांत्रिकों की अपनी दुनिया थी जो हमारे पीछे पीछे काम कर रही थी। बल्कि अब उसने हमारे आगे आगे चलना शुरू कर दिया था। कई तांत्रिकों ने बताया कि पूरे किले की ही खुदाई करनी पड़ेगी। पर अगर रखवालों को साध लिया जाय तो कम खुदाई से भी काम चल सकता है। पर यहां रखवाले बहुत ज्यादा हैं। सैकड़ों की संख्या में। उनमें से हर किसी की एक अलग मांग है जिसे पूरा करना ही पड़ेगा।

ये शर्तें बेहद अजीबोगरीब थीं। कहीं बेटे की कुर्बानी मांगी जा रही थी कहीं बेटी की। कहीं बेटी के पहले मासिक का खून मांगा जा रहा था तो कहीं पहले सम्भोग का। कहीं वह पड़ोसी के बच्चे की बलि मांग रहा था तो कहीं कोई अपने ही किसी विकलांग बच्चे की बलि देकर सम्पन्न होने का ख्वाब देख रहा था जिनकी कि अभिलाषपुर में कोई कमी नहीं थी।

बहुत धन था पर बिना कुछ अवांछित किये, बिना किसी गृहित कर्म में लिप्त हुए उसका एक छोटा सा हिस्सा भी मिल पाना चमत्कार था। और हम किसी भी कीमत पर यह सब कुछ करने के लिए तैयार थे। हमें वह सारी दौलत चाहिए थी भले ही वह किसी भी कीमत पर क्यों न मिले।

रखवालों की आत्माएं ढाई सौ साल से सो रही थीं। ढाई सौ साल पुरानी नींद ने उनके भीतर अतृप्ति का सागर भर दिया था। उनकी वासनाएं विकृति के चरम पर थीं। वे आत्माएं अपनी उन सारी वासनाओं की तृप्ति चाहती थीं। पर उनके पास शरीर नहीं था। उन्हें हमारा शरीर चाहिए था। उसके बाद उनकी सारी शर्तें माफ थीं क्योंकि शरीर मिलते ही वह खुद इतनी सक्षम हो जाने वाली थीं कि वह अपना मनचाहा कुछ भी हासिल कर लेतीं।

हमने अपनी चेतना पहले से ही उनके नाम कर रखी थी। शरीर देने में हमें भला क्या एतराज होता। इसके बाद चारों तरफ वह हाहाकार मचा कि आसपास के गांवों के लोग भी अपना घरबार छोड़ कर भागने लगे। कुछ भी अप्रत्याशित कभी भी घट जाता।

एक दिन रात में नारा लगा 'आज रात जो सोयेगा पत्थर का हो जायेगा'। नींद वैसे भी आजकल किसे आ रही थी! हम एक बौखलायी हुई उत्सुकता के साथ बाहर आ गये। चारों तरफ बेहद धीमे स्वर में अजीबोगरीब ध्वनियां तैर रही थीं। जैसे कराह, चीख, सिसकारी और प्रलाप मिला दिये गये हों आपस में।

जब ये आवाजें थोड़ी मद्धिम पड़ीं तो हम अपने घरों में लौटे। हमारे घर बदल चुके थे हमेशा के लिए। घरों में सुरंगें खुदी हुई थीं। उन रास्तों से आया बहुत सारा धन हमारे घरों में था। उसकी चमक हमें अंधा कर रही थी। इसी चमक पर हमने अपना जीवन वार दिया था। पूरी रात हम उस दौलत का हिसाब लगाने की कोशिश करते रहे। पर यह हमारी क्षमता के बाहर की बात थी।

सुबह हुई। कई सुबहें हुईं। कई रातें बीतीं। हम रात और दिन से निरपेक्ष हो गये थे। हमें यह भी नहीं पता था कि हमारे पड़ोसियों के घरों में क्या चल रहा है। हमें तो यह भी नहीं पता था कि खुद हमारे ही घरों में हमारे साथ क्या हुआ है। हमें नहीं पता चल पाया कि उन सुरंगों में हमारे ही घरों से कोई कराह रहा है।

कई दिनों बाद हमें यह सूझी कि हम उन सुरंगों में भी झांकें जिनके रास्ते यह ऐश्वर्य हमारे घरों में आया है। उन सुरंगों में किसी की बेटी तड़प रही थी तो किसी की बहन। अनेक सिर और धड़ कटे हुए पड़े थे। वे अभी भी जिन्दा थे। ऐसे भी थे जो जल्दी ही पैदा होने वाले थे, पर उसके पहले ही उन्हें खींच बाहर किया गया था। उनकी कराह से पूरी सुरंग भरी हुई थी। अभी थोड़े समय पहले तक वे सशरीर हमारे साथ थे। पर हम उन्हें पहचान ही नहीं पाये। उनकी कराहें हमें एक मदहोश करने वाले संगीत की तरह सुनायी पड़ीं। हम सुरंग में आगे बढ़ गये। भीतर एक गजब की रोशनी दिखायी दे रही थी।

खजाने के नये रखवालों की नियुक्ति हो चुकी थी।

सुरंग के भीतर और बाहर

खजाने के साथ बहुत सारे किस्से भी बाहर निकल आये थे। और वे हमारे जीवन में इस तरह से घुलमिल गये थे कि किस्से और हकीकत के बीच का अंतर हमेशा के लिए खत्म हो गया था। वह दीवार जो दोनों के बीच एक संतुलित दूरी बना कर चलती थी वह हमने कब की ढहा दी थी। हमारा खुद पर कोई जोर नहीं बचा था। अब यह हमारे हाथ से निकल गया था कि कब हम किस्सों की दुनिया में रहेंगे और कब हकीकत की दुनिया में। किस्से भी अनेक थे। हर आदमी एक अलग किस्से की गिरफ्त में था।

यह गिरफ्त बहुत भयानक थी। हम इस गिरफ्त के अलावा बाकी सब कुछ भूल गये थे। हम बगल से गुजर रहे अपने पड़ोसी तक को नहीं पहचान पा रहे थे। हम अपने दोस्तों को भूल गये थे। हम अपने मां बाप, भाई बहन, बेटा बेटी सबको भूल जा रहे थे। कभी कभार भूले भटके हम उन्हें पहचानते भी तो तुरंत ही कुछ इस तरह से फिर भूल जाते जैसे आधी रात को देखा गया कोई धुंधला सपना।

लोग हवा में ही किसी किस्से से बात करते दिखायी देते। शून्य में ताकते और ठहाका लगाते। हवा में न जाने किससे हाथापाई करते। कई बार दुखी और उदास होते, रोते। तब भी उन्हें सचमुच के किसी दोस्त की जरूरत न महसूस होती।

मेरे पिता खुद को ही अपना पिता मान बैठे थे। उनका मेरे प्रति व्यवहार बदल गया था। वह मुझसे इस तरह से बात करते थे कि मैं उनका बेटा न होकर पोता होऊँ। मेरे पिता बीच से न

जाने कहां गायब हो गये थे? वह कौन सा किस्सा था जो उनको लील गया था? कि उनके शरीर में पिता के पिता आ बैठे थे? ऐसा करके शायद वह अपने पिता और दादा से संवाद कर रहे थे, इस उम्मीद में कि वह वहां से कुछ सुराग लेकर लौटें खजानों के बारे में! या फिर क्या पता। उन्हें कुछ पता चल भी जाता तो क्या पता वह खुदाई कहां पर करते, वर्तमान में या फिर उन्हीं किस्सों की दुनिया में?

बलदेव मिसिर ने खजाने से मिले हुए धन से एक चमचमाती कार खरीदी। जब वह कार लेकर सुरंग से बाहर निकले तो अपने घर का रास्ता ही भूल गये। पूरे अभिलाषपुर का हार्न बजाते हुए उन्होंने बीसों चक्कर लगाया। कई जगहों पर उतर कर हवा में न जाने किन लोगों से रास्ता पूछा पर उन्हें अपने घर का रास्ता नहीं मिला तो नहीं मिला। वह अभी भी हार्न बजाते हुए चक्कर पर चक्कर काट रहे हैं और न जाने किससे किससे अपने घर का रास्ता पूछ रहे हैं।

उनका घर उनके इंतजार में कई सालों से बंद है। दुआर और आंगन में झाड़ झंकाड़ उग आये हैं। आंगन में एक न जाने कौन सा पेड़ उग आया है जिसकी डालियों पर फलों की तरह चमगादड़ लटकते रहते हैं। उस घर की तरफ कोई नहीं जाता। लोगों ने उसे अभिशप्त घर मान लिया है।

वही क्या पूरा का पूरा टीला ही अभिशप्त मान लिया गया है। अब टीले पर सिर्फ वही लोग आते जाते दिखायी देते हैं जिन्होंने खजानों वाले किस्सों की दुनिया में अभी भी जबर्दस्त आवाजाही बना रखी है। वे किसी को भी नहीं पहचानते। हमारे बगल से न जाने क्या बुदबुदाते हुए निकल जाते हैं और हमारी तरफ देखते भी नहीं। हमारे राम राम और सलाम का जवाब नहीं देते। उनके लिए हम और हमारी दुनिया अदृश्य हो चुके हैं। शायद हमेशा के लिए।

मेरे जैसे जो लोग किस्सों की दुनिया से निकलने में कामयाब रहे या किसी दूसरे किस्से के द्वारा ही बाहर खींच लिए गये, उन सबने टीला हमेशा हमेशा के लिए छोड़ दिया। कुछ ने अपने घरों को गिरा दिया। कुछ ने उन्हें जस का तस रहने दिया। ज्यादातर तो पहले ही खोदे पाटे जा चुके थे।

टीला उस समय की तुलना में बहुत ज्यादा वीरान दिखायी देता है जबकि रामअभिलाष ने उस पर अपना घर बनाया था। टीले पर नये नये पैदा खंडहरों के बीच तमाम झाड़ झंखाड़ उग आये हैं। उस तरफ देखना ही एक भुतहा एहसास से भर देता है। रातों में अभी भी वहां से अजीब अजीब आवाजें आती हैं जो हमें अपनी तरफ खींचती हैं। उन आवाजों में एक पागल सम्मोहन है।

सुरंग में जाने से बचे हुए लोग आसपास के गांवों और शहरों में फैल गये हैं। कई नये अभिलाषपुर बसने की राह पर हैं। आसपास के तमाम लोग जिन्होंने अपने को खजानों के प्राणघातक सम्मोहन से बचा रखा था हम पर हंसते हैं। थोड़ी देर की एक शरमीली चुप्पी के बाद हम भी उनके साथ हंसने लगते हैं।

नामवर सिंह के पत्र

ये पत्र हिन्दी साहित्य की सबसे बड़ी शिखर और सबसे बड़े आलोचक नामवर सिंह द्वारा लिखे गये हैं। साथ ही ये एक बड़े भाई द्वारा अपने मझले भाई को लिखी गयी पातियां हैं। इन्हें तद्भव के लिए उपलब्ध कराया है सबसे छोटे भाई और प्रख्यात कथाकार काशीनाथ सिंह ने।

**लोलार्क कुंड, मैदानी
बनारस**

26/8

प्रिय रामजी,

तुम्हारी चिट्ठी पढ़ी। जी घबड़ा उठा। तुम्हारा कष्ट मुझे बेचैन कर देता है। मेरे रहते हुए तुम या काशी कभी दुखी हो यह मैं नहीं देख सकता। पिताजी से तुम्हारी अस्वस्थता की खबर मिली थी। तुम्हारे गिरते हुए स्वास्थ्य को देख कर मैं पहले से ही चिन्तित हूँ। इस पर तुम्हारी यह मानसिक व्यथा।

तुम बेकार परेशान हो। पिताजी नाराज हैं तो खुश भी हो जायेंगे। वहां आने पर उन्होंने मुझसे भी तुम्हारे बारे में बहुत सी बातें कही थीं। उन बातों को तुम खुद जानते हो। मतलब उन्हें पसंद नहीं है कि तुम विश्वनाथ आदि के द्वार पर बैठो। उन्हें यह भी पसंद नहीं कि तुम अपने आप से दवादारु करो।

पिताजी को मैंने भरसक समझाने की कोशिश की है। अब वे तुम्हें न डांटेंगे। इसके बाद तुम्हारा कर्तव्य आरम्भ होता है। उन्हें अपनी सेवाओं से प्रसन्न कर सकते हो। पुत्र से पिता को बड़ी आशाएं

होती हैं। सोचो तो, हम लोगों ने अभी तक उनमें से कुछ भी पूरा किया है? तुम उनके पास हो। यह तुम्हारा सौभाग्य है, यह तुम्हारा गहन उत्तरदायित्व है।

मैं नहीं कहता कि तुम विश्वनाथ आदि का द्वार छोड़ कर ही पिताजी को खुश कर सकते हो। मैं नहीं कहता कि पिताजी के कहे डाक्टर या वैद्य की दवा करके ही उन्हें प्रसन्न कर सकते हो। मैं यह भी नहीं कहता कि घरघुसनी आदत छोड़ कर ही उनकी नाराजगी कम कर सकते हो। ये भी बातें हैं तथा ऐसी और अनेक बातें हैं जिनसे तुम्हारी सेवा का पता चल सकता है।

बराबर ध्यान रखो कि वे पुराने खयाल के आदमी हैं। घरघुसनी आदत से उन्हें संदेह पैदा होता है। इसी कारण वे मुझसे भी नाराज रहते थे। लेकिन सांच को आंच क्या? तुम भी अपना भला बुरा खुद सोच सकते हो। पिताजी को तुम पर चाहे जितना संदेह हो, मुझे तुम पर पूरा विश्वास है। काश कि तुम अपने आचार व्यवहार से पिताजी का भी विश्वास प्राप्त कर सकते। अगर वे किसी के घर तुम्हारे उठने बैठने से नाराज होते हैं तो उन घरों में जाना कम कर दो। खेत वाले मामले में पिताजी का साथ दो और लोगों से कहो कि उन्होंने ठीक किया है।

मैं पिताजी को भी पत्र लिख कर समझा रहा हूँ। अपनी तंदुरुस्ती का हाल साफ साफ लिखो। अगर हालत ठीक नहीं है तो छुट्टी लेकर चले आओ। यहां डाक्टरी इलाज हो जाने से अच्छा रहेगा।

बी.ए. की किताबों की चिन्ता मत करो। उनका इंतजाम कर रहा हूँ। जल्द ही भेजूंगा।

सस्नेह

(सम्भावित वर्ष 1955)

तुम्हारा भैया

लोलार्क कुंड, काशी

3/8

प्रिय रामजी,

आज शाम अलगू के हाथ तुम्हारी चिट्ठी मिली। हमेशा की तरह मैंने वह चिट्ठी काशी को दे दी और फिर उसका सारांश मां को सुना दिया गया। इसके बाद हम सबने बैठ कर उस पर विचार किया। खा पी चुकने के बाद भी घंटों तुम्हारी चर्चा होती रही। वैसे तो शायद ही कोई दिन ऐसा बीतता हो जब तुम हम लोगों की बातचीत के बीच न आ जाओ लेकिन आज तुम्हारे पत्र ने हमारे मन को आंदोलित कर दिया।

जो चिट्ठी मैंने तुम्हें भेजी थी उसे काशी को भी दिखा दिया था। इसलिए अब जब तुमने उस चिट्ठी की प्रतिक्रिया व्यक्त की है तो एक बार फिर मैंने काशी से अपने पत्र की कमियों के बारे में पूछा। लेकिन मेरी ही तरह उसे भी आश्चर्य है कि तुम्हें उस पत्र से ठेस क्योंकर लगी? उसमें न तो तुम्हें चरित्रहीन कहा है न आवारा। रामजी एक बार उस पत्र को फिर पढ़ो। मुझे ठीक से याद तो नहीं लेकिन कहीं न कहीं यह जरूर लिखा है कि मुझे तुम पर पूरा विश्वास है। समझ में नहीं आता उसमें ऐसा क्या था जिससे तुम्हें मूर्छा आती।

बहुत सोचने पर ऐसा मालूम होता है कि इस वक्त तुम अकेले हो। गांव के उस समाज में ऐसा कोई नहीं है जिससे तुम्हारा मन मिले और तुम कोई बात कर सको। काशी साथ था तो और बात थी। यहां बार बार मैं सोचता हूँ कि गांव में अकेले अकेले तुम्हें कैसा लगता होगा! पिताजी इन बातों को नहीं समझ सकते। अब तुम उदास उदास से गांव के बाहर किसी सिवान में खोये रहते होगे या फिर घर के कोने में कुछ किताबों में डूबे रहते होगे तो पिताजी उसे आवारापन समझते होंगे। पुराने खयाल के आदमी के लिए यह सोचना अस्वाभाविक नहीं है। उनके लिए अब यह सम्भव भी

नहीं है कि इन बातों पर सहानुभूतिपूर्ण ढंग से सोच सकें। पहले भी लिख चुका हूँ कि खुद मुझे ही वे कितना आवारा समझते थे और अभी कल तक तुम्हारे सामने मुझे गालियाँ देते थे!

क्या इन सबके लिए वे हमारे असम्मान या क्रोध के पात्र हैं? यदि वे नयी पीढ़ी के युवक हृदय की आशाओं और आकांक्षाओं को नहीं समझते तो हम भी पिछली पीढ़ी के वृद्ध हृदय की भावनाओं को समझने से इन्कार कर दें? तुम अपने ही दुख को क्यों देखते हो? उस वृद्ध हृदय को भी देखो। उस हृदय में एकाकीपन की कितनी उदास और स्याह छाया घर किये बैठी है, इसको भी तो समझो। जिस व्यक्ति ने समूचे परिवार से उठ कर अपने सुख सुविधा को छोड़ कर हम लोगों को ज्ञान का प्रकाश दिया उसके मन में इस समय हम लोगों से कितनी उम्मीदें होंगी। लेकिन कितनी उम्मीदें उनकी पूरी हुई हैं! आज भी हम उनकी सेवा करने की अपेक्षा उनसे ही अपनी सेवा लेते जा रहे हैं।

माना कि तुम्हें अभी यह सब नहीं सोचना है, क्योंकि तुमसे पहले यह सब मुझे सोचना है, मुझे करना है। लेकिन इन सब बातों का उल्लेख इसलिए जरूरी है कि इनके परिवेश में पिताजी की डांट डपट या उपेक्षा आदि को समझने की कोशिश की जाये।

जब तुम इस तरह सोचोगे तो तुम्हारा अपना दुख भी कम होगा। दुख रोने से कम नहीं होता, कम होता उसका कारण समझने से। रात अंधेरे में हाथ पीटने से नहीं कटती, रात कटती है दिया जलाने से। यह तय है कि दिया जलाने से सुबह के दर्शन नहीं हो जाते, लेकिन ढाँढ़स अवश्य बंधता है।

रामजी तुम्हारे पास भी ऐसा ही एक दिया है यह दिया है ज्ञान का, शिक्षा का। आखिर किस दिन वह काम आयेगा! स्नेह की आवश्यकता उसके लिए जरूर है, तो वह मुझसे लो, काशी से लो, मां से लो और जरूरत समझो तो विजय से लो।

मैं एक बात कह दूँ कि तुम पर मुझे पूरा विश्वास है। भरत से भाई पर भी संदेह? असम्भव है। लेकिन भाई इस दुनिया में केवल हमी दोनों तो नहीं हैं, और लोग भी हैं। मैं तुम्हें अच्छा समझूँ यही काफी नहीं है। जरूरत यह है कि और लोग तुम्हें अच्छा समझें। सभी लोग तुम्हें अच्छा समझें यह मैं नहीं कहता। यह तो असम्भव है और यदि सम्भव हो भी तो मैं नहीं चाहता कि तुम ऐसे माटी के माघो बनो कि तुम्हें सब भला भला सा कहें। आखिर वह भी कोई आदमी है विशेषकर युवक जिसे बुरा कहने वाले चार छह आदमी न हों।

इसलिए तुम अपने व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास करो। सबको खुश करने की चिन्ता में अपनी रुचियों का दमन मत करो। शुरू में विरोध होगा पीछे सब ठीक हो जायेगा। मीरा के दुश्मन उसके घर भर के सभी लोग थे, लेकिन किया उसने अपने मन का। वह तो एक विवश स्त्री थी। तुम तो पुरुष हो और तुम्हारा साथ देने वाले तुम्हारे भाई तो कम से कम हैं ही। फिर चिन्ता कैसी? खुश रहो। मस्त रहो। खेलो, कूदो, पढ़ो लिखो। इन्हीं सबके दिन हैं। तुम भी क्या चिन्ताएं ले बैठे! अभी सारी उम्र पड़ी है। जिसके मां बाप और बड़े भाई जीवित हों वह अपने जीवन से इस तरह विवश हो यह अच्छा नहीं लगता।

जी न लगता हो, दो एक दिन के लिए यहां चले आओ। मार्गव्यय के लिए 2 रु. भेज रहा हूँ। आते समय पिताजी से अवश्य पूछ लेना। कह देना भैया ने बुलाया है। यहां तुम्हें डाक्टर को दिखाना है। आने पर किताबों तथा अमरदेव सिंह का प्रास्पेक्टस वगैरह सब ले जाना क्योंकि अलगू यहां से एकदम तड़के चले जायेंगे और तब तक कोई चीज खरीद कर ही नहीं लायी जा सकती।

एक लिफाफा पिताजी के लिए भी भेज रहा हूँ। यही सब बातें हैं। अलगू वह लिफाफा भी तुम्हें ही देंगे। तुम खुद पिताजी को दे देना।

यहां सब चंगे हैं। काशी का प्रणाम मां का स्नेह

(अनुमानित वर्ष 1955)

प्यार के साथ

तुम्हारा भैया

राजकमल प्रकाशन

8, फैंज बाजार

दिल्ली-6

15.7.65

प्रिय रामजी,

तुम्हारी चिट्ठी आज मिली। इसके पहले वाली चिट्ठी भी मिली थी। मैं कल शाम को यहां से इलाहाबाद, वाराणसी, पटना, लखनऊ की यात्रा के लिए रवाना हो रहा हूं। 29 और 22 जुलाई को वाराणसी रहूंगा। अगर तुम्हें किसी तरह छुट्टी मिल सके तो एक दिन के लिए आ जाना। मिलने की बड़ी इच्छा है। तुम्हें देखे हुए ऐसा लगता है कि बरसों हो गये।

अगर इस बार न आ सको तो भी कोई बात नहीं। अगस्त के अंत में भी मैं किसी तरह बनारस आने की कोशिश करूंगा। तब मुलाकात हो जायेगी। काफी पहले खबर दूंगा।

ईश्वर की कृपा से पैसे के लिहाज से अब हमारी हालत ठीक है। ज्यादा नहीं तो कम से कम पांच सौ रुपये हर महीने सारे खर्च वर्च के बाद बचते रहेंगे। शुरू के दिनों में गिरस्ती जमाने के सिलसिले में ज्यादा खर्च हो गया। मुझे उम्मीद है कि अगस्त और सितम्बर में शारदा की मां का सारा कर्ज अदा हो जायेगा। अब तुम उसकी चिन्ता मत करो। यह जिम्मेदारी अब मेरे ऊपर है।

घर तो मैं जा ही रहा हूं इसलिए वहां का हालचाल अपनी आंखों देख लूंगा। लेकिन तुम्हारा हालचाल कैसे मालूम होगा। आजमगढ़ में तुम्हें कोई तकलीफ तो नहीं है? नयी जगह है, रहने खाने पीने में जरूर असुविधा होगी। तुम सारी दुनिया की चिन्ता करते हो, सबके बारे में लिखते हो लेकिन अपने बारे में कभी कुछ लिखते ही नहीं। मैं कई बार तुमसे कह चुका हूं कि अपनी तंदुरुस्ती का ख्याल करो। लेकिन तुम परवाह नहीं करते। यह ठीक नहीं।

मैं यहां 25 ता. यानी रविवार तक लौट आऊंगा। किसी छुट्टी में तुम्हें यहां ले आऊंगा। दो चार दिन घूम फिर कर फिर अपने काम पर जाना। मेरे यहां रहते तुमने दिल्ली नहीं देखा तो मेरा आना व्यर्थ है।

चिट्ठी राजकमल प्रकाशन के ही पते लिखा करो। तुम्हारे लिए यही ठीक होगा क्योंकि तुम सरकारी आदमी हो। पता मैंने ऊपर लिख दिया है। अंतर्देशीय के ऊपर 'व्यक्तिगत' लिख दिया करना।

कभी कुछ जरूरत हो तो लिखना।

मैं 23-24 ता. को लखनऊ रहूंगा। उदय प्रताप भैया के साथ ठहरूंगा। यदि तुम्हारा कोई काम वहां हो तो बनारस के पते पर 22 ता. तक चिट्ठी भेज देना। बनारस मैं 22 की शाम तक हूं।

और सब ठीक है।

आशा है, मजे में होगे।

सस्नेह

तुम्हारा भैया

नामवर

14.1.66

प्रिय रामजी,

तुमसे मिलने के लिए मेरा मन भी बहुत व्याकुल था एक तो तुम्हें देखे बहुत दिन हो गये, दूसरे तुम्हारा कोई पत्र भी नहीं आ रहा था। अब चिट्ठी मिली तो मन को थोड़ी तसल्ली हुई। इस बार जब बनारस आने का प्रोग्राम बनेगा तो तुम्हें पहले ही लिख दूंगा। लेकिन अभी तो ऐसा ही लगता है कि फरवरी से पहले उधर आने का मौका न लगेगा। इधर काफी काम सिर पर आ गया है। इसलिए इसको निपटाये बिना दिल्ली से हटना मुश्किल है।

मकान के बारे में पिताजी का भी पत्र मिला था। मुझे भी इसका ध्यान है। लेकिन दिल्ली का खर्चा ऐसा है कि इसके बारे में तुम लोगों को ठीक ठीक समझाना मुश्किल होगा। पैसे जरूर मिलते हैं लेकिन उसी तरह खर्च भी हो जाते हैं। फिर भी मैंने पिताजी को लिख दिया है कि जैसे भी होगा फरवरी की पहली तारीख को एक हजार रुपये रवाना कर दूंगा। बाकी एक हजार का इंतजाम मार्च के पहले हफ्ते में करने की कोशिश करूंगा। लेकिन इसकी वजह से मकान का काम रुकना न चाहिए।

विजय के लिए तुम लोग स्वयं इतने चिन्तित रहते हो कि मुझे उसके बारे में कुछ सोचने की जरूरत ही नहीं। मुश्किल यही है कि तुम उसको अपने लाड प्यार से खराब कर डालोगे। कभी कभी मन में इस बात के लिए तुम्हारे ऊपर गुस्सा भी आता है। खैर, यह तुम्हारा अपना मामला है, इसके बारे में मुझे बोलने का कोई हक नहीं है।

जहां तक तुम्हारे छुट्टी लेने का सवाल है, उसके बारे में मुझसे ज्यादा तुम्हीं अच्छी तरह जानते हो। जब बहुत जरूरत मालूम हो तो छुट्टी ले लेना लेकिन अपनी नौकरी का ध्यान रखना। मेरा ख्याल है, मकान पर जब जोरों से काम शुरू हो जाये तभी छुट्टी लेना यानी होली के आसपास।

मुझे अफसोस है कि तुम्हारे लिए मैं दिल्ली से कुछ भी न ला सका। मेरी समझ में तो कुछ आता ही नहीं। कभी दिल्ली आओ तो अपनी पसंद से यहीं जो तबीयत हो ले लो। या किसी चीज की जरूरत मालूम हो तो लिख दो मैं भेज दूँ।

तुम्हारा स्वास्थ्य आजमगढ़ में कैसा रहता है? खाने पीने पहनने ओढ़ने का जरूर ध्यान रखना। जान है तो जहान है। तुम अपने बारे में बड़े लापरवाह हो। इससे मुझे कभी कभी बड़ी चिन्ता होती है। अगर मुझे खुश देखना चाहते हो तो सबसे पहले अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखो।

मैं यहां स्वस्थ हूँ। शिवमूरत भी मजे में है। वह मेरा बहुत खयाल रखता है। हर तरह से आराम देता है।

अपने समाचार देना। मेरा स्नेह और आशीर्वाद लेना।

सस्नेह
तुम्हारा भैया
नामवर

5.9.69

प्रिय रामजी,

आज जन्माष्टमी की सुबह तुम्हारी चिट्ठी मिली। बड़ी खुशी हुई। ऐसा लगा जैसे तुमसे मुलाकात हुई।

विजय की चिट्ठी 3 सितम्बर को आयी। वह मास्को अच्छी तरह पहुंच गया। वहां पहुंचने पर उसका मेडिकल टेस्ट हुआ, फिर एक छोटा सा इन्तहान भी हुआ। पहली सितम्बर से उसकी पढ़ाई शुरू हो गयी होगी। मास्को में मेरे दो एक रूसी मित्रों से उसने सम्पर्क भी स्थापित कर लिया। भारतीय छात्रों में से कुछ एक से उसका परिचय भी हो गया है। मैं उसे भारतीय डाकटिकट भेज रहा हूं। इसके बाद वह तुम लोगों को भी चिट्ठी लिख सकेगा। यदि तुम उसे चिट्ठी लिखना चाहो तो उसका पता अलग से लिख रहा हूं। उसने अपने पत्र में तुम्हें भी प्रणाम लिखा है।

मेरी रूस यात्रा के बारे में तुम चिन्ता मत करो। वह कोई बहुत जरूरी नहीं है। उसका मौका फिर आ सकता है। मेरे लिए तुमने और काशी ने बहुत किया। अब मैं तुम लोगों पर बेवजह और भार नहीं डालना चाहता। उम्मीद है, मैं यहीं से कुछ न कुछ इंतजाम कर लूंगा। बस तुम परिवार और घर का ध्यान रखो। परिवार बढ़ रहा है और उसके साथ ही मेरी चिन्ता भी। मुझे खेद है कि मैं परिवार के लिए कुछ भी नहीं कर पा रहा हूं।

तुमसे मिलने की मेरी भी इच्छा है। दशहरे की छुट्टी में जरूर मुलाकात होगी। तुम अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखा करो। वह बहुत जरूरी है। मैं यहां अच्छी तरह हूं।

सस्नेह तुम्हारा
नामवर

विजय का पता

U.S.S.R.

MOSCOW - B. 198

Leninsky Prospect - 113

Block-2, Room No. 217

VIJAY PRAKASH SINGH

पत्र पर पता इसी क्रम से लिखना। पत्र सावधानी से लिखना। सिर्फ कुशल मंगल, अपना और घर का हालचाल बस।

जोधपुर
6.4.73

प्रिय रामजी,

तुम्हारा 3 अप्रैल का पत्र मुझे आज ही मिला। मनीआर्डर से सौ रुपये तुरंत भेज रहा हूं। कुछ और रुपयों की जरूरत हो तो बिना हिचक के मुझे तुरंत लिखना। मैं फौरन रुपये भेज दूंगा। ट्रेनिंग में तुम्हें पैसे के कारण किसी तरह की तकलीफ नहीं होनी चाहिए।

मैं 14 अप्रैल को बनारस जा रहा हूं। काशी को मैंने लिखा था कि वे तुम्हें भी बुला लें। मुझे तब तक यह मालूम न था कि तुम हरदोई में ट्रेनिंग ले रहे हो। अब तुम्हें 14 अप्रैल को बनारस आने

की जरूरत नहीं है। जून में जब तुम छुट्टी पर बनारस आओगे तो मैं फिर आ जाऊंगा और तुमसे मिल लूंगा।

मालती की शादी की चिन्ता मुझे भी है। पिताजी से पिछली बार बात हुई थी। लेकिन मैं इतनी दूर हूँ कि यहां से लड़का देखने का काम नहीं कर सकता। काशी को भी कोई अनुभव नहीं है। इस मामले में काशी को दोष देना ठीक नहीं है। यह काम तो सचमुच तुम्हीं अच्छी तरह कर सकते हो। मेरा खयाल है कि जून की छुट्टी में लौटने पर भी तुम भाग दौड़ करके यह काम कर सकोगे। रुपये का इंतजाम किसी न किसी तरह मैं कर दूंगा। आशा है, तुम अब अपनी परेशानी कम करके ट्रेनिंग पूरी करने में लग जाओगे।

मैं यहां ठीकठाक हूँ। आशा है, तुम मजे में हो।

सस्नेह
नामवर

**Centre of Indian Languages
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110057**

26.9.75

प्रिय रामजी,

तुम्हारा पत्र पाकर मेरी बहुत सी चिन्ताएं दूर हो गयीं। दरअसल पिताजी के पत्र से मैं बहुत विचलित हो गया था। उनके स्वभाव से हम सभी लोग परिचित हैं। लेकिन इस उम्र में अगर वे कुछ खरी खोटी कह भी दें तो चुपचाप उसे सुन और सह लेना ही समझदारी है। हमारी यही कोशिश होनी चाहिए कि उन्हें किसी तरह की तकलीफ न हो। मां जब जीवित थी तब बात और थी। अब वे बहुत अकेले हैं। फिर भी हम लोगों के लिए वे बहुत बड़ा सहारा हैं। मालती की मां को भी यही बात समझाने की जरूरत है।

यह अच्छा हुआ कि गांव की खेती बारी की सारी जिम्मेदारी तुमने अपने ऊपर ले ली। करना तो यह सब तुम्हीं को है। न इसमें काशी कुछ कर सकते हैं न मैं ही किसी काम आ सकता हूँ। बस पिताजी से सलाह ले लिया करो उनके संतोष के लिए।

जहां तक मालती की मां का सवाल है, इसके बारे में मेरा कुछ कहना ठीक नहीं लगता। तुम स्वयं समझदार हो। तुमसे कोई बात छिपी न होगी। तुम्हें पता है कि घर की औरतें ही भाइयों को आपस में लड़वाती हैं और अंत में बटवारे करवाती हैं। मैं अपने जीते जी और पिताजी के जीते जी यह काम नहीं होने देना चाहता। वैसे हम तीनों भाई तीन जगह अपने अपने काम के कारण रहने के लिए लाचार हैं लेकिन अभी तक हम लोगों ने आपसी सम्बंध के बारे में गांव में एक आदर्श रखा है। जब तक हो सके इस आदर्श की रक्षा करनी है। छोटी छोटी बातों को लेकर यदि कोई गलतफहमी हो तो उसे तुरंत दूर कर लेनी चाहिए सीधे बात करके। इस बार जब मैं आऊंगा तो तुम्हें पहले खबर कर दूंगा। फिर पिताजी को भी बुला कर सारी बातें कर लेंगे।

एक बात काशी के बारे में। तुम्हें उसकी आर्थिक हालत मालूम है। उसे कुछ पढ़ना लिखना भी है। इसी उम्र में उसके बाल सफेद हो गये। उसके दिमाग पर बड़ा वजन रहता है। वह हम दोनों से छोटा है। हम दोनों का यह फर्ज होना चाहिए कि उसका भार हल्का करें। होता यह है कि हम तीनों के परिवार की सारी जिम्मेदारी अकेले उसी पर आ जाती है। उसकी गलती यह है कि वह बनारस

रहता है। अगर यही हाल रहा तो वह बनारस छोड़ देगा। सोचो तो उस हालत में यदि तुम होते या मैं होता तो हम क्या सोचते? इस बात पर गम्भीरता से सोचना फिर मुझे लिखना।

मालती का पत्र आया था। मैंने तभी जवाब दे दिया। आशा है तीज ढंग से गयी होगी। और किसी चीज की जरूरत हो तो लिखना।

आशा है सब कुशल होगा।

सस्नेह

नामवर

**Centre of Indian Languages
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110057**

18.12.75

प्रिय रामजी,

तुम्हारा पत्र कल मिला। मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि पिताजी तुमसे फिर प्रसन्न हो गये। तुम्हें उनकी कमजोरी का भी पता है और जरूरत का भी। भविष्य में भी इसका ध्यान रखना।

मुझे यह जान कर भी खुशी हुई कि इस बार फसल अच्छी हुई। तुम्हारी सूझबूझ, लगन और मेहनत पर मुझे पूरा भरोसा है। बस जरूरत है तो खेती पर ध्यान देने की। यह तो तुम जानते ही हो कि अंततः खेती बारी की जिम्मेदारी तुम्हीं संभाल सकते हो। सैदपुर से जितना समय बच जाये उसमें से कुछ भी घर की खेतीबारी के लिए दोगे तो काम बन जायेगा।

विजय कुछ दिन पहले यानी नवम्बर महीने में यहां आया था। लगभग दो हफ्ते यहां रह कर गया। संयोग से काशी भी उन दिनों यहीं थे। अभी वह नासिक में ही है। नजदीक ले आने की कोशिश में हूं। लेकिन कुछ समय लगेगा। नौकरी मुस्तकिल होने पर ही उसकी शादी होगी। शादी के प्रस्ताव तो कई आये हैं। लेकिन अभी तक मैंने किसी को वचन नहीं दिया है। तुम लोगों से सलाह करके ही मैं कोई फैसला करूंगा। हो सके तो नासिक के पते पर तुम भी विजय को पत्र लिख देना।

और सब यहां ठीक ही है। इस महीने बनारस आने का इरादा था लेकिन एक कान्फ्रेंस के सिलसिले में केरल जाना है। इसलिए अब किसी और समय उधर आने का कार्यक्रम बनाऊंगा।

आशा है, तुम स्वस्थ हो। घर पर सबकी देखभाल करते रहना और सुख शांति बनाये रखना।

सस्नेह

नामवर

**जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली-110057**

10.4.78

प्रिय रामजी,

तुम्हारा पत्र मिला। अपनी पत्नी को साथ रखने का फैसला करके तुमने अच्छा ही किया। शुरू में कुछ असुविधा तो तुम्हें होगी, लेकिन इसका नतीजा अच्छा होगा। बच्चों की पढ़ाई में विघ्न नहीं पड़ना चाहिए। इसलिए अभी उन्हें गांव ही रहने दो। बाद में जैसी सुविधा हो वैसा करना। जैसा

कि मैंने तुमसे पिछली बार कहा था, पिताजी के संतोष के लिए हम लोगों को थोड़ी तकलीफ उठानी ही चाहिए। लेकिन गुस्से में आकर कोई काम मत करना। यह प्रबंध थोड़े दिनों के लिए ही है। पिताजी भी जल्द ही समझ जायेंगे और मुझे उम्मीद है कि सब कुछ जल्द ही ठीक हो जायेगा।

विजय के विवाह में तुमने जो मेहनत और मदद की उसके लिए धन्यवाद देकर मैं तुम्हारे स्नेह का अपमान न करूंगा। हम सभी जानते हैं कि विजय शुरू से तुम्हारे साथ ज्यादा अपनापन मानता रहा है। उस पर तुम्हारा अधिकार मुझसे ज्यादा है।

चम्पा की शादी के लिए क्या कर रहे हो? इस साल उसकी शादी होनी ही चाहिए। जैसी सूचना हो, देना। किसी बात की चिन्ता न करना। मैं हर तरह से तुम्हारे साथ हूँ।

आशा है, प्रसन्न हो, स्वस्थ हो।

सस्नेह

नामवर

भारतीय भाषा केन्द्र
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली-110057

22.5.78

प्रिय रामजी,

आज पिताजी के पत्र से मालूम हुआ कि तुम अपना पूरा परिवार सैदपुर ले गये। पिताजी ने यह भी लिखा है कि तुमने लगान नहर रटे वगैरह का कोई प्रबंध नहीं किया। पिताजी खेतों को अधिया पर दे देना चाहते हैं क्योंकि उनसे इस उम्र में खेतीबारी न होगी। मुझे उन्होंने इन समस्याओं पर बात करने के लिए बुलाया है। मैं 17-18 जून के आसपास बनारस आऊंगा। उससे पहले आना सम्भव न होगा। निश्चित तारीख की खबर तुम्हें बाद में दूंगा। उस समय तुम भी आ जाना। विस्तार से बातें तभी होंगी।

फिलहाल मुझे सिर्फ दो बातें कहनी हैं।

1. ऐसा कुछ भी न करो जिससे पिताजी को इस बुढ़ापे में किसी प्रकार की तकलीफ हो। गांव घर के लोग तुम पर हम लोगों पर हसेंगे और उनका रोआं दुखेगा तो हम लोग भी सुख न पा सकेंगे।

2. खेतीबारी की जिम्मेदारी से पल्ला न झाड़ो। तुम्हें पता है कि अंततः खेतीबारी की जिम्मेदारी तुम्हें ही संभालनी है। अगर इस समय तुम कुछ दिनों के लिए खेतीबारी से मुंह मोड़ लोगे तो बाद में उसे संभालना मुश्किल होगा। तुम्हें पिताजी का नहीं बल्कि अपना हित सोच कर इस विषय में फैसला करना चाहिए।

पिताजी के पत्र से मुझे पता चला कि तुम मुझसे भी कुछ नाराज हो। लेकिन मैं तुमसे कभी नाराज नहीं हो सकता। मेरा खयाल है, पिताजी का यह भ्रम है। सैदपुर में अपने परिवार का अच्छी तरह ध्यान रखना। बच्चों की पढ़ाई का ठीक से प्रबंध करना। चम्पा की शादी के बारे में कोई प्रगति हुई हो तो लिखना। अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। किसी चीज की जरूरत हो तो मुझे तुरंत लिखना।

आशा है, स्वस्थ और प्रसन्न हो।

सस्नेह

नामवर

प्रिय रामजी,

1. तुम्हारा पत्र आज ही मिला। श्री भरत सिंह को भी मैं आज ही अलग से पत्र लिख रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि इस पत्र का कितना असर होगा, क्योंकि न तो मैं उन्हें व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ और न वे ही मुझे जानते होंगे। यों भी शादी ब्याह की बातें तो मिल कर ही की जाती हैं। चिट्ठी पत्री के कनकौवे उड़ाने से बात नहीं बनती। फिर भी चूँकि तुम कह रहे हो इसलिए पत्र लिखे देता हूँ। मुझे भी लगता है कि यह शादी तय हो जाये तो चम्पा सुखी रहेगी। लेनदेन की बात करेंगे तो देखा जायेगा।

2. अब पिताजी और गांव की खेतीबारी का प्रसंग। तुम्हारे पत्र से बहुत सी बातें मालूम हुईं साफ भी हुईं। मेरा खयाल था कि गांव की खेती में घाटा हो रहा है। अगर उपज अच्छी हो रही है तो खेतों को इस तरह लावारिस छोड़ना ठीक नहीं है। बात यह है कि पिताजी जैसा लिख देते हैं, मैं उसे मान लेता हूँ। तुम्हीं बताओ, इतनी दूर से मैं आखिर कर ही क्या सकता हूँ। मैं बराबर यही सोचता हूँ कि मां के न रहने पर बुढ़ापे में पिताजी को कोई तकलीफ न हो। अगर उनका दिमाग भी खराब हो जाय और वे चार गलत बात भी कहें तो हम लोगों को सह लेना चाहिए। इसी में हमारी शोभा है, हमारा गौरव है।

मैं तुम्हें जानता हूँ बचपन से जानता हूँ। तुम्हारे बारे में मुझे कभी कोई गलतफहमी नहीं हो सकती। तुम्हारे लिए मेरे प्यार में कभी कोई कमी नहीं आ सकती। विजय तुम्हें मुझसे और काशी से भी ज्यादा मानता रहा है। तुमने अपने और पराये में कभी भेद नहीं किया। हम तीनों भाइयों में तुम्हीं सबसे व्यवहारकुशल और कर्मठ हो। गांव की सारी जिम्मेदारी तुम पर सौंप कर हम लोग निश्चिन्त रहते हैं और हमेशा रह सकते हैं। हमें तुम्हारा बड़ा सहारा है। मेरे जीते जी तुम्हारा रोआं दुखे तो मेरे प्राण निकल जायेंगे। मां ने मुझ पर तुम दोनों की विशेष रूप से तुम्हारी जिम्मेदारी सौंपी है। इसे मैं कभी भूल नहीं सकता।

लेकिन तुम पिताजी को भी जानते हो। तुम्हें वे हम दोनों से किसी तरह कम प्यार नहीं करते। बात यह है कि तुम उनके पास रहते हो, तुमसे उनका रोज काम पड़ता है, इसलिए सारा गुस्सा भी वे तुम्हीं पर उतारते हैं। तुम्हारा अभिशाप यही है। मैं जानता हूँ कि सहने की भी एक सीमा होती है, लेकिन परीक्षा की घड़ी भी तो यही है। संभालने की समझदारी भी तो ऐसे ही समय जांची जाती है। मैं तुमसे यही उम्मीद करता हूँ कि तुम इस चलचलाव की घड़ी में भी उन्हें निबाहोगे। उन्हें समझा कर, बुझा कर, दब कर, झुक कर, पैर पकड़ कर चाहो तो मनवा सकते हो जिसे तुम सही समझते हो। जैसे भी हो खेती को बरबाद न होने दो। अंत में इसका मुआवजा भी तुम्हें ही देना होगा।

तुम्हारा परिवार देर सवेर जीवनपुर ही आयेगा। सैदपुर उसे सिर्फ चंद दिन रहना है। पिताजी को महसूस कराने के लिए ही मैं इस बात पर राजी हुआ था, वैसे मुझे इस बात का बेहद दुख था। दुख अब भी है।

इन बातों से तुम अपने मन में कोई दुख न माना करो। इसे पापग्रह का क्षणिक प्रभाव समझ कर धीरज धरो। कुछ ही दिनों में सब ठीक हो जायेगा।

आशा है, घर पर सभी मजे में हैं। बच्चों को प्यार और मालती की मां को आशीर्वाद। अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखा करो।

सस्नेह
तुम्हारा भैया

109 न्यू कैम्पस
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली-110067

15.6.82

प्रिय रामजी,

तुम्हारा पत्र मिला। श्रीकृष्ण सिंह के प्रवेश के लिए जितना बन पड़ेगा, करूंगा। वैसे, हमारे यहां प्रवेश के लिए बड़े कड़े कानून बने हुए हैं। अध्यापकों के हाथ में बहुत कम होता है। एक कमेटी होती है, जिसमें छात्र भी होते हैं और छात्र हर प्रवेश पर नजर रखते हैं। लिखित और मौखिक परीक्षा भी होती है। कम्पटीशन सख्त होता है। फिर भी श्रीकृष्ण से कहना कि विश्वविद्यालय से सूचना मिलते ही निश्चित तिथि से दो दिन पहले ही आ जायें। इस काम के लिए तुम्हें आने की जरूरत नहीं है। तुम्हारे आये बिना भी मैं अपनी ओर से वह सब करूंगा जो कि तुम्हारे आने पर।

लोलार्क वाले मकान को आबाद करके तुमने अच्छा ही किया। नाहक खाली पड़ा हुआ था। अब उसकी देखभाल भी होती रहेगी। हां बच्चों से कह देना कि किताबों से छेड़छाड़ न करें।

उम्मीद है पिताजी को तुमने इस मामले में राजी कर लिया होगा। इस उम्र में उनको हम लोगों की ओर से कोई तकलीफ नहीं पहुंचनी चाहिए। कोई बात हो तो विनम्रता से उन्हें समझा दिया करो।

गांव की खेती का जो भी इंतजाम तुमने किया होगा, ठीक ही होगा। ये बातें तुमसे ज्यादा कौन समझता है?

देहरादून से वीरेन्द्र का पत्र आया था। आखिर उसका भाग्योदय हुआ ही। बड़ा ही योग्य लड़का है। मुझे बहुत खुशी हुई।

अपने समाचार समय समय पर देते रहना। किसी का काम आ पड़ने पर ही चिट्ठी लिखना ठीक नहीं है। कभी कभी अपनी ओर से भी कुशल क्षेम की बात लिख दिया करो तो कोई हर्ज नहीं।

मैं मजे में हूँ।

घर पर सबको बच्चों सहित बहू को मेरा आशीर्वाद कहना।

अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना।

सस्नेह
नामवर

109, न्यू कैम्पस
जे.एन.यू.
नयी दिल्ली-110067

10.12.82

प्रिय रामजी,

तुम्हारी चिट्ठी आज मिली। अब मेरी तबीयत एकदम ठीक है। थोड़ी सी कमजोरी है, वह

भी एकाध हफ्ते में ठीक हो जायेगी। चिन्ता की कोई बात नहीं है। बीमारी के दिनों में तुम्हें इसलिए खबर नहीं दी कि कोई गम्भीर बात नहीं थी। इसके अलावा तुम नाहक ही घबड़ा जाते। दो तीन महीने में बनारस आने का प्रोग्राम बनेगा तो तुमको पहले से ही लिख दूंगा। तुम्हें देखे बहुत दिन हो गये। तुमसे मिलने की इच्छा मुझे भी है।

काशी भी बता रहे थे कि अजीता की शादी तुमने कहीं तय कर रखी है। इस साल मई में शादी कर ही दो। अच्छी सी लगन देख कर तय कर लेना। तुम्हारे इस विचार से मैं पूरी तरह सहमत हूँ कि शादी बनारस से ही होनी चाहिए। गांव से शादी करने में खर्च भी ज्यादा बैठेगा और परेशानी भी होगी। मेरा खयाल है कि बनारस से शादी करने में कुछ किरफायत ही होगी।

वीरेन्द्र के पत्र मेरे पास कभी कभी आते हैं। बड़ा अच्छा लड़का है। अपने रिश्तेदारों में सबसे होनहार और योग्य। उसको तुम भी पत्र लिखा करो।

घर पर सभी बच्चों को मेरा आशीर्वाद कहना।

अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना।

आशा है, प्रसन्न हो।

सस्नेह

तुम्हारा भैया

**109, न्यू कैम्पस, जे.एन.यू.
नयी दिल्ली-110067**

9.9.83

प्रिय रामजी,

आज कलकत्ते से लौटा तो तुम्हारा पत्र मिला। पहली बात तो यह कि तुमने न कोई गलती की है और न मैं तुमसे नाराज हूँ। चिट्ठी के जवाब में देर का कारण यह नहीं है।

लोलार्क कुंड वाले मकान की खबर से चिन्ता हुई। बनवाना तो उसे है ही। लेकिन अफसोस की बात यह है कि इस समय मैं कोई भी आर्थिक मदद देने की स्थिति में नहीं हूँ।

पिछली बार शायद तुम्हें मैंने बताया था कि दिल्ली में मुझे तीन कमरे का फ्लैट अलाट हो गया है जिसके लिए डेढ़ लाख रुपया किस्तों में देना पड़ा था। पिछले तीन साल से यह रुपया अदा करता रहा हूँ। इस बार बनारस जाने के पहले उस पर कब्जा लिया। फिर उसमें लकड़ी वगैरह के काम में पचास हजार रुपये लगे। अभी भी काम पूरा नहीं हुआ। बढ़ई और कारीगरों को अभी भी पांच छह हजार रुपये देने हैं। बैंक में जो कुछ जमा था वह तो निकल ही गया। विश्वविद्यालय से साठ हजार कर्ज भी लेना पड़ा। अभी भी कर्ज लेने की नौबत है। विश्वविद्यालय ने जो कर्ज दिया था उसे अब वह किस्तों में काट रहा है। इसलिए कट कटा कर तनख्वाह इतनी कम मिल रही है कि महीने का खर्च चलना मुश्किल है। मतलब यह कि इस समय हाथ एकदम खाली है।

शादी में तुम्हारा भी खर्च काफी हुआ। इसलिए तुम भी परेशानी में ही होगे। काशी की हालत तो हमेशा ही खराब रहती है। इसलिए समझ में नहीं आता कि मकान की मरम्मत कैसे होगी। कहना यही है कि यह काम तो इस स्थिति में तुम्हें ही करना होगा।

और सब कुशल है। आशा है तुम स्वस्थ और प्रसन्न हो।

सस्नेह

नामवर

प्रिय रामजी,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरा मन तभी से दुखी है जब तुम रोते हुए अचानक चले गये। काशी को भी बहुत दुख हुआ। यह तुमने अच्छा किया कि अपने हृदय की बात साफ साफ खोल कर लिख दी। जहां तक पिताजी की बात है, उनकी बात चुपचाप सुन लेने में ही हम सबका कल्याण है। आज भी मैं उनकी किसी बात का जवाब नहीं देता। मैं इतना जानता हूँ कि क्षणिक आवेश या क्रोध में वे चाहे कुछ भी कहें, अंत में वे अपने तीनों पुत्रों में से किसी के साथ अन्याय न करेंगे और न तो किसी का अहित होने देंगे। तुम्हें भी मेरी यही सलाह है कि जीवन की अंतिम घड़ियों में उन्हें हम लोगों की ओर से किसी प्रकार का मानसिक क्लेश नहीं मिलना चाहिए।

तुम्हारी परेशानियों की जानकारी मुझे कम है। इस पत्र से कुछ बातें मालूम हुईं। तुम्हारी ईमानदारी में मुझे कभी संदेह नहीं रहा। रोजमर्रा की जरूरतें तो तुम्हें स्वयं ही पूरी करनी पड़ेंगी। लेकिन खुदा न खास्ता कोई संकट आ ही पड़ा तो तुम मुझे निःसंकोच लिख सकते हो। मैं भरसक तुम्हारी मदद के लिए तैयार रहूंगा। अपने जीते जी मैं तुम्हें या काशी को किसी तरह दुखी नहीं देखना चाहता।

लोलार्क कुंड वाले मकान की हालत जरूर खस्ता है, लेकिन उसमें कामचलाऊ छोटी मोटी मरम्मत तो तुम्हीं करवा सकते हो। जहां तक उस मकान को तुम्हारे नाम लिख देने का सवाल है उसके लिए तुम्हें आखिर इतनी जल्दी क्यों पड़ी है? तुम उसमें रह ही रहे हो। इतना निश्चित है कि उसमें रहने के लिए काशी अब दुबारा न जायेंगे। वहां मेरे जाने या विजयी के जाने का भी सवाल नहीं उठता।

तुम यह भी जानते हो कि गांव की जमीन पर खेती करने के लिए न काशी जायेंगे न मैं और विजयी ही। अंततः वह सारी जमीन भी एक तरह से तुम्हें ही संभालनी पड़ेगी। लेकिन तुम तो लोगों का मनोविज्ञान जानते हो। जैसे ही तुम कहोगे या मैं कहूंगा कि आओ हम सभी लोग इस्तीफा दे दें और सारी जमीन रामजी के नाम लिख दें तो काशी के और मेरे परिवार के लोग ही विद्रोह कर देंगे यहां तक कि स्वयं पिताजी भी भड़क जायेंगे।

अगर तुम्हें मेरी नीयत में शक नहीं है और मेरी न्यायबुद्धि में तुम्हें कुछ भी विश्वास है तो सब्र से काम लो। धीरे धीरे सब कुछ वही होगा जिससे तुम्हें लाभ हो। फिलहाल मैं इतना ही कह सकता हूँ। थोड़ा लिखा, बहुत समझना।

इस दिशा में पहला महत्वपूर्ण कदम होगा साकेत कालोनी वाली जमीन काशी को मकान बनाने के लिए खुशी खुशी दे दी जाये। तुम जानते हो कि वह जमीन एकदम मेरे पैसे से खरीदी गयी है। यह तो काशी की भलमनसाहत है कि उन्होंने उस पर हम तीनों भाइयों का नाम चढ़वा दिया। हममें से किसी के पास इतने पैसे नहीं हैं कि उस पर मकान बनवा सके। काशी विश्वविद्यालय से ऋण लेकर बनवा सकते हैं। इसलिए मेरी राय में उन्हें यह मौका देना चाहिए। इस काम में जितनी ही देर होगी, उतना ही घाटा होगा। वैसे भी व्यर्थ ही कई वर्ष बीत गये।

जैसा मैंने उस दिन कहा था, मैं तुम्हें भी बिना मकान के सड़क पर न रहने हूंगा। वैसे भी खस्ताहाल ही सही लेकिन तुम्हारे सिर पर छत तो है ही। क्या कभी किसी ने इस बात पर एतराज किया है? इसलिए मन से व्यर्थ की शंकाओं को निकाल बाहर करो। प्रसन्न रहा करो अपने स्वास्थ्य के लिए, अपने प्यारे प्यारे बच्चों के लिए और हम लोगों के लिए भी।

अगली बार जब मैं बनारस आऊंगा तो लोलार्क पर भी आऊंगा और तुम्हारे यहां खाना भी खाऊंगा। समय की कमी और सुविधा के कारण ही अब तक मैं ऐसा न कर सका। अपनी गलती मैं कबूल करता हूं। जाने क्यों अभी तक यह बात मेरे ध्यान में आयी ही नहीं। अब चूंकि तुमने पत्र में लिख दिया है, इसलिए भविष्य में बराबर इसका ध्यान रखूंगा।

इस पत्र का जवाब जरूर देना, जिससे मेरा मन चिन्ता से मुक्त हो।

क्या तुम्हें मालूम है, मैंने अपनी मां के सामने कसम खायी है कि मैं जिन्दगी भर तुम्हारा ध्यान रखूंगा। उसने मुझसे वचन लिया है। मां से कही हुई बात मैं कभी वापस नहीं ले सकता।

सस्नेह तुम्हारा भैया

32, शिवालिक अपार्टमेण्ट

अलकनंदा

नयी दिल्ली-110019

5.2.98

प्रिय रामजी,

तुम्हारी 2 फरवरी 98 की चिट्ठी मुझे आज मिल गयी। चिट्ठी का जवाब देने से पहले एक शुभ समाचार।

कल 4 फरवरी को रात साढ़े बारह बजे गीता ने एक बच्ची को जन्म दिया। दोनों मजे में हैं। सब कुछ नार्मल ढंग से हुआ। अभी वह नर्सिंग होम में ही है। निर्मला और विजय भी अपने बच्चों के साथ गीता को देखने गये थे।

मेरी तबीयत अब ठीक है। लेकिन दवा अभी चलेगी कम से कम अप्रैल तक और उसके बाद भी जून अंत अथवा जुलाई के आरम्भ तक। चिन्ता की कोई बात नहीं।

बनारस में परदे के पीछे क्या हुआ, इसमें अब मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। इतना ही याद रखना चाहता हूं कि मेरे दोनों भाइयों ने मेरे लिए बहुत किया। इस मामले में तुम्हें शर्मिन्दा होने की जरूरत नहीं है। तुम अस्पताल में मुझे देखने के लिए आते थे, बाहर देर देर तक बैठे रहते थे मुझे खबर नहीं होती थी, पूछने पर पता चलता था कि तुम बाहर बैठे हो। मेरी भी मानसिक दशा ठीक नहीं थी बात बात पर चिड़चिड़ा जाता था। इसलिए शायद मुझसे तुम्हारी उपेक्षा भी हो गयी। तुम्हें बुरा लगा हो तो मुझे माफ कर देना।

मुझे यह जो नयी जिन्दगी मिली है वह तुम्हीं लोगों की सेवा सुश्रूषा के कारण। अपने दोनों भाइयों से मुझे जो प्यार मिला है वह दुनिया के लिए एक मिसाल है।

इस साल मैं जीयनपुर न आ सकूंगा। मेरी ओर से ठाकुर साहब और बाकी सभी लोगों से क्षमा मांग लेना। अगले वर्ष शिवरात्रि के आसपास आने का विचार है।

घर पर सभी बच्चों और उनकी मां को आशीर्वाद

सस्नेह

तुम्हारा भैया

मलय की पांच कविताएं

सुख बढ़ता आता है

आवाज

हवाओं से भरी है

या हवाएं

आवाज से

प्रकाश खुद को

आगे और आगे

फेंक कर

अंधेरे को हटाता चलता है

या अंधेरा ही

उसको छूकर

खुद छांह में छुप रहता है

और जब छांह नहीं मिलती

उसका छद्म खुल जाता है

फिर मौका पाते ही

अपनी ताकत बटोरने से

बाज नहीं आता!

कुछ भी
कैसा भी हो
दमकती बिजली की कौंध
अंधेरा चीरती
आवाज को
पछाड़ कर
आगे आ जाती है

सचमुच ही
जिन्दगी की
टकराहटों के बीच
सांसों को
बिजली सा कौंधना
हासिल हो गया है
समय पर सवार होकर
चलने की दमखम के
खुले हुए दरवाजों से आगे
रचने रचाने का
सुख बढ़ता आता है

गहरे ताप में

याद के बढ़ते
गहराते ताप में
ढल कर
मिट जाने के सिवाय
हीरा हो जाता हूँ

तुम्हारी
दमक को समेट कर
किरणीला
कौंधों से लबालब
भरा हुआ

क्या यह
आग पीकर
जीने का
जलता हुआ
समय है?

भरोसा है

समय,
कितना समाता है
सारभूत शब्दों में
कौंध कर कितना
हो जाता है बाहर
रास्ता दिखाता है

तब हमारी
शिरोन्मुखी शिराओं का
धमकना
कदमताल होता है

जाने अनजाने
अंधेरे में
तारों सा कौंध कर
बढ़ कर
हम साथ हो पाते हैं

शब्दों के बाहर की
दमकती
दौड़ धूप में
शामिल हैं?

बढ़ती आयु की आंखों में
आती इस दीप्ति से
दृष्टि का दम

आखिर कितना है,
कौन बतायेगा?

हाशिए से नयी उम्रें
खटखटायेंगी
दस्तक देंगी
आयेंगी अंदर
झाड़ेंगी जमी हुई धूल इनकी
इन सारभूत
शब्दों पर
पूरा भरोसा है

तब सुबह?

रातों में
जुगनुओं सा
जलना बुझना
जारी रहता है
क्या कर गुजरेगी यह रात
सोच से परे है

प्रकाश
जब चिनगारियों में
बिखरने लगे
और अचानक
लपटों में बढ़ कर
ज्वालाओं की
फसल हो जाये
तो भरोसा भी
भूसा हो जाता है
जो आगे केवल
खाद हो सकता है

तब प्रतीक्षा करो
धीरज रखो

लगातार
सक्रियता की
शपथ लेना लाजिमी है
चाही हुई सुबह
दशकों में क्या
शताब्दियों में
कैसे नहीं होगी?

एक किताब है

सांसों की लपट झपट से
पूरी निश्चिन्त
यह जीवन की
किताबें खुली हैं
धरती क्या
आसमान उतर कर
आंखें मिलाता है
कटे पिटे पन्ने भी पढ़ता है
तब शून्य के तार भी
झन्ना कर
कांपते रह जाते हैं
थरथराता रहता है वक्त

लिखने की कापियों से लेकर
किताबों की
पठित गहनता में
मुक्ति के रास्ते
खुलते हैं

भाषा की भोर में
अपने प्रकाश से
दीप्तवान पूरे
उदय अस्त के
सवालियों से बेखबर
उम्र के पृष्ठों की
पूरी एक किताब है

नवल शुक्ल की कविताएं

पहले वाक्य के पास बोला गया हर दूसरा वाक्य भी सच था

पहले वाक्य के पास बोला गया हर दूसरा वाक्य भी सच था
हर दूसरे वाक्य का सच
पहले वाक्य का ऐसा विरोधी था
कि एक सच को बोलते हुए
झूठ बोलने का अहसास होता था।

पर ऐसी परिस्थिति में चुप रहना
दूसरे वाक्यों के सच को चुप करना होता
वह भी ऐसे समय में जब
सच इतना कम मिलता था कि
दूसरे वाक्यों की चुप्पी से
पहले वाक्यों का सच सपाट और कम अर्थवान हो जाता था
तो इसीलिए मैं सच के बगल में उपस्थित और धैर्यवान
अन्य मनुष्यों और उनके वाक्यों को तरजीह देता था।

दूसरे वाक्यों के सच को बोलने से
संदेह से देखते थे लोग
कि जो बोल रहा है दूसरे वाक्यों के सच
वह झूठा है या लफ्फाज
कि वह चालाक है इतना कि
पहले वाक्य की आंखों में
उसके आसपास की धूल झोंकता है।

एक वाक्य के पास के दूसरे सच
और उसके आसपास की धूल को
छूने और कहने से, चाहे जितनी हो हानि एक अकेले सच की
वह झूठा ही क्यों न हो जाय
या हो जाय विस्थापित
सच को तत्काल कहना और बार बार कहना
अब इस तरह है आदत में शामिल
जैसे इसके बिना किसी एक झूठ को बार बार दोहराता हूं।

मैं जल्दी मर जाऊंगा

मैं जल्दी मर जाऊंगा
भूख से नहीं मरूंगा
भूख से मरते लोगों से
और शायद आपसे पहले मर जाऊंगा

जो भूख से मरेंगे
वे खाद्यान्न के सड़ जाने
और भोजन के फिंकने पर बात करने वालों से दूर होंगे
उन्हें तो पता भी नहीं होगा कि जब वे भूख से मर रहे होंगे
तो कोई इल्मीनान से उनके मरने के अलावा दूसरी बात कर रहा होगा
जब वे भूख से मरेंगे तो वे अस्पताल में नहीं होंगे
वे चैनल पर पल पल की वातानुकूलित खबर के साथ नहीं मरेंगे।

चलो अच्छा है वे अपने गांव में ही होंगे, समाज के साथ
तीखी धूप, धीमी हवाओं और उमस के बीच
चैनल से भी तेज खबर के साथ पूरा गांव जानेगा

उनके मरने का हाल
कि वह मर जायेगा
वह भूख से मर जायेगा ।

भूख से मरने पर पूरे गांव में होगी बातचीत
कि कभी कभी जो लगता है पहले मर जायेगा
वह भी कभी कभी एक दो दिन अधिक जी लेता है
क्योंकि हममें से जिसे भूख से लड़ने की अधिक आदत होती है
वह दुनिया अधिक देखता है ।

मुझे लगता है कि मैं जल्दी मर जाऊंगा
भूख से नहीं मरूंगा
भूख से कोई नहीं मरे ऐसा सपना देखता हुआ
भूख से मरने के इंतजार में जो लोग हैं कतार में
गांव घर से बोलते बतियाते हुए
उनसे पहले मर जाऊंगा ।

पहले भी मैं इसी तरह बातें करता था

पहले भी मैं इसी तरह बातें करता था
जैसे मैं अब करता हूं

पहले जिस तरह पिता बातें करते थे
अब वैसे नहीं करते

पिता अकेले बैठे रहते हैं अपने घर में
अपने परिवार के बीच वे सुनसान में होते हैं ।

पहले पिता के घर आने से
दीवारों तक में संयम का प्रवेश होता था
धीरज, विश्वास और उजास आता था
कुछ अच्छा सा, भला सा और उज्ज्वल सा लगता था ।

पहले भी पिता के इर्द गिर्द होंगे कुछ मुद्दे
तनाव असमंजस संघर्ष और दुख भी होंगे

पर पता नहीं वह कौन सी घड़ी थी
किस आचरण व्यवहार का प्रवेश हुआ घर में धीरे धीरे
कि पिता धीरे धीरे अनदेखे होते गये।

पहले भी मैं इसी तरह बातें करता था
जैसे मैं अब करता हूँ
मैं पिता की तरह होना चाहता हूँ, उनसे थोड़ा अधिक
मैं उनसे कम अकेला होना चाहता हूँ।

मैं अपने घर में भी देखता हूँ और
अपने लोगों की आंखों में भी
कुछ तो मेरी आंखें धुंधली होने लगी हैं
कुछ तो ऐसा है जो मेरी समझ से जानबूझ कर बाहर किया जा रहा है
कुछ है ऐसा जिसे मैं नजरअंदाज की तरह पहचान रहा हूँ
कुछ है ऐसा मुझमें भी पिता की तरह
कुछ, सांसें, कुछ खून या कुछ आवाजें
जिसे बियाबान में प्रवेश की
तरह पहचान रहा हूँ

पहले पिता इसी तरह बातें करते थे
अब नहीं करते।

पहले मैं इसी तरह बातें करता था
जैसे मैं अब करता हूँ
ये चलन के बाहर की बातें हैं
जिन्हें मैं भूलता जा रहा हूँ।

वे चलते हैं तो आवाजें नहीं होती हैं

वे चलते हैं तो आवाजें नहीं होती हैं
वे ऐसे चलते हैं सम्हल कर जैसे रात में चल रहे हों
उन्हें लगता है कि दिन में भी यदि वे चलेंगे, घर में
तो किसी को परेशानी हो सकती है

वे चलने से पहले उठते समय ही

फेफड़ों में भरते हैं भरपूर हवा
कि चलते समय सांसों की आवाज न आये
जिससे उनके गले में सुरसुराहट आती है, या खांसी
जिसे वे दबाते हैं कि आवाज न हो
ऐसे में वे निढाल हो जाते हैं
उनके गले की नसें फूल जाती हैं
आंखों में उभरती हैं लाल लाल डोरियां और पानी सा आ जाता है।

ठीक इस समय कोई देख ले उन्हें तो घबड़ा जाते हैं
और कोई पूछ ले क्या हुआ तो शर्मिन्दा हो जाते हैं
वे पिता हैं कहते हैं कुछ नहीं
वे कहते हैं तो भी कहते हैं कुछ नहीं
कुछ नहीं और
और कुछ नहीं।

जब थके हारे लोग अपने घरों में पहुंचते हैं

जब थके हारे लोग अपने घरों में पहुंचते हैं
तब विजेता चैन की सांस लेता है
थके हारे लोग अपने घरों में चैन से रहना चाहते हैं
पर उन्हें मन मसोस कर घर से बाहर निकलना पड़ता है
थके हारे समझदार लोग खाने सोने के समय ही पहुंच पाते हैं घर
तब विजेता प्रसन्न रहता है
थके हारे लोगों का दमन होता रहता है ठीक ठीक
तब विजेता अपने दर्प की आवाज पहचानता है
थके हारे लोग विजेताओं के समक्ष बखानते हैं विनम्र सी दयनीयता
तब विजेता को अपने दयावान चेहरे की याद आती है
जिसे वह अपने चेहरे पर झट से लगाता हैं

थके हारे लोग विजेता के समक्ष जैसे तैसे
फिर से खड़े होते हैं अगली सुबह
तब विजेता को असमंजस होता है
वह सोचता है कि काम करने लायक
बचे हुए दिखना चाहते हैं थके हारे लोग
या कि वे विजेता के सम्मान में खड़े हैं इस प्रकार।

थके हारे लोग अभी तक सम्मान की इस जगह की तलाश में हैं
थके हारे लोग इसी तलाश में काटते हैं जीवन जड़वत
विजेता को इनकी याद भी नहीं होती
वह किसी दूसरे क्षेत्र में अपने को आजमाता है।

थके हारे लोग इंतजार करते हैं विजेता का और उससे संवाद का
इस इंतजार के लिए हममें ही कोई है जो उन्हें बहकाता है।

कुमार अम्बुज की कविताएं

यदि तुम नहीं मांगोगे न्याय

यह विषयों का अकाल नहीं है
यह उन बुनियादी चीजों के बारे में है
जिन्हें थक कर या खीझ कर
रद्दी की टोकरी में नहीं डाला जा सकता

जैसे कि न्याय

जो बार बार मांगने से ही मिल पाता है थोड़ा बहुत
और न मांगने से कुछ नहीं, सिर्फ अन्याय मिलता है
मुश्किल यह भी हो गयी है कि यदि तुम नहीं मांगोगे
तो वह समर्थ आदमी अपने लिए मांगेगा न्याय
और तब सब मजलूमों पर होगा ही अन्याय

कि जब कोई शक्तिशाली या अमीर या सत्ताधारी
लगाता है न्याय की गुहार तो दरअसल वह
एक वृहत, ग्लोबल और विराट अन्याय के लिए ही

याचिका लगा रहा होता है।

रोशनी में छिपी चीजें

शहर की रोशनियों के उजास से
बहुत ऊंचाई तक भर जाता है रात का आकाश
इस तरह अनेक तारे होते हुए भी नहीं दिखते
सिर्फ उन्हें गांव के बचपन की रातों में देखने की
स्मृति कौंधती है

रोशनी की ओट के अंधेरे में छिपे
घर के कोनों में भी
चूहों, छिपकलियों और तिलचट्टों का जीवन
हर हाल में चलता ही रहता है
और तमाम अंधेरी सड़कों, गलियों और पिछवाड़ों में
अनगिन तकलीफजदा मनुष्यों का भी
जो दूसरी चकाचौंध में उसी तरह दिखायी नहीं देते
जैसे आसमान के अनेक सितारे

फिर धीरे धीरे इन दृश्यों का, स्मृतियों का
कोई सा भी मतलब खतम होने लगता है
बात करना चाहो तो इन पर कोई बात भी नहीं करता
कलाओं की विषयसूची से भी बेदखल होती जाती है संवेदना
भावुकता, करुणा या आत्मदया

फिर यह जीवन
अंधा कर देने वाली तेज रोशनियों से
निजात पाने की कोशिश होता चला जाता है।

शहर का साहित्यिक वातावरण

(कवि को रिपोर्टर भी होना पड़ता है)

जो पुरस्कृत हैं वे मान चुके हैं
कि उन्हें यहीं तक आना था, यही था अभीष्ट
बाकी आयोजकों, प्रबंधकों और संचालकों की तरफ

कुछ अजीब सी टकटकी उम्मीद में देखते हैं
लेकिन एक मदिरा पार्टी उनके विचारों और फैसलों को
रातोंरात बदल देती है

जैसा कि दूसरे शहरों कस्बों में भी हुआ ही है
कि साहित्य में प्रवेश कर चुके हैं अमीर लोग
ये नवधनाढ्य ही हैं सर्जना के पारखी
उनमें से कइयों ने हड़प लिए हैं सरकारी बंगले
वे उसी तरह करते हैं तमाम आयोजन
जैसे धर्मस्थलों पर माता पिता की स्मृति में
लगवाया जाता है संगमरमर
संस्थाएं चल रही हैं मानो आईसक्रीम पार्लर
या रेडीमेड कपड़ों की दुकानें
अब तो शहर में कुछ शाखाएं भी हैं उनकी
वे देने लगे हैं लघु पत्रिकाओं तक को विज्ञापन
इस तरह उनकी पहुंच अब हृदय की धमनियों तक है

यों तो हर चीज का अर्थ
प्रकट है सत्ता के साथ या सत्ता के विरोध में
लेकिन इनमें से कोई छोड़ना नहीं चाहता सत्ता का संग
बल्कि अब तो साफ है कि यदि आप सत्ता के साथ नहीं हैं
तो जाहिर है कि आप साहित्य के खिलाफ हैं

नवांकुर चल रहे हैं अपने हाथों में
उन जगहों के पते लिये जो उजाड़ दी गयी हैं
और फिर बसा दी गयी हैं इस तरह कि चमकती हैं
मगर उन पुरानी अजीब आबादियों से उनका कोई मेल नहीं
इस तरह पूरा शहर बदल चुका है, नाम वही है

धैर्य रखें, एक दिन वह भी बदल दिया जायेगा।

मैं रात का प्रशंसक हूँ

रात ही है जो मुझे देती है एक नयी काया, एक नया जीवन
दिन एक पहाड़ है जो रात की शिला की छाया में उतर जाता है

यह प्रेम क्या है, बस एक तारों भरी रात का जीवन
जिसकी प्रतिलिपियां बनाते हुए ही बीतती चली जाती है आयु

यह रात है जो स्वप्नों की ऊंचाई के थकान के पत्थर पर
बार बार मेरा आविष्कार करती है
यह रात है जिसे क्षयरोगी चंद्रमा पखवाड़े की ताकत के बाद
फिर चुनौती देता है और पार कर लेता है
यह रात है जो दिन भर की आवाजों को इस तरह इकट्ठा करती है
कि उनमें ओस भर जाती है और कभी अंधकार, कभी चांदनी

यह रात है जो हर उस आदमी को
जो रात में ही बिता देना चाहता है अपनी रात
अपने भीतर जगह बनाने के लिए देती है जगह
और इस तरह भी जीवन और सभ्यता में
कलाएं अपनी जगह बनाती चली जाती हैं।

और दूसरी कोई रोकटोक नहीं है

खबरों में सब तरफ मनुष्य के सुखी और सम्पन्न
होते चले जाने की सूचनाएं हैं कि हद है चुटकुलों की
और उनसे हंसी या खुशी पैदा नहीं हो पा रही
जबकि हर चीज हो चुकी है किसी न किसी की निजी सम्पत्ति
और कानून ऐसा है कि कोई कुछ भी, कितना भी खरीद सकता है
बस, पैसा होना चाहिए और दूसरी कोई रोकटोक नहीं है

ऐसे में यह एक पौधा उग रहा है दीवार में दरार करता
अभी इस पर किसी का ध्यान नहीं
यह बाजार से बाहर इधर जरा अकेले में है
में कोशिश करता हूं कि देखूं इसे किसी विकल्प की तरह

और सोचता हूं कि उम्मीद कब बदल जाती है सहनशीलता में
और क्या यह जिन्दा आदमी की अनसुनी सी कोई बुदबुदाहट है
या महज एक अधूरी इच्छा या खून की कोई लकीर
जो चुपचाप रहने चली आती है कविता में।

सदी में अंत का जीवन

यह अनंत संसार महज अब एक दस बाईं बारह का कमरा
अपने जीवित रहने की मुश्किल और गंध से भरा
खिड़की से दिखती एक रेल गुजरती है, भागती हैं जिसकी रोशनियां
उजाला नहीं करतीं, भागती हैं मानो पीछा छुड़ाना चाहती हैं अंधेरे से
उसकी आवाज थरथराहट भरती है लेकिन वह लोहे की आवाज है
उसकी सीटी की आवाज बाकी सबको ध्वस्त करती

आबादी में से रेल गुजरती है रेगिस्तान पार करने के लिए
लोग जीवन में से गुजरते हैं प्रेमविहीन आयु पार करने के लिए
आखिर एक दिन प्रेम के बिना भी लोग जिन्दा रहने लगते हैं
बल्कि खुश रह कर, नाचते गाते जिन्दा रहने लगते हैं

प्रेम की कोई प्रागैतिहासिक तस्वीर टंगी रहती है दीवार पर
तस्वीर पर गिरती है बारिश, धूल और शीत गिरता है,
रात और दिन गिरते हैं, उसे ढंक लेता है कुहासा
रहने लगती हैं उसके पीछे मकड़ियां, छिपकलियां
फिर चिकित्सक कहता है इधर आंसुओं का सूखना आम बात है
इसके लिए तो कोई डॉक्टर अब दवा भी नहीं लिखता

एक दिन सब जान ही लेते हैं:
प्रेम के बिना कोई मर नहीं जाता

खिड़की से गुजरती रेल दिखती है
और देर तक के लिए उसकी आवाज
फिर आधिपत्य जमा लेती है

पीछे छूट गई बारीक, मटमैली रेत में
मरीचिका जैसा भी कुछ नहीं चमकता।

(दो)

सब लोग एक दूसरे से मिलने तरस जाते हैं
दूरियां हैं, कामधाम हैं और लोकल ट्रांसपोर्ट भरा है ठसाठस

पेट्रोल इतना महंगा है जैसे है ही नहीं
समय है लेकिन मनुष्य के कब्जे में नहीं

धीरे धीरे इस बात की आपसी समझ बन चुकी है
कि रोज रोज की मेल मुलाकात सम्भव नहीं
सारे विस्थापित जान गये हैं कि अब वे
किसी गांव कस्बे के निवासी नहीं रह गये

यहां से कुछ ही दूरी पर जो एक बहुत बड़ा कॉम्प्लेक्स है
गूगल अर्थ में शहर के नाम पर दिखती है उसी की तस्वीर
अब यही गगनचुम्बी इमारत है इस शहर का पर्यायवाची
लांग शॉट में यह हजारों प्रकाशमान खिड़कियों से आलोकित
दिखायी देती है किसी उज्ज्वल द्वीप की तरह

हालांकि इसी शहर में ऐसी भी खिड़कियां हैं असंख्य
जिनके भीतर भी रहे चले आते हैं जीवित मनुष्य
लेकिन उधर से कोई रोशनी नहीं आती
बस, दिखता हुआ खिड़कियों के आकार का अंधेरा है
जिसे आसपास की रोशनियां और ज्यादा गाढ़ा करती हैं।

वह किताब जो तुम ले गये थे

मुझे अक्सर ही उस किताब की याद आती है
जो तुम ले गये थे हफ्ते भर के लिए
अब तो बहरहाल आठ साल हुए

जब भी मैं देखता हूं तुम्हें
सोचता हूं कि तुमने उसे पढ़ ही लिया होगा
इस तरह मैं तुम्हें देखता हूं उस उम्मीद से
जो उस किताब को पढ़ लेने के बाद
किसी आदमी से की ही जा सकती है

फिर यह आशंका भी पीछा करती है
कि मुमकिन है तुमने उसे रख दिया हो यों ही कहीं
रद्दी में बिक जाने की कल्पना भी बहुत गलत न होगी

कि तुमसे उस किताब का कोई जिक्र मैंने कभी सुना नहीं

और धीरे धीरे गुजर गये इतने लम्बे अर्से के बाद
उस किताब के बारे में अब तुमसे कुछ भी पूछना
मुझे ही ध्वस्त कर देगा।

यह पहला दशक

हर कंधे पर दूसरे कंधों की रगड़ के निशान हैं
अवसाद कई बार उतरता है चांदनी की तरह
तो अक्सर ही हर एक को दूसरे के मन के आंगन में दिखता है प्रकाश

क्रोध है मगर इतने संस्थानों का प्रशिक्षण है
कि हर तरफ हैं मुस्कराहट की तस्वीरें
चैनलों की भरमार है लेकिन मन है कि उसका रंजन होता नहीं
कोने कोने में बंदबू है, लिंक रोड के केन्द्रीय पार्क में गुलाबों की प्रदर्शनी
फसल और किसान दोनों सड़ गये खेतों में
गोदामों में परंतु पैसे की खेती हुई है
जिसकी रसीदों पर बैंकों ने दिया है असीम कर्ज
चमचमाता बाजार है और गजब की तंगहाली
इस तरह अर्थव्यवस्था है

खून और मवाद से लिथड़ी हुई कितनी चीजें
सत्ताओं की नाभि की सोनोग्राफी में दिखती हैं

सड़क किनारों के बंगलों के संतरी बारिश में भीगते राहगीर को
पोर्च में खड़े होने की कोशिश की अनाधिकृत चेष्टा में गोली मार सकते हैं
बहरहाल, गोली आपको कहीं भी मारी जा सकती है
दत्तेवाड़ा, गुवाहटी, अहमदाबाद या मेहरौली में तो बहुत आसानी से

अरे भाई, आप नहीं, आपका चेहरा नहीं, पहचानपत्र चाहिए
जिनके पास घर नहीं वे भी बगीचों में, पुलियों पर देर रात बैठ नहीं सकते
इन सब बातों पर जैसे ही आप कोई सवाल उठायेंगे, जिक्र भी करेंगे
देशद्रोही मान लिए जायेंगे तत्काल

जीवन के लिए अब प्रतिभा नहीं मार्केटिंग की बर्बरता चाहिए।

जुगनुओं पर फिल्म

मैं जुगनुओं पर एक फिल्म बनाना चाहता हूँ
कि इधर तमाम भागमभाग में लगी दुनिया को एक दिन
आखिर फुरसत होगी और थकान तो वह पूछेगी ही कि जुगनू कहां हैं
और नयी सदी के नये बच्चे पूछेंगे:
आखिर जुगनू होते कैसे हैं!

तो बेहतर है कि मैं एक फिल्म ही बना लूँ
लेकिन मुझे मिल नहीं रहे हैं जुगनू
यों तो इस शहर में था जुगनुओं का एक तालाब
मगर अब वहां कीचड़ है और नगर निगम की रोशनियां
(अवांतर: और दो बेंच जिन पर शोहदे और पुलिस प्रेमियों को बैठने नहीं देते)

तो खोजूंगा मैं अपने आसपास ऐसे आदमियों को जो जुगनू हों
और जुगनू न भी हों तो कम से कम
जुगनुओं का अभिनय ही कर दें

प्रजातियों को यदि जीवन में जगह न मिल रही हो
तो उन्हें कला में कहीं रख देना चाहिए
इस तरह वे किसी न किसी ज्ञात अज्ञात भाषा में
और किसी रंग और दृश्य में भी गुजार लेती हैं अपना जीवन

लेकिन मुझे मिल नहीं रहे हैं जुगनू
और न ही ऐसे लोग
जिनमें हो जुगनुओं के अभिनय का सामर्थ्य और इच्छा

मुझे भटका रही है
यह भूख, यह प्यास, यही मरीचिका।

वेटिंग रूम

सुबह का वक्त था और वेटिंग रूम के बाहर

आसमानी साड़ी में तैनात थी एक महिला
अंदर फर्नीचर काफी पुराना था, अधिकतर शीशम का
अंग्रेजों ने बनावायी थी वेटिंग रूम की खूब ऊंची छत
जिससे लटके हुए दो पंखे घूम रहे थे घूं घूं

लोग बिखरे हुए थे सामान की तरह
सामान को बांध रखा था जंजीरों से
एक पंजाबी परिवार कर रहा था परांटों का नाश्ता
परांटों की खुशबू वेटिंग रूम को
कुछ कुछ घर जैसा बना रही थी
उधर एक खूबसूरत स्त्री उत्सुक आंखों से
देख रही थी बाहर प्लेटफॉर्म का दृश्य
उसका पति अभी अभी गया था शौचालय के अंदर
और उस स्त्री के सामने बैठा घुंघराले बाल का लड़का
उसे घूरे जा रहा था निडर, अब निरापद

भीतर भी कम नहीं थी भीड़
शौचालय एक था
और छः सात आदमी घूम रहे थे बौखलाये
स्नानागार के सामने भी खड़े थे तीन चार लोग
जिन्हें सफर में भी नहाये बिना नहीं आता था चैन
नहा कर आया एक आदमी
बालों की उंगलियों से मालिश करता हुआ
देख रहा था बाकी लोगों को इस तरह
मानो वे सब पापी हैं

फर्श पर ही दरी बिछा कर
एक बुजुर्ग पढ़ रहे थे इस मुद्रा में अखबार
जैसे निबटा रहे हों तमाम फालतू लोगों के बीच
सबसे जरूरी काम

एक चश्मे वाला लड़का घनघोर सो रहा था बेंच पर
उसके पास बैठी लड़की
जो नाक नक्श से बहन थी उसकी
बार बार ठीक कर रही थी अपना दुपट्टा

उधर कोने में एक प्रौढ़ा प्रसन्नचित्त
गालों पर रूज जैसा कुछ लगा रही थी
उसके करीब ही दांतों पर ब्रश रगड़ता आदमी
खांस रहा था इस तरह
मानो उल्टी ही कर देगा

इन तमाम दृश्यों को बीच में से चीरती हुई
आती थी अक्सर ही
लम्बी सीटी के नेतृत्व में
रेल के गुजरने की आवाज ।

श्रीप्रकाश शुक्ल की छः कविताएं

बसंत

यह बसंत है।

धीरे धीरे भरता जीवन रस
चढ़ता यौवन ज्यों मकरंद पात
उठती सिहरन जब गात गात
झर झर झरते सब दिवस रात
आलस पियराता लालस ललियाता
नदी नार के ठहरे पानी में
भाप ताप सा उतराता
यह बसंत है ।

तापस तपसी का शीर्ष लेख
उतप्त जवानी का जोखिम
मन की निजी गहराई में
हलचल सा ज्यों तनहाई में

बिछला बिछला फिसला फिसला
उषाकाल की दखिनाई में
चलता फिरता बटरोही सा
यह बसंत है ।

होगा कोई ज्यों अनदेखे
भ्रमरी हवा की बेला में
गुजर गया होगा पथ में
पागल पिकी पे
मुस्काते

अपना तो बस कर्म अनाहत
आकुल चित से रस भरता
आतप में भी वात सा तिरता
ठिठुरन में किट किट करता

बोझिल पावों जो बचा रह गया
बुदबुद करता
खुदबुद करता
वही बसंत है ।

हां, यही बसंत है ।

यह पेड़ के खिलाफ दीमकों की साजिश का समय था

यह पेड़ के खिलाफ दीमकों की साजिश का समय था
और सत्ता अपनी दमक में
जनता के दमन की सभाएं कर रही थी

अन्ना हजारे के जयांदोलन के ठीक बीचोंबीच
दीमकों ने एक साजिश की
उसे एक संगठित रूप दिया
और अर्थ देने की चाहत में एक पेड़ से लिपट गये

लिपटना इन दिनों दीमकों के स्वभाव का हिस्सा हो गया था

और अपने छिपे को वे यूँ ही उधार रहे थे!

इधर उन्हें लगने लगा था कि उनका सतह पर दिखना
पेड़ के गिरने की अनिवार्यता से जुड़ा मामला है

पेड़ धीरे धीरे कमजोर हो रहा था
वह असमय ही जर्जरित हो रहा था
झुर्रियों की दरारों के बीच अब वह संवलाता सा जा रहा था
और उसकी जड़ों तक पहुँचने वाले रसद पर अब दीमकों का कब्जा हो गया था

दीमक अब छापामार युद्ध पर उतारू हो गये थे
और पेड़ को भेजी गयी सभी खुराकों को वे रास्ते में ही रोक ले रहे थे।

उनके पास ठीक इसी समय छतीसगढ़ में उठने वाली आवाजों की एक समझ थी
हालांकि वे सलवा जुड़ूम के पक्षधर थे
और दंतेबाड़ा के नक्सलियों के मरने पर खूब मगन हो रहे थे

वे वहाँ के इतिहास से इतने परिचित हो गये थे कि
नक्सलियों के सबसे बड़े हथियार छापामार युद्ध से इतना तो सीख ही गये थे कि
एक पेड़ को कैसे कंपाया जा सकता है
कैसे उसे बुखार में उतारा जा सकता है
और कैसे उसकी आंतों पर हमला करके... उसकी आत्मा में बनने वाले विचारों को
भोंथरा किया जा सकता है

अब वे लगतार उसकी जड़ों में बैक्टीरिया घोल रहे थे
और जड़ों से लिपट कर उसके गिरने का इंतजार कर रहे थे!

लेकिन पेड़ तो आखिरकार पेड़ ही निकला
उसने एक कठफोड़वा का आह्वान किया
और एक संगठित साजिश के बावजूद
खुद को गिरने से बचा लिया

पेड़ का यह बचना दीमकों के लिए एक पराजय जैसा था और
आगे की कथा अब यह है कि दीमकों ने बिच्छू का रूप धारण कर लिया है
और डंक मारने की चाहत में

पूछ उठाये इधर उधर घूम रहे हैं ।

दोस्त

वह जो कि एक दोस्त था
बहुत चुप था जब दोस्त था

सोचा कि चलो थोड़ी दुश्मनी ही कर लें
सुन लें उसे भी कुछ कहे जो वह

दोस्त फिर भी चुप रहा
वह बहुत ही तंगदिल निकला
दुश्मनी की सरल भाषा भी नहीं समझता ।

2

कितना अच्छा था कि हमारे बीच एक बात थी
और परिसर में
फिर भी मौन की तरह रात थी

अब जब मौन ही मौन है हमारे बीच
हवाओं में अभी भी घबराहटें हैं
मौसम के अविश्वास की तरह!

3

संवाद की कितनी दुश्वारियां हुआ करती हैं
यह लोकतंत्र से नहीं
दोस्त से पूछो
जो स्वयं ही लोकतंत्र था
एक लम्बे शिकार पर निकलने से पहले !

अलसायी उम्मीदें

पिता खिलखिला रहे हैं

भरे खेत की तरह
पूस की धूप में लहलहा रहे हैं

मौसम में हलचल है
शिशिर की छोटी होती देह
अपने गोह के उजाले में किटकिटा रही है

हवा तेज है
पत्तों की पियराती नसों में
माया का मुख लिए
कांप रही है काया

सब जगह बोरसी है, कौड़ा है, तगाड़ी है
आवाज है, कोलाहल है, होड़ा होड़ी है
लेकिन पिता हैं कि अपने मुंह से निकली भाप में ही
अपने गत जीवन की भट्ठी को ताप रहे हैं

सांझ होने को है
कोहरे के उड़ते फाहों से
वातावरण थिर है
और पिता हैं कि अलसायी... उम्मीदें लिये
अपने बिस्तर की तरफ बढ़ रहे हैं

भीतर कहीं गहरी आश्वस्ति है
एक और दिन बीता
जीवन अभी नहीं रीता

पहरे पर पिता

पिता रात भर खांसते हैं
जगते हैं तो समय पूछते हैं
सोते हैं तो खरटि भरते हैं

कभी कभार
नहीं नहीं कभी कभी

जोर जोर से खांसते हैं
जैसे कि बचपन में नयी नवेली बहुओं के होने पर
ओसारे से ही खांसना शुरू करते थे

पिता बहुत आश्वस्त हैं
अभी भी खांस रहे हैं
लेकिन जब सुबह उठते हैं तो पूछते हैं
आज रात खांसी तो नहीं आयी !

पिता हमारी नींद को लेकर
अपने खांसने में भी सजग हैं
लेकिन इतने नहीं कि जब वह आ ही जाये
तो नये जमाने की तरह 'एक्स्क्यूज मी' कहना न भूलें !

अब जब कभी खांसते हैं तो मुह तोप कर खांसते हैं
और जब उनसे दवा लेने की बात कहता हूँ
तब फिर खांसते हैं
और धीरे से मुस्करा देते हैं

खांसना जैसे उनका पहरे पर होना है
और जिन्दा रहने का निशान छोड़ना है!

पिता की रुलाई

आजकल पिता बात बात पर रोते हैं
रोना जैसे अपने होने को जीना है

कहीं कुछ याद आता है तो रोते हैं
कहीं कुछ भूल जाता है तो रोते हैं

कभी हंस हंस के रोते हैं
कभी रो रो के हंसते हैं

जब वे रोते हैं तब अपने वर्तमान में होते हैं
जब हंसते हैं तब अतीत में

अपने हंसने में जिन्दगी का विस्थापन मापते हैं

हंसना जैसे बीते जीवन को फिर से देखना है !

प्रियदर्शन की कविताएं

दुख

कुछ दुख बेहद बोलते हुए होते हैं
कुछ छूट जाने का दुख
कुछ प्राप्त न कर पाने का दुख
कभी कभी अपमान सहने का दुख
और इस पर भी चुप रहने का दुख
कभी कभी दूसरों के उपहास का दुख
खुद को सही न समझे जाने का दुख
किसी मोड़ पर अकेले पड़ जाने का दुख
किसी मोड़ पर किसी से छले जाने का,
किसी के छोड़ दिये जाने का दुख
और सबसे बड़ा जिन्दगी को व्यर्थ जिये जाने का दुख।

2

कुछ दुख बेहद चुपचाप होते हैं

वे कभी कभी हलक में अटक जाते हैं,
 अनमनेपन में उलझ जाते हैं
 कभी कभी तो मुस्कान में भी छुप जाते हैं
 वे नींद में आते हैं दबे पांव
 किन्हीं पुराने दिनों की यादों के साथ
 जो किन्हीं नये दिनों के अंशों से बंधी होती हैं
 ये दुख अपना पता नहीं बताते
 वे लम्बे समय की टीस से बने थके हुए दुख होते हैं
 वे हड्डियों की पोरों में बसे दुख होते हैं
 वे आंखों की कालिमा में धंसे दुख होते हैं
 कोई पूछता भी है तो आप नहीं कह सकते
 कि आपको कोई दुख है
 और है तो किस बात का है
 कई बार आप खुद से भी पूछ बैठते हैं
 इतना दुख किस बात का है
 और उदासी उलझन अनमनेपन के बीच खोजते रहते हैं अपने दुख का धागा।

3

कुछ दुख अनायास चले आते हैं
 जैसे वे घात में बैठे हों
 और जब खुशियां आपका माथा सहला रही हों
 आपके छाला लगे पांवों पर मरहम लगा रही हों
 यह तसल्ली दे रही हों कि सब कुछ ठीक है सुंदर है
 किसी कांटे की तरह पांवों में चुभ जाते हैं
 गजब ये है कि तकलीफ का बहता हुआ रक्त
 तब आप किसी को दिखा भी नहीं सकते
 आप जानना चाहते हैं, कब से छुपा बैठा था ये दुख
 आप जानना चाहते हैं, क्यों अचानक याद आया आपके सुख का हत्यारा यह दुख
 कि आप अपने पीछे पीछे और पीछे जाते हैं
 कि कोई छूटी हुई पीड़ा सिर उठाती है
 याद दिलाती है कि उस दुख को छोड़ कर जो भी सुख होगा नकली होगा
 उस दुख को पहचानोगे, तभी यह सुख भी आत्मा का विहंसता हुआ हिस्सा होगा
 न जाने कितने छुपे हुए दुखों की पोटली लेकर चलते हैं हम
 और जिन्दगी की किसी शाम को कैसे उस पोटली से निकल कर

गिर पड़ता है कोई दुख

उसे उठाने के लिए, गले से लगाने के लिए, फिर से पोटली में बांधने के लिए
कभी कभी झुकना पड़ता है, रुकना पड़ता है और अपने को फिर से देखना पड़ता है।

4

कुछ दुख हमसे बात भी करते हैं

उनकी पनीली आंखें

हमारे कातर चेहरों पर टिकी होती हैं

उनके भुरभुरे हाथ हमारे अनमने कंधों पर पड़े होते हैं।

वे बंधाते हैं धीरज,

भरोसा दिलाते हुए कि वे देर तक नहीं रहेंगे

चले जायेंगे जल्दी।

कुछ दुख हो जाते हैं इतने आत्मीय

कि उनके बिना अपना भी वजूद लगता है आधा अधूरा।

5

कुछ दुख लौट लौट कर आते हैं

हमेशा दुख की तरह नहीं, दुख की याद की तरह

जिसमें दरअसल एक तरह का सुख छुपा होता है

इस तसल्ली के जुड़ा कि बेवफा नहीं निकले दुख,

वादा निभाया और छोड़ कर चले गये।

इन छूटे हुए दुखों से हम हंस कर मिलते हैं।

अचरज करते हुए कि हमने ही झेले थे ये दुख

उनके प्रति कृतज्ञ होते हुए कि ये दुख न होते

तो न सुख आता, न सुख का मोल ही समझ में आता,

उन्हें धन्यवाद देते हुए कि दुखों ने जितना तोड़ा, उतना जोड़ा भी

वरना सुख का यह अकेलापन तो काटने दौड़ता है।

नीलोत्पल की कविताएं

शब्द जीवन का अभाव है

हमें जीवित के पास होना चाहिए
जैसे कब्र पर उगे फूल
या रेल की पटरियों के बीच
पत्थरों में सांस लेता घास का तिनका

छोटी चिड़ियाएं धान के लिए
विचित्र संगीत से भर देती हैं
सड़क के किनारों को

गीली मिट्टी सूरज को ठंडक पहुंचाती है

रात नदी के किनारों को
झींगुरों का नृत्य उत्सव
विफल प्रेमी की कामनाओं से दीप्त करता है

फसलें पूर्ण प्रतीक्षा करती हैं
परछाइयां बतलाती हैं रोशनी किधर है

आस्थाओं का कोई स्वर्ग नहीं
फिर भी दुष्ट बतलाते हैं
एक शांत सुबह जीने के विचार बदल जाते हैं
जब हर चीज दूर
और अनुपस्थित है

शब्द जीवन का अभाव है

नश्वर चीजों को ही अमरता का वरदान है

नश्वर चीजों को ही अमरता का वरदान है

वे बार बार जन्म लेती हैं
जैसे चाकू पीलेपन को काटता है
और रंग झरता नहीं

पेड़ और समुद्र खाली होते हैं
किनारों पर पत्तों का ढेर जुगाली करता है स्मृतियों की

प्रेम अनेकानेक जन्म लेता है
शब्द, मृत्युओं से अधिक खामोश है

जो अपना युद्ध हार कर लौटे हैं
उनके थके पांव टिके हैं तनी दीवारों से

जीवन को कोई वरदान नहीं
रेत घड़ियां खामोश आवाज में चलती हैं

उनकी टिकटिक वही सुनते हैं
जिन्होंने अपने कान मृत्यु से सटाये
फूले दरवाजे अकस्मात कम्पन है हवा पानी का
आखिरी समय चीजों की पवित्रता भंग होती है

सिर्फ वे ही जो बाहर निकल गये हैं
अपनी स्मृतियों से
जिनके खोने की कौंध
खाने से ज्यादा होने की खामोशी में है

2

छूटा तीर एक विफल सच से बड़ा नहीं
धागे वैसे ही रहते हैं जैसे टांकते वक्त
नायलान के कपड़े की जिरह खुल जाती है
और हवा में रह जाती है एक सनसनाती आवाज

सच अमर हो सकता है
लेकिन उधेड़बुन में टांके हम ही लगाते हैं

जीवन का उत्सव

उत्सवों की रात अकेली होती है

आधी रात पानी पीने के लिए उठता हूँ
आसपास रोशनी के दमकते प्रतिबिम्ब गिरते हैं
मैं उन्हें चुनता हूँ, एक असमय से घिर जाता हूँ

रोशनी में बेसुध नहाये मकानात
कितने चुप हैं
और कितने मजे में है वह सुग्गा
हवा बिना बताये उसे ले जाती है
उन पहाड़ों की ओर
जहां ऊंचाइयां आदर्श नहीं
जैसे उत्सव एक आरोपित क्रिया है

सभी ओर अवाञ्छित प्रतीक्षा है
कोई चीजों का नर्क खड़ा करता है
कुछ फिसलते हैं, किसी को सही तस्वीर नहीं मिलती

कई अंधेरे हैं
कई अंधेरे सुने नहीं जाते
कई रोशनियां बेआवाज गाती हैं

मल्लाह अपने गीतों को अधिक नहीं चमकाता
कसेरे की ठकठक सांचों के बाहर होती है

हर विमुक्त प्रयास पानी को
उत्सव की तरह रचता है

जीवन का उत्सव दिखता नहीं

रूपांतरण

हवा जिस तरह रूपांतरित करती है अपनी देह
परदे, मूर्तियां, लटकते तार, पत्तों के भीतर
यहां तक कि दीवारों पर रंगती छिपकली की
बारीक छाया के इर्दगिर्द
एक सांस से दूसरी सांस तक की यात्रा तलक
जैसे कोई अपरिचित कलाकार
अपनी कलाकृतियां बनाते
बच रहा है उन्मादी होने से

यात्रा चलती रहती है
उखड़ी दीवारों और दरारों में
अजीब सी खामोशी है
देर तक अपनी परछाइयों से बतियाती है

हवाएं नींद और घावों को सहलाती हैं
सुंदरता धीरे धीरे जटिल होने लगती है
दुख कोहरे में छिपाता है आंसू
बहुत देर तक हम समझ नहीं पाते
किताबों को किसने गीला किया

अंधेरे में चलते हुए

नजर नहीं आते कच्चे रास्ते
बेशक धूल भरे पांव घरों तक ले आते हैं
लड़खड़ाता अनुभव

दीर्घाओं में बैठ कर पहाड़ अवलोकन करते हैं
शाम के अंतिम प्रहरों का
हर पत्ता, उदासी को टालने की कोशिश में
झर जाता है अंततः
जिसने अभी उम्मीदों को ठीक नहीं किया
गाने वाली चिड़ियाएं छतों को पार कर
छोड़ जाती हैं कटोरदानों के आसपास
टूटे पंखों का भरोसा

कितनी विरल ध्वनि है उन चाहतों की
धीरे धीरे दूर होती हैं
हम समझते हैं ऋतुएं बीत गयीं
जबकि यह रूपांतरण है
सब कुछ ढला हुआ अपरिमेय में

कोई क्रिया समाप्त नहीं होती

में चल रहा था
चीजें ढल रही थीं
फफूंद की गति, धीमी चीजों पर आवास बनाती थी
लकड़ियां बहुत प्रसन्नता में फूलतीं
ऊपर से देखने पर बर्फ पिघलता
जबकि पानी का अदृश्य नाच
चकित करता चट्टानों को
लोहा बेस्वाद नहीं था

नम आंखें एक स्वप्न थीं
जो घास के तिनकों की तरह
झुकी हुई थीं
उसी वक्त प्रेम कर लेने की इच्छा करना
कविता के उद्रेक पहाड़ से ढंक जाने जैसा था

मासूम चीटियों का सम्बंध
हमेशा कठोरता से रहा
लेकिन वे इतिहास की अवधारणाओं से मुक्त थीं
जैसे कुछ चीजें कोनों में पड़ी रहती हैं
उनका अस्तित्व हम वहीं रह कर जान पाते हैं
बहुत सी उलझनें उन्हीं कोनों में थीं

जिन्दगी का कोई सबक ठहरता नहीं था
जिलेटिन चढ़ा सच खूबसूरत उपहार था
सिर्फ आदर्श ने हमें भ्रमित कर रखा था

कोई क्रिया समाप्त नहीं होती
चलना अंतहीन है रुकना क्षेपक

अर्थात् औरों की कथा-IV

अरुण कमल

आज भी सुबह अखिलेश का फोन आया। जानता हूं बहुत देर हो गयी है। एक सम्पादक को कितनी व्यग्रता होती है, इसे अपने अनुभव से थोड़ा समझ सकता हूं। इस तरह के लेखन के साथ यह दिक्कत हमेशा बनी रहती है। कुआं खोदो और पानी पीयो। काटो, कूटो, रींघो, खाओ। यह एक तरह का तुरंता लेखन है। पालथी मार कर स्थिर से कई खेपों में तैयार होने वाली रचना से भिन्न तात्कालिक लेखन। क्योंकि यहां अतीत और वर्तमान एक हो गये हैं। जो जी रहा है वह जी भी चुका है। और हमेशा उसके साथ कुछ न कुछ हो रहा है जो पहले से जो हुआ उसे बना बिगाड़ रहा है। ऐसी कौन सी आत्मकथा है जो पूर्ण हो? वैसे कोई भी कथा पूर्ण नहीं होती। खाते वक्त न तो रोटियां गिनी जाती हैं न जीते वक्त उम्र। अखिलेश को मैंने पहले भी बता दिया था कि घर बदल रहा हूं। अब अपने घर में जा रहा हूं। लेकिन कहीं से भी उठना आसान नहीं होता। बहुत दिन से कहीं पड़ी हुई ईंट उठाओ तो खदबदा कर चींटियां निकलती हैं और एक पूरी बस्ती वीरान हो जाती है। घर एक आदत का नाम है। दीवारें, चौखट, आले ताखे, दीवारों के मोड़ सब पर तुम्हारी हथेलियों के दाब हैं। एक जगह को छोड़ना पूरे संसार को, एक भरेपूरे संसार को छोड़ना है और जब तुम उसे पीछे से घूम कर देखते हो तब लगता है कि हर वो जगह जहां तुमने सांस ली तुम्हारे साथ साथ चलती रहती है। और एक नयी जगह को बसाना भी ऐसा ही दुःसाध्य है। वहां बहुत दिन तक तुम अनजान और बेगाना महसूस करते हो। धीरे धीरे आदत लगती है, रहने और सहने की आदत। मैं इन दो महीनों में इसी उजड़ने बसने में लगा रहा। घर को ठीकठाक करवाने के दौरान जो अनुभव हुए उससे मुझे लगा कि भ्रष्टाचार केवल शासक वर्ग तक सीमित नहीं है। शासक वर्ग की विचारधारा तो शासन करती ही है, उसके नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य भी शासन करते हैं। कारीगर, मजदूर, कामगार सबमें ठगने और कम से कम काम करके ज्यादा से ज्यादा खींचने की प्रवृत्ति ने घर जमा लिया है। इसमें नुकसान उसका होगा जो ज्यादा ईमानदार और मानवीय है। ठेकेदार अक्सर

उजड़ड, खूंखार और भ्रष्ट होते हैं और इसीलिए वे मजदूरों से जो उनके मुकाबले ज्यादा भावुक और मानवीय होते हैं, जम कर काम करा लेते हैं। मुझे बहुत दिक्कत हुई और लगा कि इस पूंजीवाद में नैसर्गिक मानव मूल्य लगभग नष्ट हो चुके हैं। पूंजीवाद के विरोध का आंदोलन केवल राजनतिक आर्थिक आंदोलन नहीं होगा, वह वैकल्पिक नैतिक सांस्कृतिक आंदोलन भी होगा। मुम्बई की एक बस्ती में स्त्रियों को सम्बोधित करते हुए बाबा साहेब आम्बेदकर ने कहा था बाई, तुम अपना शरीर क्यों बेचती हो; क्या होगा अगर कुछ दिन तुम्हें कुछ आर्थिक कठिनाई होगी? उनका आंदोलन सर्वोपरि नैतिक, मानव गरिमा की फिर से स्थापना का आंदोलन था। नासिक में हाल ही में मराठी लेखक डॉ. कांबले ने 'सेक्स वर्कर' शब्द पर चर्चा करते हुए मुझे यह बताया और कहा कि 'सेक्स वर्कर' शब्द कहीं न कहीं से पूंजीवाद की मानवविरोधी सत्ता की वैधता प्रदान करता है। प्रेमचंद के उपन्यासों में भी ऐसे विचार संघर्ष मिलते हैं। वहीं नासिक की एक सभा में, जो कामरेड अण्णा भाऊ की स्मृति में लेखकों की सभा थी, दोपहर का भोजन घरों में काम करने वाली स्त्रियों ने दिया। वह बेहद मार्मिक क्षण था जब उन कामगार स्त्रियों ने गाढ़ी कमाई के पैसे से हमारे लिए इतने सुस्वाद व्यंजन अपने हाथों से तैयार किये। यह भी तो एक नैतिक मिसाल है। लेखकों कामगारों की एकता की विलक्षण मिसाल। वैसे खुद ऐसे पद और मुहावरे पुराने नहीं लगते? अब ये बातें हमारी चर्चा के बाहर हैं। लगता है हमने यह मान लिया है कि पूंजीवाद का कोई विकल्प नहीं और कल्याण इसी में है कि जैसे तैसे अपने लिए कोई सुविधापूर्ण जगह बना ली जाये। शासक वर्ग हमेशा चाहता है कि सब लोग उसी के मूल्य स्वीकार कर लें। अगर मुझे पैसे का लोभ है और मैं पैसे की खातिर कुछ भी कर सकता हूँ तो यह शासक वर्ग की जीत है और प्रतिरोध तथा विकल्प की क्षति। पूंजीवाद हमारा स्वांगीकरण करना चाहता है। इसीलिए नैतिक पवित्रता एक प्रतिरोध है। डॉक्टर फाउस्टस की कथा से लेकर घीसू माधव के अलिऐनेशन (विलगाव या विघटन) तक एक ही कथा है। पहले मैं किसी भी पतित गरीब व्यक्ति को माफ कर देता था। लेकिन अब मूल्यों को न मानना प्रतिरोध है। शायद यही कारण हो कि प्रायः सभी परिवर्तनकारी अंदोलन आरम्भ में नैतिक शुद्धता पर भी बल देते हैं। भक्ति आंदोलन को इस तरह भी देखा जा सकता है। हालांकि डर है कि इसे बहुत दूर तक खींच दिया जाये और स्त्री पुरुष नैसर्गिक सम्बंधों को भी स्थूल और शुद्धतावादी दृष्टि से देखा परखा जाये। इस बारे में मुझे एंगेल्स का वाक्य हमेशा याद आता है। हर वो सम्बंध पवित्र है जो प्रेम पर आधारित हो। यानी किसी इतर स्वार्थ से चालित नहीं। मुझे संतोष है कि ऐसा एक भी सम्बंध मेरे जीवन में नहीं बना जो स्वार्थ से चालित हो। विवाह के बाद भी कई आकर्षण हुए लेकिन वे न तो बड़े न फले। अब जब तीस साल से भी ज्यादा का विवाहित जीवन मैं जी चुका तब लगता है कि स्वतंत्र लेखन के लिए सबसे जरूरी है भोजन, आवास और एकांत की अबाध व्यवस्था। नौकरी ने मुझे एक साधारण आर्थिक जीवन दिया, हालांकि इसमें मेरा बेहद कीमती वक्त भी बर्बाद होता है। कितना अच्छा होता अगर मुझे कुछ भी न करना पड़ता। कोई बंधी बंधायी रकम घर बैठे मिल जाती। और एक स्थायी घर होता। खिड़की किनारे एक आरामकुर्सी। आज भी मैं किसी की उपस्थिति में लिख नहीं सकता। पत्नी की उपस्थिति में भी नहीं। निपट अकेलापन चाहिए। इसीलिए जब घर में भीड़ होती है तब मुझे दिक्कत होती है। पत्नी भी इसे जानती हैं और ऐसे समय में वह मुझे अकेला छोड़ देती हैं। अभी भी हालांकि मैं यह समझ नहीं पाता कि विवाह क्यों जरूरी है? शायद सबसे जरूरी है स्त्री संग या स्त्री के लिए पुरुष संग। लेकिन हमारी विवाह व्यवस्था में जो लाम काफ है वह आपको एक संस्था में बांध देता है। अनेक परिवार, अनेक अजनबी लोग, अनेक अच्छे बुरे लोग सब अचानक आपके जीवन में धड़धड़ाते घुस आते हैं। कई बार मुझे लगता है कि कोई व्यक्ति सिर्फ इसलिए मेरा समय और ध्यान क्यों ले कि वह संयोग से मेरा रिश्तेदार है। शादी ब्याह में हमारे जो सम्बंधी जमा होते हैं वे अलग अलग आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक श्रेणियों

और स्तर के होते हैं और उनमें एक ही बात सर्वनिष्ठ होती है कि वे सब आपस में किसी न किसी रक्त सम्बंध से जुड़े होते हैं। लेकिन ऐसे अवसरों पर कमजोर रिश्तेदारों को, गरीब रिश्तेदारों को काफी अपमान भी झेलना पड़ता है। इन्हीं अवसरों पर मुझे लगा कि हर जाति में, हर धर्म में दो वर्ग हैं। इसीलिए हर व्यक्ति का जीवन अलग अलग है। पूंजीवाद ने सामंती ढांचे को तोड़ दिया है। इसीलिए जाति आज कोई प्रभावी शक्ति नहीं है। मैंने एक सम्पन्न आदिवासी परिवार में देखा कि अफसर मालकिन की सगी भतीजी उसके घर में नौकरानी की तरह रहती है। खुद मैं कह सकता हूँ कि धन में नीचा होने के कारण मुझे जीवन में सबसे ज्यादा अपमान वहाँ झेलना पड़ा जहाँ उम्मीद की जाती है कि आपको सबसे ज्यादा मान मिलेगा। यह अभाव ही मुझे दुनिया भर के गरीबों की ओर ले गया। मैं आर्थिक वर्ग के सिवा किसी दूसरे विभाजन को विश्वसनीय नहीं मानता। अपने इन्हीं अनुभवों के कारण मैंने तय किया कि बेटी की शादी में तिलक दहेज नहीं दूंगा, न बेटी की शादी में लूंगा। और हम सबने यही किया। यह कोई क्रांतिकारी बात नहीं है। लेकिन हर बात जो प्रचलित मूल्यों का विरोध या निषेध करे महत्वपूर्ण है। अब मुझे लगता है कि सामाजिक जीवन के ये छोटे छोटे आचरण जो नवजागरण काल में, स्वाधीनता आंदोलन और कम्युनिस्ट आंदोलन के आरम्भिक चरण में बहुत प्रचलित थे वास्तव में इन्हें लोकप्रिय बनाते थे और जनता का विश्वास जीत लेते थे। गांधीजी का यही सबसे बड़ा गुण है। इन्हें समाज सुधार या आचरण मात्र कह कर टाला नहीं जा सकता। यह एक तरह का निषेध और प्रचलित मूल्यों का बहिष्कार है। हालांकि यह भी जोड़ना जरूरी है कि स्वयं की नैतिक शुद्धता श्रेष्ठता की गारंटी नहीं है। ब्रेख्त की एक कविता है एक शासक है जो भ्रष्ट है परंतु जिसके राज में जनता सुखी है; एक शासक है जो धर्मात्मा है परंतु जिसके राज में जनता दुखी है; तो कौन सा शासक अच्छा है? यानी शासक की नीतियां तय करती हैं कि हमारा समाज हमारा जीवन कैसा होगा। लेकिन यह सब मैं क्यों कह रहा हूँ। मुझे तो अपने जीवन की कहानी कहनी है। जो अभी विवाह तक पहुंची है। उसके तुरंत बाद मुझे कविता के लिए भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार मिला। तब न तो टेलीफोन का रिवाज था न टेलीविजन का। बस सूचना मिली डाक से। और एक छोटी सी खबर इंडियन एक्सप्रेस में थी। मेरे लिए यह अप्रत्याशित था। लेकिन तब मैं बिल्कुल विवाह प्रसंग में डूबा हुआ था। पत्नी नैहर में थी। एक खालीपन था। तबसे कई पुरस्कार मिले। अंतिम साहित्य अकादमी पुरस्कार था, 1998 का। यानी घर बदलते हुए जब मैंने वह संदूक खोला जिसमें सारे तमगे, पुरस्कार चिह्न मैंने डाल रखे थे तब साहित्य अकादमी पुरस्कार का प्रतीकचिह्न भी बाहर निकाला। देखा कि उस चिह्न के काष्ठ स्तम्भों को कीड़े खा रहे हैं। एक कीड़ा उसके भीतर भी दिखा जो लगातार उसे खाता जा रहा था। मुझे थोड़ा अजीब लगा। इसी पुरस्कार के कारण मुझे इतना विरोध और अपमान झेलना पड़ा। हिन्दी में शायद ही किसी का इतना विरोध हुआ। और उस पुरस्कार के प्रतीकचिह्न को कीड़े खा रहे थे। क्या सारे पुरस्कारों का यही हथ्र नहीं होता? रवीन्द्रनाथ के नोबेल प्राइज की चोरी भी क्या ऐसी ही घटना नहीं है? अंततः बचता क्या है? मैं इसे शुरू से जान गया था। चेखव के नाटक 'सीगल' की नायिका नीना कहती है, अब मैं जान गयी हूँ कोत्सया, कि हमारे लिए, हम लेखकों कलाकारों के लिए जो वास्तव में महत्वपूर्ण है वह शोहरत या शान शौकत नहीं बल्कि यह बात कि हम कितना सह सकते हैं, कितना दुख भोग सकते हैं और फिर भी जीवन में विश्वास बनाये रखें। जब अकादमी पुरस्कार समारोह के दूसरे दिन आत्म वक्तव्य के बाद मैं कुछ लोगों के साथ बरामदे में कॉफी पी रहा था तब पीछे से किसी ने मेरे कंधे पर हाथ रखा। अध्यक्ष समाकांत रथ थे। उन्होंने मुझे अपने कक्ष में आने का इशारा किया। मैं गया। उन्होंने बताया कि पुरस्कार की घोषणा के बाद कुछ लोग एक आवेदनपत्र लेकर उनसे मिलने गये थे जिसमें था कि अरुण कमल से पुरस्कार छीन लिया जाये। रथ साहब ने उनसे कहा कि अरुण कमल ने इसके लिए कोई आवेदन तो किया नहीं था, दूसरे यह कि निर्णायक बहुत बड़े लोग

हैं और आप सबको तो मैं जानता भी नहीं, न आवेदकों को। उन्होंने बताया कि उनमें से कुछ लोग पटना और बिहार से टिकट कटा कर आवेदन देने गये थे। सुन कर क्षोभ हुआ। संतोष भी कि प्रेम और स्नेह करने वाले लोग भी हैं। उसी के दूसरे दिन जनवादी लेख संघ ने दिल्ली में मेरे लिए गोष्ठी की और तीसरे दिन बिहारवासी संघ ने शामियाना लगा कर विराट आयोजन किया जिसमें सैकड़ों लोगों ने साथ साथ भोजन किया और कवितापाठ हुआ। न तो दिल्ली जाते समय न पटना लौटने समय कोई छोड़ने या लेने आया। मैं इस अकेलेपन से समृद्ध हुआ। दूसरे दिन जब अपने कॉलेज में आईएससी कक्षा के डीसेक्शन (जीवविज्ञान) का क्लास लेने पहुंचा तो हाजिरी के बाद जैसे ही कलम बंद की पूरा क्लास, डेढ़ सौ छात्रों छात्राओं का क्लास, उठ कर खड़ा हो गया और बधाई दी। मुझे सब कुछ मिल चुका था। एक इच्छा जरूर थी और हाल हाल तक रही कि पटना में या बिहार में कहीं भी बाकी लोगों की तरह मेरा भी एकल काव्यपाठ हो। लेकिन कोई बात नहीं। न हुआ न हुआ। मैंने यह भी सीखने की कोशिश की कि तुम कविता लिखते हो तो कोई इच्छा मत करो। दूसरे यह कि जीवन में जो भी हो जाये उसे स्वीकार करो। कभी भी किसी भी चीज के लिए प्रयत्न मत करो। और हमेशा बड़े कवियों लेखकों को ताको। शुरू से ही मेरी कोशिश यह भी रही कि अपने को लगातार मांजो। ऐसा कुछ भी न करो जो तुम्हारी साधना को खंडित या विफल करे। किसी से कुछ भी चाहो मत। मांगो मत। आसरा न लगाओ। इसी तरह जब मुझे आलोचना के सम्पादन का जिम्मा दिया गया जो अयाचित, अप्रत्याशित था तो मैंने स्वीकार किया और अपनी शक्ति भर निबाहा। जाहिर है पत्रिका डॉक्टर साहब के कारण है, इसलिए मैंने भरसक प्रयत्न किया कि उनके निर्देशों का पालन करूं। उनसे बहुत कुछ सीखा। हमारी भाषा के मुकुट। मैंने हमेशा उनके आदेश का पालन किया। एकाध प्रमाद हुए होंगे। अंतिम अंक यानी अंक 51 में एकाध सामग्री ऐसी जरूर है जो यदि मैं देखता तो न छापता। लेकिन वह मेरे जाने बिना छपी। बाद में छपने के एक महीने बाद अंक मिलने पर मैंने पढ़ा। यह अंक मैंने स्वेच्छा से परमानंद श्रीवास्तव की स्मृति को समर्पित किया। यह मेरा निजी निर्णय था। अब मैं उस सम्पादन भार से मुक्त हूं। पिछले एक दो वर्षों से, और बीस अंक निकालने के बाद से ही मैं मुक्त होना चाहता था। कारण कि मैं इसके कारण अपना एकांत खो बैठा था। बार बार मुझे क्रीट्स की पंक्तियां कांचती थीं, किसने कहा था कि तुम रोम और मास्को जाओ, बहुत हो चुका, 'कॉल द म्यूजेज होम'। मैंने डॉक्टर साहब से और प्रबंध सम्पादक से तथा कुछ करीबी बड़े लेखकों से भी कई बार यह इच्छा व्यक्त की थी। क्योंकि मुझे यह भी लगता है कि किसी को भी अनंतकाल तक न तो जीना चाहिए न किसी पद पर रहना चाहिए। पिछले साल मैं सम्मेलन के साहित्य मंत्री पद से मुक्त हुआ था, पहले भी कुछ पदों से। लेकिन जो मुक्ति मैं कर्तव्य के रूप में चाहता था वह दूसरों ने मुझे अधिकारपूर्वक दी। लेखक के तौर पर हमारी कोई सफलता या सांसारिक उत्कर्ष नहीं होता। हम लिखते हैं कुछ मूल्यों के लिए और लेखक के तौर पर हमारा प्रत्येक कार्य उन्हीं मूल्यों के लिए होता है और ये मूल्य जीवन के बारे में हमारे विचार, धारणा तथा स्वप्न से परिचालित होते हैं। इसीलिए संघर्ष भी होता है। गोष्ठियां, विचार विमर्श, पत्रिकाएं और पुरस्कार भी उसी संघर्ष का प्रतिबिम्ब हैं। इसीलिए साहित्य स्वायत्त होते हुए भी समाज में चल रहे संघर्षों का आईना होता है। आलोचना का काम देखते हुए एक बात मुझको यह लगी कि अभी हिन्दी का वैचारिक आलोचनात्मक वातावरण शिथिल है। दूसरी बात यह लगी कि अच्छे बुरे का भेद और विवेक भी शिथिल है। तीसरी बात यह कि हममें संघर्ष करने की कूबत कम हुई है। और लेखन भी एक हॉबी या साइड बिजनेस हो गया है। अनेक प्रकार की निवृत्तियों के बाद की एक मनबहलाऊ प्रवृत्ति। और इसमें कोई घटाना नहीं है। जोखिम तो कतई नहीं। जिन्हें कलावादी कहा जाता है वे भी अपनी कला, कला के मूल्यों के प्रति, बद्ध और समर्पित होते हैं और उनके लिए जान देने तक को तैयार रहते

हैं। वे कला के व्यवसायीकरण, बाजार और व्यावहारिक पूंजीवादी मूल्यों का विरोध करते हैं। हिन्दी में जो अपने को कलावादी मानते हैं वे वास्तव में बाजारवादी तथा सत्तावादी हैं जबकि बाहर कलावाद के सभी आंदोलनों ने ग्लैमर तथा सत्ता का विरोध किया। जो सामाजिक राजनीतिक प्रतिबद्धता के हामी हैं वे तो वैचारिक संघर्ष करते ही हैं और उन्हें करना ही चाहिए। इधर अस्मितावाद ने कला को अवांतर मानने की भूल की है। ऐसा मुझे लगता है। खैर! तो मुझे लगता रहा कि ज्यादा यात्राएं भी हमें काम करने से रोकती हैं। कवि आग्नेय ने एक बार कहा कि आप इतना क्यों घूमते हैं? वह ठीक कहते हैं। अगर यात्राएं भीतर की जरूरत से खुद तय की जायें तब तो ठीक है नहीं तो सभा सोसायटियों में जाकर कुछ लहालोटी बातें करने, शाम की महफिलें सजाने और लोगों से मिल कर हाथ घिसाने से क्या होगा। एक लेखक को हमेशा अपनी समयसारणी से चलना चाहिए। नहीं तो जल्दी ही वह सार्वजनिक शौचालय में बदल जायेगा। पहले लेखकों के जीवन में इतने व्यवधान और बाहरी आकर्षण नहीं थे। आवागमन के साधन और आर्थिक सुविधा भी कम थी। वे एक दूसरे के घर ज्यादा जाते थे। जाकर कुछ दिन ठहरते थे। अब भागदौड़ ज्यादा है। इससे ध्यान बंटता है। मेरा अनुभव है कि गम्भीर लेखन के लिए एकाग्रता, 'काकचेष्टा और वकोध्यान' जरूरी है। कभी कभी यात्रा करना अच्छा लगता है। नयी जगहों पर जाना। मेरी बहुत इच्छा थी कि सोवियत संघ, चीन और क्यूबा जाऊं और इंग्लैण्ड। गया। अमेरिका देखने की भी इच्छा है। लेकिन हर बार यही लगता है कि किसी भी जगह को जानने के लिए वहां कुछ दिन रहना चाहिए नागरिक या समाजी की तरह। तब धीरे धीरे वो जगह और वहां के लोग आपसे खुलते हैं। अंततः पटना में बस जाने का निर्णय भी मैंने इसीलिए किया। यही वो जगह है जिसे मैं थोड़ा बहुत जानता हूं, जहां मैं सन् उनहत्तर से लेकर अब तक लगातार रहा और यहीं मेरी दादी, मेरी मां और पिता का अवसान हुआ और गंगा में समर्पण। यह भी एक संतोष है कि मैं गंगा के बिल्कुल पास हूं। हिन्दी के अनेक लेखक दिल्ली में बस जाते हैं। क्योंकि वहां उनकी नौकरी, उनकी रोजीरोटी है। फिर लौटना मुश्किल है। लेकिन केदार जी को देखता हूं कि हर थोड़े दिन पर वह गांव या पूर्वांचल चले जाते हैं। पता नहीं मुझे कहना चाहिए या नहीं, यह एक कवि की बेचैनी है, मणि की खोज में नाग की बेचैनी। हर कवि भीतर से जानता है कि उसे क्या चाहिए जैसे पशु जानते हैं कि किस घास या पौध से उसकी व्याधि का उपचार होगा। इसीलिए हर कवि का जीवन अलग अलग होता है और उसके जीवन का एक कोई भाग हमेशा के लिए हमारी नजरों से, हमारे दृष्टिपथ से बाहर रहता है। मेरा स्वभाव है कि जब भी किसी कमजोर या मजबूर आदमी को देखता हूं, उसके प्रति खिंच जाता हूं। ऐसे ही किसी क्षण में मैंने एक रिश्तेदार स्त्री की कुछ मदद की थी। और उसने, चूंकि वह किसी अन्य तरीके से अपना धन्यवाद नहीं कह सकती थी न वह उन्नत होने की स्थिति में थी, बिना किसी कुंठा के मुझे वह सब कुछ देना चाहा जो उसके पास था। ऐसा ही एक बार और हुआ। इसे केवल प्रेम या स्नेह की अभिव्यक्ति तथा भार उतारने की इच्छा माना जायेगा। इसमें नैतिक अनैतिक शायद कुछ भी नहीं। वह गहन आंतरिक कृतज्ञता भाव का उद्गार था। जीवन में ऐसे सम्बंध बनते हैं और फिर आगे नहीं बढ़ते।

साहित्य की दुनिया में मेरे कई पारिवारिक, घरेलू और अत्यंत आत्मीय सम्बंध बने और उनमें से कुछ अभी तक निभ रहे हैं। हालांकि मेरे स्वभाव और व्यवहार में कुछ निस्संगता भी है। कविता मुझे देश के अनेक कोनों, गांव शहर तक ले गयी। अगर विरोधी बने तो प्रेम करने वालों की भी कमी न रही। सबसे आत्मीय सम्बंध प्रगतिशील लेखक संघ के दौरान काम करते हुए बने। एक साथ दरी बिछाते हुए, भात दाल खाते, रात में खुले मैदान में सोते, गाते बजाते। तब एक बात बहुत खास थी लेखक कवि वे चाहे जैसे भी हों उनमें एक वैचारिक सम्पन्नता थी और कोई महत्वाकांक्षा या पाने

की लालसा न थी। वे भीतर से बड़े लोग थे। कन्हैया जी खुद भी अनेक तरह से परेशान होते हुए भी छोटे बड़े सबकी मदद करते। एक दिन मैंने देखा कि एक युवक को लेकर अस्पताल जा रहे हैं। वह एक गरीब तबलावादक था जिसके हाथों की नसें सूख रही थीं। खगेन्द्र जी ने भी खुद मेरी मदद की कई बार। आलोक धन्वा जी के बड़े भाई डाक्टर श्रीकृष्ण सिंह तो कामरेडों और कवियों के डाक्टर थे जिन्होंने हर तरह से सबकी मदद की। डा. ए.के. सेन जी पटने के बहुत बड़े डॉक्टर थे, कम्युनिस्ट थे, लगभग हर दूसरे दिन मेरे घर मेरे माता पिता को देखने आते थे। जब शिक्षक आंदोलन में मैं जेल में था। जेल में एक महीने रहा। भागलपुर कैम्प जेल। हम विशेष श्रेणी के कैदी थे। इसलिए और कोई दिक्कत तो नहीं थी, लेकिन हर शाम वार्ड में बंद होना पड़ता था। जेल का हाता बहुत बड़ा था। एक गांव जितना बड़ा। हमें उसी में रहना था। तब लगा कि ऐसी बहुत सारी स्त्रियां हैं जो कभी अपने गांव से बाहर नहीं गयीं। ऐसे बहुत से पुरुष भी तब थे। यही तो जेल है। एक बंधन। रोक। हर तरह की रोक जेल है। सजा है। आजादी का मतलब कोई जबर्दस्ती नहीं। अगर यह छूट होती कि हम बाहर जा सकते हैं तब वह सजा नहीं होती। सबसे बड़ी सजा है मैं तुम्हें जीने नहीं दूंगा। चाहे वह फांसी हो या कत्ल। यही सबसे बड़ा अपराध और हिंसा है जो इस समाज की नींव में है। सारे कत्लेआम, दंगा फसाद, आतंक का यही अर्थ है औरों की स्वाधीनता का हनन। बलात्कार का भी यही अर्थ है स्त्री की निजता, गोपन निजता का हनन या उल्लंघन होता है। आज बिना पासपोर्ट वीजा के मैं देश के बाहर नहीं जा सकता। बिना पहचानपत्र के मैं देश के भीतर भी घूम नहीं सकता। यह कैसा भूमंडलीकरण और उदारीकरण है? आपको नहीं मालूम पर आपकी हर हरकत पर नजर रखी जा रही है रेलवे स्टेशन, हवाई अड्डा, बाजार, दूकान हर जगह कैमरे लगे हैं। और यह सब हो रहा है हमारी सुरक्षा के नाम पर। वास्तव में यह हमारी निजता का हनन है। पूंजीवाद यही तो करता है। काफका ने पहली बार अपने उपन्यास 'महल' में इसे एक लक्षित हो रहे सम्भोग दृश्य के माध्यम से इंगित किया था। आप स्त्री पुरुष सम्भोग कर रहे हैं और दो सिपाही आपको देख रहे हैं। जेल इसी हिंसा की स्थायी संस्था है। वहां आपका कोई एकांत नहीं होता। और अगर हुकूमत चाहे तो आपकी कोई खबर बाहर नहीं जा सकती। वहां मैं कम उम्र के ऐसे नादान युवाओं से मिला जो बिना टिकट यात्रा करते हुए पकड़े गये थे और जेल में थे। वे हमारी सेवा में लगाये गये थे। उनमें से कई के परिवार वालों को यह भी नहीं मालूम था कि वे जेल में हैं। मालूम होता भी तो वे कुछ कर नहीं पाते। वे इतने कमजोर और गरीब थे। बिना टिकट चलना, बिना पहचानपत्र के चलना, भेष बदल कर चलना, साधु संन्यासी बन कर घूमना ये सब विद्रोह हैं इस समाज के लिए। पिछले सैकड़ों वर्षों में हमने जो सभ्यता बनायी है उसने हमसे तीन चीजें छीन ली हैं। पहली तो निजता या एकांत। बिना फोन, टेलिविजन, अखबार के दिन कितना शांत और समतल होता है। दूसरा, रात्रि का अंधकार। छोटे से छोटे कस्बे में भी अब पहले जैसी अंधेरी, घनी, भादों की रात या बैशाख की तारों भरी रात नहीं होती। मैं अंधेरे के लिए तरस गया। जेल में वह मिला, वार्ड में। और तीसरा, शांति ध्वनिहीन। बिना किसी धात्विक ध्वनि के। जेल में यह सुकून तो था। तब यानी उन्नीस सौ बेरासी में तो था। इससे पहले जयप्रकाश नारायण के आंदोलन में मैं एक बार हाजत तक और फिर जेल के फाटक तक गया था। मेरे सगे मौसरे भाई को आपातकाल में जेल हुई थी, पर्चे छापने के लिए। पुलिस उनके हाथ और कमर से रस्सा लगा कर पैदल ले गयी थी। मैं था पीछे पीछे उनके साथ। जब वो जेल में थे तो मैं मिलने गया था। अकेले वही मुझसे मिलने भागलपुर जेल आये। मेरे माता पिता की ओर से जो बीमार पड़ गये थे। बाकी कोई रिश्तेदार न आया। ससुराल में शादी थी जो खुशी खुशी होती रही। आज तक उन मौसरे भाई से मेरा गहरा सम्बंध है। होता यह है कि जब आप दुख में होते हैं तब

जिसने भी आपका साथ दिया आप उसके मुरीद हो जाते हैं। दास एंड्रोकैरल्स और शेर की कथा इसका महानतम दृष्टांत है। हमारे जीवन में, हर किसी के जीवन में, एकाध लोग ऐसे जरूर होते हैं जो जीने में, जीवन को सहने में मदद करते हैं। प्रगतिशील लेखक संघ और सम्पूर्ण कम्युनिस्ट आंदोलन ने ऐसे प्रगाढ़, अर्थपूर्ण दोस्त दिये हैं। और इसके बाहर भी। उन लोगों के बीच भी जो कहीं से हमारे वैचारिक दोस्त न थे। साहित्य की दुनिया की कुछ यात्राएं मुझे कभी नहीं भूलतीं। मैं आकाशवाणी के एक कार्यक्रम में दरभंगा गया था। वहीं कविमित्र अनिल विभाकर भी मिल गये। दूसरे दिन हम नागार्जुन जी को देखने गये। वह दरभंगा मेडिकल कालेज के अस्पताल में भर्ती थे। परिसर में घुसते ही भयानक गंदगी, सड़ा हुआ जलजमान, सूअरों का बाड़ा। बरामदे में यहां से वहां तक एक किनारे मलमूत्र। आगे पानी से पचपच फर्श, और सब नरक पार करके देखा एक बड़े, भुत्ते हाल में नागार्जुन लेटे हुए थे। वह हॉल कभी ऑपरेशन थिएटर रहा होगा। उनका बिस्तर उसी के पुराने टेबल पर था। साथ में शोभा भाई और उनका परिवार। मैंने सोचा, अच्छी जगह और अच्छे इलाज के लिए किसी को और कितना बड़ा कवि होना चाहिए? नागार्जुन से बड़ा कौन था बाद में जब हम उनकी अंतिम यात्रा में गये तो हमने देखा कि जिस रास्ते से बाबा की यात्रा जा रही थी उसमें पड़ने वाले सभी स्कूलों के बच्चे शिक्षक हाथ जोड़े खड़े थे और खेतों में काम करने वाली मजदूरिनें जहां की तहां खामोश खड़ी हो गयी थीं। ऐसा ही मैंने रेणु जी की अंतिम बीमारी में भी देखा था। पटना अस्पताल के बाहर अनेक नौजवान, अनजान लोग उनको खून देने के लिए खड़े मिलते थे। यह भी तो हमारे ही समाज ने किया। पटने में हमने दो कार्यक्रम कवितापाठ के ऐसे किये थे जो बाद में नहीं हुए। एक में बांग्ला कवि सुभाष मुखोपाध्याय का कवितापाठ हुआ, दूसरे में नागार्जुन का। दोनों कार्यक्रम टिकट लगा कर हुए। दो दो रुपये के टिकट पर। और हाल खचाखच भरे थे। भाई शोभानाथ जी ने बाबा की जो सेवा की उससे यह भी मैंने नोट किया कि अंततः गू मूत तो आपका परिवार ही करेगा। अभी हिन्दी की हालत वह नहीं है कि कोई संस्था या सरकार आपके लिए सारी व्यवस्था करेगी। दूसरी यात्रा खिजिरसराय के पास एक गांव की थी जहां हम काव्यपाठ के लिए गये थे। पहुंचते पहुंचते अंधेरा हो यगा। खतरनाक रास्ता। लोगों ने बताया, वहां आज तक बिजली नहीं आयी। जबकि खम्भे और तार लगे थे। काव्यपाठ के पहले गांव के स्त्री पुरुष आकर दरी पर बैठे। बातया गया पहले ये कबीर गावेंगे। वे कबीरपंथी थे। और आज ज्येष्ठ पूर्णिमा थी। खूब बड़ा पीतल का चमचम चांद साफ आकाश में उगा था। ताड़ के ऊंचे लम्बे पेड़ भव्य लग रहे थे, चांद के बिल्कुल पास। बगल में मोरहर नदी और नदी की रेत जो घर थी नदी की, चमक रही थी। धरती पर छायाएं इतनी भारी और गहरी थीं। एक लालटेन दरी के बीचोबीच जल रही थी। और उन स्त्री पुरुषों ने कबीर गाया। लगता है कबीर के पद जेठ पूर्णिमा की रात के लिए ही रचे गये हैं। ऐसी शीतल उज्ज्वलता और दिग्दिगंत तक स्वर का निर्विरोध प्रसार। और तब मुझे कविता पढ़ना था। जीवन में इतना निहत्था, निर्बल और पराजित कभी महसूस नहीं किया। कैसा कवि और कैसी कविता? कैसी महत्वाकांक्षा? इस सहृदय जन के सम्मुख मैं नतमस्तक था। कविता कैसे, किस किस रूप और भाव में हारे समाज में पेबस्त है हम जानते नहीं। कविता सिर्फ वही थोड़े है जो आज लिखी जा रही है। कविता के देवदारु हिमालय की उच्चतर श्रेणियों में हैं और कविता के रेंडू पटना से दिल्ली आईआईसी तक। ऐसी ही एक यात्रा मैंने हिमालय की की थी। तुलसी रमण और हिमाचल अकादमी के निमंत्रण पर किन्नौर तक प्रिय कवि, अनन्य कवि, लीलाधर जगूड़ी के साथ। भूस्खलन, गिरी चट्टानों, टूटे पुलों को रात में पार करते हम अतिथिशाला में पहुंचे किन्नौर के एक गांव में। रात में कुछ पता न चला। सुबह जब नींद खुली और मैंने पीछे का दरवाजा खोला तो बिल्कुल आंख पर था भव्य हिमालय। महान्। अद्भुत। विराट। ऐसी महानता मैंने कभी देखी न

थी, न फिर कभी। सहसा जैसे मुझे किसी ने जड़ कर दिया हो, मंत्रबिद्ध। और वे स्याह धारियां शिलाजित हैं जगूड़ी जी ने बताया। पर्वत और समुद्र। इनसे विराट क्या है। शायद अंतरिक्ष जिसे यूरी गागरिन ने पहली बार देखा और अनुभव किया था। इस विराटता के सम्मुख मनुष्य कितना असहाय और क्षीण है। एक बार एक अमीर घर के दरवाजे पर मैंने एक दस ग्यारह साल की लड़की को खड़े सुबकते देखा था। उसकी गोद में एक मेमना था। मृत। जो उस घर के एक लड़के की मोटरसाइकिल के धक्के से गिरा था। वह चुपचाप मेमने को दोनों हाथों में लिए खड़ी थी। चुपचाप रो रही थी। पीछे कुछ और लड़कियां थीं। कुछ लड़के। चुप। और दरवाजा बंद था। भारी लोहे के बूंदों और गुटकों वाला कपाट। मेरे लिए यह दृश्य मनुष्य के प्रेम, असहायबोध और प्रतिकार तीनों का संयुक्त बिम्ब है। यह मेरे किसी दूर के जीवन का दृश्य है। जैसे तवे (डिस्क) पर धारियों में स्वर भरे होते हैं वैसे ही मेरे मर्म पर खिंची धारियों में जीवन के ये छोटे छोटे अविस्मरणीय प्रसंग भरे हैं जो सुई की नोक लगते ही प्रगट होने लगते हैं। यही सबके साथ होता है। चाहे वह कवि हो, न हो। कवि भी तो बाकी लोगों की तरह है, एक मनुष्य। जुड़वा मनुष्य। एक में दो यानी कुछ ज्यादा कुछ कम। एक बार एक गांव में मैंने एक घर छाने वाले को जो छप्पर पर खपड़ा बिछाते हैं, दोपहर में ओसारे में बैठे देखा जो हाथ में शिरीष का फूल लिए हुए उसे ताक रहा था। अचानक बोला, कैसे बनाया है भगवान ने। उसने शिरीष की सुंदरता और बनावट को पहचाना। लोकगीतों में सौन्दर्य के जो वर्णन और बिम्ब हैं उन्हें इन्हीं जनों ने तो रचा है। इसलिए हमेशा मुझे लगता है कि जो सच्ची कविता होगी वह सबके बीच मान पायेगी क्योंकि उसकी जगह उन जनों के हृदय में खाली छोड़ी हुई है। मैंने सिर झुका कर, भूमि स्पर्श कर शेक्सपियर के घर को प्रणाम किया। मेरा सबसे प्रियकवि, अपनी भाषा के अलावा। जिसके पास सब कुछ को कविता में बदलने की शक्ति थी। मैंने उनके बाग से चुपके से एक चुटकी मिट्टी चुरा ली और एक डिविया में आज भी अपनी मेज की दराज में सहेज कर रखी है। और मैंने पेरू की मिट्टी को भी प्रणाम किया जहां से चल कर आलू और टमाटर हमारे घर हमारी मिट्टी में आये। गीली मिट्टी से लिपटे आलू के अलसाये, नींद भरे झब्बे और हरे पत्तों के बीच लगभग मिट्टी को छूता छुप कर बैठा गोल लाल टमाटर। उस ठंड में हम वीरान, धूसर स्याह रेतीले दर्रों मैदानों को पार कर, जहां लगातार धुंध उठ रही थी जैसे प्रशांत महासागर की भाप, हम कराल पहुंचे अमेरिका की प्राचीनतम सभ्यता का अवशेष देखने जो सिन्धु घाटी के पास की ठहरती है। और पेरू की राजधानी लीमा में कच्ची मिट्टी के बने हजारों साल पुराने घर और बस्ती। लीमा लगातार बादलों से आच्छादित है। वहां बादल हैं। पर वर्षा नहीं। इस पृथ्वी से ज्यादा मायावी और रहस्यमय और क्या है। धरती, पर्वत, समुद्र, मनुष्य और सम्पूर्ण जीवजगत। वे कौन से कवि हैं जहां ये सब हैं अपने उदात्त रूप में? नामवर जी से पूछूंगा। या राधावल्लभ त्रिपाठी से। शायद 'महाभारत'। शायद वाल्मीकि रामायण। रात काफी हो गयी थी। पर मुझे नींद नहीं आ रही थी। हमारे देश में तो अभी दिन होगा। मैं उठा और बाहर निकल गया। इतना बड़ा होटल भी अभी सो रहा था। नीचे आया। और बाहर। पीछे। अटलांटिक की लहरें गरज रही थीं। तट पर जो रोशनी थी उससे लहरों के उठने, गिरने, टूटने को देख सकता था। लगा जैसे मेरा पूरा शरीर खामोश है। रक्त का प्रवाह भी जैसे थम गया है। सांस भी। ऐसी भव्यता। उदात्त। तभी वो दुभाषिया दिखी मुझसे आगे समुद्र की ओर। युवा शरीर की लोच और ताप और तराश। लहरों ने हमें भिगो दिया था। हमारी पीठ और कंधे और माथा। समुद्र अप्रतिहत। कितनी भंगुर है हमारी लीला। ऐसा क्यों है कि प्रकृति का हर संसर्ग हमें कामुक बनाता है। हर अकेलापन और एकांत हमें कामुक बनाता है। सम्पूर्ण प्रकृति और सृष्टि कामदेव का उल्लास ही तो हैं। लगभग साठ की उम्र में मैंने यह अनुभव किया। कई बार लगता है

इंद्रियां अपना स्वभाव भूल रही हैं। मारकेस से पूछा था 'प्लेब्याय' पत्रिका ने और यह आखिरी सवाल था आपकी नजर में सबसे बड़ा अप्रोटीजियक या कामौषधि क्या है? उनका उत्तर था 'पावर'। मैं इसमें जोड़ूंगा 'प्रकृति'। मेरे सफेद केश, पकी मूंछें, देख कर कौन कहेगा मैं इन चीजों के बारे में सोचता हूं, और लेकिन यदि यह देह प्रकृति की लीला है तो अंत तक यह वह सब करेगा जो प्रकृति ने इसे सिखाया है। गालिब ने कहा है 'इक नौबहारेनाज को ताके है फिर निगाह'। ममता तू न गयी मेरे मन ते। और गिनती के मुताबिक मेरा शरीर साठ साल का हो गया। देहघड़ी ने कोई घंटा तो नहीं बजाया लेकिन लगता है कि उमर हो रही है। जैसे कई बार बिना झुके कुछ उठाने की इच्छा। बिना देह टकसाये कुछ पा लेने की इच्छा। आरामतलबी। भुख कुछ कम। देह की जोड़ों में कुछ कड़ापन। खुशी है कि बात ज्यादा फेली नहीं। कहीं कोई षष्टिप्रवेश या पूर्ति का बखेड़ा नहीं हुआ। घटना के कई हफ्ते बाद शिशिर, सुलभ और संतोष के साथ कुछ खाना पीना हुआ और एक समय का यह युवा कवि वरिष्ठ या वृद्ध नागरिक बन गया। और बनते ही मैंने रेल का टिकट खरीदा, रियायती टिकट, वरिष्ठ नागरिकों वाला। कहीं जाना तो था नहीं। सो दो दिन बाद वापस कर दिया। मनुष्य सबसे ज्यादा बूढ़ा होने से डरता है। लगता है मृत्यु करीब है। बुढ़ापे को रोकने ढंकने तथा टालने के सारे उपाय मृत्यु के भय से जनमते हैं। पहले तो ऐसा नहीं था या कम था। उम्र बढ़ना, बूढ़ा होना, खूब पकना यह तो नेमत है। देह का अपना तर्क, अपनी इच्छा और स्वायत्तता। मुझे मानव देह से ज्यादा सुंदर और जीवंत कुछ भी नहीं लगता। वह स्वतः बढ़ती रहती है जैसे रेशम, जैसे द्राक्षारस की मादकता। अब अभी मैं थोड़ा रुकता हूं। समय हो गया है। मझे वंशीधर सिंह की शोकसभा में जाना है। उनकी मृत्यु हटात हुई। ठीक दो दिन पहले मैंने उन्हें एक भीड़ भरी सड़क पर देखा था। वह कुछ भिन्न लगे थे। ऐसा कई बार मेरे साथ हुआ है कि कोई व्यक्ति अचानक याद आया और अगले दिन उसके बारे में कोई सूचना मिली। कई बार ऐसा भी हुआ कि मैंने देखा, और कुछ अजीब सा लगा, और फिर अशुभ घटा। यह सब तर्क के परे है। कई बार ऐसा हुआ कि किसी ने मुझे बहुत चोट पहुंचायी और फिर उसको कुछ हो गया। ऐसा विश्वास करना धार्मिक दृष्टि है। वास्तव में अगर ऐसा होने लगे तो कोई किसी का बुरा करे ही नहीं। लेकिन शोषकों के पतन में विश्वास भी क्या इसी तरह की बात है? नहीं उसके पीछे कार्य कारण सम्बंध की कथा और विज्ञान है। साठ साल का होने पर मेरे साथ एक बात और हुई। मेरे मन से वस्तुओं के प्रति आसक्ति कम होने लगी। लगता है इतना कुछ तो मैं रोज साफ भी नहीं कर पाऊंगा। बस एक कोठरी काफी है। एक चौकी। कुर्सी मेज। और किताबें। लेकिन इतनी किताबें तो मैं पढ़ भी नहीं पाऊंगा। अंत में एक दो या दस किताबें ही रह जायेंगी। निराला के पास अंतिम दिनों में केवल दो किताबें थीं, ऐसा बताते हैं। मैंने वो कोठरी दारागंज में देखी थी। बस तक तखत और दीवार में आले। आदमी के पास कुछ भी अतिरिक्त नहीं होना चाहिए। अभी घर बदलते हुए मुझे बहुत सी चीजें पीछे छोड़नी या बांटनी पड़ें। मैंने न तो पहले कभी कोई पत्र संजोये न अब। जब कविता का ही कोई ठिकाना नहीं तो ये पत्र, अखबार की कतरनें, समीक्षाएं, तस्वीरें क्या काम की? हमेशा यही ध्यान आता है कि दो पंक्तियां भी कालपात्र में जायेंगी या नहीं? दुनिया में सबसे भंगुर है ख्याति। जीवन के बाद अगर दस साल भी लोग पढ़ें और याद करें तो बहुत हैं। इसीलिए एक कवि को कभी कोई पद या सत्ता स्वीकार नहीं करनी चाहिए। वह एक अतिरिक्त काव्येतर शक्ति है जो सही मूल्यांकन या स्वीकृति को बाधित करती है।

अगले अंक में समाप्त

बुद्ध, बारूद और पहाड़

मधु कांकरिया

उंगलियों के स्पर्श से सिन्धु नदी को सहलाती हूं। हमारे साझे इतिहास और संस्कृति की गवाह रही है यह नदी जो यहां भी मेरे मन की ही तरह कभी आवेग से तो कभी मंथर गति से उद्गम से संगम तक सुषमा बिखेरती दूधिया धार की तरह बह रही है। कभी चट्टानों पर प्रहार करती अपना रास्ता निकाल लेती है तो कभी सिकुड़ती फैलती घाटियों और वादियों से लुकाछिपी खेलती अंत में पाकिस्तान की ओर मुड़ जाती है। घूमर लेता मेरा मन भी पीछे की ओर मुड़ने को होता है। पर सामने खड़ा जादू जगाता विराट हिमालय! धूप और सूर्य किरणों की जुगलबंदी में पल पल रंग बदलते पहाड़ों का तिलिस्म, जैसे कोई बहुत बड़ा सतरंगी पाखी उड़ान भरते भरते पंख फुला कर बैठ गया हो वहीं।

जाने क्यों लगा जैसे मैं भी वही हूं, वही आदिम पाखी जो इन परम क्षणों सब बंधनों को तोड़ कर इन तिलिस्मी पहाड़ों पर पंख फैला कर बैठ गयी हूं और चाहती हूं इन जादुई लम्हों को रबड़ की तरह खींच खींच अनंत तक ले जाना। पर तभी टूट जाता है कोई तार। झाड़वर धाबा मुझे स्वप्नलोक से पथरीले यथार्थ पर ला पटकते हैं। देर हो रही है अब उठिये भी, गाड़ी में बैठिये, आज नीचे घूम लेते हैं।

किसी लोककथा सा लुभावना लेह लद्दाक! सृष्टि का रहस्य! ईश्वर का रोमांच!

ओह नो! मैं बिखर जाती हूं। कुछ दरकता है। समाधिष्ठ देह से रेत सा कुछ झड़ जाता है।

क्यों टोका मुझे, थोड़ी देर यूं ही बैठे रहने देते।

मैडम यहां हर ओर पहाड़ ही पहाड़ हैं। जी भर देख लीजियेगा। वैसे रखा क्या है इन पहाड़ों पर।

क्या? क्यों कहा ऐसा? पहाड़ ही तो यहां की आत्मा है। लगा जैसे किसी ने नोच ही डाला हो मेरे सुख की खाल को।

होंगे। पर हमारे किस काम के ये पहाड़? न तो आक्सीजन देते हैं, न रोजगार, खेती भी इन पर नहीं कर सकते। घर तो इन पर बन ही नहीं सकता। उसकी आंखों की बांबी से जाने कितने सांप सरसराए।

क्या है यह? दुःख का पहाड़ या पहाड़ का दुःख? ध्यान से देखती हूं उसके युवा चेहरे की ओर। एक अशांत समुद्र! जाने कितने दिनों की जमा नींद आंखों में। ललाट पर चिन्ता और खीज की छोटी छोटी अनेक लहरें। फिर भी एक ऐसा पथरीला जिद्दी चेहरा जो अपने सत्य के प्रति समर्पित था और सत्य यह था कि उसकी सौन्दर्य चेतना और सूक्ष्मता को जिन्दगी की घिस घिस और भूख ने लील दिया था। पर यह भी आंशिक सत्य था, सम्पूर्ण सत्य यह था (जो मुझे बाद में पता चला था) कि पिछले दिन ही एक युवती ने आजाद तिब्बत की मांग करते हुए खुद को तिब्बत में आग की लपटों के हवाले कर दिया था। उसी का हाहाकार, गहन दुख, आक्रोश, अपमान और बेबसी की लहरें उसे रह रह कर अशांत कर रही थीं।

मन किया पूछूं उससे क्या यह दुख अपनी माटी से उखड़ने का है? या अपने तिब्बती भाइयों की सहानुभूति से उपजा दुख है? मन किया पूछूं उससे क्या तुम तिब्बत से विस्थापित हो? पहाड़ों के बहाने क्या तुम अपने विस्थापन के दुख से उपजी झल्लाहट और हताशा को ही नहीं छिपा रहे? पर पूछना खतरे से खाली नहीं था। साथ में कई और लोग भी थे जिनके सुख में खलल पड़ने का डर था।

बहरहाल पहाड़, जिन्दगी का ताप और विरोधी सत्यों के बीच बिखर गया सारा जादू।

लद्दाक के लेह शहर (जो समुद्र स्तर से 11300 फीट की ऊंचाई पर है) में आज हमारा पहला ही दिन था। नये नये परिन्दों की तरह हम बेताब थे ऊंची उड़ान भरने के लिए पर हमें हिदायत थी कि यहां चूकि आक्सीजन का स्तर बहुत कम है इस कारण कम से कम चौबीस घंटे हम ऊंचाई पर नहीं जायें जिससे हमारा बाँडी सिस्टम यहां की आबोहवा का अभ्यस्त हो जाये। इस कारण हम सबसे पहले निकले लेह से 40 किलोमीटर दूर 'हॉल ऑफ फेम' देखने।

खूबसूरत घुमावदार रास्ते, कहीं यडपा के पेड़ों की कतार जो देखने में अशोक के पेड़ जैसे ही दीखते हैं तो कहीं सेब, अखरोट और खुबानी के पेड़। कहीं गेहूं के लहराते खेत। कहीं पीठ पर बच्चा लादे खेत में काम करती लद्दाकी औरतें। बीच बीच में आर्मी के जवान, आर्मी वैन, आर्मी की चौकियां। एक जगह लिखा था 'यहां सैनिकों को चाय मुफ्त पिलायी जाती है'। थोड़ा आगे ही सेना का 'लद्दाक स्काउट रेसिडेंटल' का भव्य प्रवेशद्वार था जिसके ऊपर लिखा हुआ था 'हमारा अनुशासन, हमारी पहचान'। आसपास कवायद करते फौजी। सामरिक दृष्टि से लद्दाक जम्मू कश्मीर के बेहद संवेदनशील जिलों में से एक है क्योंकि एक तरफ इसकी सीमा चीन से तो दूसरी तरफ पाकिस्तान से मिलती है। इसलिए लद्दाक का अधिकांश सेना के नियंत्रण में है।

हर ओर पहाड़। जैसे पहाड़ों के बीच ही कोई बड़ी सी गुफा हो जिससे निकल रहे हों हम। कहीं पहाड़ों पर चिपके हुए छोटे छोटे पत्थर, शायद कभी यहां तक नदी रही होगी, बाद में नदी सूख गयी होगी। छोटे छोटे घर जिनकी छतें यडपा पेड़ की लकड़ी से बनी हुईं जिससे खून जमाने वाली ठंड में घर गर्म रह सके। जगह जगह खेतों में, घरों के बाहर गोंचा (यहां की परम्परागत वेशभूषा) पहने घास सुखाती हुई लद्दाकी औरतें। बहुत अरसे तक बीहड़ से पड़े लद्दाक में लेह श्रीनगर हाईवे के बाद थोड़ी हरियाली आयी। वहां से सब्जियां आनी शुरू हुईं तो यहां के लोगों ने भी सब्जियां उगानी सीख लीं। लद्दाक में चार महीने अक्टूबर से जनवरी तक इतनी भयंकर ठंड रहती है, बर्फ गिरती है कि जनजीवन एकदम ठप पड़ जाता है, लोग घरों में कैद हो जाते हैं, यातायात और टूरिज्म ठप्प

हो जाता है। इस कारण जानवरों के लिए अभी अगस्त महीने से ही घास सुखायी जा रही थी, खाने पीने की समूची व्यवस्था इन गर्म दिनों में ही कर ली जाती है। ठंड के चार महीने जब झील, नदी और तालाब सब बर्फ बन जाते हैं तब प्रौढ़ लद्दाकी जम कर पूजापाठ करते हैं तो नयी उम्र के युवा आइस हॉकी खेलते हैं।

देखते देखते धूप बाघ की तरह झपट्टा मारने लगी थी। पल पल परिवर्तित मौसम लेह का। जो लेह सुबह ठंडी थी, तेज हवाओं का मौजघर थी वह अब तपने लगी थी। रास्ते में मैग्नेटिक हिल आया। यहां गाड़ी का स्पीड मीटर जीरो था लेकिन गाड़ी फिर भी चल रही थी। अब हम नानक हिल और गुरुद्वारा पत्थर साहिब पर थे जो आर्मी के द्वारा ही संरक्षित और निर्मित था। शायद आर्मी के मनोबल को बढ़ाने के लिए ही इसे बनाया गया था जहां दीवारों पर अतीत की खुशबू बिखेरते सिख गुरुओं की कुर्बानियों के चित्र अंकित थे। किंवदंती है कि 1517 में सुमेरु पर्वत पर उपदेश देने के बाद नेपाल, सिक्किम, तिब्बत होते हुए चारकेट के रास्ते गुरु नानक यहां पधारे थे और उन्होंने यहां के लोगों को एक खूंखार राक्षस के जुल्मों से मुक्ति भी दिलवायी थी। लेह में गुरु नानक को दलाईलामा की तर्ज पर लद्दाकी नानक लामा कहते हैं। इन्ही रास्तों पर बौद्ध मठों के झुंडों के बीच इकलौता संतोषी मां का छोटा सा आलयनुमा मंदिर देख सुखद आश्चर्य भी हुआ। लद्दाक की जनसंख्या का 81 प्रतिशत बुद्धिस्ट है। 7वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से यहां बौद्ध धर्म फलफूल रहा है। 1947 के बाद लद्दाक को भारत में विलय कर उसे जम्मू और कश्मीर के एक जिले के रूप में मान्यता दे दी गयी। इससे पूर्व लद्दाक का इतिहास अनेक उतार चढ़ाव भरा रहा। कभी यह स्वायत्त रहा तो कभी अधीन रहा।

पत्थरों और पर्वतों से होते हुए अब हम निभु में संगम पर थे जहां जन्गस्कार नदी सिन्धु नदी से मिलती है। पानी भी यहां साफ दो रंगों में बंटा हुआ था। सामने हिरणों का एक झुंड सिन्धु नदी में पानी पीने के लिए आया हुआ था। यहां पहाड़ थोड़े अलग लग रहे थे। आधे चिकने आधे मगरमच्छ की पीठ की तरह खुरदुरे। युवकों की कई टोलियां यहां राफ्टिंग के लिए आयी हुई थीं। अचानक कुछ हुड़दंग सा हुआ, निगाह पड़ी युवा टोली के एक लड़के पर जिसने यहां के लोगों की सहानुभूति में फ्री तिब्बत लिखी हुई टीशर्ट पहनी हुई थी। उसने जैसे ही सुना कि यहां से सिन्धु नदी पाकिस्तान की ओर मुड़ती है, युवा दोस्तों के बीच हीरो बनते हुए उसने अपना मुंह पाकिस्तान की दिशा में घुमाया। अपनी जिप खोली और धार में धार मिला दी जा मेरी धार उस पार, गंदा कर उस दुश्मन को। शायद सीमावर्ती इलाके में आते ही हम पर देशभक्ति का हाई पावर नशा छा जाता है। इसे तीव्रता से महसूस मैंने आर्मी द्वारा शहीदों की याद में बनाये गये हॉल ऑफ फेम में।

‘हाल ऑफ फेम’ सद्यः अतीत के उन तहखानों में उतार गयी हमें जहां उन अल्पज्ञात या अनाम महानायकों की कुर्बानियां दफन थीं जो इतिहास में कहीं नहीं थे पर जिनसे इतिहास था। जो सरकारी दस्तावेजों में, विज्ञापनों में, सरकारी इमारतों में, सड़कों के नामों में, पाठ्यक्रमों में कहीं नहीं थे पर जिनकी वीरता, निर्भीकता आज भी जनमानस की स्मृतियों में धड़कती थी। हम भूल न जायें उनको इसलिए आर्मी की तरफ से विस्मृति के विरुद्ध स्मृति का यह एक विनम्र प्रयास था।

प्रवेशद्वार में सबसे ऊपर माखनलाल चतुर्वेदी की पंक्तियां अंकित थीं *मुझे तोड़ लेना वनमाली / उस पथ पर तुम देना फेंक / मातृभूमि पर शीश झुकाने/जिस पथ जायें वीर अनेक*। उसके नीचे अमर ज्योति ज्वाला का चित्र बना हुआ था। पूरे हाल में लद्दाक की सांस्कृतिक झलक और इतिहास के साथ साथ एक गरिमायुक्त शांति और भावभीनी लहर थी उन शहीदों के प्रति जो चीन और पाकिस्तान के साथ हुए किसी भी युद्ध में देश के काम आये थे। एक पूरी दीवार पर सियाचिन के जांबाज शहीदों की तस्वीरें थीं। तो एक पूरी दीवार के बीचोंबीच लिखा हुआ था ‘Lest We forget’

(अगर हम भूल जायें) उसके नीचे उन 13 शहीदों की तस्वीरें थीं जो फायरिंग स्क्वाडों, फूटते बमों और बारूदी धमाकों के बीच अपनी कहानी आप लिख गये थे। हर तस्वीर के नीचे बत्ती जली हुई थी। जिनमें कुछ लद्दाक स्काउट्स थे तो कुछ राजपूताना राइफल्स के थे जिन्हें वीरोचित कार्य के लिए महावीर चक्र या परमवीर चक्र दिये गये थे, कड़ियों को मृत्योपरान्त दिये गये थे।

माटी के गौरव के लिए मिट चुके जिन कुछ नामों को लद्दाक में सबसे अधिक सम्मान और भावभीनी उदासी के साथ याद किया जाता है उसमें सबसे आगे है मेजर शैतान सिंह का नाम। जोधपुर के पास के एक छोटे से गांव में जन्मे मेजर शैतान सिंह और उनकी 13वीं कुमाऊं पलटन त्रिशूल पहाड़ियों की ओट में 17800 फीट ऊंचे रीजेंगला दर्रे पर डटी हुई थी। वह 18 नवम्बर 1962 का दिन था। तापमान शून्य और माइनस 15 डिग्री के बीच झूल रहा था। ठंडी बर्फीली हवा और सुबह 4 बज कर 35 मिनट पर चीनी आक्रमण। ठंड ऐसी जानलेवा कि हाथ बाहर रह जाये तो सुन्न पड़ जाये। पर मेजर और उनकी टीम खून के आखिरी कतरे और आखिरी गोली तक लड़ती रही। कोई भी लौट कर नहीं आया। एक शहीद जवान के हाथ में हथगोला फंसा हुआ था। कड़ियों के हाथ ट्रिगर पर थे। यानी सब लड़ते लड़ते शहीद हुए थे। उस समय के युद्ध प्रवक्ता वी.जी. वेर्गिस ने लिखा है कि 'भारतीय फौज के पास गरम कपड़े भी पूरे नहीं थे। उनकी जैकेट भी कोल्ड प्रूफ नहीं थी। वे मामूली जैकेट और 'श्री नोट श्री' (1945 में निर्मित दूसरे विश्वयुद्ध के हथियारों) से लड़ रहे थे जबकि चीनी सेना के पास Ak 47 था। और तो और हमारी सेना को ढंग का एक जनरल तक नसीब नहीं हुआ था। जनरल बी.एम. कॉल को युद्ध का उतना अनुभव भी नहीं था क्योंकि वे फाइटिंग कोर के थे ही नहीं। नेहरू जी के रिश्तेदार होने के चलते कई योग्य अफसरों को रोक कर उनकी पदोन्नति की गयी थी। शैतान सिंह के पास गोलियां तक कम पड़ गयी थीं।'

मेजर शैतान सिंह के पास ही बहादुरी और निर्भीकता की मिसाल नायब सूबेदार सोनम स्तोवेडन की मूर्ति थी। वे स्थानीय लद्दाकी थे। 1962 के चीनी हमले में वे 17000 फीट की ऊंचाई पर दौलत बंग की पुरानी एकांत चौकी पर तैनात थे। चीन ने इस चौकी पर हमला किया। चौतरफा बमों और गोलियों की बारिश के बीच भी वे एक बंकर से दूसरे बंकर जा जाकर अपने जवानों को वीरता से लड़ने की प्रेरणा देते रहे। मुख्य अधिकारी और उनकी सारी यूनिट खून की आखिरी बूंद और आखिरी सांस तक लड़े। 22 अक्टूबर 1962 को वे भी पूरी यूनिट के साथ शहीद हुए।

इतिहास किसी गिद्ध की तरह कंधे पर बैठ मेरी गर्दन दबोच रहा था। क्या यह युद्ध टाला नहीं जा सकता था? 1950 में कम्युनिस्ट चीन के तिब्बत पर कब्जा करने के बाद भी नेहरू जी ने चीन के साथ सीमा विवाद पर संवाद करना जरूरी क्यों नहीं समझा? जैसे बोल्शेविक क्रांति के बाद सोवियत संघ ने सत्ता में आते ही विवादित भूमि कम्युनिस्ट चीन को ले देकर झगड़ा सलटाया क्योंकि यदि आप पड़ोसी से ही झगड़ते रहेंगे तो उन्नति कैसे करेंगे। पर नेहरूजी में न केवल दूरदर्शिता का वरन कोई भी कड़ा कदम लेने की इच्छाशक्ति का भी अभाव रहा। नतीजा? न केवल हमने 42,750 वर्ग फीट जमीन खोयी, न केवल अपने 1383 वीर सैनिकों की बलि दी, 1696 सैनिक लापता हुए और 3986 जवान जिल्लत भरी नारकीय परिस्थितियों में युद्धबंदी का जीवन जीने को बाध्य हुए, वरन आने वाली पीढ़ी को भी हमेशा के लिए समस्याग्रस्त देश सौंप दिया, भारत के विरुद्ध पाकिस्तान को खड़ा करने में चीन को उकसाया। शायद ही दुनिया में कोई ऐसा देश हो जिसके अपने सभी पड़ोसी देशों से रिश्ते इतने खराब हों। नतीजा? जितनी ऊर्जा पड़ोसी दुश्मनों से निपटने में लग रही है, जिस कदर डिफेंस का खर्च महंगाई और अप्रत्यक्ष कर के रूप में देश की गरीब जनता की कमर तोड़ रहा है उतने में तो भारत का पूरा पूर्वोत्तर विकसित हो सकता था। गरीबी, भुखमरी और कुपोषण से लड़ा जा सकता था।

अवसन्न मन प्रश्नों की मरुभूमि में जाने कब तक खामोशी के बुर्ज पर अकेला भटकता रहा इतिहास के ये बुझे हुए चिराग मुझे बेचैन कर रहे थे। कब तक? कब तक हम करते रहेंगे वतन के रखवालों की बेकद्री! याद आये, 26/11 के एनएसजी कमांडो सुरेन्द्र सिंह आतंकवादियों से लड़ते हुए एक पैर में गोली खायी। एकदम सामने बम फूटने की वजह से सुनने की क्षमता भी खो बैठे। पर हमारी सरकार ने मेडल देना तो दूर, अयोग्य घोषित कर नौकरी से ही निकाल दिया। अपने खर्च से अपना इलाज कराया। पेंशन पाने के लिए चार साल तक भटकते रहे।

अब चलें। बड़े भाई उठने का आग्रह कर रहे थे।

मैं इतिहास से बाहर हुई।

रात!

तारों भरी आदिम रात और धरती पर सोयी चांदनी!

लेह का चांद बड़ा था! तारे ज्यादा चमकीले और धरती के करीब थे !

चांदनी में नहायी मैं कभी जाग जाग कर सोयी तो कभी सो सोकर जागी।

क्योंकि अगले दिन हमें लेह का सबसे बड़ा आकर्षण, एशिया की सबसे ऊंची खारे नीले पानी की 'पैनगोंग' लेक जाना था। हम थोड़े आशंकित भी थे। पैनगोंग तक पहुंचने के लिए हमें चांगला से होकर गुजरना था जो समुद्र स्तर से 17586 फीट की ऊंचाई पर था। इतनी ऊंचाई पर आक्सीजन की कमी के चलते कई लोगों की तबीयत गम्भीर रूप से खराब हो गयी थी। हमने भी सावधानी के तौर पर आक्सीजन सिलिंडर और कुछ आवश्यक दवाइयां साथ में रख ली थीं। 1962 के युद्ध के बाद 4200 किलोमीटर लम्बी इस झील का सत्तर प्रतिशत चीन के पास चला गया था।

पूरा सफर बहते झरने की तरह रहा। दृश्यों की भिन्न भिन्न धाराएं एक प्रवाह में बहती रहीं। कहीं पहाड़ों को काट काट कर गांव गांव में बनी मोनेस्ट्री (गोम्पा, बोध मठ), कहीं नुक्कड़ नुक्कड़ पर बने धर्मचक्र, चप्पे चप्पे पर परिजनों की यादों में बने मंत्रसिंचित स्तूप, तो कहीं पहाड़ पहाड़ पर उड़ती लहराती रंगबिरंगी धर्मपताकाएं, ध्यानकेन्द्र, हवा में गूँजते मंत्र 'ओम मणि पद्मेहू', हर मुख्य दरवाजे पर बना ड्रैगन, बाजार बाजार में बिकती बुद्ध प्रतिमाएं और राह चलते लामा (बौद्ध संन्यासी) हमें यह भूलने ही नहीं दे रहे थे कि हम बुद्ध और लामाओं के देश में हैं।

पहाड़ की विशाल देह पर दीमक की तरह रेंगते जलेबी से घुमावदार संकरे खतरनाक रास्ते। जगह जगह बीआरओ द्वारा टंगी हुई मोहक काव्यात्मक चेतावनियां 'फास्ट वॉट लास्ट', 'नो हरी, 'नो वरी', 'थिंक एंड ड्राइव, 'स्टे अलाइव' आदि। रकम रकम के अद्भुत पहाड़। पहाड़ नहीं पहाड़ों के झुंड। एक जगह देखा एकदम सफेद और आसमानी रंग के पहाड़ जैसे आसमान और बादल ही पहाड़ बन कर बैठ गये हों। एक पहाड़ ऊपर से भूरा तो नीचे की तरफ एकदम चंदन के रंग का। कुछ पहाड़ ऐसे जैसे कैडबरीज पिघला कर चिपका दी हो। हर पहाड़ अपनी सुंदरता में अनूठा। बीच बीच में मिलते रहे लम्बे लम्बे काले बालों वाले याक, खरगोश के आकार के हलके भूरे कुत्ते जिन्हें मारमूट कहते हैं, पहाड़ी घोड़े, यहां की ठंड से निपटने के लिए लम्बे बालों वाले कुत्ते और ढेरों भेड़ जिनकी बड़ी हुई ऊन गर्मी आते ही काट ली जायेगी जिस ऊन से यहां की मशहूर पश्मीना शाल बनती हैं।

कारू गांव में एक घर के बाहर लिखा था 'हॉट वाटर एट एनी टाइम'। यह सूचना सैलानियों विशेषकर विदेशी सैलानियों के लिए थी। अतिरिक्त आय के लिए लद्दाकी सैलानियों को अपने घर ही ठहरा लेते हैं। कहीं और लिखा था 'सेव ट्रीज'। यहां हरियाली अन्य पर्यटन स्थलों की अपेक्षा बहुत कम है। बर्फ गिरने के चलते यहां पेड़ साल में सिर्फ छह महीने ही बढ़ते हैं। खेती भी यहां सिर्फ गेहूं

की ही होती है, क्योंकि गेहूं चार महीने ही लेते हैं। अधिकांश सूचना अंग्रेजी में क्योंकि यहां की स्थानीय लद्दाकी सैलानियों के पल्ले नहीं पड़ती। वैसे टूरिज्म के चलते लद्दाक के स्कूलों में हिन्दी एकदम शुरू से ही पढ़ायी जाती है।

अब हम पथरीले लद्दाक के साथ साथ हरियाले लद्दाक में सतवना पर थे जहां अक्टूबर 2010 में लद्दाकियों ने एक ही घंटे में सबसे अधिक पेड़ लगा कर गिनीज बुक में रिकार्ड बनाया था। इंकचेम नामक लामा की प्रेरणा से हुआ था यह सब। लामाओं के प्रभाव में सारे लद्दाकी एकजुट होकर लग गये थे पेड़ लगाने में। साथ साथ ही बह रही थी मोती की आव से सफेद सफेद पत्थरों के बीच दूधिया चांदनी बिखेरी शायोक नदी (यह भी नुम्त्रा होते हुए पाकिस्तान जाती है)। मेरे मन में भी चांदनी बिखेर रही थीं निर्मला पुतुल की पंक्तियां *उन हाथों में मेरा हाथ कभी न देना/जिन हाथों ने कभी एक पेड़ भी न लगाया हो।*

हम बहुत ऊपर आ गये थे। रास्ते और ज्यादा संकरे और खतरनाक हो गये थे, दोनों ओर चांगला पहाड़ों के बीच से निकलती इंच इंच धचके खाती बढ़ रही थी हमारी गाड़ी। एक इंच इधर उधर हुए कि गाड़ी सीधी रसातल में। खतरे से ध्यान हटा कर मैं नीचे घाटियों में बहते जीवन को देखने लगी। कहीं पाइप से पानी भरते पहाड़ी तो कहीं खच्चरों पर सामान ढोते लद्दाकी। कदम कदम पर बीआरओ की चेतावनियां 'बी मिस्टर लेट, देन लेट मिस्टर', 'जीवन छोटा है, इसे और छोटा मत करो' हमें डरा रही थीं कि खतरा सचमुच है।

और देखते देखते आ पहुंचा, चांगला। हम यहां 17,586 की ऊंचाई पर थे। यह पूरा इलाका आर्मी के नियंत्रण में था। बड़े बड़े अक्षरों में लिखा हुआ था 'Himayank Welcomes on World Third Highest Pass Changla' पहाड़ी हवाएं, पहाड़ों के पीछे से झांकती चांदी की पर्वत श्रृंखलाएं, ऊंचाइयां, उड़ती रंगबिरंगी पताकाएं, दूर से आती मिलीजुली इंसानी आवाजें सब मिल कर एक रहस्यमय वातावरण का निर्माण जैसे कर रहे थे। मैं अभिभूत थी। विराटता और विशालता मुझे छूने लगी थी। सीमाएं टूट रही थीं। जाने कैसी लपट थी उन लम्हों में कि मैं पिघल रही थी। भीतर का सारा कादा कचरा बह रहा था।

मन किया कल्पना की गोद में सिर रख कर ऐसे ही पड़ी रहूं अनंत तक और वक्त हवाओं की तरह मेरे ऊपर से बह जाये। लेकिन घड़ी देख चलने वाले धाबाजी ने फिर ठेला मुझे अधिक देर मत ठहरिये, तेज ठंड और कम आक्सीजन कहीं... लीजिये कहवा पीजिये (केसर, चायपत्ती और चीनी से बनी कश्मीरी चाय)। कड़कती ठंड में कहवा के गरम गरम घूंट पीकर आत्मा तृप्त हुई।

हम अब नीचे की ओर। धाबाजी ने राहत की सांस ली कि किसी की तबीयत खराब नहीं हुई। बड़े भाई ने थोड़ी देर के लिए ऑक्सीजन सिलिंडर नाक में लगा लिया था। खतरा खत्म हुआ क्योंकि आगे की यात्रा नीचे ढलान पर थी।

एक के बाद एक आश्चर्य देती प्रकृति! घाटी में चांदनी सी चमकती सफेद बालू। ऊपर जरूरत से ज्यादा नीला आसमान। बीच बीच में खिल रहे थे धूप के फूल। घाटी में कहीं कहीं उड़ रही थीं खूबसूरत सफेद काली मैकपाई चिड़ियां जिसे यहां की भाषा में चाठागो कहते हैं। एकाएक ड्राइवर धाबा फूटे वो देखिये, ट्रक पद्मा लोटस स्कूल, यहीं हुई थी 'श्री इंडियट्स' की शूटिंग। मेरे भीतर भी तितलियां उड़ने लगी... इसका मतलब अब हम पैनगोंग से बहुत दूर नहीं हैं।

किसी परीकथा की तरह खूबसूरत पैनगोंग। प्रदूषणमुक्त पानी एकदम नीला। कहीं गहरा नीला तो कहीं हल्का नीला। पृष्ठभूमि में सोना रंग हिमालय और ऊपर कुच कुच नीला आसमान। लोग दनादन

तस्वीरें खींच रहे थे। सौन्दर्य के उस अनूठे घोंसले में दुबकी विस्मित विमग्ध में निनिमेष देख रही थी शांत बहती झील को, झील में तैरते बर्फ से सफेद बगुलों को, झील की सतह पर गिरती सूर्य किरणों को। उन उदात्त पलों में जिन्दगी के डर, महानगर के बौनेपन और टुच्चेपन से सर्वथा मुक्त थी मैं। मैंने चाहा कि इन उदात्त पलों में मैं कुछ भी नहीं सोचूं, बस बूंद बूंद भरती रूहं दृश्यों को भीतर, पीती रूहं हसीन गजलों सी इन ध्वनियों को घूंट घूंट जिससे बाद के बदरंग दिनों में जब कभी जिन्दगी में उदासी, ऊब और थकान से मुठभेड़ हो, जब कभी बोरियत और मुर्दनी के उड़ते रेशे जीना दुश्वार कर दें, यह नीले पानी का विस्तार, यह आसमान की नीलिमा मुझे वापस उस दुनिया से जोड़ दे जिससे घबड़ा कर मैं यहां आयी हूं। पर किसी अभिशप्त राजकुमारी सी मैं। उन अनमोल पलों में भी मन बंधा नहीं। सुख धोखा खा गया। प्रकृति मेरी अंतःप्रकृति को सींचती मुझे मथती, कुरेदती रही क्या है मनुष्य होने का अर्थ? क्या हूं मैं? हो पायी हूं?

मन की सतह पर हलके से जमे असमंजस को परे सरकाते हुए झील किनारे टहलने लगी कि एक यहूदी दम्पति जो जर्मनी से आये हुए थे ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं उन दोनों की तस्वीर एक साथ खींच दूं। थोड़ी औपचारिक बातचीत के बाद उन्होंने मुझसे विचित्र विचित्र सवाल पूछे जो यह दर्शाने के लिए काफी थे कि भारत के बारे में विदेशों में कितना भ्रम फैला हुआ है। मसलन अपनी गहरी हरी नीली आंखें मुझ पर टिकाते उन्होंने पूछा, क्या यहां लोग सड़क पर ही मूतते हैं? क्या आपके यहां बहुओं को जला दिया जाता है? क्या आप हाथी पर सवारी करते हैं? क्या आप लोग सांप के आगे बीन बजाते हैं? क्या आप भी कॉल सेण्टर में काम करती हैं? जर्मन की पत्नी ने पूछा, क्या आपने भी अपनी शादी में खूब चटक लाल रंग का चमकता घाघरा और ढेर सारी ज्वेलरी पहनी थी? जाते जाते मैंने भी उनसे पूछा आपको यहां का सबसे अच्छा क्या लगा?

यहां का मसालेदार खाना। दोनों एक साथ चहकते हुए बोले।

क्या आप यहां से कश्मीर भी जायेंगे ?

नहीं। हालांकि कश्मीर देखना सबसे बड़ा स्वप्न है, बोलते बोलते उनके चहरे पर निराशा पुत गयी थी।

क्यों? मैंने फिर पूछा। पर उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया। समझ नहीं पायी कि आतंकवाद के चलते या पैलेस्टेनियन के प्रति अपने पुराने बैर या असुरक्षा के चलते इतने करीब आकर भी उन्होंने कश्मीर जाना स्थगित किया।

हिमालय की पृष्ठभूमि में बहती पैनगोंग की विराट सुंदरता को उसकी सम्पूर्णता में पकड़ पाना मेरे लिए तो क्या किसी के लिए भी शायद ही सम्भव हो। ऐसी सुंदरता को सिर्फ अनुभव ही किया जा सकता है। कई सैलानी चांदनी रात के आलोक में इसे महसूसने के लिए तो कई उगते सूरज की सुनहली किरणों में पहाड़ और झील के जादू को देखने के लिए रात वहीं रुक गये।

सृष्टि के पहले प्रभात सा प्रभात। रोशनी की उम्मीद में हम भी पहुंचे, लेह की सबसे समृद्ध 'हेमिस मोनेस्ट्री' जो अधिसंख्य गोम्पा की तरह ऊंचे और दुर्गम पहाड़ों को काट काट कर बनायी गयी थी शायद यह अहसास करवाने के लिए कि अध्यात्म की यात्रा इतने कष्टपूर्ण और दुर्गम रास्तों से होकर ही निकलती है। बहरहाल भीतर धर्म बहुत था, सजे हुए बाजार में अलग अलग ठेले लगे हुए थे। कहीं नगाड़े बजाये जा रहे थे, कहीं दीपक जलाए जा रहे थे तो कहीं पताकाएं फहरायी जा रही थीं। तो कहीं इस विश्वास के तहत धर्मचक्र घुमाया जा रहा था कि इसे एक बार घुमाने से सौ पाप धुल जाते हैं। कुछ लामा जोर जोर से मंत्रजाप कर रहे थे। कहीं पुस्तकों का स्टाल था। एक बड़े से

भव्य कमरे में पीतल के चमचमाते बुद्ध की आदमकद मूर्ति थी। आसपास की दीवारों पर बुद्ध का पूरा जीवन उकेरा हुआ था। कहीं माता माया देवी को स्वप्न में दिखते सफेद हाथी तो कहीं बोधिवृक्ष के नीचे तपस्या में लीन गौतम तो कहीं बोधिप्राप्ति के पश्चात दुनिया को अहिंसा और करुणा का उपदेश देते बुद्ध। कहीं लेटे हुए बुद्ध तो कहीं पद्मासन की मुद्रा में ध्यानाविष्ट बुद्ध। एक कोने में ढेर सारे दीपक रखे हुए थे, बुद्ध के अप्प दीपोभव के प्रतीक स्वरूप। एक युवा लामा से मैंने बुद्ध के अष्टांग मार्ग के बारे में पूछा तो उसने जवाब दिया आप सीनियर लामा से पूछ लीजिये। मैं सीनियर लामा की ओर बढ़ रही थी कि एकाएक मेरी नजर दो नन्हें लामाओं पर पड़ी। दोनों किसी बात पर झगड़ रहे थे और एक युवा लामा उन्हें अलग कर रहे थे। मेरे लिए यह अविश्वसनीय था। नये उगते फूल और संन्यास? जमी राख पर फूंक मारने की चेष्टा करते हुए मैंने पूछा भी तो जवाब और भी विचित्र मिला। युवा लामा ने कहा मैं खुद नौ वर्ष की उम्र में लामा बन गया था, और फिर हमारे दलाईलामा तो छह वर्ष की उम्र में ही 14वें दलाईलामा बन गये थे। दो वर्ष की उम्र में ही उन्हें दलाईलामा के पुनर्जन्म के रूप में पहचान लिया गया था। (देहांत के पूर्व दलाईलामा अपने अगले जन्म के लिए कुछ संकेत छोड़ कर जाते हैं। उनके बताये इलाके में विशेष अवधि में जन्मे बालकों का गहरा अवलोकन किया जाता है। उनमें जिस बालक में बताये गये चिह्न व लक्षण पाये जाते हैं उसे नये दलाईलामा के रूप में मान्यता दी जाती है) मैं थोड़ी खिन्न हुई। भीतर के हॉल में दलाईलामा की तस्वीर के साथ ही कई महत्वपूर्ण लामाओं की भी तस्वीर लगी थी, तस्वीर के नीचे ढेर सारे नोट लगे हुए थे जो शायद श्रद्धालुओं द्वारा चढ़ा दिये गये थे। कुछ लामा यंत्रवत मंत्रपाठ करते जा रहे थे। मैंने फिर एक लामा से पूछा बुद्धत्व क्या है? क्या आप अपने उन उद्देश्यों तक पहुंच पाये जिनके चलते आप लामा बने पर किसी को भी मेरे प्रश्न में कोई दिलचस्पी नहीं थी। हां, एक युवा लामा ने बड़ा बेबाक जवाब दिया। उसने कहा मुझे लामा मेरे मां बाप ने बनाया। वे मुझे लामाओं को दिखाते और पूछते, तू बनेगा लामा। मुझे वह चोंगा बहुत लुभाता था जो लामा पहनते थे। मुझे यह भी लगता था कि लामा बहुत मजे करते हैं। लोगों के बीच उनका बहुत रुतबा भी है। पुलिस तक बिना हेलमेट पहने स्कूटर चलाते लामा को कुछ भी नहीं कहती जबकि दूसरे लद्दाकी को फाइन देना पड़ता है। इसलिए मैंने कह दिया कि हां मैं बनूंगा लामा। बस उन्होंने मुझे लामा सजा दिया और देखते देखते बिना सोचे समझे ही मैं बन गया लामा।

आपके मां बाप ने क्यों किया ऐसा? जवाब और भी विचित्र कुछ तो गांव के मुखिया का दबाव कि गांव में लामा रहेगा तो लोगों को धार्मिक विधि सिखाता रहेगा। और कुछ मां बाप की गरीबी। उस युवा लामा की उदासी और हताशा जैसे चीख रही थी कि वह संन्यास और जिन्दगी के हाथों शटल कॉक की तरह पिट रहा था।

तो यह है लामा होने का अर्थ! मन में हूक सी उठी।

बुद्ध की इस नगरी में बुद्धत्व कहीं नहीं था। जिस कर्मकांड और पूजापाठ के विरुद्ध बौद्ध धर्म की स्थापना हुई थी वह आज तरह तरह के कर्मकांड, अंधविश्वास और अंधश्रद्धा के दलदल में धंसा हुआ था। बुद्ध ने कहा था कि संसार की असीमितता, संसार की विराटता, संसार का विस्तार संसार में नहीं मन में है, वही मन यहां माला, चोला, झंडा, मंत्र, चक्र, ध्वज और ताबीजों में डूबा हुआ था। एक घर की छत पर कुछ ईंटें छितरी हुई थीं, ध्यान से देखा तो देखा कि उन ईंटों की देह पर भी मंत्र खुदे हुए थे। सचाई यह है कि लद्दाक में आज दो धाराएं बहती हैं एक सिन्धु नदी की और एक कर्मकांड की। जन्म से लेकर मरण तक बल्कि मरने के उपरांत भी लद्दाकियों को कर्मकांड से मुक्ति नहीं है। हर गांव के हर घर में लामा महीने में एक बार अवश्य जाते हैं। उनके

लिए अलग से पूजाघर बनाया जाता है जहां बैठ कर वे पूजा करते हैं। गांव की हर गतिविधियों के केन्द्र में होते हैं लामा। जन्म हो तो नामकरण संस्कार के लिए लामा, शादी हो तो लामा, और तो और किसी की मृत्यु हो जाने पर भी लद्दाकी घर में लामा को बुलाते हैं। लामा शव को पांच छह दिनों तक रखते हैं, चोगा (शास्त्र) पढ़ कर बताते हैं कि अंतिम संस्कार कब होगा? जब तक अंतिम संस्कार नहीं होता पूजापाठ, दिया बत्ती, मंत्रजाप चलता रहता है। मृत व्यक्ति की चीजों की नीलामी होती है, ऊंची ऊंची बोली लगती है। लोग भी इसे धर्म का कार्य समझ कर ऊंचे दाम पर खरीदते हैं। इससे जमा पैसे का 70 प्रतिशत लामाओं में और 30 प्रतिशत मोनेस्ट्री में बांट दिया जाता है। शव को जलाने के बाद भी चार दिनों तक उसकी भस्म की पूजा की जाती है और फिर उसकी भस्म को पहाड़ पर रख दिया जाता है। 49 दिनों तक मृत व्यक्ति के कमरे में दीप जलाया जाता है।

सोगयाल रिनपोचे (जो कि खुद भी एक लामा है) ने अपनी पुस्तक 'The Tibetan book of living and dying' (जिसकी प्रस्तावना खुद दलाईलामा ने लिखी है) में अपने गुरु जामयांग खिंतसे का जिक्र करते हुए लिखा है कि उनके शव को छह महीने तक रखा गया था। शायद तिब्बतियन बुद्धिज्म में यह एक परम्परा बन चुकी है। इसे न केवल मौत की स्वीकृति वरन मरे हुए या मरते हुए व्यक्ति के प्रति प्रेम, पवित्रता और सेवा से जोड़ कर देखा गया है।

पांच अगस्त 2010 में यहां भयंकर बाढ़ आयी थी, बादल फट गये थे। लद्दाक के इतिहास में इतनी भयंकर बाढ़ कभी नहीं आयी थी। 4 अगस्त 2013 के लिए भी भविष्यवाणी थी कि लेह में भयंकर बाढ़ आयेगी, बादल फट जायेंगे। दलाईलामा 23 जुलाई को यहां आ गये और महीने भर वे मौन और ध्यान में बैठे रहे, किसी से मिले भी नहीं। सभी बुद्धिस्त लद्दाकियों को भी निर्देश था कि वे 12 से 1 बजे तक अपनी दुकान, आफिस बंद कर गोम्पा में जाकर प्रार्थना करें। आज आलम यह है कि जरा सी भी बारिश तेज हुई कि ईश्वरभीरु लद्दाकी डर कर गोम्पा में जाकर प्रार्थना शुरू कर देते हैं

लेकिन सारे अंधविश्वास और कर्मकांड के बावजूद पर्यावरण के प्रति लामा बहुत सचेत और सजग हैं। इनके पांच रंगों के प्रार्थनाध्वज में सारे रंग प्रकृति के सारे तत्वों की रक्षा के लिए हैं। कई जगह इन्होंने लिखवाया है लामा के इस देश में गामा (बदमाश) मत बनो। लामाओं के प्रभाव में यहां कोई मछली नहीं मारता है। लामाओं के आग्रह पर फौजियों ने मछली मारना और हिरणों का शिकार करना भी बंद कर दिया। पेड़, पर्वत, पर्यावरण, जल, धरती, बादल और हवा के प्रति इनके समर्पण के चलते ही लद्दाक स्वच्छ एवं प्रदूषणमुक्त है पर सवाल यह है कि जिस विराटता, बुद्धत्व, आत्मिक उन्नयन, स्व की खोज और बड़ी रोशनी के लिए ये लामा बने क्या वहां तक पहुंच पाये ये? क्या वहां तक पहुंच भी सकते हैं ये? अधिसंख्य लामा बचपन में ही संन्यास का वरण कर लेते हैं। युवा होने पर जब तक वे जीवन सत्यों से अवगत होते हैं जिन्दगी उनके हाथों से निकल चुकी होती हैं। न शिक्षा, न पूंजी, न नौकरी और न आर्थिक आधार। असुरक्षा की भावना बचेखुचे सत्य के जोर को भी लील जाती है। और वे सोच तक नहीं पाते कि जीवन बुद्ध हुआ कि व्यर्थ हुआ।

बिडम्बना है कि जिस धर्म की बुनियाद ही तर्क, बुद्धि और विज्ञान की कसौटी पर रखी गयी थी, उसी के धर्मगुरु कहते है कि 'यदि अगले दलाईलामा की जरूरत पड़ी तो मैं चीन या तिब्बत में नहीं वरन ऐसी जगह जन्म लूंगा जहां से काम करना बहुत आसान होगा। उनको अभी भी यह भोला विश्वास है कि चीन के हृदय में करुणा का अंकुर फूटेगा और एक दिन वह उन्हें उनका तिब्बत वापस लौटा कर विश्व में अपना नाम करेगा। बहरहाल दलाईलामा का लद्दाक में बहुत सम्मान है और उनका इतना योगदान अवश्य है कि जो लद्दाकी अब तक अपने को जम्मू कश्मीर से अलग कर अपने लिए

केन्द्रीय शासित राज्य का दर्जा मांग रहे थे वे आज उनके नेतृत्व में एक हैं। आज लद्दाक में भारतविरोधी लहर नहीं के बराबर हैं।

विचारों की थपकियां फिर शुरू हो गयी बुद्ध ने अंधकार से लड़ा, पर आज बुद्ध के नाम पर जो अंधेरा पसरा पड़ा है उससे लड़ने कौन बुद्ध आयेगा?

किसी भी शहर की आत्मा पर्यटन स्थल पर नहीं बसती और न ही शहर का असली चेहरा उतना सार्वजनिक ही होता है। दुल्हन के मुखड़े की तरह इसके दीदार तो बहुत बाद में ही होते हैं। हमने भी लामाओं, सैनिकों, विदेशियों, और सैलानियों के मगरूर चेहरे के भीतर लद्दाक का एक चेहरा ऐसा भी देखा जो जितनी कम जगह लद्दाक में घेरता था उतना ही कम था उसका बाजारभाव। लामा युरो के रास्ते खलसी गांव में तेज हवा और कंपकंपाती ठंड में भी गाँचा के ऊपर मोटा कोट पहने ढेरों लद्दाकी औरतें सेब और कच्ची खुबानियों के पैकेट हाथों में लिए न केवल हमारे सामने थीं वरन किसी भी कीमत पर हम पर चेपने को अमादा थीं। लेह के बाजारों में हर कहीं औरतें थीं। अपनी धूप और अपनी आभा से चमकती पहाड़ी औरतें। पर मेहनत की इन महारानियों का असली चेहरा देखा मून लैण्ड से थोड़ा आगे। कई अपने सर पर भारी भरकम घास के गट्ठर ढो रही थीं। कई इन दुर्गम पर्वतों पर नहरें खोद रही थीं खेतों के पानी के लिए तो कोई रास्तों को चौड़ा बनाने के लिए तसले में ईंट, गारा, पत्थर और चूना ढो रही थीं। पहाड़ों को काट काट कर यहां रास्तों को चौड़ा बनाया जा रहा था। कुछ वहीं एक पहाड़ की ओट में लकड़ी जला कर चाय बना रही थीं, खामोश! बिना लपज की खूबसूरत खामोशी! कुछ पत्तों पर ऊंघती शबनम की बूंदों सी ऊंघ रही थीं, कुछ चाय के घूंट ले रही थीं। कुछ हंस हंस कर जिन्दगी के सारे अभावों और दुःख दैन्य को नीचा दिखा रही थीं। थोड़ा आगे बढ़े तो बिहार, झारखंड और नेपाल भी वहां मौजूद था। धूल और गर्द में आपादमस्तक लिथड़े झारखंड के मनसा, राम प्रसाद, राजा, सुरजा देहरी और शिव प्रसाद मिश्रा समेत बिहार और नेपाल के भी ढेर सारे मजदूर थे वहां, जिन्हें देख लगता था जैसे वे सिर्फ हाथ थे, मरे स्वप्न और मरे मन वाले हाथ जो यहां अपने घर की माटी से दूर, जीवन से हार नहीं मानने की जिद में हिमालय की छाती चीर कर रास्तों को चौड़ा करने में अपना जीवन दांव पर लगा रहे थे।

इन संकरे रास्तों को चौड़ा करना खतरे से खाली नहीं था। डायनामाइट से पहाड़ों को उड़ाते समय या अकस्मात आये पत्थरों की बारिश में (लैण्डस्लाइड) जरा सी चूक और जीवन सीधा नीचे घाटियों में या पत्थरों के नीचे। कुदरती करिश्मे से इन सब से बच भी गये तो लगातार धूल धक्कड़ में बारह घंटे काम करते करते चालीस तक आते आते फेफड़े यूं भी जवाब दे ही देते हैं। लद्दाक में जिस आक्सीजन की कमी की बात कही जाती है वह यहां थी। याद आया, सिक्किम में ऐसे ही बनते रास्तों के बीच कहीं पढ़ा था मैंने 'आप को ताज्जुब होगा कि इन रास्तों को बनाते हुए लोगों ने मौत को झुठलाया है।' इतने स्वर्गीय सौन्दर्य, हिमशिखरों, मनमोहिनी घाटियों और वादियों के बीच जीवन की यह मारक जंग! मैं संगत बिठा नहीं पा रही थी। पर यथार्थ यही था। सारी मलाई, सारा वैभव, सारा सुख, सारी हरियाली, सारा आक्सीजन एक तरफ और सारे दुःख, दैन्य, अभाव और वंचना एक तरफ थी!

बालू और मकई के रंगों के पहाड़ों के सुहाने मंजर को पार करते हुए हम पहुंचे कारगिल से लेह के रास्ते पर बनी सबसे रहस्यमयी और सबसे पुरानी लामायुरु मोनेस्ट्री। दुर्गम पहाड़ों को काट काट कर एक चट्टान पर बनी हुई यह मोनेस्ट्री दूर से ताश के घर जैसी दिखती थी। किंवदंति है कि पहले

यहां एक बड़ी सी झील थी पर एक लामा के आशीर्वाद से झील का पानी सूख गया और मोनेस्ट्री के लिए जगह निकल गयी। भीतर वही धुंआ धर्म का, कर्मकांड में तब्दील होते बुद्ध और सदियों का परम्परागत ज्ञान। लेकिन बुद्धत्व प्राप्त स्त्री प्रज्ञा तारा की मूर्ति देख सुखद आश्चर्य भी हुआ। उसको लेकर बौद्ध परम्परा मौन है क्योंकि मान्यता है कि स्त्री बुद्धत्व नहीं प्राप्त कर सकती। बौद्धों ने भी प्रज्ञा तारा को इतिहास की कब्र में ही दफन कर दिया होता पर लोगों की गुप्त स्मृतियों ने न्याय किया जिसके चलते यहां प्रज्ञा तारा की भी मूर्ति विराजमान थी।

लामायुरु के बाद हमारा अगला पड़ाव था नुम्त्रा वैली जिसके लिए हमें खर्दुंगला टॉप से होकर जाना था। खर्दुंगला टॉप दुनिया का सबसे ऊंचा मोटर से जाने का रास्ता है। इतने ऊंचे और दुर्गम पहाड़ों पर श्रम, स्वप्न और जीवन झोंक कर इतने खर्चीले रास्ते बनाना हमारी असफल विदेश नीति का परिणाम है। चीन और पाकिस्तान से बिगड़ते रिश्तों के मद्देनजर यहां अधिकांश लद्दाक ही सैनिक छावनी में बदल गया है। सैनिकों को जरूरी सामान पहुंचाने के लिए रास्तों का बनाना जरूरी था। बहरहाल अब हम 18380 फीट की ऊंचाई पर थे जहां से कई पर्वत श्रृंखलाएं चांदी से मढ़ी हुई सी लगती थीं। यह पूरा इलाका ही सेना के नियंत्रण में था, यहां तक बिना आर्मी की इजाजत के आप नहीं आ सकते। यहां पाकिस्तान सहित कई युद्धों के नायक कर्नल सेवांग रिगें की पूरी जीवन यात्रा अंकित थी।

ऊंट सफारी के लिए मशहूर नुम्ब्रो घाटी में देखे सफेद बालू के टीले। पृष्ठभूमि में कहीं अनार के रंग के पहाड़ तो कहीं एकदम काले और छाई रंग के पहाड़। थोड़ा आगे चम्बा की आदमकद मूर्ति, गहनों से लदे, बनेठने चम्बा। मान्यता है कि ये चम्बा सारे पहाड़ों की रखवाली करते हैं इसी कारण इतनी ऊंचाई पर स्थापित है इनकी मूर्ति। लद्दाकी चम्बा को भगवान की तरह मानते हैं। यहां से 80 किलोमिटर आगे पाकिस्तान है।

अंतिम दिन! नाटक के अंतिम दृश्य की तरह देखा शांति स्तूप और स्टॉक पैलेस। श्वेत, भव्य, गोलाकार शांति स्तूप। बुद्ध के संदेशों को विश्वव्यापी करने और विश्वशांति की स्थापना के लिए जापानियों द्वारा बनाया गया था यह। लद्दाक के वर्तमान राजा जिम्मेत वांचुक नामगेल स्टॉक पैलेस के पीछे के हिस्से में रहते हैं, आगे का हिस्सा म्यूजियम बना दिया गया है जहां पांच सौ वर्ष पूर्व के राजाओं और रानियों की विलास सामग्री, जेवर, शास्त्र, पुराने बर्तन, मुकुट और हथियार आदि चीजें संभाल कर रखी गयी हैं। नेपाल के राजा की तुलना में यहां के राजा का महल एकदम सामान्य सा लगा।

बीच रास्ते में देखा 'तिब्बेतियन रिफ्यूजी मार्केट'। लद्दाक में तिब्बत से आये ढेरों शरणार्थी हैं जिन्हें देख कर लगता है कि लगभग समान संस्कृति होने के कारण वे यहां की माटी और संस्कृति में रचबस गये हैं। लेकिन सचार्ई यह है कि आज भी आजाद तिब्बत का स्वप्न उनकी आंखों के झरोखों में हर पल झिलमिलाता रहता है। उनकी सांसों में हर क्षण धड़कता रहता है तिब्बत। डबडबायी आंखों और रुंधे गले से कहता है सुलत्रिम ग्यसतो जिस दिन 28 वर्षीय लामा कुंचोक टेन्जीन के आत्मदाह के बारे में सुना, सारे दिन लगता रहा जैसे मैं खुद चिता पर चढ़ गया हूं। आधी रात को उसे दफनाया गया छिपा कर कि कहीं हरामी चीन उसकी बाँडी देने से ही इनकार न कर दे। अरे हम अपने किसी भी साथी के इस प्रकार शहीद होने पर उसे दफनाते नहीं बल्कि एक साथ मिल कर रोते हैं अपने देश को। तिब्बत को। हरामी यह रोने का अधिकार भी तुम हमसे छीन लेना चाहते हो। उस रात मैं सो नहीं पाया, फिर अगली रात फिर अगली। पता नहीं कब सो पाऊंगा। और यदि सो भी गया तो

स्वप्न में भी अपना घर और घर के सामने लगा खुबानी का पेड़ ही देखूंगा। बोलते बोलते वह फिर सुबकने लगा। उसके चेहरे की खाल कांपने लगी। आंसू की बूंदों से उसके चेहरे पर लकीरें बन गयी थीं जिसे अपने मटमैले मफलर से पोंछते हुए वह फिर चालू हो गया था। हर मौसम में सोचता हूँ कि मेरा वो खूबसूरत देश अभी कैसा लग रहा होगा? क्या ढंका होगा अब भी बर्फ से? अब भी उसकी सुबह और उसकी रात उतनी ही शांत और सूकून देने वाली होगी? काश तिब्बत से आने वाला कोई मुझे मिल जाय तो पूछूँ उससे कि क्या अब भी वहां की अल्ट्रेड लड़कियां वैसे ही खुल कर हंसती हैं या शैतान चीनियों ने उनकी हंसी भी मैली कर दी, जैसे हरामियों ने तिब्बतीय माओं का बंध्याकरण कर उनकी हंसी छीन ली। (सार्वजनिक रूप से चीन सरकार ने कहा है कि उनकी एक संतान वाला नियम तिब्बत की महिलाओं पर लागू नहीं है पर वास्तविकता में तिब्बती महिलाओं का जोर जबरदस्ती से बंध्याकरण किया जा रहा है)! हर सुबह आज भी एक उम्मीद इन बूढ़ी आंख में झिलमिलती है कि शायद मरने से पहले अपनी धरती और अपने लोगों के बीच बैठ कर छांग (तिब्बतियन पेय) पी पाऊं। बात करते करते ही उसने फिर अपनी डबडब आंखें मूंद लीं। स्मृतियों के असह्य बोझ से लदे अपने चेहरे को उसने घुटने में छुपा लिया। वह बुदबुदा रहा था। उसका रोम रोम 'तिब्बत तिब्बत' बुदबुदा रहा था। उसका पूरा जिस्म हल्के से कांप रहा था। वह निःशब्द रो रहा था।

बस यही प्राप्य रहा नौ दिनों की इस यात्रा का!

नहीं जानती कि समय के इन पहाड़ों पर कितना चढ़ पायी। कितना कुछ आंखों से गुजरा दृश्य, लोग, हलचल, ख्याल, ख्याब। नहीं जानती कितना पकड़ पायी। नैया ने कितना किनारा ढूंढ़ा। कितना छूटा, कितना जुड़ा। जानती हूँ बस इतना कि चलाचली की इस बेला में जाने कितने ग्लेशियर पिघल रहे हैं। कतरा कतरा भाप की शक्त में उठ रही है धुंधली धुंधली सी एक प्रार्थना।

यंग जालिन धाबा! (फिर मिलते हैं, धाबा!)। नहीं जानती कि तुम्हारे दर्द को कितना समझ पायी मैं? फिर भी उम्मीद करती हूँ कि अब जब कभी हम मिलेंगे, जिन्दगी तुम्हें मिल चुकी होगी। तिब्बत आजाद हो चुका होगा और पहाड़ों के प्रति तुम्हारी वितृष्णा जा चुकी होगी।

हे दम तोड़ते बुद्धत्व! उम्मीद है कि अब जब मिलेंगे दुरुस्त मिलेंगे!

बहती रहो सिन्धु! पीड़ित मानवता के स्वरो को जन जन तक पहुंचाती रहो! कौन जाने इन स्वरो को सुन कर ही उत्ताल हिंसा, नफरत और खूनखराबे की लहरें थम जायें। तिब्बत के विस्थापितों को उनका तिब्बत वापस मिल जाये। और लद्दाक की यह धरती एक बार फिर हंस कर करवट बदलने लगे।

छबीला रंगबाज का शहर

प्रवीण कुमार

इस शहर में दर्शन फर्सन

बतकूच्चि : ईश्वर की अवधारणा के बिना इस ब्रह्मांड के रहस्य को सुलझाना और पूर्णतः प्राप्त कर लेना सम्भव है। साथ ही किसी भी मनुष्य के लिए सम्भव है कि वह परमज्ञान को प्राप्त कर ले।

तो शहर जग चुका था। इसका मतलब था कि रोज की तरह वह सूर्योदय से एक घंटा आगे था। सुबह उठने के बाद जैसे प्रत्येक मनुष्य के 'फ्रेश' होने को हम नैसर्गिक क्रिया के नाम से जानते हैं, ठीक उसी प्रक्रिया से शहर भी गुजर रहा था, शांत और मंथर गति से। कूड़े हटाये जा रहे थे, सड़कों, फुटपाथों की सफाई हो रही थी, दातौन बेचने वाले और मोची लोग अपनी बोरी बिछा कर दुकान फैलाने से पहले फुटपाथ पर हो रही सफाई को उसी उम्मीद से देख रहे थे जैसे कि आजकल 'सिविल सोसाइटी' संसद को देखना चाहती है।

बिजइया... माफ करें... विजय प्रसाद चायवाला दूध और चाय को सड़क से उठती धूल से बचाने की भरसक कोशिश कर रहा था। कल विजय ने मोछुआ को फ्री में चाय नहीं दी थी। प्रतिक्रिया में मोछुआ आज चाय की दुकान पर कुछ ज्यादा ही धूल उड़ा रहा था। एकदम लापरवाह। यहां एक गुप्त संघर्ष चल रहा था। न्यूटन के तीसरे नियम के अनुरूप ही दोनों की आंखें चार हो चुकी थीं, दोनाली दोनों ओर से तन चुकी थी, विस्फोट कभी भी हो सकता था। मतलब शहर अपनी 'इयूटी' के लिए सचमुच में जग चुका था।

तो स्टेशन के पास यह सब हो रहा था और उधर पूरब का आकाश सूरज से गुथमगुथी करके लाल होता जा रहा था। विजय, मोछुआ, सूरज और आकाश मिल कर आज का कुछ 'क्लाईमेक्स' बनाते इससे पहले ही स्टेशन पर ट्रेन आकर खड़ी हो गयी। जब से कोयला इंजन खत्म हुआ है तब से स्टेशन पर और दूर पटरियों पर मरने कटने वालों की संख्या बढ़ गयी है। साला पता ही नहीं चलता कि ट्रेन कब आयी, गयी? बशर्ते वह हॉर्न न बजाये। हालांकि हॉर्न कभी कभी बज भी जाता है तो कभी कभी लोगों की जान भी बच जाती है। तो स्टेशन पर ट्रेन आकर शांत हाथी की तरह खड़ी हो गयी।

प्लेटफार्म नम्बर दो रतजगा करके अभी अभी ऊंच रहा था। ट्रेन कब आयी इसका भान नहीं हुआ। चाय लेकर दौड़ने वाले छोकरीं में उत्साह नहीं था, वे भी ऊंच रहे थे। इसका मतलब था कि यह एक्सप्रेस गाड़ी है जो बेमेल समय में आयी है, इस हाथी का कोई स्वागतकार नहीं। सोलह डब्बों वाली इस ट्रेन ने अपने अनुपात से बहुत ही कम केवल एक यात्री को बाहर उगला।

स्टेशन पर सोये हुए लोगों की फौज उस यात्री को किसी मुर्दाघर का आभास करा रही थी। ट्रेन से उतरने वाला यह यात्री असमंजस में था थोड़ी देर तक। फिर सकुचाते हुए वह सोये मुर्दों को एक एक कर लांघता गया। एक दो दस बीस पच्चीस, हर देह को लांघते हुए झिझक या शर्म जैसी कोई चीज उसे लगातार परेशान कर रही थी। पूरा वातावरण शांत और निर्लिप्त था पर यात्री के पैर कांप रहे थे। प्लेटफार्म पर उस भद्र व्यक्ति के सिवाय कोई भी चीज हरकत में न थी। स्टेशन मास्टर के केबिन के सामने सोयी हुई अपेक्षाकृत लम्बी लाश को लांघने के लिए जैसे ही यात्री ने अपने पैर बढ़ाये तभी अचानक जाती हुई ट्रेन ने भयानक आवाज मार दी 'बोंओंओंऽऽऽह'। आवाज सन्न करके राहगीर के कलेजे में घुस गयी, खोहों में छुपे हुए सैकड़ों परिन्दे अचानक फड़फड़ा कर उड़ पड़े और वह लम्बी लाश झटका खाकर उठ बैठी 'भाऽऽऽआग स्साला'। एक के बाद यह दूसरी चीख भी इतनी दर्दनाक थी कि राहगीर की छाती में वह घुसती चली गयी और आतंक के मारे उसकी धमनियां रुक गयीं, वह लड़खड़ा गया। उसने देखा एक काली चट्टान, जिसकी काली जटाएं खुल कर जमीन तक पसरी थीं, और तारकोल से सने हुए उसके चेहरे पर केवल दो बड़ी आंखें थीं जिसने मानो खून पी रखी हों। उसके माथे पर त्रिपुंड की धारियां थीं। त्रिपुंड और आंखें दोनों का रंग लाल था बेहद लाल। लम्बी दाढ़ी चट्टान की चौड़ी छाती को ढके हुए थी। भुजाओं की जगह हाथी के दो सूंड थे महाकाल! भय के मारे वह भद्र पुरुष चट्टान के चेहरे पर धंसता चला गया। वह इतना पास झुक चुका था कि उस जोगी के चेहरे पर फैली जटाओं को गिन सकता था। सुन्न देह, लड़खड़ाहट और चीख तीनों ने उसे क्षण भर के लिए आधा झुका दिया।

फिर जोगी पद्मासन मुद्रा में बैठा और यात्री की ओर देखते हुए अपने बायें हाथ से ट्रेन की ओर इशारा कर दिया। उसके हाथ पर बड़े बड़े घुंघरू बंधे थे, जो इशारे कर रहे थे कि यह कर्कश आशीर्वचन ट्रेन के ड्राइवर के लिए थे, यात्री के लिए नहीं। यात्री का भय से खींचा हुआ चेहरा ढीला पड़ने लगा, आतंक से फैली हुई पुतलियां फिर छोटी हो गयीं। अब यात्री ने अपने भय को मुस्कान में रूपांतरित करना चाहा पर वह संकोच और शर्म में तब्दील हो गया।

लड़खड़ाते हुए उसने अपना चेहरा दूसरी तरफ फेर लिया और कुछ और सोये यात्रियों को मजबूती से लांघते हुए तीर की तरह प्लेटफार्म से बाहर निकल गया। ऐसा करते वक्त उसकी आंखों में पानी उतर आया था। वह सचमुच डर गया था। जाती हुई ट्रेन ने एक बार फिर 'बोंऽऽऽओंओंऽऽऽह' कर दिया, प्रतिक्रिया में फिर वही चट्टानी स्वर गूंजा 'भाऽऽऽआग स्साला'। इस शहर को खलल पसंद नहीं। यह लग गया।

इस शहर के जीव टीव

बतफरोशी : जीव और अजीव दोनों ही शाश्वत हैं तथा इनका स्वतंत्र अस्तित्व है। फिर भी ये परस्पर सम्बद्ध हैं। जीव आनंद लेने वाला है और अजीव आनंद देने वाली वस्तु है। जीव सदेह होते हैं अथवा विदेह।

जैसे पुरानी घटना को भूलने की जिद करते हुए उसने बहुत जोर की उबासियां लीं और सामने से गुजरते हुए एक मरियल काया से पूछा “भाई साहब! टाइम क्या हो रहा है?” पता नहीं कैसे उस काया को गुस्सा आ गया, उसने अपने होठों के कोर में फंसी पान की पीक को अपनी कानी उंगली से पोछा और अजीब ढंग से आंखें तरेर दीं; फिर पूछने वाले की ओर घूरते हुए उसने आसमान की ओर अपना मुंह उठा दिया और बोला “घड़िया खरीदने में... चंदा दिये ठे का?”

“? ऐं।”

पूछने वाले के होंठ खिंच गये। ‘हंह...’ कह कर युवा घड़ीबाज चल पड़ा। चलते चलते पान की पीक टाइम पूछने वाले के जूते के पास की सूखी धरती को समर्पित करता गया ‘पिच्च्...’। पूछने वाला जो अभी अभी झंपने की मुद्रा अपना जा रहा था क्रोध की मुद्रा में रूपांतरित हो गया। नयी धरती और आकाश के बीच पहली बार इस अजनबी यात्री के कंठ फूटे “शहर है ये शहर?” प्रश्न में तल्लखी घुस गयी थी।

“देखने में इ शहर है। महसूस करने में सामंत।” एक रूखी सी आवाज हवा में तैर गयी, सवाल का झटपट जवाब था यह।

“मतलब?”

“मतलब कि वह जो चला गया, बेफालतू में तीन रुपया का खर्चा करा दिया आपने उसका।”

“मैंने? कैसे?”

“टाइम पूछ कर।”

“?”

“अभी अभी तीन रुपया का पान खाकर उसने मुंह में गलाया ही था, जस्ट मूड बना ही था उसका कि आपने टाइम पूछ दिया।”

“...”

“और क्या? जिस पान की पीक को एक घंटा बाद निकलना था आपकी वजह से उसका एवॉर्शन हो गया।”

टाइम पूछने वाले का गुस्सा उस जा चुके घड़ीबाज से उतर कर इस अखबारबाज पर आ रहा था। अखबारबाज चाय की दुकान में बैठा चुस्कियों के साथ साथ इस तमाशे का भी जायका ले रहा था। उस चुस्कीबाज अजनबी के हाथ में अखबार था। अजीब है ये शहर? जिससे बात करना चाहो वह बात करने को राजी नहीं और जिससे बात ही नहीं करनी वह बेवजह गले पड़ रहा है? हद है! छोटे शहरों के साथ यही दिक्कत है।

तभी अखबारबाज “आप कवि हैं?”

अजनबी झल्ला गया “नहीं तो! क्यों?”

“आपने अभी अभी कविता पढ़ी शहर है ये शहर, अच्छी लाइन है।”

“...”

अखबारबाज “इतना झल्लाए मत। साफ लग रहा है कि आप इस शहर में नये नये हैं,

बल्कि अभी अभी तिनसुकिया ट्रेन से उतरे हैं... यहां जो जितना चिढ़ता है न उसे उतना ही चिढ़ाता है यह शहर।” अजनबी सचमुच भन्ना उठा। ट्रेन की दर्दनाक आवाज, काली चट्टान, घड़ीबाज और अब यह अखबारबाज? कितना झेले वह, फट पड़ा “देखिये! मैं आपके मुंह नहीं लगना चाहता, प्लीज!”

सुनते ही अखबारबाज ने अखबार को तेजी से टेबल पर पटक दिया और तमतमाते हुए, शहर में इस ताजा टपके नागरिक के चेहरे से खुद को टिका दिया। इससे पहले कि बात बढ़ती विजय प्रसाद चायवाले ने बात संभाली “हां... ये सब नहीं।”

अखबारबाज लौट कर फिर उसी जगह जाकर बैठ गया, बात संभल गयी। भद्र पुरुष को थोड़ा सुकून मिला पर वह इस बार डरा बिल्कुल भी नहीं। फिर वह रुमाल निकाल कर अपना चेहरा पोंछने लगा और उस अखबारबाज को नोटिस करता गया जो देखने में भले ही युवा न लगे पर था युवा ही। दाढ़ी, मूँछ, सिर के बाल और कपड़े सब बेतरतीब से हैं, सलीके जैसी कोई चीज नहीं है उसके पास। शरीर ऐसा है जैसे कालाहांडी की उपज हो। मन में “हंह” कह कर अजनबी ने सूटकेस को चाय की टेबल पर रख दिया और सबसे पहले उसमें से हाथ की घड़ी निकाली यह अगर हाथ में होती तो यह बखेड़ा ही खड़ा नहीं होता उफफ ये हियायतें! घड़ी छः बज कर चालीस मिनट का वक्त बता रही थी। फिर उसने मोबाइल का चार्जर निकाला और सूटकेस बंद करके बगल में रख दिया। दुकान छोटी और खस्ताहाल थी, चार्जर के लिए स्विच बोर्ड कहीं नहीं दिखा। यहां एक ही टेबल और बैठने के लिए दो ही स्टूल थे। एक पर वह अखबारबाज बैठा ही था। दूसरे पर अजनबी जम गया। दोनों युवा चेहरे आमने सामने हो गये। उन्होंने अभी एक दूसरे को निहारना शुरू ही किया था कि चाय वाला हाजिर हुआ “चाय लिया जाय सर।”

अजनबी के मुंह से एक बारीक शब्द निकला “धन्यवाद।”

तभी अखबारबाज ‘फुक्क’ करके हंसने लगा। अजनबी का चेहरा फिर से लाल हो गया। अजनबी की माथे की नसें जैसे जैसे तनती गयीं अखबारबाज की हंसी बढ़ती गयी और वह अपनी हंसी रोकने के लिए लड़खड़ाते हुए खड़ा हो गया “ए भाई अब हमको बर्दाश्त नहीं हो रहा है... इ भाई साहेब धन्यवाद कहते हैं... आहाहाहा...।” अजनबी आपा खो बैठा। पुरानी सारी बेइज्जतियां और अब के हालात सब मिल कर एक हो गये, और कहते भी हैं कि एकता में बल है, सो अजनबी को बल मिला, वह चीख पड़ा “आखिर मुझसे आपको क्या परेशानी है?” टीन की छत वाली छोटी दुकान में आवाज गूँज गयी। और फिर सन्नाटा पसर गया। चायवाला कप मांज रहा था। छोड़छाड़ कर दौड़ पड़ा “हां... हां... यह सब नहीं...।” फिर वह अखबारबाज की ओर मुड़ा “का अरूपबाबू? एकदम कोहराम मचा कर रहेंगे क्या? पत्रकार भला ऐसा होता है? बे महाराज?”

अजनबी “?”

फिर चायवाला अजनबी की ओर मुड़ा “बैठा जाये सर, बैठ जाइए। नाराज मत होइए। इ यहां के लोकल पत्रकार हैं, गलत आदमी नहीं हैं। हंसी टट्टा करते रहते हैं... बैठ जाइए, जाने दीजिए।”

अजनबी बैठ गया, पर इस अफसोस के साथ बैठा कि उसके चीखने की प्रक्रिया में उसकी आवाज थोड़ी भर्रा गयी थी। इस अफसोस ने गुस्से को थोड़ी हवा दी और उसने बैठते ही तथाकथित पत्रकार पर फिकरा कस दिया “यह पत्रकार तो कहीं से नहीं लगता!”

अखबारबाज गम्भीर हो गया, अजनबी को उसने गहरी आंखों से देखा, फिर, भारी आवाज में बोला “महोदय, यही तो मैं आपको समझाना चाह रहा था। यहां लगने पर मत जाइए। यहां जो जैसा लगता है वैसा होता नहीं। आप यहां जिस भाषा और मानसिकता के साथ उतरे हैं वह आपके

लिए आफत बन सकती है। समझे? इस शहर का व्याकरण अलग है... बाकी आपकी मर्जी?” अरूप जो अब तक अखबार पढ़ने वाला छिछोरा अखबारबाज लग रहा था उसने अपने सजीदा होने का परिचय दे दिया। ‘बाकी आपकी मर्जी’ कहते वक्त उसने आज के पत्रकारों की तरह कंधे उचकाये, आंखें मटकार्यीं और सभ्यता से मुस्कुराया भी। उसकी भाषा का असर था शायद कि अजनबी भी थोड़ा संयत हो गया। उसे अपने चीखने पर संकोच होने लगा। पर सामने वाला कोई राष्ट्रीय अखबार का पत्रकार नहीं था, इसलिए संकोच की मात्रा थोड़ी कम थी। अजनबी एक बार फिर स्विच बोर्ड ढूँढ़ने लगा ताकि डिस्वार्ज पड़ी हुई मोबाइल की बैट्री चार्ज हो सके। चायवाला अजनबी के हावभाव को समझ गया, बोला “यहां स्विच बोर्ड नहीं है, होता तो भी चार्ज नहीं हो पाता, लाइट (बिजली) नहीं है।” अरूप बैठा बैठा ताड़ रहा था सब कुछ, आदतन बीच में टपका और थोड़ी गम्भीरता से बोला “अगर भरोसा हो... और आप आत्मग्लानि में न आयें तो मेरे मोबाइल से जरूरी फोन कर सकते हैं।” अजनबी को सुकून मिला और थोड़ा मुस्कराते हुए बोला “नम्बर तो मोबाइल में ही फीड है... वैसे फोन करना बहुत जरूरी भी नहीं, शहर बहुत बड़ा नहीं है, पूछते हुए चला जाऊंगा।”

अरूप “कहां जाना है आपको?”

अजनबी “जैन इंटरमिडिएट स्कूल।”

अरूप “मतलब आप कवि नहीं हैं।”

“नहीं, मैं अध्यापक हूँ।”

“हिन्दी के न?”

“आपको कैसे मालूम?”

“अध्यापक शब्द से... यहां ऐसे कोई नहीं बोलता... मास्टर बोलते हैं सब या फिर मास्टर जी, मास्टर साहेब। माट साहब भी बोलते हैं।” फिर थोड़ा रुक कर “आप ट्रांसफर होकर आये हैं... न? कहां से? अच्छा जाने दीजिए ‘नो इंकवाइरी’, पर आपके स्कूल के प्रिंसिपल का तो नम्बर है मेरे पास। महावीर जैन ही नाम है न उनका?” अरूप ने आंखें बड़ी करके सवाल किया। अजनबी ने हामी भरी। दोनों मुस्करा पड़े। चायवाला इस भरतमिलाप पर खुश हुआ और तुरंत बिना पूछे दो कप चाय का मुनाफा करते हुए उन लोगों के सामने कप रख दिया। अरूप ने अजनबी की ओर अपना बायां हाथ बढ़ाया और परिचय दिया “मैं अरूप, धरतीपुत्र से।” ...वातर्ज ‘मैं दीपक चौरसिया आजतक से’, और मुस्कुराया। युवा अजनबी ने भी हाथ बढ़ाया “मैं ऋषभ।” दोनों के हाथों ने एक दूसरे की गर्मजोशी को महसूस किया।

“बताइए भला... आप इस शहर को शहर मानने के लिए तैयार नहीं... जबकि दो दो बड़े जैन तीर्थंकर इस शहर में उपस्थित हैं।” अरूप ने मसखरी की जिससे ऋषभ के मन में उत्सुकता पैदा हो गयी। उसकी आंखें विस्मय और प्रश्न दोनों के साथ उठीं तो पत्रकार ने रोशनी डाली “अरे भई, आपके प्रिंसिपल साहब का नाम महावीर मतलब वर्द्धमान महावीर और आप खुद ऋषभ। बल्कि आप तो अपने प्रिंसिपल से भी श्रेष्ठ हैं, ऋषभ तो जैन धर्म के प्रवर्तक थे।” दोनों हंस पड़े। पत्रकार के इतिहासबोध पर ऋषभ थोड़ा चौंका भी। अरूप अपनी धुन में बोलता गया “खैर आप इसे मजाक मानें... पर यह सच है कि पहलेपहल इस शहर को जैन मुनियों ने ही बसाया था। आज भी यहां जितने जैन शिक्षा संस्थान, जैन मंदिर और जैन पुस्तकालय हैं शायद ही किसी शहर में होंगे। यहां के जितने भी बड़े स्कूल और कॉलेज हैं सब जैनियों के दान की बढौलत हैं। जैनियों के बाद इस शहर को मुगलों ने सजाया शाहाबाद नाम देकर, फिर बाबू कुंअर सिंह ने, फिर अंग्रेजों ने। और अब इस शहर का भूमंडलन हो रहा है, क्या कहते हैं उसे ‘ग्लोबलाइजिंग’? और आप हैं कि इसे शहर नहीं मानते हैं?”

बात खत्म करते करते अरूप आज का पत्रकार बन गया यानि सूचना की जगह मनोरंजन पर आ गया। उसने इससे साबित कर दिया कि वह इक्कीसवीं सदी का पत्रकार है। ऋषभ पर अरूप की धाक जम गयी। यह तो पढ़े लिखे लोगों जैसा है हंसोड़ भी, बातूनी भी। ऋषभ ने भाववश उसके दोनों हाथ पकड़ लिए “अरे अरूप जी... आप भी !”

“अब भावुक मत होइए... इस शहर में जैन स्थापत्य हैं, जमीनें हैं पर शहर के जीवन में जैन दर्शन का सम्यक् जीवन नहीं है... इसीलिए कह रहा हूं खुद को जल्दी बदल लीजिए !” अरूप ने जोड़ा।

चायवाले ने इसे सभा समाप्ति की घोषणा समझी और फुर्ती से आकर ऋषभ से बोला “सोल्लह रुपया सर... चार चाय का !” इसमें पत्रकार अरूप के दो कप चाय के पैसे भी शामिल थे। अरूप मुस्कराने लगा। ऋषभ समझ गया। माहौल हल्का न हो इसलिए ऋषभ ने अपनी जेब में हाथ डालते हुए अरूप को सम्बोधित किया “धन्यवाद अरूप भाई। आपसे मिल कर सचमुच अच्छा लगा !” अरूप चुपचाप और बहुत गम्भीरता से ऋषभ को पैसे गिनते हुए देखता रहा, फिर ठहर कर बोला “हम यहां चाय का पैसा नहीं देते !” ऋषभ ने मुस्कराती आंखें उसकी ओर उठा दीं। अरूप जारी रहा “आप हमें पत्रकार भले ही न समझें पर यहां के विनोद दुआ हम ही हैं, जायका इंडिया का... !” दोनों ने गहरी सांस खींची और मुस्करा कर उठ गये।

अरूप दुकान से एक दो कदम बाहर निकल गया फिर कुछ सोच कर फुर्ती से लौटा और ऋषभ के दोनों कंधों पर प्यार से हाथ रख कर बोला “वैसे तुम भी कोई रामचंद्र शुक्ल नहीं लगते ऋषभ !” दोनों भावुक हो गये और भरतमिलाप हो गया। अरूप टेबल पर पड़े राष्ट्रीय अखबार को दोनों हाथों से मोड़ते हुए बाहर निकल गया। विजय प्रसाद चायवाले ने पीछे से आवाज मारी “अरूप भइया... अखबार तो छोड़ दीजिए !”

“अरे भाऽऽआग स्साला शाम को दे दूंगा !” गरजते हुए अरूप थोड़ी दूर निकल गया। ऋषभ की पुतलियों में पत्रकार की लहराती हुई कमजोर काया नाच रही थी। सड़क पार से किसी दूसरे राहगीर ने अरूप को आवाज मारी “काऽऽ रंगबाज? कहां?” अरूप बिना मुड़े हाथ लहरा कर जवाब देता है “आज कोर्ट में छबीला का तारीख पड़ा है, वहीं !” उसने जवाब राहगीर को दिया पर विजय प्रसाद चौंक पड़ा “आज ही है?” चौंकते हुए उसने ऋषभ की ओर देखा मानो ऋषभ को सब पता हो। ऋषभ ने अपने कंधे उचका दिये “कौन है ये छबीला?”

“नया नाम फटा है सर, इस शहर में, छबीला सिंह !” कह कर विजय प्रसाद गम्भीर हो गया। इस शहर की भाषा को ‘डिकोड’ करने के लिए अनुभव अपेक्षित है जो कि ऋषभ के पास नहीं था। वह इस ‘फटने’ के अर्थ से जूझ ही रहा था कि विजय बोला “मतलब कि सर, नया नाम फैला है इस गुंडे का... बड़ा कातिल है, लुटेरा साला। मोमताज मियां के मर्डर केस में अंदर है !” फिर विजय ने आसमान की ओर देख कर अपने दोनों हाथ जोड़ लिए “जय हो आयरन देवी... !”

इधर अध्यापक ऋषभ इस शहर की ‘लोकल’ भाषा श्रृंखला में ही उलझा हुआ था। उसने खुद हिसाब लगाया कि राहगीर ने अरूप को ‘रंगबाज’ कह कर पुकारा था और ‘रंगबाज’ शब्द से कुछ और नहीं ‘गुंडाइज्म’ की ही एक प्रवृत्ति ध्वनित हो रही है। चलते चलते अध्यापक ने भाषा विज्ञान सम्बंधी प्रश्न उस चायवाले से दाग ही दिया “अरूप तो पत्रकार हैं पर राहगीर ने उन्हें रंगबाज क्यों कहा?” चायवाला जवाब में ठट्ठा मार कर हंस पड़ा “बे महाराज ! ...इ तो यहां का टाइटल है, सब एक दूसरे को देते रहते हैं फ्री में !” ऋषभ को उसकी हंसी अच्छी नहीं लगी उसे यह तीसरी बेइज्जती लगी। इससे पहले कि वह और प्रश्न करके हंसी का पात्र बनता, खुद को झटका देते हुए वहां से बाहर निकल गया।

पर प्रश्नों के बिना दुनिया चलती कहाँ है? बिना प्रश्न के गुजारा नहीं। ऋषभ तीसरी कसम खाने के बावजूद भी रिक्शेवाले से पूछ बैठा “जैन विश्रामालय चलोगे?” रिक्शेवाला चैन से अपनी हथेलियों पर खैनी मल रहा था। उसने मनाही की और बायीं हथेली पर दाहिने हाथ से ताल देने लगा। ऋषभ को कोपत होने लगी। सही में यह शहर नहीं है। कैसे जियेगा यहाँ वह? तभी पीछे से चायवाला उस रिक्शेवाले पर गरजा “अरे स्साला, जाता काहे नहीं है... अरूप भइया के आदमी हैं।”

“ऐं?” ऋषभ खड़े खड़े किसी का हो गया और उसे पता भी नहीं चला? इससे पहले कि वह कुछ और सोचता, चायवाला पास आकर बोला “इसे पंद्रह ठो रुपया दे दीजिएगा, चलिए बैठिए।” रिक्शेवाला इतमीनान से खैनी अपने निचले होंठ के भीतर उड़ेल कर चालक सीट पर बैठ गया और पैंडिल मार दी। चलते चलते विजय प्रसाद ने ऋषभ को सलाह भी दी “यहाँ का रूल है सर, कि पहले रिक्शे पर बैठ जाइए, फिर चलने का आर्डर दीजिए, पूछिये बिल्कुल नहीं।” कुछ दूर चल कर रिक्शा जिस सड़क की ओर मुड़ा वहाँ बड़ा सा प्रवेशद्वार था, जिसके ऊपर पट्टियों पर केसरिया रंग से लिखा था ‘पुरयति गलति पुद्गलाः।’ साथ में वर्द्धमान महावीर की भग्नावशेष दिगम्बर मूर्ति स्थापित थी। लग रहा था कि उस पर कई बार पत्थरों से प्रहार किया गया हो। प्रदेशद्वार के ऊपर शायद जैन चिह्न था कोई, उसका भी ज्यादातर हिस्सा ढह गया था। नीचे दोनों खम्भों पर लिखा था ‘प्राचीन शहर में आपका स्वागत है’। ‘स्वागत’ लिखे गये शब्द पर किसी स्थानीय लीडर का पोस्टर आधा चिपका पड़ा था, शेष हवा के दबाव से फड़फड़ा रहा था बिल्कुल इस शहर की तरह।

पुद्गल सुद्गल का शहर

बकैती : पदार्थ अथवा पुद्गल शाश्वत है। उसका कोई सृष्टिकर्ता नहीं है।
उसका कोई आदि अथवा अंत नहीं है। कर्म एक प्रकार का सूक्ष्म पुद्गल है जो जीव से चिपक कर उसके बंध का कारण बनता है।

ऋषभ ने देखा कि अरूप बेतहाशा भाग रहा है। वह इतना तेज भाग रहा है कि उस तरह से तेज भागते आदमी की कल्पना नहीं की जा सकती है। शहर दर शहर वह भागा जा रहा है। वह इतनी तेजी से भाग रहा था मानो परमाणु के कण बिखर रहे हों। फिर उसकी गति इतनी तेज हो गयी कि ऋषभ यह मान बैठा कि अरूप एक ब्रह्मांड से दूसरे ब्रह्मांड में चक्कर लगा रहा है।

अरूप को ऐसा करते देखते हुए ऋषभ खुद अपने कमरे की फर्श से ऊपर उठता जा रहा था। ऋषभ उड़ने लगा और उसकी निगाहें अरूप का पीछा करने लगीं। अब अरूप एक गली से दूसरी गली हांफते हुए भाग रहा है। ऋषभ का उड़ना थोड़ा कम हुआ। फिर वह बहुत पास से अरूप को भागते हुए देखने लगा। अरूप के पीछे कुत्ते पड़े हैं अरूप एकदम नंगा है और उसके शरीर के जख्म बता रहे थे कि उन कुत्तों ने उसे जगह जगह से नोंच खाया है। भागते हुए अरूप के हाथ में कोई चमकदार चीज है। शायद सोने का कुछ है। फिर अचानक उसे ठेस लगी और मुंह के बल गिर पड़ा, सोना हाथ से छूट कर दूर जा गिरा। सारे कुत्ते अरूप पर झपट पड़े। अरूप अपनी निरीह आंखों से उसे पुकारने लगा “ऋषभ..।” पर उसके मुंह को एक कुत्ते ने अपने ताकतवर जबड़े से दबा दिया। उसकी आवाज ‘गोंगोंगों’ में बदल गयी।

ऋषभ झटका खाकर बिस्तर से उठ बैठा। उसकी आंखों से आंसू टपक रहे थे ताजा और गर्म। उसके बिस्तर की सलवटें उस भयानक सपने की गवाही दे रही थीं। उसकी आधी चादर बिस्तर

से नीचे झूल रही थी। ऋषभ लगभग हाँफ रहा था “क्या भयानक सपना था? हद है।” वह उठा और तेजी से गुसलखाने में घुस गया।

उसे गुसलखाने के झरोखे से पता चला कि सूर्योदय में अभी वक्त है पर शहर जग चुका था। पड़ोस का चार साल का स्कूली बच्चा दहाड़ मार मार कर स्कूल नहीं जाने के लिए रो रहा था। स्कूली बच्चे की मां उसे कभी पुचकारती तो कभी गालियां बकती। बीच बीच में स्कूली बच्चे का बाप बच्चे को उठा कर स्कूल कैब में पटकने की धमकी दे रहा था। जबकि उस बच्चे की दादी बच्चे को स्कूल नहीं भेजने के पक्ष में दलीलें दे रही थी “आज स्कूल ना जाई त पहाड़ न टूट जाई।” दादी की बात से स्कूली बच्चे को बल मिला, वह दुगुनी शक्ति से रोने लगा “दादी हो... बचा ल।” इधर स्कूल कैब का ड्राइवर चीखते गरजते हुए रोज लेट हो जाने की शिकायतें दर्ज कर रहा था।

यह शहर कभी भी सुकून से नहीं जगता। ऋषभ ने सोचा शहर ऐसे जगता क्यों है, झगड़ते हुए? इतने दिनों में आज तक शायद ही कोई सुबह रही हो जब इस मोहल्ले में शोर न हुआ हो। ऋषभ अपने कमोड पर बैठे बैठे शहर का चरित्रचित्रण करने लगा। मास्टर्स की यही बुरी आदत है, क्लास नोट्स की तैयारी जैसी हरकतें वे कहीं भी करने लगते हैं। उसे अरूप की बात याद आ गयी। उसने कहा था कि यह शहर ऐसे ही जगता है। यहां पर सड़क के रोड़े भी आपस में लड़ते हुए जगते हैं। यही यहां का नियम है। जब तक वे एक दूसरे को अनुकूलित नहीं कर लेते लड़ते रहते हैं, अरूप ने यह बात आंखें मार कर कही “यही यहां का द्वंद्ववाद है।”

वैसे भी यहां की जीवन स्थितियों ने ऋषभ को दार्शनिक स्तर पर एहसास करा दिया था कि सत्य सदैव सापेक्षिक होता है। प्रत्येक मत सापेक्ष रूप में ही सत्य है कोई निरपेक्ष रूप से सत्य नहीं। इस तरह कोई भी वस्तुस्थिति इंद्रिय संवेदना द्वारा ही जानी जा सकती है। परंतु वस्तु और इंद्रियों के बीच सम्पर्क हुए बिना प्रत्यक्ष असम्भव है।

सापेक्षिक सत्य के कुछ फार्मूले ऋषभ को उसके प्रिंसिपल महावीर जैन ने भी समझाया था; कि इस शहर में कोई भी झुक कर नहीं चलता, जिसका सीना बकरी की तरह उठा होता है वह भी नहीं। सब तने रहते हैं। छोटा हो या बड़ा, कमजोर हो या पहलवान, सबके पास फन है जो बिना बात के फनफनाता रहता है। उन्होंने कहा कि इसलिए शहर में जब चलो तो अपनी चाल में अकड़ रखो। यदि कोई परिचय जानना चाहे तो तुम अपने को राजपूत, भूमिहार या यादव कह देना। इससे रौब बना रहता है। ऋषभ को हैरानी हुई। वह चौंका भी। पर प्रिंसिपल साहब उसके भावों का शमन करते गये, बोले “अपनी जाति का मोह त्यागना कठिन होता है स्वजातिर्दुरतिक्रमा।” यह पंचतंत्र की कोई पंक्ति थी जो शहरतंत्र पर लागू होती है। ऋषभ ने मन ही मन सोचा कि वह पैदा हुआ था तब जैन था पर अब उसे जीना है राजपूत, भूमिहार या यादव बन कर, पता नहीं वह मरेगा क्या बन कर? पर महावीर जैन द्वारा निर्दिष्ट सम्यक् चरित्र का यह तकाजा था कि सभी बुराइयों को दूर रखने और दैनिक जीवन में कठोर आध्यात्मिक अनुशासन बनाये रखने के लिए यह सब जरूरी है और सही रास्ता वही है जैसा प्रिंसिपल साहब कह रहे हैं।

जाते जाते ऋषभ को उन्होंने यह भी नैतिक दृष्टि दी कि कोई भी समाज एकदम मूल्यहीन नहीं होता। अगर वह बिल्कुल मूल्यहीन है तब वह समाज नहीं जंगल होगा। चूंकि उनके और ऋषभ जैसे लोग यहां रह रहे हैं तो इसका मतलब है कि यहां समाज है। यह दीगर बात है कि अन्य समाजों की स्थिति यहां थोड़ी मजबूत है यहां जातियों का संगठन भी है, जातिगत सेनाएं भी हैं, फिर प्रगतिशीलों का संगठन है, नक्सलियों का भी, शराबियों, जुआरियों और गांजे के तस्करों का भी। उन्होंने यह भी जानकारी दी कि समाज में विभेद है पर भाषा के स्तर पर लगभग साम्यवाद है। ‘गोली मार

कर खोपड़ी खाली' कर देने की बात सब करते हैं प्रोफेसर और पत्रकार भी, डाक्टर भी मरीज भी, रिक्शेवाला भी बस ओनर भी, किरायेदार मकानमालिक सब। एक लम्बी सांस लेकर उन्होंने कहा कि देशी विदेशी हथियारों की यहां भरमार है और उसकी राजधनी मुंगेर है।

पचास पार के प्रिंसिपल साहब शरीर से जैसे ऊंचे लम्बे और तगड़े थे वैसा ही उनका अनुभव, दर्शन और शिक्षा भी थी। ऋषभ उस दिन कोई प्रतिवाद नहीं कर पाया। उनके केबिन से बाहर आ गया, बस। ऋषभ को अब जाकर एहसास हुआ कि उस दिन स्टेशन पर पानबाज उस पर क्यों नाराज हो गया था। सापेक्षिक सत्य का सिद्धांत ही कुछ ऐसा है।

आज ऋषभ ने छुट्टी ले रखी थी। आज का पूरा दिन उसका था। ताजा मन से वह कुर्सी पर बैठ गया। झरोखे से छन कर आती हुई सूरज की किरणें उसके माथे को नर्मी से सहला रही थीं। अपनी आरामकुर्सी से वह उठा और याद से 'राम की शक्ति पूजा' की प्रति उठा ली। कल की क्लास के लिए उसे फुटनोट्स तैयार करने थे।

उसने पढ़ना शुरू किया कि स्थिर राघवेन्द्र को संशय फिर फिर हिला रहा है। 'रावण जय भय' और 'दृढ़ जटा मुकुट हो विपर्यस्त' से बेपरवाह ऋषभ जैन की नजरें केवल आठ पंक्तियों पर अटक गयीं। वह बार बार उन्हें पढ़ रहा था।

'ऐसे क्षण अंधकार घन में जैसे विद्युत, जागी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि अच्युत' से लेकर 'कांपते हुए किसलय, झरते पराग समुदय' उसने कई बार पढ़ डाला, बल्कि जोर जोर से मन में पढ़ा।

पढ़ते वक्त वह मन ही मन मुस्कराने लगा। फिर कुछ याद करते हुए उसने अपनी डायरी उठा ली। उसके डायरी उठाते वक्त कोई भी सहज ही अंदाजा लगा सकता था कि वह मुद्रा वही थी जो शिव धनुष 'पिनाक' उठाते वक्त उस समय राम की रही होगी। डायरी के पहले पन्ने पर उसकी 'तनया कुमारिका' यानी तन्वी ने बड़े बड़े अक्षरों में लिखा था 'ऋषभ माने बैल'। ऋषभ ने उस लिखे को सहलाया, तभी एक हंसी कमरे में दौड़ गयी 'तुम बैल हो ऋषभ... हाहाहा।' पर आवाज कमरे से नहीं डायरी के पन्ने से आ रही थी। झरोखे से छनती हुई ताजा रोशनी अब ऋषभ के सीने पर गिर रही थी, सीना मखमली एहसास से भर गया। एक बार फिर उसने उन शब्दों पर हाथ फेर लिए। पर अचानक बिजली गुल हो गयी। कमरे में झरोखे से आती रोशनी जितनी बची थी अब उतना ही उजाला बच गया। शेष अंधकारमय हो गया। 'ऐसे क्षण में अंधकार घन में जैसे विद्युत' राम की तरह उद्धृत ऋषभ उठा। उसने डायरी को बंद करके एक हाथ से दबा लिया और दूसरे ही क्षण कमरे में ताला मार कर गली में खड़े खाली रिक्शे पर बैठ गया। इससे पहले रिक्शेवाला चलने के लिए ना नुकुर करता ऋषभ ने भारी आवाज में आज्ञा दे डाली "रमना मैदान, चर्च... जल्दी।" रिक्शेवाला कसमसा कर रह गया, शायद उधर जाना नहीं चाहता हो, पर ऋषभ की आवाज और बनावटी पथरीली आंखों के आगे वह झुक गया। रिक्शा चल पड़ा। ऋषभ बदल रहा था। सचमुच।

सुबह के दस बज गये थे। वह इस समय जहां बैठा था वह जगह शहर के बीचोबीच स्थित थी। पर आश्चर्यजनक रूप से वहां सन्नाटा पसरा था। सड़क के किनारे हरीभरी जमीन पर विशाल ऐतिहासिक चर्च अब भी खड़ा था। कहते हैं कि किंग जार्ज उन्नीसवीं सदी में पहली बार भारत आये थे तब अचानक उनका कार्यक्रम इस शहर को देखने का बना। चौबीस घंटे में यह चर्च तैयार किया गया था, ताकि युवराज पूजा अर्चना कर सकें। किंग जार्ज जिस रास्ते से आये उसे यहां के लोग आज भी के.जी.रोड के नाम से जानते हैं। लम्बी हरी घास, चर्च और यहां की नीरवता यूरोप के किसी शहर का आभास दे सकती थी, बशर्ते सड़क से गुजरने वाले राहगीर भोजपुरी गाने न सुनते और रिक्शेवाले आपसदारी में मां, बहन का रिश्ता न जोड़ते।

सुकून के पल काटते हुए घास पर बैठा ऋषभ चर्च की नक्काशियों को गौर से देखने लगा। चर्च के एक दरख्त में कबूतर का जोड़ा एक दूसरे को प्यार से चोंच मार रहा था। अपेक्षाकृत ज्यादा चोंच मारने वाला नर कबूतर होगा। मादा कबूतर विदक गयी। वह उड़ कर दूसरे दरख्त पर जा बैठी। नर उड़ान भरते हुए फिर उसी के पास आ गया। मादा कबूतर गुस्से से उसे लगातार चोंच मारे जा रही थी। नर बेपरवाह प्रेम निवेदन किये जा रहा था। फिर मादा उड़ गयी, नर उसका पीछा करने लगा। दोनों नीले आसमान में विलीन हो गये। फिर वही सन्नाटा पसर गया।

अचानक ऋषभ को अकेलापन घेरने लगा। उसने अपनी डायरी निकाली। पुरानी यादों से लगभग भरी हुई डायरी के पहले पन्ने को उसने सहलाया जिस पर लिखा था 'ऋषभ माने बैल, ऋषभ तुम बैल हो'। एक हल्की हवा का झोंका चर्च के पास वाले तालाब से उठा और घास की खुशबू को ऋषभ पर उड़लने लगा। वह लगातार उन शब्दों पर हाथ फेर रहा था और हवा उसके ऊपर। हवा के ठंडे झोंके तलाब के शांत पानी में हल्की हिलोर पैदा कर रहे थे। इस तालाब का नाम डैंस तालाब था। कहते हैं कि अठ्ठारह सौ सत्तावन के समय में एक अंग्रेज अधिकारी डैंस धरमन बीबी के प्यार में पड़ गया था। धरमन जगदीशपुर के बाबू कुंवर सिंह की प्रेमिका थी। धरमन बीबी के मार्फत कुंवर सिंह उस अंग्रेज अधिकारी की सारी गुप्त योजनाओं का पता कर लेते थे। बलवे के समय में कुंवर सिंह के लम्बे समय तक टिके रहने की एक बड़ी वजह ये गुप्त सूचनाएं थीं। लार्ड कैनिन इस इलाके में चले लम्बे संघर्ष को लेकर बेहद चिन्तित था, उसने अपनी यह चिन्ता अपनी डायरी में दर्ज की थी। खैर, डैंस मारा गया पर मरने से पहले अपनी प्रेमिका के लिए यह तालाब बनवा गया। पता नहीं क्यों तब भी लोग इसे डैंस तालाब ही कहते हैं, धरमन तालाब नहीं। आश्चर्य इस बात को लेकर है कि कोई अपनी फरेबी प्रेमिका के लिए तालाब क्यों बनवायेगा? प्रेम को समझना असम्भव है। दुनिया में शायद ही कोई विद्या होगी जो इस मर्ज को समझ पायी हो? हालांकि कुंवर सिंह अपने इस रकीब से प्रेम करने में आगे निकले। ऐसा लोगों को लगता है। उन्होंने अपनी दो प्रेमिकाओं धरमन बीबी और करमन बीबी के नाम से मस्जिदें बनवायीं और मोहल्ले भी। लोग आज उसे सदर के धरमन टोला और करमन टोला के नाम से जानते हैं। इस तरह ऋषभ धुर पुराने प्रेमी प्रेमिकाओं और धुरंधर रकीबों वाले शहर में था।

वह हरी घास पर लेट गया। हवाएं उसका साथ देने लगीं। स्मृतियों में तन्वी कौंधी। उसे याद आया कि इसी जगह पर अरूप के साथ वह बैठा ठहाके लगा रहा था और बगल की सड़क पर रिक्शे पर बैठी, पीताम्बर में लिपटी कोई मासूम सी चीज जा रही थी। अरूप हड़हड़ा कर उठा और बेशर्मी से सीटी बजायी। लड़की ने उसकी ओर घूरा तो अरूप ने हाथ से आने का इशारा कर दिया। रिक्शा रुक गया। डर के मारे ऋषभ की सांसें भी रुक गयीं। उसे लगा कि बखेड़ा होने वाला है। पीताम्बर ओढ़े वह काया धीरे धीरे पास आ गयी। कुछ दूरी पर वह रुक गयी और जब लड़की ने मुंह खोला तब ऋषभ जान गया कि यहां कोई मासूम नहीं। उस लड़की ने अरूप से कहा "कमीनेपन की कोई हद होती है कि नहीं?" अरूप जवाब में बेशर्मी की तरह हंस पड़ा। उधर लड़की बोले जा रही थी "आइंदा इस अंदाज से कभी बुलाया न अरूप, तो नंगा करके इसी रमना मैदान में दौड़ा दूंगी।" अरूप 'हद बेहद दोनों तजै' की तर्ज पर मुखातिब हुआ "अरे यार, बी मेच्योर, दोस्त हूं, पूर्व सहकर्मी भी.. इतना तो बनता है।" जवाब में 'शटअप' गूंजा और वह आकृति ऋषभ की ओर मुड़ी। ऋषभ चुपचाप उसे निहार रहा था। लड़की ने बिना लागलपेट के सवाल किया "आपका परिचय?" ऋषभ तैयार नहीं था, हड़बड़ा गया। अरूप ने बात संभाली और ऋषभ की ओर मुड़ कर कहा "परिचय बता दो दोस्त नहीं तो इन्क्वाइरी बैठ जायेगी। ये बरखा दत्त हैं यहां की मशहूर पत्रकार।" फिर छिछोरी

हरकत करते हुए अरूप ने अंतिम बेहूदा लाइन जोड़ी “ये सेक्स एंड द सिटी में काम करती हैं।” लड़की की भ्रुकुटियां तन गयीं, अरूप को वह “भाग पागल” कह कर ऋषभ की ओर मुड़ गयी “एनी वे, मैं तन्वी, इस शहर के द सिटी चैनल की वरिष्ठ संवादादाता।” और उसने ऋषभ की ओर आत्मविश्वास के साथ हाथ बढ़ा दिया। ऋषभ उसके ‘टफनेस’ पर मुग्ध हो गया। इस शहर की तो लगती ही नहीं। उसने भी मुस्कराते हुए हाथ को बढ़ा दिया “मैं ऋषभ, हिन्दी का अध्यापक।”

“अध्यापक?” तन्वी के मुंह से चौंकने जैसी आवाज निकली और वह हंसने लगी। ऋषभ झेंप गया। उसने फिर ‘टिपिकल’ दाग दिया था। उफ़! तुरंत उसने अपने को संभाला और तन्वी से पूछा “क्यों अध्यापक कोई वल्गर शब्द है?” सवाल पूछते वक्त ऋषभ में एक कठोरता आ गयी थी। तन्वी थोड़ा सा हिल गयी, फिर बोली “न नहीं... पर मुझे लगता है कि प्रचलित शब्दों का इस्तेमाल करना चाहिए।” तन्वी को लगा कि ऐसा बोल कर वह मुक्त हो चुकी है। पर यहां बैल ताव खा चुका था। उसने सवाल दागा “... और इन प्रचलित शब्दों का निर्माण कौन कर रहा है? .. बाजार? मीडिया?” तन्वी ने महसूस किया कि वह फंस रही है। वह झेंपी “सॉरी ऋषभ साहब।” पछतावा करते वक्त वह बिल्कुल मासूम हो गयी, मानो अपने आप में सिमट रही हो। ऋषभ को ध्यान ही नहीं रहा कि उसने अभी तक तन्वी का हाथ पकड़ रखा था। बैल को जब यह महसूस हुआ तब बैल ने हड़बड़ा कर हाथ छोड़ दिया। ‘सॉरी’ शब्द ऋषभ के कलेजे में घुस गया था। अरूप ‘नयनों का नयनों से गोपन प्रिय सम्भाषण’ देख रहा था। उससे रहा नहीं गया। उसने उन दोनों की तंद्रा तोड़ी “चलो, गले मिल कर मामला खत्म करो।” उन दोनों की गर्दन झटके के साथ अरूप की ओर मुड़ी और शर्मिन्दगी से झुक गयीं। किसी ने कुछ नहीं कहा।

लेटे लेटे ऋषभ की स्मृतियां कई खंडों में विभाजित होकर तैरने लगीं। कभी कॉफी स्टॉल, कभी रेस्तरां, सिनेमाघर। तन्वी के साथ बिताये हुए कई पल कई जगहों से उड़ उड़ कर उसकी आंखों में समा रहे थे। उसकी आंखें बंद होने लगीं। चर्च की घास पायल की आवाज करके नाच उठी। उनकी सरसराहट में ऋषभ कैद होता गया। कबूतर का वह उड़ चुका जोड़ा फिर लौटा और ऋषभ की छाती पर आकर बैठ गया। इस बार दोनों बिल्कुल नहीं लड़े। दोनों के चोंच एक दूसरे में कुछ ढूंढने लगे। मादा कबूतर ने कहा “तुम बैल हो।” नर ने नाराज होने का नाटक किया “ऋषभ मतलब सांड होता है, बैल नहीं।” और उसने अपनी चोंच से मादा की चोंच को दबा दिया। फिर, फड़फड़ाहट। दोनों के पंजे ऋषभ की छतियों में धंस रहे थे। ऋषभ ने अचकचा कर अपनी आंखें खोल दीं। सामने अरूप खड़ा था। वह एक पतली डंडी से ऋषभ का सीना खोद रहा था। सीने में जो दर्द उठा था वह कबूतर के जोड़ों के प्रेमातुर नर्तन से नहीं बल्कि इसी बांस की पतली नोक से उठा था। ऋषभ को गुस्सा आ गया, वह ‘भाऽऽआग’ कह कर उठ बैठा। अरूप ने बचाव की मुद्रा अपना ली “मैंने सोचा कि तुमने सल्फॉस खाकर आत्महत्या कर ली है। बांस की छड़ी से इसीलिए खोद कर देख रहा था कि जान है कि नहीं?” अचानक जगने से ऋषभ की आंखों में लाल डोरे तैर रहे थे। उसने प्रतिवाद किया “मैं भला आत्महत्या क्यों करूंगा? क्या परेशानी हो सकती है मुझे?” अरूप की आंखें जो कुछ क्षण पहले भय से फटी पड़ी थीं, वह संतुलित हो गयीं। उसने मुस्कराते हुए पूछा “तो अध्यापक महोदय सूने चर्च के पास इस तरह घास पर बारह बजे दिन में सोने का क्या मतलब? तुम्हें कोई परेशानी नहीं पर शहर को क्यों परेशान कर रखा है? उधर देखो, लोग आतंकित होकर तुम्हें दूर से ताड़ रहे हैं।”

ऋषभ ने सड़क की ओर गर्दन उठायी। सात आठ लोगों का समूह इधर ही देख रहा था। वह भौंचक हो गया “क्या किया है मैंने?”

“अरे यार कुछ नहीं किया तुमने। ये लोग देर से यहीं खड़े हैं और तुम्हारी देह को दूर से लाश समझ बैठे हैं। इधर से मैं गुजर रहा था तो उन्होंने सूचना दी कि लगता है कोई आदमी मरा पड़ा है। यहां आया तो तुम थे।” अरूप एक सांस में सब बोल गया। उसने हाथ बढ़ा कर ऋषभ को उठाया “उठो, चलो यहां से। कहीं और छुट्टी मनाते हैं। महीना भर पहले यहीं एक मर्डर हुआ था।” ऋषभ अभी इस शहर को पूरी तरह से नहीं जान पाया था। अफवाहों का शहर है यह। वह चल पड़ा।

उनका रिक्शा हिचकोले खाते हुए मेन मार्केट की तरफ बढ़ रहा था। रिक्शेवाले ने अगले पहिए में दो घुंघरू बांध दिये थे। ऋषभ को लगा कि उसकी खन खन छन छन में तन्वी की आवाज खनखना रही है। इस सौन्दर्य से च्युत अरूप हथेली पर तम्बाकू रगड़ने में व्यस्त था। रास्ते में ऋषभ अरूप से बस इतना ही पूछ पाया “मेरा अपहरण क्यों हो रहा है?” अरूप ने तम्बाकू ठोकते हुए कहा “जैन भोजनालय जाना है, हम खाना वहीं खायेंगे और कीमत तुम अदा करोगे।” फिर दोनों चुप हो गये। देर तक। उनकी चुपियों में आज की छुट्टी पिघल रही थी। रिक्शा का पहिया घुंघरूओं की आवाज में बहा जा रहा था। रास्ते में लोग पता नहीं क्यों उन दोनों को ही घूर रहे थे। हद है?

खाना खाते वक्त दोनों मौन थे पर अरूप के मुंह से चपर चपर की आवाज निकल रही थी। वह खाते वक्त अक्सर बेसब्र हो जाता है। ऋषभ ने अपनी चोर नजरों से उसे एक बार देखा फिर अपनी रोटियां तोड़ने लगा। फिर अचानक चपर चपर की आवाज रुकी “तुम वहां घास पर तन्वी का इंतजार कर रहे थे न?”

ऋषभ की नजरें झुकी ही रहीं “नहीं तो।”

अरूप गम्भीर हो गया “उसका इंतजार मत करो ऋषभ।” ऋषभ चुपचाप चम्मच से दही उठा कर खाता रहा। अरूप ने फिर कुछ चुभा दिया “तन्वी पटना में है आजकल।” ऋषभ चौंकते चौंकते रुक गया, सिर्फ भवें उठा दीं “क्यों?” अरूप ऋषभ को कुछ कुछ समझने लगा था। वह ऋषभ की इस ओढ़ी हुई गम्भीर मुद्रा को ताड़ गया। फिर पापड़ को उठा कर मुंह में बजाते हुए वह ऋषभ के इस ‘क्यों’ के जवाब में हल्के से हंसा। ऋषभ के लाल होने के लिए इतना काफी था। उसके लाल होते चेहरे को अरूप ने पढ़ते हुए अंतिम कील ठोक दी “ये क्यों क्या पूछते हो तुम... ‘सखि वो मुझ से कह कर जाते?’” अरूप ने ऋषभ को क्षण भर में ‘यशोधरा’ बना डाला; तन्वी ऋषभ को ‘कह’ कर नहीं गयी थी। जब कील चुभी तो बैल बिदक गया और गुस्से में रस्सी तोड़ कर भागने को हुआ। बैल की आंखें फैल गयी थीं। अरूप जरा सा डरा, उसके डरने की वजह यह थी कि यदि बैल खाने का बिल दिये बगैर चला गया तो उसका क्या होगा। अरूप की जेब में फूटी कौड़ी भी नहीं थी। उसने बात संभाली “बैठ जा भाई बैठ जा... दोस्त हूं.. इतना तो हक है ही।” खीझे हुए बैल को आखिर बैठना पड़ा क्योंकि लोग उसे घूरने लगे थे। फिर अरूप ने ही शुरू किया “द सिटी चैनल का पटना के किसी बड़े न्यूज चैनल में ‘मर्जर’ होने वाला है, सेठ जगतानंद उसे बेचने गया है।” अरूप क्षण भर रुका और एक बार और मसखरी करनी चाही “सेठ चैनल बेचने गया है तन्वी को नहीं।” इस मसखरी को ऋषभ ने शायद सुना ही नहीं। उसकी नजरें कहीं और देखने लगीं, पता नहीं कहां?

दोनों जब खाना खाकर बाहर आये तो अरूप ने जोर की अंगड़ाई ली और बाद में एक भद्दी सी डकार भी लगा दी। उसका मुंह दरिआई घोड़े की तरह खुला जिसमें से तम्बाकू चबाये सड़े दांतों का एक जोड़ा झांकने लगा। ऋषभ ने अपना मुंह फेर लिया। फिर ऋषभ ने ही पूछा “अब क्या?” अरूप उत्साहित होकर बोला “घर जाकर क्या करोगे? चलो बिजइया की दुकान पर चाय पीते हैं।” ऋषभ ने हामी भर दी। पता नहीं क्यों आज वह अकेले रहने से बचना चाहता था।

शहर की चाल की तरह ही सुस्त और लुंजपुंज रिक्शा एक बार फिर चल पड़ा। इस रिक्शे के पहिए में घुंघरू नहीं जड़े थे। उसके चलने में 'किर्रर्र किर्रर्र' की पीड़ादायी आवाज निकल रही थी। शहर के लोग अभी भी उन दोनों को घूर रहे थे। 'मामला क्या है आज?' ऋषभ ने सोचा।

बाजार से निकलते वक्त रिक्शे के सामने से एक मोटर साइकिल सवार चला आ रहा था। उसकी नजरें तो सामने ही थीं पर अचानक वह बायीं ओर देखने लगा। वह जहां देख रहा था वह मशहूर 'सिने फोटो स्टूडियो' था जिसके डेस्क पर बैठी लड़की युवा बाइकर को देख कर मुस्करा रही थी, बदले में बाइकर होठों को गोल कर अपने बायें हाथ से बाल सहलाने लगा। बस, रिक्शे और मोटर साइकिल का मिलन हो गया 'भड्ड'। यह इतना जल्दी और अकस्मात् हुआ कि ऋषभ और अरूप को संभलने का मौका तक नहीं मिला। रिक्शावान 'हां हां' बोल कर रिक्शे से कूद गया। बाइकर गिरते गिरते रह गया। उसके मुंह से इतना ही निकला "भाऽग्न ससाला... देखके नहीं चलता?" ऋषभ को बाइकबाज पर गुस्सा आ गया। एक तो गलती उसकी ऊपर से रिक्शेवाले को ही गाली! इससे पहले कि वह कुछ बोलता अरूप टपक पड़ा "का तुनमुन बाबू? पूरे इलाके में हमारा ही रिक्शा मिला था ठोकने को?" यह बात अरूप ने लगभग गाते हुए कही। बाइकबाज धूप का चश्मा उतार कर मुस्कराने लगा, फिर बोला "ठोकने तो हम गोबर्धनवा को जा रहे थे, भिड़ गये आप?" वाक्य पूरा करते करते बाइकबाज ने अपनी टीशर्ट को जरा सा ऊपर उठा दिया जींस में घुसी हुई वह काली चीज चमक गयी। ऋषभ चौंका 'पिस्टल'? इससे पहले कि वह इस क्रिमिनल के बारे में कुछ और सोचता, अरूप बतकही करने लगा "क्या हुआ? अभी तक सूद नहीं दिया?" बाइकबाज निराश हो गया "काहे ला सूद? साला मूलधन लेकर दो महीने से गायब है। जस्ट पता चला है कि ताड़ी पीकर सिनेमा हॉल के पीछे ऊंच रहा है, अभी ठोकते हैं जाकर!" इतना कहते हुए उसने बाइक को एक किक मारा, फिर नजर घुमा कर स्टूडियो वाली लड़की को घूरा और चल पड़ा। रिक्शे का कुछ बिगड़ा नहीं था, बस 'किर्रर्र किर्रर्र' की आवाज और बढ़ गयी थी। ऋषभ ने एक भरपूर नजर अरूप पर डाली, फिर सामने देखने लगा। अरूप को वह नजर चुभ गयी। बोला "इस तरह से क्या देखते हो? तुनमुन तुम्हारा ही सहधर्मी हुआ।" ऋषभ एकदम उखड़ गया "क्या यार, कब से फालतू बोले जा रहे हो, एक क्रिमिनल और सूदखोर से मेरी बराबरी कर रहे हो? हद है?"

"यार नाराज क्यों होते हो, यही सच है, वह शिक्षक है।" कहते हुए अरूप ने धीरे से ऋषभ का हाथ पकड़ लिया। फिर उसे दबाते हुए बोला "चौंको मत, हजारों की संख्या में नयी स्टेट सरकार ने शिक्षकों और शिक्षामित्रों की भर्तियां की हैं, उनमें से यह एक है बल्कि ग्रेजुएट है।"

ऋषभ ने कसम खायी थी कि इस शहर की किसी भी घटना पर वह हैरान नहीं होगा। उसके हैरानी प्रकट करने पर लोग उसे 'चूतिया' समझते हैं। पर यह ऐसा सच था जिस पर उसे सचमुच हैरानी हुई। अरूप सच बकता गया "ये लोग महीने, चार महीने पर मिलने वाली तनखाह सूद पर चलाते हैं, शहर की गाड़ी ही सूद के पेट्रोल से चलती है।" ऋषभ ने अपनी मुंडी झुका ली और लगभग मुस्कराते हुए बोला "कमाल है?" फिर वह रिक्शे के नीचे से धीरे धीरे सरकती हुई धरती को देखने लगा। वह खिसकती हुई धरती को देखते देखते इस शहर के चरित्र की बारीकियां उधेड़ने लगा। मसलन, यह शहर भय से संचालित है। भय को यहां सूद कहते हैं। शहर की इस ऐंठन की वजह के पीछे कोई आर्थिक कारण है। भय, हेकड़ी, गरीबी इन सबको मिला कर वह किसी निष्कर्ष पर पहुंचता कि अरूप ने एक और शूगूफा छोड़ा "साला, इस शहर में जबसे रिसेप्शनिस्ट आंदोलन चला है, सड़क पर एक्सिडेण्ट ज्यादा होने लगे हैं।" ऋषभ गलती से फिर चौंका। दोनों मित्रों ने जोर से ठहाका लगाया। आसपास के राहगीर उन्हें घूरने लगे। ऋषभ ने ही पूछा "ये रिसेप्शनिस्ट आंदोलन तुम्हारे शहर में

कब हुआ?” अरूप ने जवाब दिया “अरे यार! भूमंडलन और क्या?” अरूप के भीतर का पत्रकार जग गया, गला साफ करके बोला “भूमंडलीकरण के बाद चकाचौंध जैसी एक चीज का इस शहर में पदार्पण हुआ। आसपास के गांवों की आबादी उड़ उड़ कर यहां बसने लगी। फिर दूसरी प्रक्रिया शुरू हुई। जिनकी ताकतवर आर्थिक स्थिति थी उनके लड़के लड़कियां दिल्ली, मुम्बई, बैंगलोर में फिट हो गये, और जो कमजोर थे उनके बच्चे और खासकर के बच्चियां यहीं फिट होने की जुगत में लगे। पिछले पांच सात वर्षों में यहां की लगभग बड़ी दुकानें, होटल, रेस्तरां इन लड़कियों से गुलजार हो गये। जिनका एक नया नामकरण था ‘रिसेप्शनिस्ट’। बात पूरी करते करते अरूप ने लम्बी सांस खींच कर अपनी गर्दन टेढ़ी कर ली, मानो बहुत बड़ी ‘थियरी’ दे मारी हो। पर ऋषभ ने उसकी हेकड़ी कम कर दी “तो इसमें बुराई क्या है?” अरूप ने दार्शनिक भाव से कहा “नहीं, बुराई नहीं है?” फिर रुक कर बात पूरी की “पर ऐक्सीडेण्ट तो हो ही जाता है न? तुम सच देख ही चुके हो।” और उसने अपनी बायों आंख दबा दी। पत्रकार फिर मसखरा बना गया।

रिक्शा ‘किर्रर किर्रर’ करते हुए बढ़ा जा रहा था। बायों तरफ नया चमचमाता हुआ ‘मॉल’ देख कर ऋषभ को किसी की याद आ गयी। उसने जो शर्ट पहन रखी थी, वह उसी मॉल’ की थी। ‘मॉल’ चमक रहा था। बड़े बड़े शीशों के भीतर बेशकीमती कपड़े, जूते, शर्ट, कोर्ट और रिसेप्शनिस्ट। कोई कह नहीं सकता था कि यह दोमंजिला ‘मॉल’ इसी शहर का है। सूदखोर शहर का। अरूप ने ऋषभ का ध्यान भंग किया। उस पर आज पत्रकार हावी था “यहां पहले सिनेमा हॉल था, तुम्हारे ही विरादरान ध्यानचैन जैन दिल्ली से सेलेक्ट सिटी मॉल देख कर आये थे, सिनेमा हॉल की लीज खत्म हुई तो उसकी जमीन का अधिग्रहण करके हॉल तुड़वा दिया और मॉल बनवा दिया। ये चमचमाते हुए शीशे और साफ कपड़ों में लिपटे सिक्योरिटी गार्ड देख रहे हो न?”

ऋषभ ने जवाब दिया “हूं।”

“पर यह गार्ड आये दिन पिटते रहते हैं।” मसखरे ने फिर बायों आंख दबा दी।

“क्यों?”

“अरे यार, दिलजलों के शहर में ताजमहल कौन बर्दाश्त करेगा? इस शहर की बहुसंख्यक आबादी चार रुपये का पान खाकर दिन गुजार देती है। लौण्डे लफाड़ियों के पास पैसे होते कहां हैं, बीस बीस कपड़े नाप तौल कर खाली हाथ बाहर आ जाते हैं। वे यहां खरीदने नहीं मौज करने आते हैं। उनका यह ‘फनविला’ है।” अरूप ने ऋषभ का ध्यान उस बड़े और आधे टूटे कांच की ओर केन्द्रित किया “वो टूटा कांच देख रहे हो न, उसे इस शहर के लौण्डों ने ही शहीद किया है। अब ध्यानचंद जैन कन्स्यूजन में हैं कि क्या करें। अगर कांच की जगह टीन की चद्दर डाल दें तो अंदर का चमकदार मॉल और रिसेप्शनिस्ट बाहर से दिखायी नहीं देंगे और अगर कांच फिर से लगाया तब क्या गारंटी है कि वह फिर न टूटे?” ऋषभ चुप रहा। अरूप जारी रहा “इस शहर की तरह यह मॉल भी संक्रमण का शिकार है।”

इस बार ऋषभ ने अफसोस जताया पर लहजा इस बार अरूप को चिढ़ाने वाला अपनाया “बड़ी बुरी बात है।” अरूप ने इसे छोटे शहरों की क्षुद्र प्रवृत्ति पर चोट के रूप में लिया “तुम चाहे कुछ भी कहो, पर बड़े शहरों की तरह छोटे शहरों में ग्राहक का आत्मसम्मान रौंदा नहीं जाता।”

ऋषभ ने छेड़ा “कैसे? बताओ?”

“यहां हेकड़ी ही पूंजी है। या कह लो कि पूंजी नहीं है इसलिए हेकड़ी है लोगों में। बड़े शहरों के दुकानदार महंगी चीजें दिखा कर ग्राहकों को शर्मिन्दा करते रहते हैं, जैसे उनकी औकात दिखा रहे हों। ग्राहकों को वहां से ‘सॉरी’ कह कर निकलना पड़ता है। पर यहां महंगी चीजें दिखाते ही ग्राहक

दुकानदार पर आगबबूला हो जाता है; बहुत हुआ तो वह दुकानदार को ही चोट्टा लुटेरा कह कर चल देता है। दुकानदारों की मजाल नहीं पलट कर कुछ बोलें वरना उनकी दुकान पर कभी भी देशी बम फट सकता है। इसीलिए तो अपनी हिफाजत के लिए यहां के दुकानदार, सुनार, थोक विक्रेता, कालाबाजारी वाले सब रंगदारी टैक्स देते हैं टैक्स लेने वाला इस शहर से चालीस किलोमीटर दूर रहता है।” ऋषभ कुछ और पूछता कि अरूप ने टोका “अब उसका नाम मत पूछना।” यह एक और सच था जिसे ऋषभ पचाते हुए गुमसुम हो गया साला शहर है कि जहन्नुम?

रिक्शा विजय प्रसाद चायवाले के सामने आकर रुक गया। ऋषभ ने ही रिक्शेवाले को पैसे दिये जो कि स्वाभाविक ही था। दुकान पर थोड़ी भीड़ थी। अरूप विजय को चाय का इशारा करके भीड़ से थोड़ा अलग खड़ा हो गया, ऋषभ के साथ। भीड़ में से कुछ लोगों ने फिर उन दोनों को घूरा और चाय पीने लगे। ऋषभ उस दिन के बाद केवल आज ही स्टेशन के पास आया। ऋषभ को यहां आकर आभास हुआ कि उसे इस शहर में आये तीन महीने हो गये हैं। विजय प्रसाद चायवाले ने छोट्टे के हाथों चाय भिजवायी थी। चाय वाकई में अरूप की भाषा में ‘स्वादु’ थी। चुस्कियां लेते हुए ऋषभ आसपास के हालात पर नजर डालने लगा। मोछुआ दारू पीकर किसी को गरियाते हाथ भांजते उनकी बगल से तेजी में निकल गया। पता नहीं उसने कौन सी दारू पी ली थी, वह बगल से गुजरा तो ऋषभ दारू की बास से असहज हो गया। मोछुआ अब हिन्दी फिल्मों के नाम फिल्मी सितारों के नाम से जोड़ कर गाते हुए जा रहा था “धरमेन्दर, जितेन्दर, जीने नहीं दूंगा, खून भरी मांग, आग ही आग।” उसका नाम मोछुआ इसलिए पड़ा था कि उसकी मूंछें बहुत लम्बी और घनी थीं।

वह चला गया तब ऋषभ की नजर चाय की दुकान के पास की रेत के टीले पर चली गयी, जिसे रेलवे की सम्पत्ति समझ कर लोग वहां चाय का कुल्हड़, सिगरेट, पान आदि विसर्जित कर रहे थे। वहीं बगल में एक नंगधड़ंग बच्चा रेत खोद कर उसमें गुफा बना रहा था। तभी ऋषभ चौंक गया। उस बच्चे के बगल में गेरुए कपड़े में लिपटा वही महाकाल बैठा था जिससे ऋषभ की मुठभेड़ रेलवे प्लेटफॉर्म पर हुई थी। वही काला शरीर, वही घुंघरू, वही आंखें। रेत के टीले पर बैठे उस जोगी ने अपनी जटाओं को खोल दिया था। वह उन्हें सुखा रहा था। वह बायीं हथेली पर रखे लाल रंग को अपने दायें हाथ की उंगलियों से उठा कर माथे पर त्रिपुंड बना रहा था। लेकिन उसकी आंखें ऋषभ पर ही टकटकी लगाये हुए थीं। बल्कि घूर रहीं थीं। त्रिपुंड बना कर उसने हथेलियों को रेत से रगड़ लिया और उठ गया। उसके कदम ऋषभ की ओर बढ़ने लगे। लेकिन यह पहले वाला ऋषभ नहीं था। समय के साथ इस शहर ने उसे थोड़ा मजबूत कर दिया था। वह अडिग होकर उस काली चट्टान को अपनी ओर लुढ़कते देखता रहा निर्विकार। चट्टान उसके पास आकर रुकी।

“का हाल है भुजंगनाथ?” यह अरूप था। उसके पूछने के अंदाज से लग रहा था कि इस भुजंग के साथ अरूप के आत्मीय रिश्ते हैं। जोगी ने घुंघरूओं से लदे अपने दाहिने हाथ को उठा दिया “बमबम।” आवाज उसके शरीर की तरह ही भारी भरकम थी। अरूप ने फिर पूछा “मौज है न।” इस बार भी जोगी ने ‘बमबम’ ही कहा पर कहते वक्त उसने गर्दन बायीं ओर झुकायी और दायी आंख दबा दी। यह निहायत छिछोरा अंदाज था। जोगी और अरूप दोनों हंस पड़े। अरूप ऋषभ की ओर मुड़ा और कहा “इ रिसभ हैं, पढ़ाते हैं।” जोगी ने अपने घुंघरूओं वाले हाथ उठा कर ऋषभ के माथे पर रख दिये। ऋषभ के भीतर सनसनाहट हो गयी। फिर जोगी ने कहा “बमबम।” जब जोगी ने हाथ हटाया तब ऋषभ के भीतर सुकून सा कुछ पसर गया, उसे यह अच्छा लगा।

कहते हैं कि विपरीत के प्रति एक सहज आकर्षण होता है। इस शहर में जोगी पहला शख्स था जिससे ऋषभ ने आत्मीय ढंग से निवेदन किया “आप चाय जरूर पीते होंगे, मैं मंगवाता हूं।”

जोगी ने हामी भर दी। रेत के टीले में गुफा बनाने वाला लड़का दौड़ता हुआ जोगी के पास आ गया। जोगी ने उसे हंस कर उठा लिया और पुचकारने लगा। ऋषभ चट्टान को पिघलते हुए, पुचकारते हुए देखने लगा। बच्चा जोगी की नाक उमैठने लगा। ऋषभ अब तक जिस चहरे को खौफ का पर्याय समझता रहा उसे एक बच्चा थपकियां दे रहा था, चूम रहा था। अरूप ने उस बच्चे के गाल छूकर कहा “जल्दी बड़ा हो गया।” जोगी की आंखें चमक उठीं। अरूप ने अपने मुंह में उंगली डाल कर सीटी मारी तो विजय प्रसाद चायवाले ने अपनी नजरें इनायत कीं। अरूप ने एक जोड़ी उंगली उठा कर ‘विकट्री’ का सिग्नल दिया जिसका मतलब था ‘दो कप चाय लाओ’।

जोगी उस बच्चे के बदन से चिपकी हुई रेत झाड़ने लगा। मोछुआ आज ज्यादा ही तेजी में था। वह फिर नशे में गालियां बकता आ रहा था। पास से गुजरते हुए उसने जोगी को सम्बोधित किया “का रंगबाज?” जोगी ताव खा गया। घुंघरुओं वाले हाथ उठा कर उसने मुट्ठी कस ली, और लगभग गुराते हुए कहा “बअअम बअअम।” तब तक मोछुआ धरमेन्दर, जितेन्दर कहते हुए वहां से जा चुका था, उसे फुर्सत कहां थी!

‘छोटू’ चायवाला दो चाय के कप ऋषभ को पकड़ा कर चला गया। ऋषभ ने एक कप जोगी को दिया, दूसरा अरूप को। चुस्कियों की आवाज हवा में भरने लगी। बच्चा जोगी की गोद में ही था, जोगी बच्चे के मुंह के पास कप ले गया तो उसने हंसते हुए अपना मुंह मोड़ लिया। काले शरीर से चिपका गौरा बच्चा सचमुच बहुत प्यारा था। जोगी अभी चाय की चुस्कियां भर ही रहा था कि विजय प्रसाद चायवाला चीखा “अरे बाप...” और दौड़ते हुए उनके पास आ धमका। इससे पहले कि लोग कुछ समझ जाते उसने जोगी के हाथ से कांच का कप छीन कर सड़क पर दे मारा। चाय की प्याली चकनाचूर हो गयी। विजय की आंखें लाल हो गयी थीं। चाय की दुकान पर खड़े ग्राहक चौंक कर घटना का मुआयना करने लगे। ऋषभ को इस हरकत पर गुस्सा आ गया। इससे पहले कि आदतन अरूप कुछ बोलता ऋषभ ने ही मोर्चा खोल दिया “क्या बत्तमीजी है ये?” उसने लगभग चीख मार दी। विजय प्रसाद ने अपनी उखड़ती हुई सांस के साथ जवाब दे दिया “कुछ भी कहिए सर, इ मुर्दाखोर अघोरी हमारे कप में चाय नहीं पी सकता।” सब सन्न हो गये। ऋषभ इन वाक्यों को ‘डिकोड’ करने में लगा ही था कि अरूप ने विजय प्रसाद का कॉलर पकड़ लिया “साले तेरी हिम्मत कैसे हुई? गुंडा समझता है अपने आप को, रंगबाज है यहां का?”

विजय ने हाथ जोड़ दिये “भइया जी, पेट पर लात मत मारिए, जूता मार कर भले पीठ छील दीजिए। पर इस मुर्दाखोर को हम कप में चाय नहीं पीने देंगे। सब लोग इसे जानते हैं, मेरे ग्राहक भड़क जायेंगे।” विजय का इशारा उन चमचमाती कांच की जूठी प्यालियों की तरफ था जिसे छोटू धोकर फिर से उनमें चाय डालने जा रहा था। मुर्दाखोर और कप जैसे शब्द सुन कर ऋषभ स्तब्ध था। उसे उन धुली हुई प्यालियों से बदबू की लहर उठती हुई जान पड़ी। कुछ देर पहले पी हुई चाय को उसने याद किया और उसे मितली आने लगी, पर वह उसे दबा गया। अरूप ने विजय प्रसाद के कॉलर से हाथ हटा लिया और समझाने की मुद्रा में आ गया “तू पागल है क्या? अरे साला इ अघोरी नहीं है, मैं जानता...” यह वाक्य अभी वह पूरा भी नहीं कर पाया था कि जोगी विजय प्रसाद को जोर से धकेल कर चिल्लाया “हहट।” फिर उसने अरूप को बात पूरी न करने की हिदायत देते हुए अपने घुंघरू लगे हाथ की तर्जनी को हिला दिया। उंगली अरूप की दोनों आंखों के सामने दाहिने बायें हिलती रही। जोगी ने यह सब कुछ झटके के साथ किया। गोद के बच्चे पर इन घटनाओं का कुप्रभाव न जाने कब से पड़ रहा था। वह धाड़ मार कर रोने लगा। जोगी बस इतना कह पाया “अच्छा अरूप बाबू।” और बच्चे को पुचकारते हुए चला गया। अरूप की आंखों में

पहली बार ऋषभ ने पानी जैसा कुछ तैरते हुए पाया। अरूप ने उन्हीं आंखों विजय को कोसा “कुत्ता है तुम।”

रिक्शा एक बार फिर हिचकोले खाते हुए चल पड़ा। इस उहापोह में ऋषभ को यह भी याद आया कि विजय प्रसाद को उसने चाय और टूटी प्याली के पैसे नहीं दिये। अब याद आया तो रिक्शा शहर के भीतर घुस चुका था। पैसे फिर कभी। चुप्पी ऋषभ ने तोड़ी “जोगी से तुम्हारा बहुत लगाव है, नहीं?” सवाल सुन कर अरूप कुछ हरकत में आया जो काफी देर तक चुप ही नहीं था बल्कि अपनी आदतों के विपरीत शांत भाव से किसी सोच में डूबा था। उसने एक लम्बी सांस छोड़ी और ऋषभ की ओर चेहरा घुमा कर ‘आंख मार’ दी। फिर भी वह कुछ सोच ही रहा था और सोचते सोचते बोला “जानते हो ऋषभ, लोग कहते हैं कि भुजंगनाथ पहले डकैत था। सासाराम कैमुर की पहाड़ियों में। पता नहीं कब वहां के डकैत आपस में ही खूनी खेल खेलने लगे। भुजंगनाथ वहां से भाग कर यहां आ गया। दाड़ी मूछें थीं हीं, बस गेरुआ कपड़ा धारण कर लिया। ऊपर से इसका कोई पुलिस रिकार्ड भी नहीं था।”

“और वह बच्चा?” ऋषभ तह में जाने लगा।

“कह सकते हो कि नाजायज है। इसी स्टेशन पर उसको जनमते ही फेंक गया था कोई। तब से भुजंग ही उसे पाल रहा है। अब भुजंग के सारे कर्मकांडों का कारण वह बच्चा ही है। वह लड़ा नहीं केवल उस बच्चे के कारण।” ऋषभ को इन बातों में दम नहीं लगा। पर वह कर ही क्या सकता था। ऋषभ को बार बार लग रहा था कि जोगी का कोई गुप्त रहस्य अरूप जानता है। आखिर क्यों जोगी ने अरूप को बात पूरी नहीं करने दी? कुछ तो है? सड़क की हालत अच्छी होने के बावजूद भी रिक्शे की गति धीमी पड़ने लगी। भीड़ बहुत थी। यह शहर का मुख्य बाजार था। कुछ देर की चुप्पी के बावजूद, अरूप के मुंह से व्यंग्य में फूटा ‘हुंह’। इस पर दोनों की नजरें भिड़ गयीं। “क्या हुआ।” ऋषभ ने पूछा।

“जानते हो दोस्त, इस शहर में भुजंगनाथ और तन्वी एक ही दिन पैदा हुए थे।” ऋषभ को यह सूचना कोरे गप्प के सिवा कुछ भी नहीं लगी। भुजंग और तन्वी की उम्र के बीच का फासला बहुत नहीं बल्कि बहुत ही ज्यादा था। इस तथ्य से कोई इनकार नहीं कर सकता था। ऋषभ को अरूप के पेशे पर ही तरस आने लगा। पर अरूप ने फिर गोला दागा “तुम भले भरोसा न करो, पर यही सच है। दोनों का जन्म एक ही समय पर हुआ था। या कह लो कि दोनों ने एक दूसरे को पैदा किया था। वह भी श्मशान में, जिसे भोजपुरी में मुर्दाघटिया कहते हैं।” बात खत्म करते करते अरूप ने फिर ‘आंख’ मार दी। ऋषभ को यह गप्प थोड़ी मनोरंजक लगने लगी, उसने बस इतना कहा “इतना तो मुझे भी मालूम है कि हिन्दू लोग भी श्मशान में मरने के बाद राख होने आते हैं, पैदा होने नहीं... फिर भी बको।” इशारा स्पष्ट था। अरूप थोड़ा गम्भीर हो गया, पत्रकार की अपेक्षाकृत गम्भीर छवि के साथ उसने गप्प को आगे बढ़ाया “यह तब की बात है जब इस शहर में चकाचौंध जैसी एक चीज घुस चुकी थी। लोग सरकारी रेडियो और दूरदर्शन का क्रियाकर्म करके रंगीन चैनलों और दर्जनों बटन वाले रिमोट का ‘आत्मसातीकरण’ कर रहे थे। उसी समय में सेठ जगतानंद ने क्रांति शुरू करनी चाही ‘द सिटी चैनल’ की शक्ति में, पर राष्ट्रीय रंगीन चैनलों के सामने यह लोकल टिक नहीं पाया। इसका कबाड़ा निकलने लगा।” बात बीच में रोक कर अरूप ने जेब से तम्बाकू की डिबिया निकाली और खैनी चूने का संयोग करा कर हथेली पर अंगूठा रगड़ने लगा। ऋषभ के भीतर का मास्टर जग गया था। उसने बेसब्री से कहा “आगे भी बोलोगे कुछ?”

“फिर सेठ जगतानंद की नजर एकाध ऐसे राष्ट्रीय चैनलों पर पड़ी जो सनसनी फैलाने में माहिर थे और पैसा भी पीट रहे थे।” अरूप बात पूरी करके अब हथेलियों पर सिकुड़ी हुई खैनी

को दायें हाथ से पीटने लगा। ऋषभ अधीर हो रहा था, तब तक अरूप ने आगे जोड़ ही दिया “सेठवा को लगा कि सनसनी अगर राष्ट्रीय स्तर पर हो सकती है तो शहर के स्तर पर क्यों नहीं? धन और बल का प्रयोग करते हुए उसने चुनिन्दा तथाकथित पत्रकारों को सनसनी खोजने में लगा दिया। यह वही दौर था जब मेरे और तन्वी जैसे लड़के लड़कियों की फौज ‘कारसपाइंडेस’ बन कर टीवी पर खुद को देखने का सपना पाले लगातार हाथ पैर मार रही थी। अचानक इस शहर का पोस्टमार्टम शुरू हुआ। पार्क के जोड़ों, अस्पतालों की बदहालियों, घूस लेते हवलदारों, घूस देते ट्रक ड्राइवरों, जुए के अड़्डों, चकलाघरों, तस्करों के गढ़ों के वीडियो फुटेज देखते देखते शहर में बढ़ियाई नदी की तरह घुस गये। इस शहर के औसत लोग नागासाकी को नहीं जानते पर परमाणु बम का अनुभव सबने कर लिया। क्या कहते हैं उसे... हं.. ‘पापाराजी’ जैसी एक चीज चल पड़ी। लोग जिसके हाथ में कैमरा देखते उसे या तो सशक्त निगाह से देखते या फिर मुस्कराते हुए। कहने का मतलब है तब किसी कैमराबाज को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था।” बात खत्म करते करते अरूप ने खैनी को ऊपर के हॉट में दबा दिया और सड़क पर दो बार थूका भी ‘पुच्च’। ऋषभ को लग गया कि इस कहानी में ‘जान’ है। वह गम्भीर हो गया। ‘आगे’ कह कर ऋषभ ने चुप्पी मार ली। “आगे यह कि दोस्त, सेठ जगतानंद पर पांच बार जानलेवा हमला हुआ, एक बार तो उसकी टांग में छर्राँ घुस गया था। पर तब तक देर हो चुकी थी। द सिटी चैनल का साम्राज्य शहर और आसपास के कस्बों पर स्थापित हो चुका था। राज्य सरकार ने उसे पुलिस प्रोटेक्शन दे दिया। उसे दो ‘गनर’ मिल गये। एक दो बार तो मेरी भी हड्डियाँ टूटी थीं, पर कौन साला प्रोटेक्शन देता है?” यही अरूप के साथ दिक्कत थी। वह राष्ट्रीय घटनाक्रमों को नितांत व्यक्तिगत स्तर पर परखने लगता है। ऋषभ ने बात बीच में ही काट दी “तुम? तुम्हें क्यों?”

“वो इसलिए दोस्त की उस चैनल में तब मैं भी था।”

“फिर छोड़ा क्यों?” ऋषभ ने भवें तान कर पूछा।

अरूप तैश में आ गया “क्या करते? साला बाद में सेठवा हमारी फुटेज शहर को दिखाने की जगह उसका मार्केटिंग करने लगा। जिसका फुटेज हम लाते थे, उसी को दिखा कर ब्लैकमेल करता, पैसे ऐंठता।” यह सुन कर ऋषभ की आंखें थोड़ी फैल गयीं। वह अरूप पर टकटकी लगाये हुए था। अरूप ने कहा “अब ऐसे मत देखो मुझे, मैं गणेश शंकर विद्यार्थी नहीं हूँ। मैं भी तो चाह रहा था कि फुटेज से पैसा आये, पर साला सेठवा हिस्सा ही नहीं देता था। सो छोड़ दिया।” बात खत्म करके उसने खैनी से पीक को एक बार फिर थूका। ऋषभ का मन इस कहानी से ज्यादा अरूप के थूकने की वजह से जुगुप्सा से भर गया ‘थूह’।

रिक्शा मुख्य बाजार में जाम की वजह से फंस गया। कोई भी रिक्शा हिल तक नहीं सकता था। जो चीज हिल रही थी वह केवल लोगों की जुबान थी “तोहरी मां का, तोहरी बहन का... रोज रोज का हेडेक है... स्साला भरे बाजार में ट्रक कौन घुसा दिया?” अरूप इस दृश्य को उत्साह के साथ देख रहा था और ऋषभ घृणा के साथ। यह दृश्य और ज्यादा घनघोर हो गया। ऋषभ अपने को इस पूरे परिदृश्य से अनुपस्थित करना चाह रहा था। वह पहले भी एक बार यहां रिक्शे पर फंस चुका था। तन्वी के साथ। ‘तनया कुमारी’ की स्मृति कौंधते ही उसके शरीर में सिहरन घुस गयी। उसने अरूप को टोका “पर तुम्हारी कहानी में तुम्हारा भुजंगनाथ कहां है, तन्वी कहां है?” भुजंग के बारे में उसने जानबूझ कर पहले पूछा और तन्वी के बारे में बाद में। नहीं तो मन था कि पूछे इस पूरी कहानी में ‘मेरी तन्वी कहां है’। अरूप को थोड़ा बुरा लगा, बोला “यार बेचैन क्यों हो रहे हो, बता ही तो रहा हूँ...।” फिर अरूप ढीला होकर शुरू हुआ “तो वह ऐसा दौर था कि द सिटी चैनल

के सितारे बुलंद थे, सेठ पर हमला हो चुका था और शहर के सम्मानित लोगों में उसकी हैसियत बहुत उंची हो चुकी थी। पर मीडिया हाथी की तरह है, उसकी खुराक बड़ी होती है। वह ऐसा दौर था कि रोज सनसनी पैदा करना आसान नहीं था। ठीक वह ऐसा दौर था कि तन्वी हर हालत में स्क्रीन पर खुद को बोलते हुए देखना चाहती थी। और ऐसे ही दौर में एक ऐसा दौर था जब भुजंगनाथ बच्चा गोद में लिए स्टेशन पर कटोरा रख कर भीख मांगता था, वह हर हाल में बच्चे को और खुद को जिन्दा रखना चाहता था। सेठवा साला लोमड़ खोपड़ी, एक साथ इन दोनों पर उसकी नजर पड़ी। भुजंग की बलिष्ठ काली काया और तन्वी की...” अरूप बीच में ही कुछ सोच कर रुक गया। ऋषभ समझ गया कि अरूप आगे क्या जोड़ने जा रहा था। उसने लगभग छाती पर पत्थर रख कर कहा “आगे बोलते जाओ अरूप... मैं कुछ भी सुन सकता हूँ।”

अरूप ने सफाई दी “बिदको मत यार, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ जैसा तुम सोच रहे हो. .. बल्कि हुआ यह कि... जैसा मैं कह रहा था कि मीडिया की खुराक बड़ी होती है। पर जगत सेठ लगातार पांच हमलों के बाद संभल गया। वह उन चीजों के पीछे भागना बंद कर चुका था जिससे बड़े गिरोहों को घाटा लगे। पर मीडिया बिना खुराक के चल नहीं सकती। तब चैनल पर भोजपुरी फिल्मी गानों, साक्षात्कारों, स्कूली सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्रस्तुतियां होने लगीं पर लोग कुछ और चाहते थे। शहर में लोकल चैनल की टी.आर.पी तो होती नहीं... लोगों ने कहना शुरू किया कि इस चैनल में वो वाली बात नहीं है। सेठवा चिन्तित हो गया। इधर तन्वी सिटी चैनल के स्क्रीन पर हर हाल में आना चाहती थी, सेठ का वह रोज कान चबाती थी, और उधर सेठ की नजर भुजंगनाथ पर पड़ी। उसने भुजंगनाथ को बुलाया और उसके बच्चे की परवरिश की अग्रिम राशि देकर उसके कान में कुछ कहा। भुजंग को ‘हां’ कहनी पड़ी। फिर उधर उसने तन्वी को बुलाया और कहा कि उसके चैनल में केवल बरखादत्त जैसी ‘फिलिंग’ के साथ ही लड़कियां काम कर सकती हैं। फिर तन्वी के कान में उसने धीरे से कुछ कहा। पहले तो तन्वी चौंकी, फिर डरी और अंततः ‘हां’ कह दिया।”

“हुआ क्या?” ऋषभ ने फिर अपनी बेचैनी दिखायी।

अरूप जोड़ता गया “उसके बाद रंगमंच तैयार हुआ। वो भी श्मशान में। रात के दस बजे मोछुआ प्रकट हुआ, जिसकी पी गयी दारू की बात सूंघ कर तुम थोड़ा बिदके थे।” ऋषभ ने कोई प्रतिवाद नहीं किया। अरूप चालू रहा “तो सेठवा ने मोछुआ को ‘सेट’ कर दिया। मोछुआ उस रात साधना की चरम अवस्था पर था। मतलब दारू पीकर उसने गोबर के उपलों से चार अलग अलग जगहों पर उसके ढेर सजा दिये। जैन वस्त्रालय से वो सारे सजावटी आदमकद पुतले मंगाये गये जो टूटे फूटे थे। उपलों के ढेरों पर पुतलों की टूटी हुई टांगें, उखड़ी हुई भुजाएं, चपटी हुई खोपड़ियां फेंक दी गयीं। एक ढेर को कुछ ज्यादा ही व्यवस्थित ढंग से सजाया गया और कम टूटे पुतले को इस तरह से फिट किया गया कि आदमी की लाश की तरह दिखे।” यह बात पूरी करते करते अरूप की सांसें तेज हो गयीं। फिर कहा “साला गजब का आयोजन था। उस रात श्मशान में कोई लाश नहीं आयी थी। मोछुआ अपना काम खत्म ही कर रहा था कि बड़ी सी गाड़ी श्मशान में आ धमकी। सेठ जगतानंद गाड़ी चला रहा था। फिर सेठवा, तन्वी, कैमरामैन और भुजंगनाथ उसी गाड़ी से उतरे। फिर मोछुआ ने हल्के गीले उपलों में पेट्रोल छिड़क कर आग लगा दी। तुरत फुरत में सेठ ने अपने बैग से भुने हुए मुर्गे का टुकड़ा भुजंगनाथ के कटोरे में उजल दिया। कैमरा खड़खड़ाया और उपले की आग खत्म होते होते एक जबरदस्त फुटेज तैयार हो चुका था।” अरूप की बात पूरी हुई। ऋषभ को सब कुछ समझ में आने लगा था। अरूप के चेहरे पर एक चमक थी जो कथा कहने के दौरान आ गयी।

इसके बाद अरूप ने ऋषभ को जो बताया वह हंगामा और सनसनीके सिवाय कुछ भी नहीं था। अरूप ने कहा “अगले दिन सुबह से ही द सिटी चैनल ने हंगामा बरपाना शुरू किया। ‘इस शहर का अघोरी न.1’ शीर्षक ‘हित’ कर गया। कैमरे के सामने इस शहर ने जलती हुई लाशें, मांस खाता काले भुजंगनाथ का चट्टानी शरीर, और साहस के साथ टन टन की ध्वनि में रिपोर्टिंग करती तन्वी को देखा। उसे टीवी स्क्रीन पर देख कर उसके गरीब मां बाप की आंखें भर आयीं जो खुद रिकार्डिंग के दौरान उसी मशान में कैमरामैन के पीछे सांस रोके खड़े थे। दोपहर होते होते शहर ने तन्वी को बरखादत्त सम्मान से नवाज दिया और भुजंगनाथ ‘अघोरीनाथ’ के रूप में सम्मानित किये गये। दोनों की ब्रांडिंग हो चुकी थी।”

ऋषभ को कुछ उमस महसूस हुई। पर कहानी को चौकन्ना होकर वह सुनता रहा। हिन्दी का प्राध्यापक मूलतः आलोचक होने का दावा करता है, सो उसने भी दावेदारी रखी “काहे की ब्रांडिंग? अभी अभी चायेवाले ने जोगी को नाप दिया?” यह तीखा व्यंग्य था, अरूप को चुभ गया। उसने तर्क पेश किया “दो चार लोगों के घृणा करने से क्या हो जाता है? शहर के उन पिछड़े इलाकों और आसपास के गांवों में जाकर देखो तो समझ में आ जायेगा। वहां भुजंगनाथ को चढ़ावे में, जिसे तुम भीख ही कहोगे, इतना मिल जाता है कि अंदाजा नहीं लगा सकते। क्या क्या नहीं मिलता उसे। इसे तुम लोगों की जाहिली कहो, भुजंग का आकार या मीडिया का आरोपित आतंक, पर भुजंगनाथ मजे में जी रहा है, ब्रांड की तरह। वह नहीं चाहता कि लोग इस सच को जानें कि उसने मुर्दा नहीं उस रात भुने मुर्गे को खाया था मार्केट खराब हो जायेगा।” और यह बात खत्म करते करते अरूप ने ऋषभ की पीठ ठोक कर ‘आंख मार’ दी “समझे बबुआ?”

हिन्दी आलोचना ध्वस्त हो गयी। रिक्शा बाजार के जाम से बाहर निकल कर तेजी से सरसराने लगा, सांप की तरह। इसी बीच अरूप ने ऋषभ को कुछ और बातें बतायीं जो बेमतलब की थीं। जैसे कि फिर भी द सिटी चैनल में वो बात नहीं रही, मसलन उसका पटना के बड़े चैनल से ‘क्लब’ होना है, या फिर तन्वी पटना जाने के चक्कर में है, या सेठवा साला चरित्रहीन है, शहर के मीडिया को उसने ही पहले गंदा किया। सेठ राष्ट्रीय अखबारों के लोकल पत्रकारों को दो सौ चार सौ रुपया चटा कर उन्हीं खबरों को छपवाने के फिराक में रहता है जो उसका चैनल दिखाता है। तन्वी की मशान वाली कवरेज उस घटना के दो दिन बाद किसी निजी राष्ट्रीय न्यूज चैनल के ‘कपाल महाकाल’ में दिखायी गयी। इस ‘राष्ट्रीय प्रसारण के बाद तन्वी की रंगत और खिल गयी। साला लोमड़ खोपड़ी है सेठवा। अब धंधा मंदा हो रहा है तो रूलिंग पार्टी से टिकट लेकर यहां से चुनाव लड़ने के चक्कर में है वगैरह वगैरह। ऋषभ कभी ‘हूँ’ कभी ‘हां’ कहता रहा। अरूप समझ गया कि मास्टर जी अब कुछ सुनने के मूड में नहीं हैं, सो वह भी चुप हो गया। रिक्शा गंतव्य के अंतिम मोड़ के रोड ‘ब्रेकर’ पर जोर से उछला और तेजी से चलता चला गया।

रिक्शे पर बैठे बैठे ऋषभ को यह भय सता रहा था कि अरूप कहीं आज की रात उसके साथ ही न ठहर जाये। उसके दिमाग का कबाड़ा पहले ही बहुत हो चुका था, अब दिमाग को और छेड़खानी बर्दाश्त नहीं। उसने अरूप से पिण्ड छुड़ाने के लिए ही सही अपने मुहल्ले से चार गली पहले के ‘छोटे बाजार’ में रिक्शा रुकवा दिया। इस बार अरूप के चौंकने की बारी थी “क्यों? क्या हुआ?”

“ईमेल चेक करना है, कई दिन हो गये हैं। सामने वाले ‘साइबर कैफे’ में बैठूंगा।”

“इसमें? यहां?” अरूप चौंका।

ऋषभ चिढ़ गया और ‘क्या हो गया?’ कह कर वह रिक्शे से उतर गया। फिर बोला “में”

रिक्शाभाड़ा दे देता हूँ, तुम्हें जहां जाना है जाओ।” पर इन पंक्तियों में ऋषभ ने बेरुखी नहीं झलकने दी। अरूप बोला “मैं तो चला जाऊंगा, पर तुम जहां जा रहे हो न वह इस शहर के साइबर अपराध की राजधानी है।” ऋषभ और चिढ़ गया, बिफर गया “क्या बकते हो यार?”

अरूप रिक्शे पर बैठे बैठे दार्शनिक भाव से बोला “यहां के ‘साइबर कैफे’ में छोटे छोटे बाक्स बनाये गये हैं, जहां शहर के तमाम लौण्डे ‘पौंड़ी’ देखते हैं, मोबाइल पर ‘लोड’ करते हैं। यहां के ‘साइबर कैफे’ में जाओ तो इस शहर के लोग ऐसे देखते हैं मानो रंडीबाजी करने जा रहे हो। यहां तो साइबर रिपोर्टिंग का भी स्पेस नहीं है बचुवा। वैसे यहां ‘चारज’ भी साला बहुत ज्यादा करता है।” ऋषभ अशोभनीय भाषा कभी बर्दाश्त ही नहीं कर पाता था, उसने दस सेकेण्ड कुछ सोचा, फिर अपनी आंखें छोटी करके एक एक शब्द चबाते हुए बोला “मुझे तो कई बार लगता है न अरूप... कि.. .. तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व झूठ और गप्प के अणुओं से बना है।” इतना कह कर उसने रिक्शेवाले को तीस रुपये दिये और ‘कैफे’ में घुस गया। पीछे से अरूप के शब्द सुनायी पड़े “चल रिक्शा.. .. साली दुनिया भरोसे की नहीं रही अब।”

‘कैफे’ में सचमुच बॉक्स बने थे। कुल आठ, जिन पर सफेद रंग से नम्बर लिखे थे। फिर भी अरूप की बात झूठ साबित हुई, बाक्स नम्बर एक, पांच और सात खुले हुए थे जिन पर बैठा युवा सम्प्रदाय मेल, फेसबुक, ऑस्कट की सवारी कर रहा था। बाकी के बाक्स बंद थे। सचमुच। वह दो नम्बर बाक्स में घुस गया।

दो नम्बर स्वाभाविक रूप से एक और तीन के बीच में था। तीन नम्बर बॉक्स बंद था। ऋषभ को वहां बैठे अभी घंटा भर भी नहीं हुआ कि बॉक्स नम्बर तीन के नेटसवार का ‘इयर फोन’ कम्प्यूटर से बाहर निकल गया। कम्प्यूटर में से धमाके के साथ आवाज आयी ‘उंहह... आंहह’। यह लड़की की आवाज थी। काउंटर पर बैठा हुआ अधेड़ हड़हड़ा कर उठा और धड़धड़ाते हुए बाक्स नम्बर तीन पीटने लगा। तब तक उस आवाज की आवृत्ति और भी उंची हो गयी। बॉक्स पर भड़भड़ाता हुआ हाथ, और वह आवृत्ति ऐसा दृश्य उपस्थित कर चुके थे कि बाकी बक्सों में बैठे ‘सर्फर’ ठट्ठा मार कर हंस पड़े। अधेड़ बाक्स नम्बर तीन के युवा पर चीखने लगा “पगलेट हो का जी एकदम? साला देखना है तो चुपचाप देखो, नहीं तो उठा कर बाहर फेंक देंगे। बक्सा देखने के लिए बनाया गया है, देख कर देह ऐंठने के लिए नहीं।” ‘वह’ आवाज तो थम गयी थी, पर हंसी की लहर पूरे ‘कैफे’ में उमड़ती रही।

जिस तकनीक और प्रौद्योगिकी का निर्माण समय बचाने के लिए हुआ था वे सबसे बड़े समयखोर निकले। ऋषभ घंटों बैठा रहा और समय गुजरने का उसे आभास तक नहीं हुआ। जब उसका मोबाइल बजा तब उसने समय देखा तीन घंटे होने जा रहे हैं। फोन अरूप ने किया था। भन्नाते हुए ऋषभ ने हरा बटन दबा दिया “हां बोलो।” अरूप ने जब उससे पूछा कि ‘कहां हैं जनाब’ तो उसका जी हुआ कि बोल दे उसी ‘पाड़े’ में हूँ, पर संयम उसकी प्रवृत्ति थी, बोला “साइबर कैफे मे ही हूँ, बताओ?” अरूप ने जानबूझ कर एक खास लरजती हुई आवाज निकाली “उंहहूँ... क्या बात है...?” ऋषभ ये इशारे समझता था, बिदक गया “यार प्लीज, तमीज में रहो।” अरूप का पेशा ही ऐसा था कि वह सामने वाले का ‘टेम्परेचर’ तुरत नाप लेता था, बात बदल कर बोला “जल्दी बाहर आओ एक मुसीबत में हूँ।” ऋषभ को इस मुसीबत पर भरोसा नहीं था। फिर भी वह वहां से उठा, शायद उठना ही चाह रहा था और काउंटर पर हिसाब करके बाहर आ गया। बाहर सचमुच अंधेरा उतरने को था। ऋषभ की निगाह ‘मुसीबत’ में फंसे अरूप की टोह लेने लगी। तभी बिजली गुल हो गयी। आकाश का अंधेरा ‘छोटे बाजार’ में उतर गया। पर थोड़ी ही देर में सम्भ्रांत दुकानों से जनरेटर चीखने लगे, और चीखते चीखते अभी अभी उतरे उंधेरे को वापस आसमान में टांग दिया।

इधर छोटी दुकानों के दुकानदार बिहार सरकार, भारत सरकार और ईश्वर जैसी चीज को लानत भेजते हुए कैण्डल लालटेन से जूझने लगे। रोशनी शक्ल बदल कर लौट आयी।

ऋषभ ने अरूप को फोन किया “कहां हो यार?” उधर से अरूप ने आवाज दी “तुम्हारे सामने मिट्टू हलवाई की दुकान है, देख रहे हो न, उसी के बगल वाली गली में घुसो।” ऋषभ ने आश्चर्य से उस ओर देखा। बजबजाती हुई नाली के पास सचमुच मिठाई की दुकान थी। कोयले के चीकट धुएं से ‘मिट्टू हलवाई’ का ‘टू’ छुप गया था। ऋषभ ने उसे पढ़ा कि ‘मि हलवाई’ और पास की संकरी गली को देख कर चौंका “इस गली में?” अरूप उधर हड़बड़ाया हुआ था “भाई, बहस मत करो आ जाओ।” उसकी आवाज हल्की कांप रही थी। ऋषभ अंधेरी सुरंग में घुस गया। गली में कुछ देर चलते रहने के बाद उसने एक खम्भे की आड़ लेकर अरूप को खड़ा देखा। ऋषभ ने ही पूछा “क्या हो गया?”

‘पहले चलो यहां से’ कहते हुए अरूप ऋषभ के साथ भीतर की गलियां पार करने लगा। गलियों के लोगों ने दियाबाती शुरू कर दी थी, नहीं तो इस अंधेर नगरी को पार करना असम्भव ही था। एक शांत और संकरी गली में उनके घुसते ही एक लड़का प्रकट हुआ। अंधेरे में उसकी शक्ल नहीं देखी जा सकती थी, पर ऋषभ ने अंदाजा लगाया गोलू मोलू सा, टिंगना कद लिए वह अचानक उपस्थित हुआ है। अरूप ने कहा “इ रिसभ भइया हैं, प्रणाम करो।” लड़का ऋषभ के घुटनों की ओर झुक गया।

ऋषभ ने फिर पूछा “मामला क्या है?” अरूप ने उत्तर दिया “इस लड़के को आज रात तुम अपने कमरे पर ठहरा दो, तुम्हें हमारी दोस्ती की कसम, ना मत कहना।” एक खिड़की से छन कर आ रही रोशनी में ऋषभ ने उस गोलमटोल काया की ओर भरपूर निगाह डालने की कोशिश की। सफेद गंदी टीशर्ट और जींस पहने उस सांवले लड़के की आंखें चमक रही थीं जो कि प्रार्थना की मुद्रा में हाथ जोड़े खड़ा था। अजीब मुसीबत थी। तभी घरों के बिजली के बल्ब जल उठे, ‘लाइट’ आ गयी। वे जहां खड़े थे वहां का लैम्पपोस्ट आंखें मिचमिचा कर जल गया। ऋषभ ने केवल इतना ही देखा कि गंदे टीशर्ट और फटी जींस में खड़े उस लड़के के पैरों में चप्पल तक नहीं थी। वह अरूप को खींच कर थोड़ी दूर ले गया और दांत पीस कर फुसफुसाया “ये किस भिखमंगे को मेरे साथ ठहरा रहे हो?” अरूप ने ठीक उसी अंदाज में जवाबी कार्रवाई की “हद है यार? ये मेरा रिश्तेदार है, इसके शराबी बाप और सौतेली मां ने इसका जीना हराम कर रखा है, रात भर की तो बात है?” ऋषभ ने साफ मना कर दिया। अरूप पहली बार हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाया “मैं हाथ जोड़ता हूं, मैं आज रात ही पटना जा रहा हूं, नहीं तो यह मेरे साथ रुकता, बेबस है बिचारा, रात भर ठहरा लो, मिन्नत कर रहा हूं।” ऋषभ फिर भी नहीं माना। अरूप उदास हो गया, बोला “जाओ ऋषभ, जाओ... तुम लोग साहित्य को पढ़ने पढ़ाने का केवल ढोंग करते हो, करुणा नहीं है तुम लोगों में...”

ऋषभ कुछ नहीं बोला वहां से चल पड़ा। पीछे से अरूप ने अंतिम अस्त्र चला दिया “भवभूति को पढ़ाते हुए तुम्हें कोई शर्म नहीं आती क्या?” आवाज गली में गूंज गयी। ऋषभ के कदम वहीं थम गये। यह मामला व्यक्तिगत न होकर अखिल भारतीय हो गया। साहित्य की कसौटी और उसके व्यक्ति मन पर पड़ने वाले प्रभाव का मामला था। ऋषभ के मन में आया कि वह बोल दे कि साहित्य की कसौटियां बदल चुकी हैं, कुछ भी अखिल भारतीय नहीं अब, ‘पाठ’ भी बदल गया है, ‘सहृदय’ भी। पर इन स्थापनाओं को लेकर वह खुद सहमत नहीं था, क्या बोलता?

फिर सारा दृश्य ही बदल गया। अरूप चला गया पर उसके निर्देशानुसार वह छोकरा ऋषभ को अपने पीछे पीछे गली दर गली घुमाते हुए अचानक ऋषभ के घर वाली गली में पहुंचा। ऋषभ

को हैरानी हुई कि अब तक उसे पता नहीं था कि 'छोटे बाजार' से आने का एक छोटा रास्ता यह भी है। गली में आकर दोनों खड़े हो गये, लड़का बहुत डरा हुआ लग रहा था, उसकी हरकतें बता रही थीं कि वह आसपास के लोगों की निगाह से बचना चाह रहा था। उसने हाथ जोड़े "भइया जी, जल्दी हमको ले चलिए।" हाथ जोड़ते वक्त उसकी गर्दन उसके दोनों कंधों के बीच धंस गयी और आंखें उसके दयनीय होने की कथा कह रही थीं। फिर दोनों चौथे मकान की पहली मंजिल की सीढ़ियों पर चढ़ कर गये। एक कमरे का छोटा सा साफ सुथरा फ्लैट उस लड़के की आंखों को सुकून देने लगा। शायद वह खुद को सुरक्षित महसूस कर रहा था। लड़का फर्श पर बैठ गया, ऋषभ आरामकुर्सी पर। थकान ऋषभ की पलकों को दबोचे जा रही थी। वह कुछ सोचता कि उस लड़के का स्वर हवा में तैरा "भइया जी... भइया जी हम भिखमंगा नहीं हैं भइया जी।" उसके कहने में इतनी करुणा थी कि ऋषभ कुर्सी में धंस गया। उसने गर्दन घुमायी तब तक देर हो चुकी थी। उस लड़के की आंखों से आंसू झरने लगे थे, होंठ फड़फड़ाने लगे। ऋषभ को लगा कि लड़का दहाड़ मार कर रो देगा। वह रोया भी पर सिसकियों के साथ रोया। लड़के की आंखें बंद थीं पर उनमें से आंसू झरे जा रहे थे। उसकी सिसकियों से ऋषभ का कमरा सिहर गया। ऋषभ के भीतर 'भवभूति' अब जाकर प्रकट हुए।

ऋषभ बिना कुछ बोले आरामकुर्सी से उठा और ग्लास में पानी भर कर उस लड़के को दिया। लड़का चुपचाप लगभग एक ही घूंट में सारा पानी पी गया। ऋषभ ने पूछा "और?" तो उसने ना में सिर हिलाया। उसके इस तरह से सिर हिलाने से ऋषभ को किसी की याद आ गयी। वह हैरान हुआ, फिर थोड़ी देर रुक कर पूछा "खाना खा लो।" उस लड़के ने फिर प्रार्थना की वही मुद्रा अपनायी "नहीं भइया जी... मन नहीं है... हमको सोना है बस... दो दिन से सोये नहीं हैं।" उसकी आंखें अब भी पनियल थीं। 'कातरता' जैसे शब्द का वास्तविक अर्थ क्या हो सकता है, ऋषभ को अब पता चला। ऋषभ ने उसकी 'कातरता' पर मुस्कराहट की असफल परत चढ़ाने की कोशिश की और कहा "ठीक है, सो जाओ।" और वह खुद आरामकुर्सी पर आकर बैठ गया। उसे भी भयानक नींद आ रही थी। फिर भी उसने डायरी के उस पन्ने को एक बार फिर खोला जिसे वह आज दिन भर साथ लिए लिए घूमता रहा। उसने फिर उस लिखे को पढ़ा "ऋषभ माने बैल, ऋषभ तुम बैल हो"। उसने अपनी हथेलियों को उन पन्नों पर फेरना शुरू किया। उसकी एकाग्रता लड़के ने भंग कर दी "भइया जी... भइया जी हमारे बाबू जी पुलिस में थे।" लड़के की आवाज में एक कंपकपी थी। लड़का फर्श पर ही लेटा हुआ था। ऋषभ 'हूँ' कह कर चुप हो गया। ऋषभ दूसरी दुनिया में जा चुका था। उसकी आंखें छत पर टिक गयीं। छत के जिस सफेद हिस्से पर ऋषभ की आंखें टिकी थीं, ठीक उसी के बगल में एक मकड़ी अपना जाल बुन रही थी।

ऋषभ जब उस दुनिया से लौटा तो लड़के की नाक बज रही थी। वह खरटे मारने लगा। ऋषभ उठा और गुसलखाने में चला गया। वह गुसलखाने से बाहर आया तब तक खर्राटों की आवाज थम चुकी थी। लड़का पेट के बल हाथ पैर फैला कर बेसुध पड़ा था। उसके इस तरह सोने से उसे फिर किसी की याद आयी, उसने उस 'याद' पर जोर दिया तो चौंक गया "पार्श्व!" पार्श्व ऋषभ का छोटा भाई था। इसी कद काठी का, पर वह इतना सांवला नहीं था। इस लड़के के सिर हिला कर 'ना' कहने का अंदाज, हाथ पैर फेंक कर पेट के बल सोना, सब पार्श्व की तरह ही था। तीन महीने हो गये ऋषभ को घर से आये... उस लड़के ने ऋषभ के मन को सोये सोये ही कुरेद दिया था। ऋषभ झांक कर उस लड़के को गौर से देखने लगा। चौदह पंद्रह से ज्यादा की उम्र नहीं है। मसं भीग चुकी थीं। लड़के के होंठ खुले थे और मुंह के भीतर से लार की पतली धार उसके होंठ का कोना

पकड़ कर फर्श पर इकट्ठी हो रही थी। ऋषभ ने वहां से अपना ध्यान हटा लिया। फिर उसकी नजर लड़के की पीठ पर गयी जहां उसकी टीशर्ट सिकुड़ कर ऊपर चढ़ी हुई थी। देह के उस हिस्से से ताजे जखम झांक रहे थे। साफ लग रहा था कि किसी भयानक चीज से उसकी चमड़ी उधेड़ दी गयी है। उफ...। कितना क्रूर है यह शहर?

अचानक ऋषभ का ध्यान भंग करते हुए उस लड़के के शरीर ने हरकत की और नींद में ही 'माई रे...' बड़बड़ाया। जैसे वह सपने में किसी बुरी चीज से डर गया हो। फिर वह वैसे ही सोता रहा, पेट के बल। ऋषभ वहां से हट गया, उसने सोचा कि लड़के ने नींद में अपनी मरी हुई मां को याद किया है। उसे खाने की इच्छा बिल्कुल नहीं थी। उसने बत्ती बुझा दी और समय से बहुत पहले बिस्तर पर पसर गया। पर बत्ती बुझाने से क्या होता है? ऋषभ कैण्डिल की तरह फिर भी जल रहा था। गल रहा था। अंधेरे में 'तनया कुमारिका' की छवि एक बार फिर कौंधी। काश, ऋषभ लेखक होता। अगर होता तो इस भावतंत्र से बाहर निकल सकता था। एक लेखक से ज्यादा संवेदनशील कोई नहीं होता, पर उससे ज्यादा क्रूर भी कोई नहीं हो सकता। लेखक भावनाओं का गोताखोर होता है, वह जिस रफ्तार से उसकी तह में जाता है उसी रफ्तार से बाहर भी आ जाता है। और ऐसा वह कई कई बार करता रहता है। पर ऋषभ लेखक नहीं मास्टर था। ऊपर से हिन्दी का। हिन्दी का मास्टर भावातिरेक की अवस्था में तब तक रहता है जब तक वह खुद को थोड़ा 'डैमेज' न कर ले। उसने मोबाइल उठा कर तन्वी को मैसेज भेजा "तन्वी, सेठ जगतानंद बुरा आदमी है, उसके साथ मत रहो। गुडनाइट।"

सोता हुआ ऋषभ तन्वी से अपनी अंतिम मुलाकात को स्मृतियों के धुंधलके से खींच निकालना चाह रहा था। देर तक मशक्कत के बाद दृश्य थोड़ा साफ हुआ। ऋषभ और तन्वी कहीं जाना चाह रहे हैं। कोई रिक्शेवाला 'कहीं' जाने के लिए तैयार नहीं। गुस्से में तन्वी एक बूढ़े रिक्शेवान के रिक्शे पर बैठ जाती है "चौक ले चलो।" रिक्शावाला खांसते हुए मना कर देता है। तन्वी उखड़ जाती है "लड़की है तो नाजायज फायदा उठाते हो, दस पांच ज्यादा चाहते हो तो बोलो न जी?" रिक्शेवाला गुस्से की नजर से उसे देखता है। तन्वी उसे देखने को 'मौका' समझ कर उस पर झपट पड़ती है "वेशर्म हो एकदम, बूढ़े हो गये हो और लड़की को घूरते हो, बुलाएं पुलिस को?" रिक्शेवाले का गुस्सा घृणा में बदल जाता है "इ का कह रहीं है आप? आप से ज्यादा बड़ी हमारी बेटी है हम ऐसे आदमी नहीं।" वाक्य खत्म करते करते रिक्शेवाला शर्म से झंप गया है, फिर बोला "चौक के रास्ते रोड़ा बिछा हुआ है, रिक्शा खींचने पर खून का उल्टी हो जायेगा... इसीलिए कोई नहीं जा रहा।" 'चलो चलो बड़े आये खून फेंकनेवाले' कह कर एक तल्वी के साथ वह रिक्शे पर बैठ जाती है और इशारे से ऋषभ को भी रिक्शे में बैठने को कह देती है।

दृश्य बदलता है। बड़े बड़े रोड़ों पर उछलता हुआ रिक्शा जिसे एक बूढ़ा रिक्शेवाला जान देकर खींचने जैसा खींच रहा है। हांफते हुए। देह की, गले की, हाथ की नसें फूल रही हैं मानों उनमें किसी ने पानी भर दिया हो। रिक्शा जितना उछलता, उतना ही रिक्शेवाले का पसीना उसके शरीर से उछल कर जमीन पर गिर जाता था। चाल धीमी हुई, रिक्शेवाला रिक्शे से उतर जाता है, फिर खींचता है, दाहिने हाथ की नसें शरीर छोड़ कर बाहर आना चाहती हैं, उसके दाहिने पैर के अंगूठे से जखम रिस रहा है... ऋषभ उन जख्मों में धंसता जाता है। धंसते डूबते ऋषभ अचानक चीखता है "रूको।" तन्वी आश्चर्य से उसे निहारती है। ऋषभ रिक्शे से उतर जाता है, उसके पैरों के नीचे के रोड़े उसके जूते को भी छेद रहे हैं, वह तन्वी को घूरता है "कितनी क्रूर हो तुम?" फिर सब कुछ अंधेरे में डूब गया।

कायाक्लेश्लेस का शहर

बतउलझी : जीव अपने कर्मों का फल भोगता है। उसे सुख दुःख की वेदनाएं होती हैं। वह सक्रिय और कर्म करने में स्वतंत्र है। वह अपनी इच्छा से शुभ या अशुभ कर्म करता है और पाप पुण्य का भागी होता है। जीव अपने भाग्य का प्रभु स्वयं होता है। वह स्वयं बंधन में पड़ता है और स्वयं बंधन से मुक्त होता है।

सुबह उसकी आंखें देर से खुलीं। पर रोज की तरह माथे पर वह भारीपन नहीं था। बिस्तर से उसके उठने से पहले ही उसके मोबाइल के मैसेज बॉक्स में... 'कुछ' आया, मोबाइल 'टीव' करके चुप हो गया। यह तन्वी थी जिसने लिखा था 'ओफ़् ऋषभ प्लीज अपने विचार अपने पास रखो, जगत सेठ क्या है, मैं भी जानती हूं, पर मुझे यह भी पता है कि किसको किस हद तक छूट देनी है। पटना में हूं।' यह हल्की सुबह फिर भारी हो गयी। यह रात के मशवरे का जवाबी हमला था, एक शाब्दिक कार्रवाई। ऋषभ ने दांत भींच लिए। सुबह हुई नहीं कि गुस्सा चढ़ गया, धूप से पहले।

वह बिस्तर से भन्नाते हुए उठा तो दरवाजा खुला हुआ था।

'हैं...?'

रात का सारा घटनाक्रम बिजली की तरह उसके दिमाग में चक्कर काटने लगा। 'वह लड़का कहां है?' उसने मन ही मन पूछा और तेजी से उठ कर गुसलखाने में झांकने लगा। कोई नहीं था वहां। फिर वह टेबल पर रखे पर्स को खोल कर देखने लगा। दो सौ तेरह रुपये। उसने हिसाब लगाया तो पाया कि रात तक इसमें सात सौ तेरह रुपये थे। पांच सौ रुपये उसके पर्स से उड़ गये थे। उसे तकलीफ से ज्यादा तत्काल गुस्से ने घेर लिया। वह एक 'चूतिया' था जिसे लोग अब जान गये थे। अचानक उसे अपने 'करुणा भाव' से नफरत होने लगी। अरूप, वह लड़का, सिसकियां, तकलीफ सब जाल है साला। दिमाग की तनी हुई नसों के साथ उसने दरवाजा बंद किया और गुसलखाने में चला गया। मोबाइल के साथ।

कमोड पर बैठे बैठे उसने दस बार अरूप को फोन लगाया, पर 'स्विच ऑफ' की ध्वनियों के सिवाय कुछ हाथ नहीं लगा। उसके भीतर बहुत कुछ एक साथ खदबदाने लगा। वह बार बार अपने करुण भाव पर पछताता रहा। उसकी आत्मा बार बार नीत्सी की तरह उससे कह रही थी कि करुणा एक रोग है जो मनुष्य को बलशाली, तेजस्वी बनने से न केवल रोकती है बल्कि मनुष्य के साथ साथ धर्म, सभ्यता और संस्कृति को पौरुषहीन बनाती है। इस पौरुषहीन बनने की नयी व्याख्या 'चूतिया' बनना है। 'भवभूति' तत्काल सबसे बड़े झूठ थे। उसकी आंखें लाल हो गयी थीं जिनमें से पूरी दुनिया फरेबी नजर आ रही थी। दिमाग की नसों में दौड़ रहे असंख्य आलोड़न को रोकने की कोशिश करते हुए ऋषभ ने एक लम्बी सांस ली और कमोड पर बैठे बैठे उसने अपनी सभी सांसों का वजन पेट पर पटक मारा, ...फिर वह ध्यानमग्न हो गया।

आज उसने नोटिस ही नहीं किया कि उसके गुसलखाने के झरोखे पर धूप उतर आयी थी। वह स्कूली बच्चा स्कूल जा चुका था, उस बच्चे की मां ने कोई गाली नहीं बकी, बच्चे का बाप और दादी गुमसुम थे। 'स्कूल कैब' के ड्राइवर ने कोई लानत मलानत नहीं भेजी... सब कुछ शांत था। सिवाय उसके।

आज क्लास में पढ़ाते वक्त उसके दिमाग के दो हिस्से हो चुके थे। एक हिस्से में तन्वी 'टनटना' रही थी, तो दूसरे में अरूप और वह छोकरा। उसे चोरी के तरीके पर ताज्जुब हो रहा था। यह आधी चोरी क्यों? सात सौ तेरह रुपये में से पांच सौ ही क्यों ले गया? बाकी क्यों छोड़ गया?

उसे भ्रम होने लगा, क्लास में उसके वाक्य विन्यास टूटने लगे, 'राम की शक्तिपूजा' में 'शत घूर्णावर्त' और 'जल राशि राशि' की जो 'पछाड़' थी, वह ठीक उसके सिर के पिछले हिस्से पर पड़ रही थी। उसने फिर 'तनया कुमारिका' को 'लम्पट रावण' के चंगुल से निकालने की बैचैनी में दो बार सेठ जगतानंद को याद किया।

समर हार कर अधूरी क्लास उसने छोड़ दी और बाहर आ गया। कितना झेलता वह इस तन्वी को, उस अरूप को, लड़के को और ऊपर से कठिन क्लास के इस 'टेक्स्ट' को। प्रिंसिपल को अर्जी देकर वह अपने कमरे की ओर लौटने लगा। उसे सबने धोखा दिया है। इस धोखेबाजी का कोई विश्लेषण नहीं हो पा रहा था। सब कुछ अबूझ पहेली की तरह गले से लिपट चुका था। वह लड़खड़ाते हुए चर्च के पास से गुजरा... उसने पलट कर देखा भी नहीं कि चर्च कैसा है आज? जोड़ा कबूतर उसके इंतजार में फड़फड़ाते रहे, पर वह भावहीन चलता रहा। सामने से एक सफेद कार गुजरी जिसमें कोई अधेड़ ठहाके मारता हुआ दिखा। साथ में कोई लड़की थी। कार जब पास से गुजरी तो ऋषभ झटका खाकर चौंक गया... 'तनया कुमारिका?' पर कार की रफ्तार ने उसे दुबारा दृष्टिपात करने का मौका ही नहीं दिया। कार हनहनाती हुई निकल गयी। 'यह तन्वी थी?' सवाल उसके मन ने किया और दिमाग ने उसका साथ दे दिया। स्मृतियों, ताजा जख्मों और हालिया दृश्य ने उसके फेफड़ों को झकझोर दिया। उसने अपनी सांसें नियंत्रित कीं और मोबाइल पर गिन कर पांच शब्द लिख डाले 'तुम... एक ...बीमार... हो, तन्वी।'

कमरे में दिन भर उसके भीतर का लावा पिघलता रहा, पर लावा पिघलने के साथ ही पसरता चला गया। जो शब्द उसके धर्म में सबसे ज्यादा वर्जित था वह उसी शब्द के साथ सोता जगता रहा बैचैनी। उसका सम्यक् चरित्र बिस्तर के नीचे कहीं दुबक गया था। वह रो रहा था कि गुस्से में था या गालियां बुन रहा था कोई नहीं जान पाया, खुद वह भी नहीं। दो दिन दो रात वह कहीं नहीं था। शून्य में भी नहीं।

तीसरे दिन उसे प्रिंसिपल महावीर जैन ने फोन किया तो उसने 'दो दिन और' छुट्टी की मौखिक अर्जी दे डाली। बस।

उसी दिन अरूप ने मिस कॉल दिया और लावे ने विस्फोट के लिए रास्ता देखा "अरूप बाबू डकैती ही करानी थी तो... चोरी का धंधा पत्रकार बनने से बेहतर... गंदी नाली के... शहर नहीं शैतानों का घर है...।" फोन कट। अरूप को इतना कठोर बोलते वक्त वह महसूस कर रहा था कि वह क्या बोल रहा है। फिर घंटी दिन भर नहीं बजी। उसके अगले दिन आश्चर्यजनक ढंग से अरूप ने मिस काल देने की जगह स्वयं फोन किया। ऋषभ के 'हैलो' के बाद उधर से सिसकियां सुनायी पड़ीं। अरूप रो रहा था? पहली बार उसने अरूप को रोते हुए सुना। इससे पहले कि ऋषभ के भीतर के 'भवभूति' कुछ कहते उसने 'भवभूति' को पकड़ कर दबा दिया, तब बोला "अरूप मैं तो तुम्हें सच्चा दोस्त समझता था...।" अरूप सिसकियां लेता हुआ चुप हो गया। दोनों एक दूसरे की सांसें सुनने लगे। देर तक। फिर अरूप लड़खड़ाते हुए बोला "इसमें मेरा कोई कसूर नहीं..." और चुप हो गया।

ऋषभ कलेजा कठोर किये हुए था, उसने अंतिम सवाल किया "अरूप... वह लड़का कौन था अरूप?" अरूप चुप रहा। ऋषभ ने तलखी से फिर वही सवाल दुहराया, फिर भी अरूप गूंगा बना रहा।

"वह तुम्हारा रिश्तेदार तो नहीं था, यह मैं जानता हूँ। मैं मुकदमा नहीं करने जा रहा हूँ पांच सौ रुपये के लिए... पर पता तो चले कि ऐसे लड़के को मुझे क्यों सौंपा गया? बताओ तो?" ऋषभ संयत होकर सवाल करता गया। पर अरूप चुपचाप अपनी सांसों की मौजूदगी दर्ज कराता गया।

“हृद है यार...? हृद है? कुछ तो बोलो?” ऋषभ जानबूझ कर चीखा। उसे यह बात समझ में नहीं आ रही थी कि एक रोता हुआ पत्रकार चुप क्यों है? अरूप जितना चुप रहा ऋषभ उतना ही संशय में पड़ता गया। अंत में उसने फोन रखने की मुद्रा में कहा “ठीक है मत बताओ... पर याद रखना कि तुमने एक ऐसे लड़के को मेरे साथ भेजा था जिस पर मैं पहली बार में भरोसा नहीं कर पाया, पर तुम्हारे लिए मैंने...” बात अधूरी ही रह गयी। फिर ‘कैसे दोस्त हो तुम अरूप?’ का ताना मारा ऋषभ ने। अरूप की सिसकियां फिर फूट पड़ीं।

ऋषभ को मामला और संगीन दिखने लगा। उसने बात बदल कर सवाल किया “किसी परेशानी में हो?”

“नहीं।” भरति हुए अरूप बोला।

“तो क्यों रो रहे हो?”

‘मैंने चोरी नहीं करवायी।’ कह कर अरूप बिलख पड़ा। ऋषभ के ‘भवभूति’ झटके के साथ खड़े हो गये “तो रो क्यों रहे हो दोस्त?”

अरूप चुप हो गया “कुछ नहीं।”

‘खैर जाने दो, मैं उस घटना पर तुम्हें कुछ नहीं बोलूंगा, मैं अब उसे भुला देना चाहता हूं, जल्दी मुझे मिलो’ कह कर ऋषभ ने फोन काट दिया। अजीब हालात हो गये थे। ऋषभ फोन रख कर इस हालात पर नये सिरे से सोचता कि फिर अरूप ने फोन किया।

“हां, बोलो अरूप।”

“तुम मुझे गलत मत समझना, बस इतना समझो कि मैं तुम्हारा बुरा कभी नहीं चाहूंगा...”

“ठीक है... क्या कहना है तुम्हें अब?” ऋषभ ने सवाल किया।

“जो लड़का तुम्हारे कमरे पर ठहरा था न ऋषभ उसका नाम छबीला सिंह है।”

“कौन छबीला?” ऋषभ ने यह सवाल किया, पर सवाल खत्म होते होते उसके शरीर में झनझनाहट फैल गयी। ‘छबीला?’ ‘रंगबाज?’ तभी अरूप ने पुष्टि कर दी “छबीला सिंह वही है जिसे शहर आतंक कहता है।”

“क्या बकते हो अरूप? चूतिया बनाने के लिए बार बार मैं ही तुम्हें मिलता हूं?” ऋषभ चीख पड़ा। ऋषभ की भाषा के सारे संस्कार विलोपन के कगार पर आ गये। उत्तेजना से उसकी नसें फूल गयीं। उसे यह सब एक बार फिर ‘गप्प’ लगने लगा, निरी कहानी। “मैं सच कह रहा हूं ऋषभ।” ऋषभ फोन पर ही चीखने लगा “नहीं... मैं नहीं... तुम झूठे हो, कहानीबाज हो अरूप।” ऋषभ की बेचैनी अचानक से बढ़ गयी। उसको समझ नहीं आ रहा था कि वह उस दिन के सिसकते हुए लड़के को क्या माने? सोये में मुंह से लार टपकाने वाला सपने में ‘माई’ कह कर डरने वाला छबीला सिंह? नहीं नहीं, अरूप झूठा है। यह सम्भव ही नहीं। अरूप ने हार कर अंतिम लाइन जोड़ी “मैं रात में आऊंगा, बस मुझे गलत मत समझो।” फोन काट दिया अरूप ने। पर ऋषभ फोन को कान से अभी भी चिपकाये हुए था। फोन से ‘टॉप टॉप’ की आवाज आती रही, ऋषभ इससे बेपरवाह छत निहारता रहा, जो बिल्कुल सफेद थी।

हर वस्तु का मूल कारण आत्मा है, ऋषभ खंडन करता गया। उसके अगले दो दिन तक ऋषभ के पास कोई नहीं आया और ना ही किसी का फोन आया प्रिंसिपल, अरूप, तन्वी किसी ने भी उसे याद नहीं किया। अगले दो दिन तक वह सभी नौ रसों में डूबता उतरता रहा, बीच बीच में जब उस छोकरे की सिसकियों को वह याद करता तो पार्श्व का चेहरा उसके आगे घूम जाता और दसवें रस का उद्रेक हो जाता। फिर उसे घृणा होती इस शहर से, अरूप पर क्रोध आता, छोकरे पर गुस्सा

या दया। बस तन्वी का मामला अलग था। विप्रलम्भ श्रृंगार कभी कभी प्रतिशोध के भाव में रूपांतरित हो जाता। वह कभी नीत्ये को याद करता तो कभी महाभारत की उस पंक्ति को बुदबुदा बैठता 'प्रतिशोध सबसे शुद्ध भाव है'। पर वह कहीं नहीं पहुंचता। रसों का चक्र फिर से शुरू हो जाता। उसे एक तरह की महावारी ने धर लिया जिससे उबरने की कोई तिथि निश्चित नहीं थी।

उसने पिछले दिनों के सारे अखबार पढ़ डाले। अरूप के दैनिक कहे जाने वाले अखबार 'धरतीपुत्र' को भी वह पढ़ गया जो कि सप्ताह में कभी कभार छपता रहता था। पिछले पांच दिनों से वह अखबार नहीं आ रहा था। उसकी नजर 'धरतीपुत्र' के उस आखिरी प्रकाशन पर पड़ी जिसकी हेडलाइन थी 'छबीला फरार क्यों हुआ?' यह खबर उसी दिन छपी थी जिस दिन के ढलते ही अरूप ने ऋषभ से उस छोकरे की मुलाकात करायी थी। उसका दिल जोरों से धड़का 'ओह तो उस दिन लोग हमें इसीलिए घूर रहे थे।' फिर ऋषभ ने उसी दिन का कोई राष्ट्रीय अखबार खोला जिसमें 'शहर और आसपास' की मुख्य खबर थी 'आतंक का पर्याय छबीला सिंह फरार'। भीतर के कॉलम में राष्ट्रीय अखबार ने सूचित किया था कि 'हत्या, रंगदारी और लूट के सिलसिले में सजायपता खूंखार बाल अपराधी 'जुवेनाइल कस्टडी सेप्टर' की बीस फीट की ऊंची दीवार फांद कर भाग गया। उसके फरारी से शहर में एक बार फिर आतंक फैल गया है। इसके बाद वह अखबार कई सारी आईपीसी की धाराओं के साथ मुल्जिम के जुर्म को नथी करते हुए रंगा गया था। इधर 'धरतीपुत्र' के वरिष्ठ संवाददाता अरूप का मानना था कि गरीबी, भुखमरी और अपमान से लाचार एक 'बालक' को किस तरह से अपराधी की श्रेणी में आना पड़ा। जो मूलतः आया नहीं लाया गया है। पत्रकार ने उस केस को भी कोट किया था जिसमें उसके हाथों हुए 'खून' को निचली अदालत ने 'हादसा' मानने से इनकार भी नहीं किया और हाईकोर्ट में अपील करने का रास्ता छोड़ दिया था। छबीला की विधवा मां के पास पैसे होते तो छबीला बाहर होता। फिर पत्रकार ने कुछ सवाल सनसनी के साथ दागा था, क्या बाल सुधारगृह में भरपेट भोजन का न मिलना उसके भागने की एक बड़ी वजह है? क्या किसी तरह के अत्याचार ने छबीला सिंह को भागने के लिए बाध्य किया? और भी कई सवाल थे।

बस, ऋषभ ने बड़बड़ाते हुए अखबार मोड़ कर फेंक दिया "इस शहर में कुछ भी 'क्लियर' नहीं।" इसी पंक्ति को वह दो दिन तक दोहराता रहा। उसकी भाव तंत्रिका एक निश्चित निष्कर्ष चाहती थी, पर वह सम्भव नहीं था। अंततः वह अपने भावलोक से विस्थापित होने लगा। दो दिन तक न रात हुई, न दिन हुआ। सुबह शाम गायब थे। जो चीज बची थी वह कुछ भी नहीं थी। शून्य भी नहीं, पता नहीं क्या?

तीसरे दिन सुबह सब कुछ बदल गया। तन्वी ने ऋषभ को फोन किया "सुनो ऋषभ कान खोल कर सुनना और फोन मत रखना..." फिर तन्वी एक एक शब्द चबाते हुए बोलती गयी "आज के बाद अगर तुमने मुझे बीमार... या एक बीमार... कहा तो तुम्हारी जुबान काट कर कुत्तों को खिला दूंगी... समझे...?"

ऋषभ को भरोसा नहीं हुआ कि यह तन्वी है। उसने कहा "तन्वी!"

"नाम मत लो गंदी जुबान से... मैं दो दिन बिजी थी, सो जवाब नहीं दिया, तुमने मेरे चरित्र पर उंगली उठायी है, पर ऋषभ मत भूलो कि भगवान ने मुझे देह दी है तो बुद्धि भी दी है।"

ऋषभ कुछ कहने को हुआ तब उसने महसूस किया कि उसकी जुबान हलक में ही कहीं अटक गयी है। वह इस अप्रत्याशित हमले से सुन्न हो गया। उसने साहस करके कहा "तन्वी मैं तुम्हें बचा रहा था..." पर तन्वी एक ही सांस में बोलती गयी "अब तुम खुद को बचाओ...। ये मैसेज मैं पुलिस को दिखाऊंगी, तुम्हारे प्रिंसिपल को भी... तुम्हारी नौकरी..." और फोन कट गया।

ऋषभ के मस्तिष्क के अब तक जो दो हिस्से हुए थे अब एक हो गये। अरूप और छबीला अंतर्धान हो चुके थे। पूरे के पूरे मस्तिष्क पर जो चीज अब 'टनटना' रही थी वह तन्वी की आवाज थी। 'नहीं, यह तन्वी नहीं थी?' सोचता हुआ वह उठा और पानी पीकर कलेजा ठंडा करने लगा। लेकिन पानी की बौछारें जलते कलेजे पर गिरते ही भाप बन कर उड़ने लगीं। उसने एक बार फिर मोबाइल सर्च किया 'नम्बर तो वही है।' उफ्फ! ऋषभ ने महसूस किया कि उसकी टांगें कांप रही हैं। उसने तन्वी के कहे शब्दों को बटोर कर एक साथ समझना चाहा।

इस शहर का चरित्र अविश्वसनीय है। जो लड़की महीनों साथ साथ घूमी हो वो ऐसे कैसे हो सकती है? नहीं नहीं, यह शहर बहुरूपिया है, लोगों का भरोसा नहीं। अब वह जिस चीज को खोने से डर रहा था वह तन्वी का 'प्यार' नहीं नौकरी थी। एक हड़बड़ी के साथ वह उठा और अरूप को फोन मिलाने लगा।

'स्विच ऑफ'। बार बार वही। तुरंत उसने अरूप को मैसेज भेजा 'अरूप, तन्वी को मैंने गुस्से में शायद कुछ गलत मैसेज कर दिया था, वह पुलिस और प्रिंसिपल को उसे दिखा कर नौकरी पर आफत डालने जा रही है, उसे रोक लो दोस्त।' फिर मन ही मन उसने कहा 'जाओ तन्वी, आज से तुम मुक्त हो।' उसकी सांसें उखड़ चुकी थीं, बुरी तरह से। इस हादसे में मार डाले गये अपने रिश्तों की दुर्गति से ऋषभ की आंखें भर आयीं। वह बिस्तर पर औंधे मुंह गिर पड़ा और रात हो गयी, कई दिनों की रात।

ऋषभ वैसे ही बेसुध पड़ा रहा। कई तरह के कई सपने जब आदमी को सताने लगते हैं तब माना जाता है कि वह कमजोर पड़ रहा है। ऋषभ के सपने में कभी छबीला उसे भड़या जी कहता तब ऋषभ फट पड़ता "तुम छबीला नहीं हो, साले चोर कहीं के।" तो कभी तन्वी सेठ जगतानंद की जांच पर बैठी ऋषभ को पुकारने लगती। अरूप भी आया सपने में "ऋषभ मैंने चोरी नहीं... करायी यार... वह लड़का पार्श्व था।' सुनते ही ऋषभ बेचैन हो जाता है "झुट्टे मक्कार, साले तुम सारे के सारे दोगले हो...।" फिर चौंक कर वह उठता, पानी पीता और फिर सोने चला जाता। फिर दृश्य बदलता 'तन्वी मैं कैसे जिऊंगा तुम्हारे बिना', छबीला पार्श्व की तरह पुकारता "भड़या जी घर आओ", जोगी का वह नंगा बच्चा सपने में उसे जोर जोर से हंसता हुआ दिखता। जोगी और अरूप लड़ते दिखते हैं, पार्श्व जेल में बंद है, शहर में पानी भर गया है, लोग मोबाइल से विडियो बना रहे हैं। रेत का टीला डूबने लगा, जोगी का बच्चा अकेला है, रो रहा है, कोई तो उठाओ उसे। अरे सफेद कार बाढ़ में स्टीमर बन गयी? सेठ जगतानंद और तन्वी उस पर बैठ कर कहीं जा रहे हैं। पानी के भीतर से खट् खट् की आवाज आ रही है, आवाज तेज हो गयी... खट् खट् खट् खट्...। ऋषभ ऋषभ... खट् खट्...। ऋषभ आंखें खोलता है। उसके दरवाजे पर कोई सांकल बजा रहा है खट् खट्। होश में आते आते वह निश्चित रूप से जान चुका था कि सांकल खटखटाते हुए पुकारने वाला अरूप है। शुक्र है कि वह होश में आ गया था और उसके कमरे में कहीं भी प्रस्तर झड़ा हुआ नहीं दिखा था जिसकी आकृति आदमी के चेहरे जैसी हो, नहीं तो उसे मानने में जरा सी भी देरी नहीं होती कि वह सांकल 'अंधेरे में' का 'वही' बजा रहा है।

अरूप थका हारा और बेहद उदास था। वैसे ही बेतरतीब दाढ़ी बाल, गंदे कपड़े, चीकट चप्पल। उसके आते ही कमरे में एक गंध सी तैर गयी। इस सदी में जहां पत्रकार रोज सूट बदल कर टीवी पर 'दनदनाते' हैं, वहीं अरूप के कपड़े मानों सदियों से कवच कुंडल की तरह उसे जकड़े हुए हों। अरूप को देख कर ऋषभ को कोई हैरानी नहीं हुई। पर अरूप ऋषभ की हालत देख कर बहुत हैरान हुआ। ऋषभ उसे एक ऐसा बीमार दिखा जो बीमारी से बाहर न आने की जिद में सूख रहा हो। आंखें धंस गयी थीं, चेहरे पर हप्तों की दाढ़ी, बिखरे हुए बाल, यह ऋषभ नहीं हो सकता।

ऋषभ अपनी बेतरतीबी पर शर्मिन्दा होता कि अरूप ने सवाल 'दागा' "क्या तन्वी ने कभी कहा था कि वह तुमसे प्यार करती है?"

"नहीं।"

"तो फिर यह उम्मीद क्यों?"

"देखो, अरूप मैं इस मसले पर कोई बात नहीं करना चाहता, अब।"

"ठीक है, निश्चिन्त रहो, मेरी बात हो गयी है उससे।"

यह संक्षिप्त संवाद झटके के साथ खत्म हुआ, और ठीक ही खत्म हुआ।

अरूप के पास एक हैण्डबैग था, जिसकी जिप रगड़ खाकर खराब हो चुकी थी। खुली हुई हालत में उस बैग से ढेरों कागजात और अखबारों की कतरनें झांक रही थीं। अरूप ने बैग को चुपचाप बिस्तर के नीचे खिसका दिया और साधिकार ऋषभ का सफेद तौलिया लेकर उसके गुसलखाने में गुम हो गया। वह देर तक नहाता रहा। गुनगुनाते हुए अरूप की आवाज कभी कभी विलाप करती हुई विधवा की आवाज की तरह लगती तो ऋषभ चौंक जाता। दिनों और रातों तक सोते रहे ऋषभ को आज रात सोने की बिल्कुल इच्छा नहीं थी। वह अरूप के गुसलखाने से बाहर आने का इंतजार करता रहा। इस बीच उस छोकरे से अरूप के संदिग्ध सम्बंधों पर भी ऋषभ कुछ कुछ सोचता रहा। आज वह दूध का दूध और पानी का पानी करके रहेगा। उसने लम्बी सांस ली और गुसलखाने के दरवाजे पर अपनी निगाहें टिका दीं। अरूप बाहर आया तो ऋषभ गुसलखाने में घुस गया। नहाने।

वह जब गुसलखाने से बाहर आया तब तक अरूप ऋषभ के 'प्रिय' सेण्ट की आधी शीशी खुद पर उड़ेल चुका था, पूरा कमरा गमगमा गया था। अरूप निर्विकार भाव से फर्श पर पालथी मारे बैठा था और फटे हुए बैग से रम की बोतल निकाल ली थी। फर्श पर अखबार बिछा हुआ था, उस पर ऋषभ के घर से आये ताजे नमकीन की थैली पूरी की पूरी उड़ेली जा चुकी थी। एक कांच का कप भी था। ऋषभ को गुस्सा आ गया "ये क्या है?"

"आज मत रोको, बहुत दिन हो गये हैं।" अरूप ने नजरें गड़ा कर बेरुखी से जवाब दे दिया। पर ऋषभ संयम की परिधि से बाहर आ रहा था "क्यों पटना में जी नहीं भरा?"

"पटना मैं केवल दो दिन रुका।"

"तब बाकी दिन कहां थे?"

"तुम्हारी गली के तीन गली पीछे एक मकान में छुपा था।"

"क्यों, किससे?"

"पुलिस से।"

"ऐसा क्या किया है तुमने?"

"छबीला की फरारी में मेरा हाथ बताया जा रहा है। बैजनाथ सिंह ने यह लिखित बयान दिया है कि छबीला को भगाने वाला दूसरा शख्स मैं था।"

ऋषभ ने पूछा "अब ये कौन है?"

"जुवेनाइल कस्टडी सेण्टर का हेड।"

"क्या तुमने ही उसे भगाया था?" ऋषभ संशय में आ गया।

"नहीं, मुझे तो शाम में पता चला।"

"तब तुम्हारा नाम क्यों लिया गया?"

"पुरानी दुश्मनी।" कह कर अरूप ने 'आंख मारी'। फिर बोला "छबीला का केस मैं कई दिनों से देख रहा हूँ, इसलिए।"

ऋषभ ने अविश्वास से कहा “तुम्हारी कहानी में दम नहीं।”

“देखो ऋषभ, तुम्हारे कमरे में बैठा हूँ तो इसका मतलब ये नहीं कि तुम्हारे राग में राग मिलाऊँ।” अब जाकर अरूप का पत्रकार बाहर आया, फिर थोड़ा संयत होकर बोला “बैजनाथ एक नम्बर का रंडीबाज है, कोठे पर जाते हुए मैंने उसकी स्टोरी बनायी थी, पर सेठवा साले ने उस ‘फुटेज’ को दिखा कर उसे ब्लैकमेल किया और पैसे भी ऐंटे। पता नहीं कैसे यह बात लीक हो गयी और बैजनाथ की पत्नी मायके चली गयी, जो अब तक नहीं लौटी।” इतना कह कर अरूप ने रम की बोतल खोली और कप में उड़ेलने लगा। पर ऋषभ अब अरूप पर भरोसा करने वाला नहीं था, वह पूर्ववत् तना रहा। फिर कुछ सोच कर बोला “छबीला कहां है?”

एक घूंट मार कर अरूप ने गला साफ किया “शहर में।”

“और वह लड़का कहां है? वह चोर जो मेरे पैसे लेकर गायब हुआ था?” ऋषभ ने खड़े खड़े अपनी नजरें दारूबाज पर गड़ा दीं। दारूबाज भौचक! उसने नजरें उठायीं और ऋषभ को घूरता रहा, देर तक। ऋषभ निर्विकार भाव से पुरानी मुद्रा में था। ऋषभ कुछ और पूछने वाला था अभी, पर अरूप अपना मुंह रम से भरे कप में घुसा चुका था। कप रख कर उसने नजरें उठायीं “बैठो, सब बताता हूँ।” कह कर चुप हो गया।

यह दूसरा संवाद भी संक्षिप्त रहा। दोनों की बातचीत की शक्ल ये नहीं होनी चाहिए थी जो दो दो बार हुई। हालात इतने अजीब हो चुके थे कि मानसिकता बदल गयी थी। दोनों एक दूसरे से खूब कहना चाहते थे, बिना एक दूसरे को सुने पर संवाद टूट टूट जाते थे।

अरूप फर्श पर नंगे बदन ऋषभ का सफेद तौलिया लपेटे बैठा हुआ कुछ सोचने लगा। उसकी मुद्रा किसी जैन मुनि से कम न थी। फिर, उसने गला साफ किया “देखो ऋषभ, मैंने पत्रकारिता के पेशे में बारह साल तपस्या की है, मैं जो भी कहूंगा वह अनुभव का सच होगा।” उसके कहने की मुद्रा ऐसी थी मानो स्वयं वर्द्धमान महावीर कह रहे हों “वत्स मैंने बारह वर्षों तक जंगल में तप किया है, सच्चा ज्ञान पाया है।” ऋषभ अरूप से थोड़ी दूर फर्श पर बैठा सुनता रहा। अरूप जारी रहा “यह शहर जंगल है, जहां मैंने बारह साल...।” अरूप के एक एक वाक्य के बाद हवा में जो शांति फैलती जा रही थी वह ऋषभ को खतरनाक ढंग से आध्यात्मिक लग रही थी। ऋषभ एकटक उसे देखने लगा। वह तय नहीं कर पा रहा था कि बोलने वाला यह कौन है? रम की गंध ऋषभ की नाक तक पहुंची और वह झटके के साथ सतर्क हो गया, बोला “देखो अरूप, साफ साफ कहो, दर्शनफर्सन मत झाड़ो!” अरूप ने रम का एक घूंट फिर भरा और संयत होकर बोला “छबीला सिंह वही है जो तुम्हारे कमरे में उस रात रुका था, वह अपराधी नहीं बल्कि उसे अपराधी की श्रेणी में इस शहर ने डाल दिया है।” अरूप चुप हो गया। कमरे में सन्नाटा वैसे ही पसरा रहा, ऋषभ मातम की अवस्था में आने लगा। उसकी समझ बहुत पहले जवाब दे चुकी थी। वह चीखना चाहता था “क्यों क्यों क्यों ठहराया मेरे घर पर?” पर वह कुछ नहीं कह पाया। उसने बस स्मृतियों के सहारे सवाल किये “मोमताज मियां का खूनी है वह, सारा शहर जानता है।”

“उसने खून नहीं किया।” अरूप की आवाज अकड़ से भर गयी।

“कैसे नहीं मानूँ मैं?”

“इसलिए कि वह एक हादसा था, छबीला की मां का बलात्कार होने जा रहा था, छबीला उस समय बारह साल का था, उसने मोमताज को धक्का मार कर गिराया और वह दरांती पर पेट के बल गिर गया। बस।” कह कर अरूप ने बेसन की नमकीन मुंह में ठूस लिया। वह चुपचाप नमकीन चवाता

रहा पर ऋषभ बोलने लगा “मुझे तो लगता है अरूप कि तुम एक और सनसनी फैला कर कारोबार करना चाहते हो? तुम कहानीबाज हो और कुछ नहीं।”

इधर नमकीन मुंह में घुल गया तो, उसने एक ही घूंट में बाकी की रम खत्म की और कप जोर से पटक दिया “मेरा अखबार नहीं पढ़ते तुम? तीन साल से मैं उसकी रिपोर्टिंग कर रहा हूँ?” ऋषभ तैयार बैठ था, नहले पर दहला फेंका “तो फिर शहर में उसका आतंक क्यों है?”

अरूप ने जवाब देने की जगह अपनी टर्गे फैला दीं और दोनों हाथ पीछे की तरफ रख कर सिर को छत की ओर मोड़ दिया। फिर गहरी सांस छोड़ दीं “देखो दोस्त, मैंने कहा न कि यह शहर जंगल है, यहां हिंसा की पूजा होती है, भोले भाले इंसान को यह शहर धार दे देता है, छबीला के साथ यही हुआ।”

ऋषभ को चिढ़ होने लगी “यार घुमाओ मत, मुझे सबूत चाहिए, बताओ?”

“सबूत यह है कि पांच दिनों से मैं अपने ही शहर में छुप छुप कर जी रहा हूँ, सबूत ये है कि शहर की पुलिस मुझे पागल कुत्ते की तरह दूँढ रही है। मेरे नाम का वारंट जारी हुआ है!” नशा चढ़ गया, अरूप बिफरने लगा। ऋषभ इन बातों के भरोसे में आने से रहा, उसके मन में घृणा भर गयी, वह जिरह पर उतर आया “तो बीस फीट दीवार फांद कर तुम्हारा कमजोर और बेकसूर छबीला भाग गया, क्या यह काम गैर आपराधिक मानसिकता का आदमी कर सकता है? शहर उससे डरे, दीवार वो लांघे, जुवेनाइल कस्टडी के दो कर्मचारी घायल हैं? क्यों बेवकूफ बना रहे हैं अरूप बाबू आप?” अरूप चुपचाप रम की बोतल को कप में उड़ेलने लगा, फिर संयत होने की कोशिश में बोला “बीस फीट की वह दीवार क्रिमिनल भी नहीं पार कर सकता... छबीला खुले दरवाजे से भागा था।”

“तो तुम अब कहोगे कि वह भागा नहीं भगाया गया है?”

“नहीं।”

“तो।”

“बैजनाथ सिंह की पत्नी वर्षों से अपने मायके में है, उसकी कसर वह जुवेनाइल कस्टडी के अपराधियों से पूरी करता है, छबीला बचता रहा पर उसके फरारी के एक दिन पहले... क्या नाम बताया था उसने... हां... अंजुम को बैजनाथ ने दबोचा, छबीला की नींद खुली तो उसने शोर मचाना शुरू कर दिया, फिर सारे छोकरे शोर करने लगे। शोर से अंजुम का पीछा छूट तो गया पर अगली रात को छबीला की बारी आ गयी। गार्ड उसे टांग कर बैजनाथ के ऑफिस में ले गये। तीन तीन लोग उसके कपड़े उधेड़ते रहे। पता नहीं कैसे क्या हुआ, बैजनाथ का सिर टेबल से टकराया और खून की धार निकल गयी, गार्ड छबीला को छोड़ कर बैजनाथ को संभालने लगे, बस। छबीला फरार।”

ऋषभ दोनों हाथों से अपने बाल नोंचने लगा। उसे बिल्कुल भरोसा नहीं हो रहा था, उसकी सांसें गहरी हो गयीं। वह इतना ही बोल पाया “अरूप प्लीज बंद करो बकवास।”

पर अरूप नशे की गिरफ्त में था “बकवास तो अभी और है दोस्त, और सुनो। छबीला जब वहां से भागा तो उसके बदन पर चिथड़े भी नहीं थे।” ऋषभ झटके के साथ अरूप को घूरने लगा, अरूप ने जवाब में अपनी आंखें चौड़ी कीं और सिर दो बार हिलाते हुए पूछा “ये बकवास कैसी लगी आदरणीय ऋषभ बाबू?” अरूप के प्रश्न में घृणा भरी हुई थी, ऋषभ के लिए। सन्नाटा पसर गया। अरूप ने कप की बची हुई रम को गटका। अब रम की बोतल आधी ही रह गयी थी। फिर अरूप ही बोला “देखो, भय है और भय का कारण है, पर उसका निवारण भी है।” अगर वह नशे में न होता और वाक्य सुधार लेता तो ये शब्द पक्के बुद्ध के वचन लगते... ‘दुःख है, दुःख का कारण है...’ पर शुक्र था कि ऐसा नहीं हुआ। अरूप फिर बोला “मैं पटना इसी सच को जगजाहिर करने गया था।” इस तरह अरूप ने छबीला कथा का ट्रैक ही बदल दिया।

पर ऋषभ अभी भी उसकी छबीला कथा को लेकर संदेह में था 'अरूप का कोई भरोसा नहीं' उसने मन ही मन सोचा और उसे सुनता रहा।

अरूप रौ में था "नेशनल समाचार चैनलों में गया, सब टालते गये, एक दो ने कहा 'फुटेज' ले आओ कुछ और ऐसा कि प्रस्तुति में सच साफ झलके तब जाकर सोचेंगे... बहनचो... मल्लिका शेररावत की नंगी टांग पर अखिल भारतीय बहस से उन्हें फुसत मिले तब तो मेरी स्टोरी पर ध्यान देंगे।" कह कर उसने रम की बोलत कप में फिर उड़ेल दी। ऋषभ के सफेद तौलिए में उसने अपनी नाक साफ की, पसीना पोछा और बोलता गया "गले में बड़े मीडिया चैनल का पट्टा हो तो कोई भी पत्रकार को हाथ डालने से डरेगा। साला... फ्रीलांसर को कौन पूछता है? कहां से लाऊं कैमरामैन और कैमरा? पांच दिन से इसी शहर में छुपा छुपा फिर रहा हूं, पत्रकारिता क्या घंटा होगा?" यह बात मानो उसने खुद से कही।

ऋषभ ने अपनी नजरें उठायीं, सच में बहुत निरीह लगने लगा था अरूप। अरूप ऋषभ से आंखें मिलाते हुए बोला "ऐसा नहीं है कि मैं कोई समाज सेवक हूं, मैं छबीला के सच को 'ब्लास्ट' करना चाहता हूं, बस। इस सच का मंडी में मार्केट वैल्यू है। बस यह सच लोग समझें, मान लें, जोकि एकदम सच है।" फिर थोड़ा रुक कर उसने अधूरी बात पूरी की "और इस सच के साथ साथ अपनी भी बैतरणी पार हो जायेगी।"

ऋषभ उसके इशारे समझ गया, सो आदतन टोका "क्यों? धरतीपुत्र छोड़ दोगे? उससे भी तो सच का पर्दाफाश हो सकता है?" इस प्रश्न में अरूप को व्यंग्य की बास आयी, उसने दांत पीस लिए और सच का घूंट पीते हुए बोला "धरतीपुत्र की हालत तुम भी जानते हो, मुश्किल से सौ प्रतियां भी नहीं बिकतीं उसकी? कुछ बूढ़े बुद्धिजीवी, पत्रकार, मास्टर और प्रोफेसर, बस यही पढ़ते हैं। अखबार के लिए 'एड' मांगने जाओ तो साले शहर के दुकानदार मुझ पर हंसने लगते हैं। कहने को यह दैनिक है पर यह कितना दैनिक है तुम भी जानते हो ऋषभ। इसी वजह से कुछ संस्थाओं ने इसे खरीदना बंद कर दिया है। तुम्हारे इंटरमीडिएट स्कूल ने भी खरीदना बंद कर दिया था, बहुत हाथ पांव जोड़े तब जाकर तुम्हारा प्रिंसिपल राजी हुआ; ऊपर से मीडिया की औकात बताते हुए उसने संस्कृत के श्लोक दे मारे 'विक्रीयते न घंटाभिर्गावः श्रीरविवर्जिताः'

ऋषभ ने आदतन उसका भावानुवाद किया 'दूध न देने वाली गायें गले में घंटी लटका देने से अधिक मूल्य में नहीं बिक पातीं'। इस पर अरूप चिढ़ सा गया, बोला "पता है, पता है... मैंने भी दसवीं तक संस्कृत घोंटी है।" अरूप को अपनी स्कूली विद्या पर बहुत अहंकार था। ऋषभ ने तुरंत उसका अहंकार तोड़ते हुए जोड़ा "महावीर जैन मीडिया के लिए एक और श्लोक अक्सर पढ़ते हैं, यह श्लोक धम्मपद का है "कोनु हासो किमानंदो निच्यं पन्जलिते सति... सब कुछ जल रहा है और तुम्हें हंसी और आनंद सूझता है?" अरूप उबल गया, नशे ने जोर मारा "उसे क्या घंटा मालूम है कि मीडिया क्या है?" ऋषभ इस पर ताव खा गया "देखो, प्रिंसिपल साहब को हल्के में मत लो। बड़े विद्वान हैं, कम से कम मीडिया पर उनके विचार एकदम सटीक होते हैं। धोती कुर्ता पहनने का मतलब ये नहीं कि वह पिछड़ा है।"

"मैंने ऐसा नहीं कहा, पर वह अहंकारी लगते हैं।"

"उनके जितना ज्ञान हो तो कोई ज्यादा ही अहंकारी हो जायेगा, वह तो फिर भी बहुत कम हैं।"

अरूप झगड़ने की मुद्रा में आ गया "ज्ञान क्या घंटा? तुम्हारे स्कूल के फाटक पर ही लिखा है अन्नतोक्कश्मापि जीर्यति पत्थर भी अंत में गल जाता है। क्या मतलब है इसका? विद्या भी जब साली गल जाती है तो क्या उखाड़ लेंगे बच्चे पढ़ कर?"

ऋषभ तैश में चीखा “हद है यार... चीजों को मिसकोट मत करो... यही तुम्हारी आदत मुझमें नफरत भरती है।” अरूप सफाई में कुछ कह पाता, ऋषभ उखड़ गया “प्रिसिंपल तुम्हारे वजन से भी ज्यादा वजन की किताबें साल भर में पढ़ जाते हैं, कभी उनकी क्लास में बैठना। वे कहते हैं कि मीडिया में समस्या नहीं अब आनंद है, आभासी यथार्थ के माने भी मुझे बताये, और यह भी कहा कि अनुभव और स्वाद हस्तांतरित हो रहे हैं, यह खतरनाक दौर है। जो तथाकथित सच (?) तुम्हारे भीतर बिलबिला रहा है न अरूप, वह इसी मीडिया की तली में क्यों अपाहिज बना हुआ है तुम भी जानते हो?” इस तरह ऋषभ ने प्रिसिंपल का सहारा लेकर पत्रकारिता के नये युग की धज्जियां उड़ानी चाही। अरूप उखड़ता नजर आया। बात कहां से चली थी और कहां पहुंच गयी। नयी बहस बेहिसाब हो गयी। उखड़ते हुए भी अरूप कहां मानने वाला था “तुम्हारा प्रिसिंपल मीडिया पर भरोसा ही नहीं करता... मुझे तो लगता है कि वह एक तरह का नास्तिक ही है जो किसी चीज पर भरोसा नहीं करता।”

“हद है यह, हद! तुम तो ऐसा कह रहे हो जैसे मीडिया न हुआ वेद हो गया जिस पर भरोसा ना करने वाला नास्तिक है?”

“वेद नहीं है मीडिया तो उससे कम भी नहीं।”

“और यह बात तुम अपने उस सच को बेचने की असफलता के बावजूद कह रहे हो...? बोलो?”

“मैं मानता हूं कि यह है, पर पूरा सच नहीं।”

ऋषभ ने अंतिम दाव खेला “दरअसल पूरा मीडिया दलाली का सभ्य चेहरा बन चुका है, जहां चीजें बेची जाती हैं... मुझे अब साफ लग रहा है कि तुम सबके सब धंधेबाज हो। प्रिसिंपल साहब ठीक ही कहते हैं कि तुम लोगों पर तर्क से ज्यादा तकनीक हावी हो गयी है अब।” उसकी सांसें उखड़ रही थीं और आंखें चौड़ी हो गयीं। अरूप यह सब पचा गया, चुपचाप।

अब अरूप क्या सोच रहा था पता लगाना मुश्किल था, पर ऋषभ अभी भी छबीला कथा पर अटका हुआ था, उसे सच जानना है, हर हाल में।

हार कर अरूप कहने लगा “धरतीपुत्र को तो बंद होना ही है या फिर उसका नये मालिक के साथ कायांतरण होगा। कायांतरण हुआ तो समझो मेरी छुट्टी; बंद हुआ तो भी छुट्टी।” कह कर अरूप नमकीन चबाने लगा। उसकी आंखें सूनी थीं, कुछ कुछ उदास भी। ऋषभ इस उदासी को भी शक की निगाह से देख रहा था। उसका मन इस शहर से, शहर के लोगों से एकदम उखड़ चुका था। उसे बस छबीला में दिलचस्पी थी। उसने फिर पूछा “वो सब तो ठीक है पर छबीला से शहर क्यों डरता है अरूप?”

“छबीला एक हउवा है, एक निर्मिति और कुछ नहीं... कुछ नहीं।” अरूप बताते बताते थकान से सिर हिलाने लगा मानो यह जवाब उसने कई बार कइयों को दिया हो और अब वह थक गया है जवाब देते देते। फिर वह देर तक चुपचाप रम पीता रहा, ऋषभ जैसे ही एकटक उसे घूरता रहा।

“जिस रात वह रुका था उसकी अगली सुबह उसने तुम्हारे पर्स से पांच सौ रुपये निकाले थे, यह बात उसने पहले मुझे बतायी। मैंने उसे बहुत डांटा। वह बोलने लगा कि उसकी मां बहुत बीमार है, कई दिनों से। उसके लिए दवाई चाहिए थी, सो पैसे निकाल लिए और वह रोने लगा।” कह कर अरूप ने अपने घुटने मोड़ लिए। ऋषभ निर्विकार भाव के साथ जैसे ही फर्श पर बैठा हुआ था। उसका सिर भारी हो रहा था, शराब की गंध कमरे के भूगोल में अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुकी थी। वह उठा और खिड़की खोल दी, अरूप हड़बड़ा उठा “अरे क्या कर रहे हो?” उसने कमरे की बत्ती बुझा दी। ऋषभ भौचक हो गया “क्या हुआ?”

“अगर किसी ने भी मुझे देख लिया तो आफत आ जायेगी।”

“?”

“ऋषभ मामला बहुत बिगड़ गया है मैं सचमुच मुसीबत में हूँ।”

“बड़े डरपोक पत्रकार हो यार?” ऋषभ ने अरूप पर ताना कस ही दिया। उसके भीतर का जख्म रिस रहा था। पर अरूप की हड़बड़ाहट से उसे इतना तो लग गया कि मामला संगीन हो चुका है। उसने खिड़की बंद करनी चाही तो अरूप ने रोक दिया “नहीं, हवा आने दो, मैं अंधेरे में ही पी लूंगा, तुम चाहो तो अपने बिस्तर पर लेट जाओ मैं नीचे सो जाऊंगा।” ऋषभ लेट गया। उसने अरूप से खाने के बारे में भी नहीं पूछा। लेटते लेटते बस इतना पूछा “छबीला शहर का आतंक क्यों है अरूप, अब बता भी दो?”

ऋषभ के सवाल में भावुकता भर गयी। अरूप को लगने लगा कि छबीला कथा का आदि अंत जान कर ही वह मानेगा। उसने रम की बोटल पूरी तरह कप में उड़ेल दी, अंधेरे में ही। फिर उसे गटागत पीकर कप पटका, अखबार मोड़ दिये और पैर फैला कर लेट गया। अंधेरे में वे एक दूसरे की सांसें सुन सकते थे। अरूप ने मदहोशी में कथा शुरू की, ऋषभ उसके शब्दों के सहारे कथा में सतर्क बिम्ब भरता गया। रात बहुत हो गयी, बिम्ब सपने में घुसते गये।

छबीला पार्श्व जैसा दिखने लगा, फिर से। पार्श्व किसी औरत से बिलख बिलख कर भोजपुरी में बात कर रहा है “माई रे... इ गरीबी ना चाही... पापा के पेंशन कब आयी?” जवाब में औरत रो रही है। वह औरत श्यामसिंह की बेवा है। दारूबाज... श्यामसिंह होमगार्ड का बदनाम सिपाही था। दारू पीकर अपने साहबों से भी लड़ जाता था। साहबों ने इनाम में उसे शेरघाटी भेज दिया। वहां भी वही हाल। वह तब का समय था जब शेरघाटी में नक्सलवादियों ने अपनी उपस्थिति बारूदी सुरंगों से दर्ज करानी शुरू कर दी थी। डी.एस.पी साहब के डाकबंगले पर हमला हुआ, वहां से भागते हुए बारूदी सुरंग ने कइयों को मार डाला, श्यामसिंह भी शहीद हो गया। पर शहीदों की सूची में श्यामसिंह गायब था। विभागीय साहबों ने पुराना हिसाब चुकता किया, सबकी बेवाओं को पेंशन मिलने लगी, श्यामसिंह के परिवार को छोड़ कर। उसकी पेंशन फाइलों में ही अटकी रही, सफेद बादलों में बूंदों की तरह, जो दिख रहे थे जरूर पर बरसते नहीं थे।

अरूप के शब्द बदल गये तो ऋषभ ने बिम्ब भी बदल दिये। सपने में नये बिम्ब उभर गये। श्यामसिंह की बेवा पड़ोस के मोमताज मियां के घर बर्तन मांज रही है। मोमताज कुर्सी पर बैठा उसे घूर रहा है।

फिर ‘बाबू रे, बचा ले’। आवाज पार्श्व के सीने में तीर की तरह घुसी और वह दौड़ते हुए आता है, दरवाजे पर आंधी की ताकत से चोट करता है, कुंडी खुल जाती है। मां आंगन में आंधी पड़ी है, मोमताज उसके ऊपर बैठा उसका मुंह बंद कर रहा है। एक जोर के झटके से बूढ़ा मोमताज हैण्डपम्प की ओर लुढ़कता है, फिर दरांती...। मां चीख उठती है “भाग रे छबिलवा... भाग... जल्दी।” छबीला भागना शुरू करता है, पीछे से शोर बढ़ता जाता है “छबीला... छबीला...”

दृश्य ने ऋषभ की सांसें चढ़ा दी हैं, फिर कई दृश्य उभरते गये। महीनों बाद छबीला जमानत पर छूट कर घर आता है। अब वह बदल गया है, मसं भीगने लगी हैं, शरीर फट कर चौड़ा हो रहा है पर उसके शरीर की खुराक घर में नहीं है। मां की साड़ी के चिथड़े हो गये हैं। घर में अनाज नहीं। क्या करे? ‘माई रे... इ गरीबी न चाही... पापा के पेंशन कब आयी?’ जवाब में मां जार जार रोती है। बिम्बों ने फिर रंग बदला। छबीला को उसी के मुहल्ले की ‘पुराने चावल’ की नजर लग गयी, उसने छबीला को धार देना शुरू कर दिया। अब एक देशी कट्टा छबीला के कमर से चिपक गया था।

पंसारी की दुकान से छबीला ने महीने भर का राशन लिया। सौदा झोले में रख कर छबीला चलने को हुआ तो दुकानदार ने टोका “पैसा?” बदले में छबीला कमर से देशी कट्टा निकाल कर अपने झोले में रखने लगा। छबीला की नजरें झोले पर थीं और दुकानदार की नजर उसके देशी कट्टे पर। छबीला ने सिर उठा कर दुकानदार से बस इतना ही कहा ‘अगला महीना’ और चलता बना। दुकानदार शुरू में चौंका, फिर कुछ सोच कर चुप हो गया। यह देशी कट्टा चीज ही ऐसी थी जो शहर की धमनियों में घुली हुई थी। उन दिनों शहर में औसतन यह दस जगह फूटते थे, गली, चौराहे, मोहल्ले, खेल के मैदान, दुकानदारों के दरवाजों से लेकर चाट समोसे और खोमचेवालों तक पर। मरता कोई नहीं था पर डरते सभी थे और यह सब हो रहा था उसी उम्र के लड़कों के हाथों। दुकानदार तो उस समय चुप हो गया पर यह बात उसने छबीला के मोहल्ले के किसी वाशिन्डे से कह दी। इतना काफी था, तीन दिन में मोहल्ला समझ गया था कि छबीला से कैसे पेश आना है अब। जुबनाइल कस्टडी ने पृष्ठभूमि तैयार की, मोमताज मियां अब ‘हादसे’ में नहीं बल्कि छबीला के ‘हाथों’ मरे थे। छबीला ने भी किसी को कोई सफाई नहीं दी। घर का चूल्हा जल उठा।

जिस दुनिया में छबीला ने कदम रखा उस पर अभी वह लड़खड़ाते हुए चलना सीख ही रहा था, पर उसकी चर्चाएं तेज रफ्तार से फैलती गयीं। अगले तीन महीने में उसने दर्जनों लड़ाइयां कीं, उसने अपनी उम्र और उम्र से बड़े कई लौण्डों को सार्वजनिक रूप से धोया। इसी बीच जब जब उसकी जीभ जोर मारती थी वह मिठाइयां, गोलगप्पे, आलूचाट समोसे उड़ाता रहता था, फ्री फंड में। एक दायरे के भीतर उससे कोई पैसा नहीं मांगता था। उसके नये शिकार स्कूली छात्र थे जिनसे वह डरा धमका कर पैसे ऐंठता और चलता बनता। बस, यही दुनिया थी उसकी। मोहल्ले का ‘पुराना चावल’ उसका सबसे नजदीकी उस्ताद था और हिस्सेदार भी।

मरहूम मोमताज मियां का रिश्तेदार पुलिस महकमे का पुराना और विश्वस्त मुखबिर था। उसकी नजर छबीला पर बहुत पहले से थी। छबीला की हरकतों ने पुलिस महकमे में उपस्थिति दर्ज कराने में उस रिश्तेदार का सहयोग किया। इसी बीच शहर में तीन डकैतियां हुईं, जिनमें से एक डकैती का संदेह छबीला सिंह वल्द श्यामसिंह पर दर्ज कराने में वह सफल हो गया। छबीला को ‘शिवम् चाट भंडार’ से पुलिस घसीटते हुए ले गयी। अगले दो दिन तक वह थाने की फाइल पर बिना दर्ज हुए रिमांड पर रहा। छबीला सिंह पर जो दर्ज हुआ वह पुलिसिया लाठी थी, धूसे थे, थप्पड़ और जूते थे। उसकी मां थाने के बाहर बिलखती रही और इधर बिहार पुलिस छबीला के साथ न्याय करती रही।

न्याय राष्ट्रीय अखबारों के स्थानीय पत्रकारों ने भी किया ‘शहर का नया आतंक छबीला सिंह’। तमाम तरह के राष्ट्रीय अखबारों द्वारा जागृति फैलाने के बावजूद शहर आतंक में जी रहा था, यह ठीक बात नहीं थी। कोई न कोई तो यह सब कर रहा था। अपराध हो रहे थे अतः अपराधी का नामकरण जरूरी था। विशेषण से संज्ञा की ओर जाते हुए अखबार ने छबीला को ‘रंगबाज’ से नवाजा। अपराध खत्म। अपराधबोध भी।

तीसरे दिन टूटे फूटे छबीला की घरवापसी हुई। अगले दो हफ्तों तक वह बीमार रहा। रात में अक्सर उसे बुखार चढ़ जाता और वह कभी नींद में तो कभी सदमे में बड़बड़ाता रोता “...हो दारोगा जी... हम हम ना।”।

जब शरीर दुरुस्त हुआ तब घर की हालत खस्ता हो गयी। फिर वही गरीबी और पेंशन की आस। एक बार फिर उसने पंसारी की ओर कदम बढ़ाये और दुगनी क्रूरता से देशी कट्टा लहरा कर घर का चूल्हा जला लिया। वह पुराने ढर्रे पर लौट गया। इसी बीच शहर में कई अपराध हुए। छबीला

घर में लेटा होता पर शहरवाले उसके हाथ हर अपराध में रंगे हुए देखते। अखबारों ने भी जोर मारा। पुलिस को सबूत चाहिए था।

छोटे शहरों में भी कभी कभी बड़े हादसे होते हैं जिन्हें तारीखें कभी नहीं मिटा पातीं। इस शहर में भी एक बड़ा हादसा हुआ। 'बसंत कुमार एंड संस' शहर की सबसे पुरानी इसलिए कमाऊ सोने की दुकान थी। बसंत का जवान बेटा इतना सुंदर था कि शहर की अनेक औरतें लड़कियां उसके रूप पर फिदा थीं। मितभाषी बेटा वास्तविक सपूत निकला, दुकान पहले से ज्यादा आमदनी में आ गयी। वह हंस हंस कर शहर की औरतों लड़कियों से बतियाता और सब कुछ बेच देता। झुंड का झुंड आता और दिल, दिमाग, पैसा सब उस दुकानदार पर गंवा कर जाता। शहर के कई अधिकारियों की औरतें उसकी मुरीद थीं। दुकान की आमदनी की खबर शहर से चालीस किलोमीटर दूर दक्षिण में उस आहाते तक पहुंची जहां इस शहर का 'टैक्स' जमा होता था। 'बसंत कुमार एंड संस' के फोन की घंटी बजनी शुरू हो गयी। मितभाषी सपूत जितना सुंदर था उतना ही जिद्दी भी निकला। उसे शहर के अधिकारियों पर न सही उनकी औरतों पर जरूर भरोसा था। उसने फोन पर मिली धमकी का मुंहतोड़ जवाब दिया "जो उखाड़ना है उखाड़ लो पर रंगदारी टैक्स नहीं देंगे हम।" फिर भी फोन पर धमकी दो बार आयी और तीसरी बार गोली। शाम को शटर गिराते वक्त सात बार कारतूसों फूटों और सुंदर शरीर बिना तड़पे शांत हो गया।

रात होते होते शहर उबल गया, शहर वाले भी। दुकानदारों ने रात में ही कलेक्ट्री को घेर लिया। रंगदारी टैक्स से परेशान दुकानदारों को बहाना चाहिए था, विद्रोह हो गया। सुबह अखबार की सुर्खियों ने न जाने कितनी जवान औरतों और लड़कियों को रुलाया, कितनों ने उस दिन उपवास रख लिया। बसंत के बेटे को जानने वाली शहर की सम्भ्रांत बूढ़ी औरतें छाती पीट कर रह गयीं। शहरवालों के उबाल से जो दबाव पड़ना था, उससे कही अधिक दबाव प्रशासनिक अधिकारियों की पत्नियों का पड़ा। रोने वाली औरतों में नवविवाहित एसपी साहब की पत्नी भी थी। पत्नी ने अपनी आंखों के डोरे लाल कर के कहा "इतना सुंदर लड़का, अभी शादी भी नहीं हुई, मार दिया गया।" नयी नवेली पत्नी का रोना भला कौन बर्दाश्त कर सकता है। एसपी साहब ने इतना ही कहा "बस! अब और नहीं। मुझे चौबीस घंटे का समय दे दो... प्लीज।" और दनदनाते हुए कोठी से बाहर चले गये, ड्यूटी पर।

राष्ट्रीय अखबार की स्थानीय सूचना में यह बात स्पष्ट कर दी गयी थी कि यह जघन्य काम शहर के नये रंगरूटों के सिवाय भला कौन कर सकता? वैसे पत्रकारों को शक था कि काम पुराने महारथी का है पर साधन तो शहर के नये लौण्डे लफाड़िए ही होंगे। शहर औसतन दस देशी तमंचों की गूंज रोज सुन रहा था, इसलिए जनमानस ने भी फैसला कर लिया नये रंगबाजों का ही काम है यह। शहर के कई नये रंगबाज पुलिस के हत्थे चढ़ गये। छबीला भी। जब वह पकड़ा गया तब उसकी कमर में देशी कट्टा भी पाया गया। पुराने मुखबिर की बातों में दम लगा थानेदार को। छबीला सिंह की फाइल डीएम के आदेश से फिर खोल दी गयी। छबीला पर आर्म्स एक्ट के साथ साथ डकैतियों, सोलह झपटमारी, दर्जन भर गाड़ियों की चोरी, बसंत कुमार एंड संस के बेटे की हत्या का गहरा संदेह किया गया। अब प्रशासन को भी मोमताज मियां का 'हादसा' हादसा ना होकर 'कत्ल' लगने लगा। छबीला मुंह खोले, फटी आंखों से आरोपों का विश्लेषण करता रहा। उसे हैरानी इस बात की हो रही थी कि जो जो कारस्तानियां उसने अब तक की हैं उनमें से कोई भी केस की शकल में दर्ज ही नहीं हुआ था। बस उसे खुशी इस बात की थी कि पुलिस ने उसे मारना तो दूर डांटा तक नहीं। वह चुपचाप साहबों की जिरह सुनता रहा। पर उसे क्या पता था कि ईश्वर ही नहीं व्यवस्था की लाठी में भी आवाज नहीं होती पर असर बना रहता है, देर तक। अगले दिन का राष्ट्रीय अखबार

‘छबीला रंगबाज’ के नाम समर्पित था। उसके छोटे से जीवन पर बित्ते भर की जीवनी छपी। शहर के नये ‘ब्रांड’ का जन्म हो चुका था।

रात के अंधेरे में ऋषभ पार्श्व की परछाईं देखता है, उसके हाथ में देशी तमंचा लहराता हुआ आसमान में उठा और ‘धायं धायं धायं’। ऋषभ हड़बड़ा कर उठ जाता है, सुबह हो चुकी थी। तेज हवा के झोंके खुली खिड़की को पटक रहे थे ‘धायं... धायं’। उसने आंखें मलीं और खिड़की बंद करके कुछ देर शांत बैठा रहा। अरूप जा चुका था। शराब की बदबू अब भी हवा में तैर रही थी। उसके भीतर एक बार फिर जुगुप्सा भर आयी। ‘घटिया है यह शहर’ उसने मन ही मन सोचा। फिर सबसे पहले झाड़ू उठा लिया और इस रफ्तार से सफाई करने लगा जैसे वह सब कुछ साफ करके ही दम लेगा कमरा, विचार, स्मृतियां, सपने, सम्बंध, करुणा सब कुछ। उसकी शारीरिक फुर्ती देखने लायक थी।

इसी दौरान टेबल पर अरूप का लिखा पर्चा मिला ‘ऋषभ, बिना पूछे तुम्हारे पर्स से हजार रुपये निकाल लिए, यह उधार है जो जल्दी चुकता कर दूंगा, बुरा मत मानना, प्लीज।’ अब क्या, झाड़ू हाथ से छूट गया। धूप चढ़ने से पहले उसके गुस्से का पारा चढ़ गया। ‘अब और नहीं’ कहते हुए उसने टेबल पर रखी हर चीज फर्श पर फेंक दी और बड़बड़ाते हुए गुसलखाने में चला गया।

वह कमोड पर बैठा ही था कि खिड़की से फिर उसी स्कूली बच्चे के रोने की आवाज आने लगी। वह बच्चा चीख चीख कर स्कूल जाने से बगावत कर रहा था “माई रे... हम स्कूल ना...।” पीछे से बच्चे का बाप गालियां बरसा रहा था “फेंक दो साले को स्कूल कैब में।” स्कूल कैब का ड्राइवर फिर उसी तरह झुंझला कर चीख रहा था “रोज रोज का एही नाटक है, कल से हमारा हिसाब कर दीजिए, रोज लेट हो जाते हैं इस चक्कर में।” बच्चे की दादी फिर वही राग अलाप रही थी, बच्चे के पक्ष में।

हद है, यह शहर बिना शोर के, बिना तनाव के जग ही नहीं सकता? कमोड पर बैठे बैठे ऋषभ के भीतर इस शहर को लेकर वही धारणाएं मजबूत हो रही थीं जो बहुत पहले लार्ड मैकाले ने हिन्दुस्तानियों के बारे में बनायी थीं ‘साधु संन्यासियों का देश, नंगे फकीरों का देश, खेल तमाशों और सांप सपेरों का देश’। ऋषभ ने इन वाक्यों में अपने वाक्य जोड़ दिये, बस देश की जगह शहर को रखा ‘रंगबाजों का शहर, चरित्रहीनों का शहर, टुच्चे जालसाज पत्रकारों का शहर, माफियाओं और हत्यारों का शहर, बिकाऊ मूल्यां का शहर, किसी को भरोसे में लेकर उसके पैसे उड़ाने वालों का शहर ...।’ उसने एक बार फिर आंखें बंद करके अपनी सारी परेशानियां सांस के सहारे अपने पेट पर दे मारीं और कमोड पर ध्यानमग्न हो गया।

यहां पर स्यादवाद फाद

बतफरेबी : प्रत्येक वस्तु के बारे में ज्ञान केवल सम्भाविक है। किसी भी वस्तु के अस्तित्व की एक दृष्टि से पुष्टि (स्याद अस्ति) की जा सकती है तो दूसरी दृष्टि से उससे इनकार (स्याद नास्ति) भी किया जा सकता है। स्याद का शाब्दिक अर्थ है सम्भवतः। और इसका कारण यह है कि कुछ भी निश्चित नहीं। इसके विधान के सात तरीके हैं जिन्हें सप्तभंगिन्याय कहा जाता है। सापेक्ष सत्यों को निरपेक्ष समझ लेना नयाभास कहलाता है। नयाभास तब होता है जब प्रमाता वस्तु के उन पक्षों को असत्य मान बैठता है जिनसे उनका प्रयोजन नहीं। नयाभास का अर्थ है मिथ्या दृष्टिकोण।

अपने 'चूतियाबोध' से ऋषभ कई दिनों तक नहीं उबर पाया। इस बोध से बाहर निकलने की जिद में वह फिर से दर्शन और साहित्य घोंटने लगा। इसका असर भी हुआ और उसका मनमानस 'सम्यक्' होता चला गया। भीतर का कोलाहल जब स्थिर हुआ तब वह खुद के बारे में, अपने सम्बंधों के बारे में और इन सबसे बढ़ कर शहर के बारे में नये सिरे से सोचने लगा। उसके सोचने में अरूप की कही हुई बातें अक्सर शामिल हो जातीं। अरूप ने ही कहा था कि देखने में यह शहर है, महसूस करने में सामंत। उसने यह भी कहा था कि जैसा कि छोटे शहरों के होते हैं इस शहर का भी आत्मसंघर्ष है आधुनिकता और मध्ययुगीनता का, ज्ञान और हेकड़ी का, रंगबाजी और सादगी का, महिलामुक्ति और टिकुली का, जींस और साड़ी का, जाति और जाति का। ससुरा जब से यह भोजपुरी का आंदोलन चला है, हिन्दी और भोजपुरी का संघर्ष हो गया है। अगर शहर के लोग अब अलग राष्ट्र का सपना देखने लगे तो कोई ताज्जुब नहीं! साला ई है शहर!

इसी बीच शहर में तीन हत्याएं हुईं, दो और डकैतियां जिनमें से एक हत्या और एक डकैती छबीला के नाम समर्पित थी। साथ में अखबार ने यह भी कहा कि यह पढ़े लिखे गरीब नौजवानों का गैंग है जो अब तक रोजगार नहीं पा सके हैं। जैसा कि अरूप ने कहा था इस शहर के आत्मसंघर्ष के बारे में, वह दिखा भी, बल्कि अरूप के अखबार ने दिखा दिया। 'धरतीपुत्र' ने जो कि कभी तस्वीरें नहीं छापता था, थाने में पेड़ से बंधी एक निरीह औरत की फोटो छपी थी जिसके नाचे लिखा था 'छबीला सिंह की मां को पेड़ से बांध कर मारती पुलिस, साथ में थाना प्रभारी कुर्सी पर बैठे चाय पी रहे हैं'। दरिन्दगी का यह चेहरा भी लोगों ने देखा। अरूप अपना काम कर रहा है गुमशुदा होकर।

फिर भी, ऋषभ का छबीला कथा पर से संदेह नहीं टला। अखबारों ने भी तो कोई कसर नहीं छोड़ी थी? शहर के 'सिटी चैनल' को तो मानों छबीला की छूत लग गयी थी। ऋषभ कुछ भी निश्चित नहीं कर पा रहा था। उसको बार बार लग रहा था कि कुछ भी निश्चित करने वाले सारे तर्क और उपकरण इस शहर में असफल हो चुके हैं या फिर गलत चुके हैं। छबीला उसके लिए अब एक दार्शनिक 'सबजेक्ट' था, और यह 'सबजेक्ट' अनंत गुणों अवगुणों का योग था। वस्तु का ज्ञान प्रमाण से होता है। तीनों कालों में वस्तु के अनंत पर्याय होते हैं। वे कुछ ही परिस्थितियों में सत्य हो सकते हैं। किसी वस्तु का कोई विशिष्ट पक्ष एक विशेष संदर्भ में सही हो सकता है, किन्तु दूसरे बिन्दु से देखने पर वह गलत हो सकता है। यथार्थ के अनेकानेक पक्ष हो सकते हैं और वह अपने को अनेकानेक रूपों में अभिव्यक्त करता है। यथार्थ के कुछ पहलुओं को तो जाना जा सकता है, किन्तु सभी पहलुओं को जानना असम्भव है। यथार्थ का ज्ञान चूँकि अनिवार्यतः सापेक्ष है अतः मानवीय निर्णय भी सीमित और सापेक्ष होता है; न तो पूर्ण पुष्टि और न तो पूर्ण निषेध सम्भव है। 'उप्फ उप्फ यह दर्शन' कहते उसका सिर चकरा गया। उसकी चेतना कुछ क्षणों के लिए दार्शनिक बोरियों से लद गयी थी। उसे यह एहसास ही नहीं था कि वह कब कमरे से बाहर निकल कर शहर के बीचोंबीच रमना मैदान पहुंच गया। 'क्या वह पागल हो रहा है?' उसने मन ही मन सोचा और सकुचाते हुए अपने आसपास की चीजों को निहारना शुरू कर दिया। उसे डर था कि उसके इस 'मानसिक दौरे' को कोई ताड़ तो नहीं रहा?

खुले मैदान में धूप खिलखिला रही थी। धूप में चलते हुए उसे छींक आ गयी। उसने जोर से छींका, छींक की बूंदें उसके मोबाइल स्क्रीन पर पड़ीं और इंद्रधनुषी होकर चमकने लगीं। उसने छींक की बूंदों में भी सौन्दर्य तलाश लिया, हद है? क्या वह स्वस्थ हो रहा है?

इस खुले मैदान में दर्जन भर झुंड पांच पांच सात सात के अनुपात में बैठे थे। ऋषभ ने नोटिस किया कि सब विद्यार्थी की तरह लग रहे हैं। इस झुंड के बारे में एक बार उसे अरूप ने ही बताया

था कि बैंकिंग रेलवे की तैयारी करने वाले ग्रेजुएटों का झुंड है यह। इसमें से एक तिहाई हर साल सफल होकर मुम्बई, कलकता, पूना, बैंगलोर नौकरी पा लेते हैं। इस झुंड के संस्थापक सदस्य वे सफल परीक्षार्थी थे जो असम, मुम्बई और बैंगलोर में कई बार रेलवे की परीक्षा देने गये और वहां के स्थानीय राजनीतिक संगठनों ने इन्हें दौड़ा दौड़ा कर पीटा था। उन राजनीतिक संगठनों का मानना था कि उनके राज्य के छात्रों की सम्भावित नौकरियां ये 'बाहरी' छात्र छीन लेते हैं। इस तरह इस झुंड के संस्थापक सदस्य पूरे देश के कई हिस्से में पिटते रहे, परीक्षाएं देते रहे और अंततः सफल भी रहे। वे माटी से जुड़े थे और सचमुच माटी पर बैठ कर ही पढ़ते थे जिद्दी साले। उन्हीं मार खाकर सफल हुए कठकरेज पुरखों की याद में यह झुंड आज भी यहां बैठ कर पढ़ता रहता है। वैसे इस तरह के झुंड को राज्य के सभी छोटे शहरों में टिड्डीदल के रूप में देखा जा सकता है।

कहते हैं कि अगर कोई शख्स अपने जीवन से ऊब गया हो तो बस उसे इन झुंडों के पास एक बार जाकर जोर से नारा दे देना चाहिए 'शिवसेना जिन्दाबाद' फिर उस शख्स को कुछ और नहीं करना होगा।

हां, मोछुआ जब तब दारु पीकर इधर से गुजरता है तब वह शिवसेना और राज ठाकरे दोनों के पक्ष में नारे लगाता है; झुंड से हंसी के फव्वारे फूट जाते हैं। फिर गालियों की असंख्य किस्में हवा में तैरने लगती हैं, वीर मोछुआ सबको तर करके चला जाता है फ्री में।

ऋषभ मैदान को बीचोंबीच पार करने लगा। उसने आसपास के झुंड पर नजर दौड़ायी तो यह भी साफ हो गया कि सब पढ़ने के लिए ही नहीं बैठे हैं, कुछ पत्ते खेल रहे हैं तो कुछ गांजे को हथेलियों से मल रहे हैं, बाकी सब सचमुच पढ़ रहे हैं। शहर का एक यथार्थ यह भी है जो कुछ भी निश्चित कर देने वाले उपकरणों की नजरों से ओझल था। इसे किसी ने नोटिस नहीं किया। हां, अरूप ने बताया था कि पुलिस इन झुंडों को 'नोटिस' जरूर करती रहती है।

मैदान पार करके उसने रिक्शेवाले को रोका और बैठ गया "स्टेशन।" रिक्शेवाला बिना कुछ कहे चल पड़ा। कुछ दूरी पर जाकर चौराहा आया जहां की लगभग दुकानें बंद थीं या फिर उनके शटर बंद हो रहे थे। वह एक बार चौंका "अभी तो सुबह के नौ ही बजे हैं... आज छुट्टी है क्या?" उसने मन ही मन सोचा। चौराहे पर कुछ अजनबियों का समूह खड़ा था। ऋषभ को लगा कि वे सब उसे ही घूर रहे हैं। रिक्शा उनकी बगल से गुजरा तब एक अजनबी ने रिक्शेवाले को डांटा "... उधर कोहराम मचा है, कहां ले जा रहे हो इन्हें?" फिर अजनबी ऋषभ से मुखातिब हुआ "उधर मत जाइए सर खतरा है।" ऋषभ इस 'क्लाइमेक्स' पर कुछ सोच पाता कि मोछुआ सामने की सड़क से भागते हांफते चला आ रहा था। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे, वह नशे में धुत्त था। उसके शरीर की बेचैनी गालियों के रूप में फूट रही थी। बीच बीच में ऋषभ ने उसको यह भी कहते सुना "भाग रे भाग धर्मेन्द्र, जितेन्द्र, जीने नहीं दूंगा, खून भरी मांग, आग ही आग।" ऋषभ इससे पहले कुछ समझता बास मारता मोछुआ उसके रिक्शे के पास से होता हुआ एक गली में घुस गया। अजनबी के चेहरे पर शिकन गहरा गया, उसने ऋषभ को इतना ही कहा "जल्दी जाइए सर... उ लोग इधर ही आ रहा है।" और चौराहा खाली हो गया। चौराहे के अचानक खाली होने का असर सबसे पहले रिक्शेवाले पर हुआ उसने हाथ जोड़ दिये "सरकार हमको छोड़ दीजिए..." उसकी झुर्रियों में कातरता भरी हुई थी। ऋषभ ने जब में हाथ डाले और रिक्शे से नीचे उतर गया। उसने पांच का नोट बढ़ाया कि रिक्शेवाले ने फिर हाथ जोड़े "ना हुजूर... पइसा ना चाही।" और रिक्शा लेकर भागते हुए ओझल हो गया। अब चौराहे पर ऋषभ एकदम अकेला था। 'क्या हो गया है अचानक?' उसने मन ही मन सोचा, फिर, ना चाहते हुए भी उसके भीतर डर जैसी चीज का जन्म हुआ और बिना सोचे वह भी एक गली में घुस गया। गली में घुसते घुसते उसने खुद को कोसा 'कायर... डरपोक!'

पर कायदे से वह अभी तक शहर के भूगोल को नहीं जानता था, गलियों की समझ तो दूर की कौड़ी थी। भटक गया ऋषभ। वह गली दर गली घुसता चला गया। बीच बीच में वह महसूस करता गया कि ये गलियां नहीं चक्रव्यूह हैं जिसमें न तो वह घुसना जानता है और ना बाहर निकलना। फिर भी वह उनमें घुसता गया। कुछ देर बाद ऋषभ को संदेह हुआ कि कोई उसका पीछा कर रहा है, उसने अपनी चाल और तेज कर दी। प्रतिक्रिया में पीछा करती हुई चटर पटर की आवाज भी तेज हो गयी। ऋषभ का दिल जोरों से धड़का, वह रुका और झटके के साथ पीछे मुड़ा महाकाल? उसकी सांसें चढ़ गयीं।

सामने वही विशालकाय जोगी चट्टान की तरह खड़ा था। चटर पटर की आवाज उसी के खड़ाऊं से आ रही थी। जटाएं वैसी ही खुली हुई थीं जो उसके बलिष्ठ भुजाओं को लगभग ढके हुए थीं। माथे पर लाल रंग का त्रिपुंड पसीने में बह कर नाक पर फैल गया था। आंखें वैसी ही रक्तितम। सुनसान गली में अब केवल ऋषभ था और वह काली चट्टान। ऋषभ अपने धड़कते दिल को काबू में लेना चाह रहा था, पर जोगी की 'डकैत' वाली पृष्ठभूमि उसे याद आ गयी। उसके पैर क्षण भर के लिए पत्थर हो गये। फिर भी ऋषभ के पास अब अनुभव नाम की शक्ति थी जो उसने हाल में ही अर्जित की थी। उसी के सहारे और बिना समय गंवाए ऋषभ मुस्कुराया। तीर निशाने पर लगा और बदले में जोगी भी मुस्कुराया, बोला "वही तो कहूं कि कहीं देखा है अरूप बाबू के साथ..." ऋषभ सहज हो गया और उसकी मुस्कान की लम्बाई कुछ इंच और बढ़ गयी। जोगी बोला "पर बाबू इ बवंडर के टाइम में कहां घूम रहे हैं... तुरंत निकलिए इधर से।" जोगी की मुस्कुराहट अब गायब हो चुकी थी। पर ऋषभ ने छूटते ही सवाल दाग दिया "पर हुआ क्या है?"

"अरे उ मुखिया जी को सुबहे गोली मार दिया कौनो..." जोगी ने सहज जवाब दिया।

"कौन मुखिया?"

जोगी को जैसे उसकी मासूमियत पर शक हुआ बोला "बे महाराज... इ भी मजाक का टाइम है।" ऋषभ को बात बुरी लगी, वह कुछ कठोर होकर बोला "मैं एक अरसे से इन गलियों में गुम होकर भटक रहा हूं, क्या मेरी हालत मजाक करने वाली है?"

जोगी का चेहरा सख्त हो गया, उसने जवाब दिया "तो मुखिया चालीसा बाद में जान लीजिएगा, अभी यहां से तुरंत घर भाग जाइए। पूरा शहर जल रहा है।" ऋषभ भी यहां डेरा डालने से रहा पर इन गलियों से निकलेगा किधर? जोगी भांप गया, बोला "देखिए, आप अगली गली से दाहिने मुड़िएगा फिर बायें, फिर बायें, फिर दायें। आप रमना मैदान पहुंच जायेंगे, वहां अभी कुछ नहीं हुआ होगा। जाइए जल्दी।" इतना कह कर जोगी खटर पटर करते हुए वापस जाने लगा। ऋषभ का मन हुआ कि जोगी से पूछे "अरूप कहां है?" पर कुछ सोच कर वह चुप हो गया। उसे दाहिने, बायें, बायें फिर दाहिने जाना था।

रमना मैदान पहुंच कर उसने देखा कि इतनी ही देर में मैदान खाली हो चुका था। पढ़ने वालों के झुंड कौओं के साथ कहीं उड़ गये थे। अधिसंख्य दुकानों के शटर गिर गये थे और पुलिस की सायरन से आसपास की धरती कांप रही थी। वह तेज कदमों के साथ अपने कमरे की ओर बढ़ गया।

वह घर पहुंचते ही टीवी खोल कर बैठ गया। टीवी स्क्रीन पर पत्रकार चीख पुकार मचाये हुए था। नेशनल चैनल से लेकर लोकल तक इस शहर को 'कवर' कर रहे थे। स्टेशन रोड, कतिरा मोहल्ला, पकड़ी चौक, जापानी फॉर्म, शहर के इन सब चौराहों पर सार्वजनिक व निजी गाड़ियां धूं धूं करके जल रही थीं। क्रोधित भीड़ 'मुखिया जी अमर रहें' का नारा बार बार लगा रही थी। इस दृश्य

को लोमहर्षक किसी भी तरह से नहीं कहा जा सकता था। वरिष्ठ पत्रकारों का एक दल इस हत्या के सामाजिक परिणामों पर उलझ गया था। ऋषभ मन ही मन सोचता गया यह कौन मुखिया था इस शहर का जिसे वह अब तक नहीं जान पाया था। अरूप ने भी तो कभी कुछ नहीं कहा? तभी टीवी पर पत्रकार ने उस नाम का खुलासा किया “हम दर्शकों को बता दें कि बिहार के एक शहर में रणसेना के संस्थापक अध्यक्ष जीवेश्वर मुखिया की आज तड़के ही कुछ बदमाशों ने गोली मार कर हत्या कर दी। जीवेश्वर सिंह उनहत्तर साल के थे। उनकी हत्या के बाद शहर प्रतिशोध के भाव में जल रहा है। कई सरकारी, गैरसरकारी गाड़ियों को उत्पाती भीड़ ने आग के हवाले कर दिया है। भीड़ बेकाबू हो चुकी है। राज्य के मुख्यमंत्री ने इस हत्या की निंदा की है और लोगों से संयम बरतने की अपील की है। हम दर्शकों को बता दें कि पुलिस डी.जी.पी शहर में बस कुछ ही देर में पहुंचने वाले हैं।” ऋषभ टीवी स्क्रीन पर अपना मुंह धंसाए सब कुछ देखता सुनता रहा।

जीवेश्वर मुखिया लगभग साल भर पहले लम्बी जेलयात्रा से लौटे थे। उनके जेल जाने की वजह ‘रणसेना’ की स्थापना और संचालन था। यह तब की बात है जब राज्य में इस रणसेना की स्थापना से वर्षों पहले आईपीएफ नाम से एक सशस्त्र वामपंथी सेना का गठन हुआ था। बाद में कई विचारधारात्मक और राजनीतिक दबावों से इसका लोकतंत्र में भरोसा जगा और वह ‘माले’ के नाम से जानी गयी। गरीब गुरबों के समर्थन से कई बड़े जमींदारों के खेतों पर लाल झंडे लहराने लगे। गैर मजदूर आ भूमि भूमिहीनों की हुई, मजदूरी और मेहनताने जैसी चीज अब जाकर अस्तित्व में आयी; बेगार बंद होने लगे। समाज में इससे कोलाहल फैलने लगा। सबसे ज्यादा असर शहर पर नहीं बल्कि शहर के सौ किलोमीटर के रेडियस में रहने वाले जमींदारों पर पड़ा। फिर अक्सर अखबारों में वर्ग संघर्ष के किस्से छपने लगे जिसे कड़ियों ने जाति संघर्ष के रूप में देखा। इस तनाव ने एक पृष्ठभूमि तैयार की और जमींदारों ने सामाजिक आर्थिक न्याय के जवाब में एक स्थानीय फौज खड़ी कर दी। कहना न होगा कि इस बेल्ट की शायद ही कोई ऐसी दबंग जाति थी जिसका समर्थन इसे नहीं मिला। सब शामिल थे। शहर इस फौज को ‘रणसेना’ के नाम से जानने लगा। संघर्ष तेज हो गये। बेलरू नाम के गांव में एक चिंगारी भी फूटी, फिर जल्दी ही बुझ गयी।

उसी समय शहर के इस कोलाहल से दूर एक दूसरे राज्य बंगाल के पुरुलिया में किसी पुष्पक विमान से आग्नेयास्त्रों का खजीरा गिर पड़ा। इन आग्नेयास्त्रों की तादाद इतनी ज्यादा थी कि सैकड़ों ग्रामीणों द्वारा उसे लूट लेने के बावजूद भी भारत सरकार ने जितना जब्त किया उसे गिनने में दो दिन लगे। देश उस पुष्पक विमान को अब एन्तोनोव एन 26 एयरक्राफ्ट के नाम से जानता है। देश और दुनिया में हड़कम्प मच गया था। तब चौबीस गुने सात वाली मीडिया का ठीक से जन्म नहीं हुआ था फिर भी यह घटना अखिल भारतीय विस्फोट की तरह थी। फिर धीरे धीरे इस घटना को देश भूलता गया पर यह शहर नहीं। यह शहर पुरुलिया को बहुत पास से जानता है, इतने पास से कि कुछ शहरवाले दावे के साथ कह सकते हैं कि पड़ोस वाला शहर पटना नहीं पुरुलिया है।

लोग कहते हैं कि इस घटना के साल भर के भीतर ही गंगा उल्टी दिशा में बहने लगी। यह शहर गंगा के जिस घाट पर बसा है, शहर वाले उसे ‘गांगी’ कहते हैं। लोग कहते हैं कि सन् सत्तावन के बलवे के समय बाबू कुंवर सिंह इसी गांगी के किसी घाट को पार करते वक्त घायल हो गये थे। अंग्रेजों की एक गोली उनकी बांह में धंस गयी थी। जहर को फैलने से रोकने के लिए उन्होंने घायल बांह काट कर गांगी को अर्पित कर दी “ले गांगी... संभाल।”

पर पुरुलिया के बाद लोगों ने देखा कि गंगा बनारस से चल कर इस शहर को छूते हुए बंगाल जाने की जगह बंगाल से बनारस बहने लगी। यह शहर तो दो राज्यों के बीच में उसी तरह स्थिर रहा

पर गांगी की दिशा उलट चुकी थी। इसी गांगी के घाट पर जल्ये के जल्ये पुरुलिया में गिरे वो अजनबी किस्म के अग्नेयास्त्र उतरने लगे।

गंगा की उल्टी धारा के साथ साथ ये आग्नेयास्त्र बनारस, देवरिया, गाजीपुर, गोरखपुर, आजमगढ़ तक बहाये गये। तब इस शहर के कई तबकों ने कई कारणों से उसकी मुंहमांगी रकम चुकायी और देखते देखते ये आग्नेयास्त्र सामाजिक मान्यता के चिह्न बन गये। इस शहर में विदेशी बारूद की गंध बस फैलने ही वाली थी। शहर ने पहली बार गर्मियों में, 'बड़ों' के निजी जलसों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में इन आग्नेयास्त्रों के फूटने की आवाजें भी सुनीं और इन आग्नेयास्त्रों के नाम थे सेमी ऑटोमेटिक, ए.के-47। ए.के-47 सोवियत यूनियन का अब तक का सबसे कारगर हथियार था। तब भी इस शहर के आसपास वर्गसंघर्ष थमने का नाम नहीं ले रहा था।

फिर वह दिन भी आया। शहर से साठ किलोमीटर दूर दक्षिण के इलाके को अरवल जिला कहा जाता है। उसी जिले में सोन नदी के किनारे दिसम्बर की पहली तारीख आ गयी। जाड़े की ठिठुरती अंधेरी रात में वहां की दलित बस्तियों ने भी पहली बार उन हथियारों के जोरदार धमाके सुने। ये धमाके इतने ताकतवर थे कि दुधमुंहे बच्चे डर कर अपनी मांओं की गोद में हमेशा के लिए सो गये। माएं भी बाद में हमेशा के लिए सुला दी गयीं उन बच्चों के पिताओं और दादाओं के साथ। सब चिथड़े में लिपटे सो गये, बच्चे मांओं की गोद में, माएं आंगन में, बूढ़े खाट पर, जवान खेतों और रेतों में। उस रात जो जहां था दिन में वहीं पाया गया बस सांसें बंद थीं। दलितों की उस बजबजाती बस्ती को लक्ष्मणपुर बाथे के नाम से जाना गया।

विदेशी पत्रकारों ने पूरी बस्ती और घरों का कोना कोना छान मारा। कहीं रेशमी वस्त्रों का भंडार नहीं मिला, सोने चांदी की ईंट कहीं नहीं दबी थी, अनाजों वाले मूढ़भांडों में छिपकलियां पायी गयीं। थक कर बीबीसी के पत्रकार ने अपनी हैरानी जाहिर की 'ये भिखमंगे किस्म के लोग जिन्हें हिन्दुस्तान हजारों वर्षों से दलित कहता आ रहा है अचानक किसी के लिए खतरा कैसे बन गये?'

अगले ही दिन बीबीसी समेत सभी राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय खबरों में मुखिया और मुखिया की सेना सर्वकालिक दिलचस्पी का विषय बन गयी। शहर के दबंग जाति के कुछ बुद्धिजीवियों ने दबे मन से इसे 'एक्ट फॉर बैलेंस' कहा। सरकारी आंकड़ों में मरने वालों की संख्या अट्ठावन बतायी गयी। हांलाकि सब जानते थे कि सरकार को ठीक से गिनती नहीं आती, एक बार फिर वह गिनती में कच्ची निकली और सैकड़ों में हुई हत्या को दहाई में दिखा कर अपना शोकसंदेश दे डाला।

तब से लेकर आज तक लक्ष्मणपुर बाथे पर हजारों देशी विदेशी रिपोर्टिंग हुई, सैकड़ों शोधप्रबंध लिखे गये, दजनों किताबे छपीं पर सब मिल कर भी मुखिया और मुखिया की सेना का घंटा नहीं कुछ उखाड़ पाये। हां, रणसेना की गतिविधि कुछ समय के लिए मंथर हो गयी, पर वर्गसंघर्ष जैसी कोई चीज अगर इस इलाके में थी, और जहां जिस हालत में थी, रुक गयी, हमेशा के लिए।

पर इच्छाशक्ति नाम की भी एक चीज होती है। जल्दी ही देश और राज्य की राजनीतिक इच्छाशक्ति से 'सेना' की गतिविधियां एक बार फिर बढ़ गयीं। अंडरग्राउंड हो चुके मुखिया ने सेना की कमान एक बार फिर संभाली। सेना के सैनिकों के लिए भावुक शहर ने चंदा भी दिया पर जिस बीमारी के लिए फौज पुनः तैयार हुई थी वह बीमारी ही खत्म हो चुकी थी। 'सेना' अप्रासंगिक होने लगी। कुछ वर्षों बाद राज्य की भीतरी राजनीति में कई उलटफेर हुए और बड़े नाटकीय ढंग से मुखिया को गिरफ्तार कर लिया गया। अदालत ने फांसी की सजा सुनायी।

पर कहते हैं कि मनुष्य और राजनीति इन दोनों की कोई पूर्व परिभाषा नहीं, कोई पूर्व व्याख्या नहीं। अंत अंत तक पता नहीं चलता कि विपरीत स्थिति में दोनों कौन सा कदम उठाने जायेंगे? कुछ

वर्षों बाद राज्य की राजनीति और सरकार दोनों बदल गये। राज्य सरकार ने मुखिया के गिरते स्वास्थ्य, बढ़ती उम्र एवं जेल में सदाचारी चरित्र अपनाये जाने की ठोस वजहों से फांसी की सजा को रिहाई में तब्दील कर दिया। इस विपरीत परिस्थिति में शहर के लोगों ने मुखिया का नया अवतार देखा। जेलयात्रा के बाद मुखिया अब अक्सर दार्शनिक भाव लिए गुमसुम से रहते थे। उनका अचानक से हृदय परिवर्तन हो गया था। कुछ लोगों ने अपने कानों से उन्हें यह कहते हुए सुना “हिंसा का जवाब हिंसा नहीं है।” बस इतना सुनना था कि शहर के पुराने राजनेता सदमे में चले गये। मुखिया के इस हृदय परिवर्तन से राजनीतिक अखाड़े के पुराने पहलवान लंगोट कसने लगे। कइयों की परेशानियां यकायक बढ़ गयीं।

ऋषभ टीवी पर आंखें गड़ाये देर तक जलते हुए शहर को देखता रहा। भीड़ उग्र से उग्र होती जा रही थी, आधा शहर धूं धूं करके जल रहा था। ‘मुखिया जी उमर रहें’ के नारे मानो अब पड़ोस से आ रहे हों। किसी राष्ट्रीय चैनल का टीवी एंकर एक ही फुटेज बार बार दिखा रहा था जिसमें राष्ट्रीय चैनलों के पत्रकारों पर धड़ाधड़ थपड़ पड़ रहे थे “साले मुखिया जी के नाम पर खाली लक्ष्मणपुर बाथे याद आता है।” ऋषभ देख रहा था किस तरह उग्र भीड़ ने राज्य के डीजीपी को कॉलर से पकड़ लिया। एक स्थानीय विधायक का भीड़ ने सिर फोड़ दिया है। एक और विधायक को भीड़ ने टांग लिया है और उसे काट कर कुएं में डालने की बात हो रही है। सुरक्षा कारणों से बिहार के किसी भी मंत्री को इस शहर में आने से रोक दिया गया। दबंग जातियों के मंत्री बेचारे छटपटा कर रह गये।

भीड़ जितनी हड़बड़ी में ऊधम मचा रही थी उससे कहीं दोगुनी हड़बड़ी से टीवी का एंकर अपने न्यूज रूम में ऊधम मचाये हुए था, उसके शब्द आपस में उलझ रहे थे। ऐसा दृश्य ऋषभ ने अपने होश में पहली बार देखा था। ब्रेक के बाद चैनल का पत्रकार फिर हाजिर हुआ, कुछ नये दृश्यों के साथ। मुखिया के क्रुद्ध अनुयायी शहर के आम्बेडकर छात्रावास का गेट तोड़ रहे हैं। कैमरा जब ‘जूम’ हुआ तो छात्रावास के भीतर बेतहाशा भागते दौड़ते दलित छात्रों की टोलियां दिखीं। चारों तरफ अफरातफरी का महौल था। कई छात्र छात्रावास की छत पर चढ़ कर डर के मारे चीख रहे थे, कुछ भीड़ की तरफ हाथ जोड़े रो रहे थे, कुछ तो हॉस्टल के पीछे खेतों की ओर छलांग लगाते दिखे। पता नहीं क्या हुआ होगा उनका?

अब टीवी एंकर बार बार संकेत कर रहा है कि इस हत्या के पीछे राजनीतिक प्रतिशोध की पूरी गुंजाइश है। रणसेना और ‘माले’ के पुराने संघर्ष को एंकर ने याद किया और कहा कि एक बार फिर वही संघर्ष सतह पर आ रहा है “माले में ज्यादातर निचली जातियां शामिल हैं, सम्भवतः बहुत सोच समझ कर भीड़ ने आम्बेडकर छात्रावास पर हमला किया है।” अब छात्रावास का गेट टूट चुका था। फिर, चीख पुकारें, अफरातफरी, आंसू और लाठियां। इसी बीच किसी ने कैमरे पर लाठी दे मारी। सारा दृश्य ओझल हो गया, पर कैमरे से निकलती अजीब तरह की चीखें टीवी पर सुनी जा सकती थीं। एंकर उखड़ी हुई सांसों के साथ बड़बड़ाता रहा, ऋषभ ने चैनल बदल लिया।

ऋषभ के दिमाग में आम्बेडकर छात्रावास अब भी नाच रहा था। उसी छात्रावास के पीछे की दीवार से वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय का अहाता शुरू होता है। कुंवर सिंह ने सत्तावन के बलवे में अपनी एक बांह खोयी थी पर आजादी के पैंसठ साल बाद यहां के दलित छात्र अपने हाथ, पैर, पीठ, कमर, कंधे, सिर एक एक करके खो रहे थे।

दूसरे स्थानीय चैनल पर ऋषभ को मुखिया का शोक संतप्त परिवार दिखायी दे रहा है। सिसकियां चारों ओर फैली हैं। इसी बीच कोई बूढ़ा कैमरे से मुखातिब होता है “सुबह सुबह टहलने की आदत थी मुखिया जी को। ...चाय भी नहीं पीये थे। बोले कि टहल कर आते हैं तब पीयेंगे।

हम तो कुछ नहीं देखे पर लोग बताया कि काला मोटर साइकिल पर दूगो लौण्डा बैठा था। उ लोग पहले पड़नाम (प्रणाम) किया फिर गोली मार कर भाग गया।” फिर कुछ और लोग कैमरे में दिखे, लगातार चीख रहे थे। इसी बीच टीवी स्क्रीन पर राज्य के एक केन्द्रीय मंत्री का बयान आया “मुखिया जी महात्मा गांधी के नये अवतार थे।” ऋषभ इस बयान पर पहले चौंका फिर अपने जबड़े कस लिए।

कुछ लोगों का मानना था कि जिस तरह से नाथूराम गोडसे ने गांधी जी को प्रणाम किया फिर गोली मारी लगभग उसी ‘पैटर्न’ पर मुखिया जी की हत्या हुई थी। गांधी जी ने गोली लगने के बाद ‘हे राम’ कहा था। पर जीवेश्वर मुखिया ने क्या कहा, अभी तक पता नहीं चला। पता भी कैसे चलता, टीवी बंद हो गया था, ऋषभ कमरे में अंधेरा करके औंधे मुंह लेट गया। गुमसुम। शहर जलता रहा, ऋषभ सोता रहा।

जब उसकी आंखें खुलीं तो रात ढल चुकी थी। उसने बत्ती जलायी और प्रिंसिपल महावीर जैन को कॉल करने लगा। प्रिंसिपल साहब ने सूचना दी कि स्कूल अगले एक सप्ताह के लिए बंद रखने का फैसला लिया गया है, साथ ही उन्होंने अगले दो दिन तक ऋषभ को बाहर न निकलने की सख्त हिदायत दी। महावीर जैन की बातचीत हमेशा आदेशात्मक और औपचारिक होती है फिर भी ऋषभ उन्हें खूब पसंद करता है। मुस्कुरा कर उसने प्रिंसिपल साहब को कहा “ठीक है सर, नहीं निकलूंगा बाहर, आप चिन्ता ना करें.. धन्यवाद।”

कुछ खा पीकर ऋषभ टीवी खोलने की जगह किताब खोल कर बैठ गया। पढ़ते हुए कुछ वक्त निकल गया तब उसने अपनी गर्दन की अकड़ ढीली की और सिर को दायें बायें घुमाने लगा। वह मार्खेज की लेखन कला पर मुग्ध था। ‘लव इन द टाइम ऑफ कॉलरा’ अद्भुत रचना है। आधी वह पढ़ चुका है, आधी आज रात में पढ़ लेगा। उसने सिर को एक बार फिर घुमाया और उसकी नजर सेल्फ में पड़ी उस डायरी पर पड़ गयी ‘ऋषभ माने बैल, ऋषभ तुम बैल हो।’ उसके हाथ अनजाने में डायरी तक पहुंचे और डायरी टेबल पर आ गयी। उसने एक बार फिर डायरी पर हाथ फेरने शुरू किये तो मन ने उसे याद कर लिया “तन्वी, तुम कहां हो?” तब उसकी दाहिनी आंख के कोर में पानी की बूंदें उग आयीं।

बहुत देर बाद वह फिर उठा और खाना खाकर कुर्सी पर बैठ गया। मार्खेज उसका ही इंतजार कर रहा था। वह पढ़ता गया। रात गहरी हो गयी, तो दरवाजे पर किसी ने हौले से दस्तक दी ‘थप्प थप्प’। ऋषभ चौंकना छोड़ चुका था, वह उठा “कौन है? ..एक मिनट।” दरवाजा खुला तो अरूप का सूखा हुआ चेहरा सामने था, वह झट से भीतर घुसा और खुद ही किवाड़ बंद किया। कमरे का मौसम बदल गया।

वह बैठा भी नहीं, खड़े खड़े बोला “मुझे आज ही रात में शहर छोड़ना है ऋषभ।” बस इतना कह कर वह ऋषभ से लिपट गया और रोने लगा। रुलाई में सिसकियां नहीं थीं। वह फूट फूट कर रो रहा था। ऋषभ सुन्न हो गया “क्या आफत आ गयी फिर इस पर?”

ऋषभ ने ही पूछा “अब क्या हो गया?”

“मुखिया के मर्डर में छबीला का नाम आया है?”

“?”

“मुखिया के आदमी छबीला से पहले मुझे ढूंढ़ रहे हैं।” बताते हुए अरूप कांपने लगा। उसके चेहरे पर खौफ की छाया दिखी। मामला खतरनाक मोड़ पर था। पता नहीं क्यों छबीला का नाम सुन कर ऋषभ के शरीर में आग लग गयी, बोला “तो क्या जरूरत थी उस अपराधी को स्पेस देने की?” ऋषभ इस प्रकरण से आजिज आ चुका था। उसके खुद के माथे पर शिकन आ गयी। अरूप ने आंशू

पोछते हुए जवाब दिया “भाई, मैं झूठ नहीं बोल रहा, हथियार रखने भर से कोई हत्यारा नहीं हो जाता।”

“पर परिस्थितियों का क्या? हथियार होगा तो चलेगा भी।”

अरूप ने आंखें मिचमिचा दीं। उसके पास जिरह के लिए बिल्कुल वक्त नहीं था, कातर होकर बोला “देख भाई, अब मैं किसी के बारे में गारंटी से कुछ नहीं कह सकता। मुझे अपनी जान बचानी है।”

“छबीला है कहां।” अरूप अब भी सच जानने पर आमादा था।

‘हफ्ता भर पहले मिला था, रो रहा था। बोला कि भइया जी हमको बचा लीजिए, हम कुछ नहीं किये हैं। मैंने कहा कि सरेण्डर कर दो तो बिदक कर बोलने लगा कि भइया जी जब हम कुछो किये ही नहीं हैं तो जेल काहे जायें भइया जी, सब लोग काहे हमरे ही पीछे पड़ा है।’ कह कर वह फिर रोने लगा।

ऋषभ को रती भर भी भरोसा नहीं हुआ, उसने अरूप पर फिर बाण चलाये “ये सब बता कर क्या साबित करना चाहते हो अरूप?”

अरूप सवाल बर्दाश्त नहीं कर पाया, टूट कर जैसे बिखर गया “भाई रे माफ कर... हम कह ही रहे हैं कि हम अब किसी का गारंटी लेने लायक नहीं बचे हैं।” अरूप ने ऋषभ के आगे हाथ जोड़ दिया। ऋषभ हड़बड़ा कर पीछे हट गया। दोनों सिर जमीन निहारने लगे।

“अब?” ऋषभ ने गम्भीर होकर पूछा। इस ‘अब’ के सवाल ने अरूप को फिर रुला दिया। उसकी सांसें चढ़ने लगीं। आंसू में डूबी हुई आंखें और कांपते हुए सूखे शरीर के साथ वह लड़खड़ाते हुए बोला “भाई... लगता है छबीलवा के साथ साथ हमको भी आयरन देवी का शाप लग गया है।” तभी दरवाजे पर ‘खट’ की आवाज हुई, अरूप की सांसें खौफ से टंग गयीं। पर कुछ नहीं बिल्ली थी। दोनों की सांस में सांस लौटी। बहुत पहले अरूप ने ही बताया था कि डर इस शहर का ‘स्थायी भाव’ है। लोग या तो डर कर जीते हैं या फिर डरा कर। यह बात कहते वक्त अरूप बिल्कुल निडर दिखा था। पर आज हालात बदल गये हैं।

अरूप जाने की हड़बड़ी करने लगा, उसने ऋषभ की टंगी शर्ट अपने उसी पुराने झोले में बिना पूछे ही टूंस ली और बोला “यहां तुमको दर्शन देने नहीं आये हैं, पैसा चाहिए, जो भी है दे दो।” उसके पूरे कथन में निर्लिप्तता थी। ऋषभ पर तब तक स्थितियों का गहरा असर हो चुका था। उसने झट से पर्स निकाले “साढ़े तीन सौ ही हैं।”

“इससे क्या होगा?”

पहली बार ऐसा हुआ कि पर्स में कम पैसे रखने पर ऋषभ को शर्मिंदगी हुई, वो भी तब अरूप मांग रहा हो जब वह एकबारगी उसका भरोसा खो चुका था। उसने तुरंत अपने बायें हाथ की सोने की अंगूठी निकाल ली और अरूप की ओर बढ़ा दिया “दो हजार से कम की नहीं, इसे रख लो।”

अरूप भन्ना गया “बेचने का टाइम कहां है, बस तीन सौ ही दे दो, जल्दी करो।”

पैसे जेब में भर कर अरूप ने दरवाजे को पहले हल्का सा खोला, फिर मुंडी निकाल कर आसपास झांकने लगा, रास्ता साफ था। वह मुड़ा और एक बार फिर ऋषभ से लिपट कर रोने को हुआ। पर वक्त नहीं था। अपनी सांसें संयत करके बस इतना ही बोल पाया “आज हम राजपूत, भूमिहार या यादव होते तो देखते कि कौन साला हमको हाथ लगा लेता... हम श्रीवास्तव हैं इसीलिए न सब हमको सप्तभगिन्याय के लिए ढूँढ रहा है।” यह बात सहमे हुए स्वर में निकाली और वह तेज कदमों के साथ अंधेरे में गुम हो गया। पर जाते जाते अरूप ऋषभ को एक अजीब पशोपेश में डाल

गया। क्या पेशे की मजबूती जातियां तय करती हैं? पहली बार ऋषभ को अरूप की जाति का भी पता चला। सप्तभंगिन्याय अरूप का 'पेट' शब्द था। जब कोई बलवान किसी कमजोर के दोनों पैर, दोनों हाथ, कूल्हा, गला और सिर सातों तोड़ दे तो उसको वह सप्तभंगिन्याय कहता था। अरूप चला गया पर ऋषभ के हिस्से में ढेरों सवाल और खालीपन छोड़ गया। छबीला प्रकरण पर शायद उसका 'विरेचन' हो रहा था।

ऋषभ देर तक मार्खेज को किनारे रख कर सोचता रहा। एक बार फिर वह कहीं नहीं था, शून्य में भी नहीं। उसके दिमाग में बहुत सारी चीजें थीं पर मौजूदगी एक की भी नहीं थी। रात गहराती गयी।

अब वह सोने की तैयारी कर रहा था कि दरवाजे को आधियों ने धड़धड़ाना शुरू कर दिया। उसे हैरानी हुई कि 'मौसम तो साफ ही था आज।' वह उठा कि दरवाजा धड़धड़ा कर टूटने जैसा हो गया। जब तक वह खड़ा हुआ दरवाजा 'भड़ाक' की तगड़ी आवाज के साथ टूट गया और लोहे की कुंडी उखड़ कर फर्श पर नाचने लगी। कई आधियां सशरीर कमरे में घुस गयीं। ऋषभ के कुछ सोचने से पहले ही किसी भीमकाय का पंजा उसके गले से चिपक गया "कहां है रे भोंसड़ीका अरूपवा... बोल?" ऋषभ की आंखें बाहर की ओर निकलती चली गयीं। उसकी सांसें थमने लगीं, 'गोंगों' की आवाज के साथ बस इतना ही बोला "मुं... हे क्य पत?" फिर कमरे में चक्रवात ने अपना तांडव शुरू किया। कुर्सी, टेबल, किताबें, सेल्फ, बिस्तरे एक एक करके उड़ने लगे। पलक झपकते ही चक्रवात थमा पर ऋषभ का गला वैसे ही उस पंजे में झूल रहा था। पंजेबाज ने ऋषभ की खौफजदा आंखों में अपनी आंखें गड़ा दीं और अपनी फंसी हुई आवाज में बोला "मिले तो बोल देना माधड़चो... को, उसका अउर छबिलवा का पिंडदान कर दिये हैं हम लोग, अब मुक्ति लेने में काहे देरी कर रहा है?" फिर उस पंजेबाज ने ऋषभ को पीछे की ओर उड़ा कर फेंक दिया। ऋषभ का सिर दीवार से टकराया और वह फर्श पर बेसुध होकर गिर पड़ा।

इस शहर के नास्तिक फास्तिक

बतप्रपंची : वेद प्रामाणिक नहीं हैं। आत्मा अनश्वर है पर ईश्वर नहीं है।

अगली सुबह जब ऋषभ की आंख खुली तब वह फर्श पर नहीं बल्कि अपने कमरे के बिस्तर पर पड़ा था। उसके सिर का पिछला हिस्सा दर्द से फटा जा रहा था। उसने अपनी आंखों के सामने एक बच्चे को पाया जो अपनी फटी हुई आंखों से ऋषभ को ही घूर रहा था। ऋषभ की चेतना लौटने लगी। टेबल, कुर्सियां, किताबें, कपड़े, बुक शेल्फ जो रात के चक्रवात में अपनी जगह से उखड़ गये थी उन्हें ज्यों का त्यों सजाने की किसी ने असफल कोशिश की थी। ऋषभ के बिस्तर के ठीक सामने एक आदमी कुर्सी पर बैठा अखबार पढ़ रहा था। कोई औरत अपनी चूड़ियां बजाते हुए ऋषभ की रसोई में कुछ पका रही थी। मेथी, घी, हींग और तेजपत्ते की खुशबू से कमरा भर गया था।

आंखें फाड़े हुए ही वह बच्चा धीरे धीरे ऋषभ के करीब आ गया और अपनी नन्हीं उंगलियों से ऋषभ की कलाई खुरचने लगा। यह वही स्कूली बच्चा था जो रोज कोहराम मचाने के बाद ही स्कूल कैब में धक्के के साथ बैठाया जाता था। ऋषभ ने उसकी नन्हीं उंगलियों को पकड़ लिया, बच्चा डर कर चिल्लाया "पापा होऽऽ इ जिन्दा हो गईल।" हड़बड़ा कर बच्चे के पिता ने अखबार मोड़ते हुए

बच्चे को ही जोर से डांटा “भाग ससुरा... ऐसे बोलते हैं जी... यही सीखता है स्कूल में?” अपने बच्चे से शर्मिन्दा हुआ पिता ऋषभ की ओर मुड़ा और उसके माथे पर अपनी हथेली रख दी “ऽऽकैसे हैं रीसभ जी? ...बुखार तो है नहीं।” आदमी कुछ कुछ निश्चिन्त हुआ।

ऋषभ कुछ नहीं बोला। पिता से डांट खाकर चुप हुए उस बच्चे की नन्हीं गर्म उंगलियां अब भी ऋषभ के हाथ में फंसी थीं। ऋषभ ने उसकी उंगली छोड़ कर उसके गाल छू दिये और मुस्कराते हुए पूछा “आज स्कूल नहीं गया?” बच्चे की आंखें चमक उठीं। किसी छुपी खुशी के मारे इतराते हुए बोला “हैं स्कूले (स्कूल) बंद हो गया।” ऋषभ को हंसी आ गयी। कोई तो है इस शहर में जो जी जान से खुश है। ऋषभ ने बच्चे को उसी की आवाज में कहा “हैं, मेरा भी बंद हो गया।” दोनों मुस्कराने लगे।

रसोईघर में बच्चे की मां जान गयी कि ऋषभ जग गया है। वह बड़बड़ते हुए रात में आये उन दर्जन भर चक्रवातों को गालियां परोसने लगी। बच्चे के पिता ने उसे भी डांटा “अब चुप हो जा।”

फिर औरत माथे पर घूँघट डाले चाय लेकर आयी और टेबल पर रख दिया। अपना आंचल संभालते हुए ऋषभ से बोली “नाश्ता खाना सब बना दिये हैं... टाइम से खा लीजिएगा।” और बच्चे का हाथ पकड़ कर कमरे से बाहर चली गयी। जाते वक्त वह बच्चा मुड़ कर ऋषभ को ही देख रहा था।

कमरे में चुप्पी पसर गयी। ऋषभ चाय पीने लगा और बच्चे का पिता फर्श पर निगाह टिकाये कुछ सोचने लगा। तभी सीढ़ियों पर खटरपटर की आवाज आनी शुरू हो गयी। यह बच्चे की दादी थी जो लाठी टेकते हुए कमरे में दाखिल हो गयी। उसकी सीढ़ियां चढ़ने से सांसें उखड़ रही थीं। बच्चे का पिता नाराज हो गया “अब तुम का करे आयी हो माई...?” पर दादी का शरीर जर्जर था, आवाज नहीं, उल्टे बच्चे के पिता को ही डांट दिया “अरे चुप कर... तू का जाने माई का मन...।” बूढ़ी दादी कांपते पैरों से ऋषभ के बिस्तर तक आ गयी “करमकूट, दाढ़ीजार सब। बारह जना मिल के लइका के मारे आइल रहन सब, मऊगा (नामद) सब।” कह कर उस दादी ने अपने झुर्रियों से लदे दोनों हाथों को ऋषभ की ओर बढ़ा दिया। झुर्रिदार हाथ ऋषभ के शरीर को टटोल टटोल कर जखम तलाशने लगे। दादी के हाथ जब निश्चिन्त हो गये कि शरीर पर कहीं गहरा जखम नहीं है तो वह सिर की ओर बढ़ गये। ऋषभ के सिर में ही नहीं बल्कि उसकी पूरी क्षत विक्षत आत्मा में एक मखमली एहसास भरने लगा। उसकी आंखें भर आयीं। ये आंसू छुप नहीं पाये और टपकने लगे।

बच्चे का पिता ऋषभ की सकुचाती आंखों को पढ़ गया, बोला “माई अब जा तू।” उसकी माई कुछ नहीं बोली, बस अपने आंचल में कुछ ढूँढने लगी। उसके आंचल के कोर में कुछ बंधा हुआ था। कांपते हाथों से उस माई ने उस छोटी गठरी को खोला और ऋषभ की हथेली खोल कर उसमें अपना आंचल पलट दिया। ऋषभ की हथेली में मीठे चावल के दाने प्रसाद बन कर गिरने लगे। उस माई ने ऋषभ के ललाट को एक बार फिर सहला दिया। फिर बिना कुछ कहे लाठियां टेकती हुई चली गयी। सीढ़ियां उतरते वक्त फिर खटरपटर की आवाज हुई और धीरे धीरे सब शांत हो गया।

बच्चे का पिता अब जाकर कुर्सी पर से उठा। वह काफी देर से कुछ कहना चाहता था। खड़े होकर उसने पहले कमरे की खिड़की खोल दी, फिर गम्भीर होकर बोला “हम लोगों को जब पता चला तब तक उ भौंसड़ीवाला सब भाग चुका था, मतलब कि जैसे ही यहाँ हुडदंग शुरू हुआ तब लगा कि डकैत सब है। जब कुर्सी टेबल टूटने जैसा आवाज हुआ तब लग गया कुछ और बात है। इधर से हम लोग चार पांच आदमी चढ़े तब तक उ लोग उधर का सीढ़ी फांद कर गायब हो गया। हम

तो हवा में फायर करना चाह रहे थे कि पड़ोसी मधुबन बाबू हमको रोक दिये।” अंतिम वाक्य कहते हुए बच्चे के पिता ने अपनी शर्ट को पेट तक उठा दिया। बच्चे के पिता के कमर में बंधी स्टील जैसी कोई सख्त चीज चमक उठी। ऋषभ की जगह इस शहर का कोई भी शख्स होता तो बता देता कि यह सख्त चीज ‘नाईन एम.एम माउजर’ के नाम से जानी जाती है। यह मंहगा विदेशी हथियार था और इसे पास रखने वाले को इस पर उतना ही भरोसा रहता था जितना कि शोले फिल्म में जय और वीरू को आपस में था।

बहरहाल, बच्चे के पिता ने अपनी शर्ट ठीक की और लम्बी सांस छोड़ दी। वह अब बाहर जाने की तैयारी में था। जाने से पहले उसने ऋषभ को सम्बोधित किया “रीसभ जी... जरूरत पड़े तो हम एनी टाइम हाजिर हैं, बस फोन घुमा दीजिएगा।” बच्चे का पिता दरवाजे तक पहुंच कर फिर मुड़ा, कुछ सोचा, तब बोला “फर्स्ट टाइम इ मुहल्ला में ऐसा हुआ है, पूरा मोहल्ला आपके साथ है। बूढ़ा, बच्चा, अऊर सब लोग खौल गया है। आप जैन हैं तो का हुआ, कोई भी कुछ भी कर लेगा? इ अब मोहल्ला का नाक का सवाल है।” सीढ़ियों पर धबधब की आवाज के साथ बच्चे का पिता चला गया।

बच्चे का पिता तो चला गया पर उसकी कही अंतिम बातें ऋषभ को चुभ गयीं। पिटा वह और मोहल्ले की नाक सूज गयी?

उसने सोचा भी न था कि लोग इस हादसे को भला इस तरह से देख रहे हैं? हद है! यह शहर न जाने कैसे सोचता है? पलक झपकते ही निर्बल को सबल और सबल को निर्बल बना देता है! अजीब जादूगर है यह शहर! ऋषभ की हथेली पर मिठे चावल के छोटे छोटे दाने पसीजने लगे। मुट्ठी खोल कर उसने उन दानों को देखा तो बूढ़ी माई का चेहरा याद आ गया। इतनी देर में उसे आभास ही नहीं हुआ था कि उसके माथे का दर्द अब गायब था। बूढ़ी माई भी जादूगर है? उसने चावल के उन दानों को बड़े जतन से प्लेट में रखा और फूर्ती के साथ गुसलखाने में घुस गया।

वह कमोड पर बैठा तो खिड़की से उस बूढ़ी माई के गीत गाने की आवाज आ रही थी। बीच बीच में उठती स्कूली बच्चे की उन्मुक्त हंसी ऋषभ के कान सहलाने लगी। बैठे बैठे ही उसने खिड़की को जरा सा आगे की ओर सरका दिया। दृश्य साफ था। बूढ़ी माई झुर्रीदार हाथों से तालियां बजा बजा कर गा रही थी। माई ने उस बच्चे के पैरों में शायद घुंघरुओं वाली पायल बांध दी। बच्चा पैर पटक पटक कर माई के गीत पर नाच रहा था। उसके दोनों हाथ कमर पर थे और चेहरे से मोती झर रहे थे। ‘स्कूल कितने खराब होते हैं!’ ऋषभ ने सोचा और भूमंडल की सारी हवा खींच कर उसने अपने पेट में भर ली। फिर वह मुस्कराते हुए ध्यानमग्न हो गया।

शाम को प्रिंसिपल ऑफिस में महावीर जैन ऋषभ का ही इंतजार कर रहे थे। शहर में आगजनी पर तो काबू पाया जा चुका था पर आसमान में उठते बीते कल के धुएं और लोगों के भीतरी कोलाहल को कोई ईश्वरीय शक्ति ही नियंत्रित कर सकती थी। वैसे इस शहर का अब कोई ईश्वर नहीं था। फिर भी डरते हुए जीवन शहर की पटरी पर लौटने की कोशिश कर रहा था। एक कोशिश प्रिंसिपल ऑफिस में भी होने लगी। ऋषभ अपने शहर लौटना चाहता था, हमेशा के लिए। महावीर जैन देर तक बौखलाए ऋषभ की जिरह सुनते रहे। ऋषभ ने इस शहर के बारे में एक बार फिर वही राय रखी जो मैकाले की हिन्दुस्तानियों के बारे में थी। मैकाले और ऋषभ में बस इतना ही अंतर था कि ऋषभ ने मैकाले की तरह ‘व्हाइट मैन्स बर्डन’ की भूमिका अपनाते से इनकार करते हुए इस देश (शहर) को सभ्य बनाने की कोई नैतिक जिम्मेवारी नहीं ली। उल्टे उसने कह डाला कि यह सड़ा हुआ शहर उसे अब बर्दाश्त नहीं।

उसकी बातें सुनते सुनते अचानक प्रिंसिपल साहब उठे और कई खिड़कियों वाले अपने इस ऑफिस की सबसे बड़ी खिड़की खोल दी। खिड़की से आसमान में कुछ दूर धुएं का एक गोला दिख रहा था। उस काले गोल धुएं का सम्बंध कल की घटना से था। धुएं की नाभि से निकला हुआ नाल शहर के उस हिस्से की धरती को छू रहा था जिधर कल हत्या हुई थी।

महावीर जैन ने एक गहरी सांस ली और बोले “ऋषभ देश वही है जहां जीविका हो... सदेशों यत्र जीव्यते।” यह महाभारत की कोई पंक्ति थी। प्रिंसिपल साहब की आंखें अभी भी काले धुएं के उस गोले पर फंसी थीं। वे ऋषभ की ओर मुड़े और अपनी सांस खींच कर बोले “चीजें... कमोबेश हर जगह वैसी ही हो रही हैं अब।” वे खिड़की से वापस आकर फिर अपनी कुर्सी पर बैठ गये। उनकी नजर अब टेबल पर रखे कांच के गोल पेपरवेट पर टिक गयी। प्रिंसिपल साहब ने उस गोले को मुट्ठी में भर लिया और उसकी तली में झांकने लगे। मानो सत्य कब से यहीं छुपा था और जिसे उन्होंने अभी अभी खोज लिया हो।

ऋषभ जब प्रिंसिपल ऑफिस से बाहर आया तब तक उसका माथा मथा जा चुका था। महावीर जैन ने उसका इस्तीफा फाड़ कर टोकरी में फेंक दिया था और ऋषभ के सम्यक् चरित्र के पुनःनिर्माण हेतु पंद्रह दिन की छुट्टी दे डाली थी। साथ में उन्होंने यह भी सूचना दी थी कि ऋषभ के पिता से उनकी बात हुई है और ऋषभ चाहे तो तीन महीने की अग्रिम तनखाह अपने पिता के इलाज के लिए एकमुश्त ले सकता है। ऊपर से असफल ऋषभ जब प्रिंसिपल ऑफिस से जाने को हुआ तो प्रिंसिपल साहब ने उसे पकड़ कर उसके मगज में एक श्लोक टूंस दिया

‘हंसः श्वेतो बकः श्वेतो को भेदो बकहंसयोः ।

नीरक्षीरविभागे तु हंसो हंसो बको बकः ॥

अर्थात् हंस सफेद होता है, बगुला भी सफेद होता है रंग की दृष्टि से दोनों में कोई भेद नहीं। किन्तु नीरक्षीर के विवेक में हंस समर्थ होता है, बगुला नहीं। तभी तय हो जाता है कि हंस हंस ही है और बगुला बगुला। प्रतिक्रिया में ऋषभ कबूतर की तरह फड़फड़ा कर रह गया, उसके मन में आया कि बोल दे “वो दिन अब गये बुढ़ऊ।” पर वह कुछ नहीं बोला, बस अपने गुस्से का आभास करा कर बाहर निकल गया। ‘बको बकः’ की बकबक से उसके मन में प्रिंसिपल के लिए जो धरधर शब्द खदबदा रहे थे वह ऋषभ के लिए भी नये थे और इसी शहर की माटी के थे।

वह रात मानव जीवन के इतिहास की सबसे लम्बी रात थी, ऋषभ के लिए। उसने अपने जरूरी सामान एयरबैग में टूंस लिए थे। इस शहर से उसके शहर जाने वाली ट्रेन अगली सुबह थी, ठीक नौ बज कर बारह मिनट पर। उसे कोफ्त इस बात का था कि उसे फिर यहीं लौटना है। उष्ण... कह कर वह करवट बदलता है। पर इससे भी चैन नहीं। उसे बायीं करवट तन्वी दिखायी देती है, दायीं करवट में अरूप संग छबीला। वह पीठ के बल सोता है तो सफेद छत तोड़ते हुए दर्जन भर आधियां कमरे में घुस जाती हैं। इस बार वह पेट के बल सोया। उसे लगा कि बूढ़ी माई उसके जख्मों को टटोल रही है। फिर वह पेट के बल ही सोता रहा, सुबह होने तक।

स्टेशन के पास वह रिक्शे से उतरा तो आसपास पहले वाली गहमागहमी नदारद थी। पर कुछ लोग थे वहां। ज्यादातर दुकानें बंद थीं। बंद दुकानों के कई दरवाजे टूटेफूटे से दिखे। कड़ियों के लोहे के शटर बीच से फटे पड़े थे। विजय प्रसाद चायवाले की दुकान गायब थी। वहां मलबे और कूड़े फेंके जा रहे थे। कैसा उपद्रव रहा होगा वह? बस दातून बेचने वाले ही साहसी थे जो बोरियां बिछा कर चुपचाप दातून बेचने में लगे थे। आसमान का रंग साफ था और सूरज चमक रहा था। आसपास के सड़कों की सफाई हो चुकी थी।

वह सीधे प्लेटफार्म नम्बर एक के वेटिंग रूम में घुसा। लोग थे वहां। कुछ गरीब किस्म के मुसाफिर कुर्सियों की जगह जमीन पर बैठे हुए थे। शायद उन गरीब मुसाफिरों को आभास था कि यह एसी फर्स्ट क्लास का वेटिंग रूम है जहां सब 'अलाऊ' नहीं। उसने एक कुर्सी पर अपना बैग पटका और दूसरी कुर्सी पर बैठ गया। मुसाफिरों ने अपनी एक नजर ऋषभ पर फेरी और फिर सबकी नजर दूसरी ओर घूम गयी। वहां के आकर्षण का केन्द्र छतीस इंच का टीवी था जिस पर भोजपुरी गाने अपना कहर बरपा रहे थे। सबकी नजर उसी पर टिकी थी। टीवी को कोने के एक टूटे सरकारी टेबल पर सहेज कर टिकाया गया था। इस वेटिंग रूम में टीवी छोड़ कर सारी चीजें मध्ययुगीन सी दिख रही थीं। टीवी का टेबल भी साबुत नहीं था। उसके केवल दो अपने पैर थे, शेष दो पैरों की जगह इंटें सजायी गयी थीं। टेबल आधा अपने स्तंभों पर और आध इंटें पर टिका था। भोजपुरी गीतों के बोल ऐसे थे जिसका अनुवाद बस रीतिकाल के आचार्य कवि ही कर सकते थे। ऋषभ झंपने की जगह उठा और प्लेटफार्म से कोई पत्रिका खरीद कर वापस आ गया। वह पन्ने पलटते हुए टीवी पर चलते सांस्कृतिक कार्यक्रमों की लगातार अवहेलना करता रहा। गाने के बोल और उस पर टुमकती हुई थुलथुल हीरोइन दोनों जब मर्यादाभाव के चरम पर पहुंच गये तब ऋषभ को बर्दाश्त नहीं हुआ, वह फटा “अरे यार आवाज कम कर दो... या चैनल बदल दो।”

“रिमोट स्टेशन मास्टर के पास है।” यह आवाज भद्र मुसाफिरों में से ही किसी की थी जिसे ऋषभ का सुझाव बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। ऋषभ खीज कर उठा और टीवी का मेन स्विच बंद कर दिया।

“हैं इ का किये?”

ऋषभ ने दांत पीसते हुए कठोर आवाज निकाली “मुझे दिक्कत हो रही है।”

“पर हमें नहीं।”

“टीवी नहीं चलेगा या फिर चैनल बदलो।”

“स्टेशन मास्टर यहां चैनल बदलने के लिए थोड़े ही नियुक्त हुए हैं।” भद्र मुसाफिर ने टिटकारी मार दी। सभी हंस पड़े। वो गरीब किस्म के मुसाफिर भी हंसे जो सहमे सहमे से यहां टीवी देखने के लालच में बैठे थे। तभी किसी काम से स्टेशन मास्टर हाजिर हुए। वेटिंग रूम के पास वाले कमरे में उन्हीं का ऑफिस था। तोंदियल स्टेशन मास्टर के हाजिर होते ही उस भद्र मुसाफिर ने सिफारिश की “देखिए न सर ई साहेब टीबिए (टीवी) बंद कर दिये।” प्रतिउत्तर में स्टेशन मास्टर ने कुछ नहीं कहा, बस चश्मे के भीतर से एक निगाह ऋषभ पर डाली और टीवी चालू कर दिया। टीवी से भोजपुरी गानों के शब्द फड़फड़ा कर उड़ने लगे “चुम्मा दे द करेजऊ, जियरा लूट ल, दरदिया जान मारे, अगिया लागल बा, बथता...।” स्टेशन मास्टर भी इन शब्दों को संभाल नहीं पाये, हड़बड़ा गये “अरे... हम तो न्यूज चैनल पर लाग कर गये थे... ई साला...।” फिर उन्होंने अपनी काली कोट के जेब से पॉलिथीन में लिपटा रिमोट निकाला और एक न्यूज चैनल को टीवी स्क्रीन से चिपका कर बाहर चले गये। टीवी की आवाज वैसी ही तेज बनी रही।

ऋषभ कुर्सी पर वापस आकर पत्रिका के पन्ने पलटने लगा। उसका चेहरा पत्रिका में ही धंसा रहा पर कानों में न्यूज चैनल की खबरें दनादन गिर रही थीं, यह न्यूज चैनल फटाफट फिफ्टी दिखा रहा था। देश और राज्य की श्रेष्ठ पचास खबरें, बस पांच मिनट में। ऋषभ ने महसूस किया कि फटाफट पचास खबरें पढ़ने वाली आवाज कुछ सुनी सुनी सी लगती है। उसने टीवी स्क्रीन की तरफ मुंह उठाया तो निराशा हुई, न्यूज एंकर गायब थी और खबरों की ‘फुटेज’ दिखायी जा रही थी। फिर, वह दिखी, वही थी तन्वी। उसकी आंखें टीवी स्क्रीन पर ‘फ्रीज’ हो गयीं। उसके मन ने बिल्कुल नहीं कहा “तुम कहां थी तन्वी, अब तक?” बस वह देखता रहा।

तन्वी का शरीर कुछ भर आया था, आंखों में मोटे मोटे काजल थे और आंखें चमक रही थीं। चपटे गाल अब हल्की आंच में पके हुए पूए की तरह चिकने होकर फूल गये थे और लिबास 'एथनिक लुक' के थे। यह राज्य का सबसे नामी न्यूज चैनल था। आखिरकार वह वहां पहुंच ही गयी जहां चाहती थी। उसके पतले पतले होठों से एक एक शब्द मोतियों की तरह टपक रहे थे। ऋषभ उसके चमकीले मजबूत दांतों का पहले से ही दीवाना था। वह तन्वी को अक्सर छेड़ता था "राजू, तुम्हारे दांत तो मोतियों जैसे चमक रहे हैं।" तन्वी हंस कर जवाब देती थी "क्यों न हो मास्टर जी, मैं नीम से दातून जो करती हूं, रोज, आधे घंटे।" और तन्वी ऋषभ की कलाई पर अपने दांत गड़ा देती थी। ऋषभ के जख्म हरे हो गये, मानो उसकी कलाई में अब जाकर दर्द उठा है।

ऋषभ ने अपने विस्फारित नयनों को सहज किया जैसे उसे देखते हुए कोई देख न ले। फटाफट फिफटी के बाद तन्वी ने घोषणा की "अब हम दर्शकों को उस शहर में ले चलते हैं जो पिछले तीन दिनों से जल रहा है। हम दर्शकों को यह भी बता दें कि आज हमारा चैनल सबसे बड़े सच का पर्दाफाश करने जा रहा है। मुखिया का हत्यारा कौन? किसने की हत्या? कब की? कैसे की? इन सभी सवालों का जवाब एक ब्रेक के बाद।" ऋषभ सहम गया। सुधी दर्शकगण बातें करने लगे "उहे मारा है अऊर का छबिलवा। इ का सच दिखायेगी?" ऋषभ की धड़कन हल्की तेज हो गयी। जिस नाम को वह हर हाल में भूलना चाहता था वह नाम बार बार उसके आगे आ जाता था। नाम आते ही उसे उस रात उसके कमरे में सोया हुआ वह लड़का याद आ जाता था जिसकी पीठ पर गहरे जख्म थे, जो सोये में मुंह से लार टपकाता था और...

तन्वी आयी और धमाके के साथ टीवी स्क्रीन पर तीन दिन पहले वाला यह शहर दिखा जलते हुए। उसकी पूरी बातचीत ऐसी थी कि इस शहर के लोगों को छोड़ कर बाकी देश यह मान सकता था कि शहर अब भी वैसे ही जल रहा है। ऋषभ को कोफ्त ने घेर लिया। जीवेश्वर मुखिया उर्फ मुखिया के जीवन का सारसंक्षेप खत्म हुआ तो इस शहर के इतिहास का पन्ना शुरू हो गया। शहर की कवरेज करने वाला पत्रकार और न्यूज रूम में बैठी तन्वी की जुगलबंदी शुरू हुई। पत्रकार की इतिहासदृष्टि कुछ कुछ सबाल्टर्न वाली थी। उसने यह कहीं नहीं बोला कि इस शहर को जैन मुनियों ने बसाया, फिर मुगलों ने सहेजा, फिर कुंवर सिंह ने अंग्रेजी राज में आत्मसम्मान जगाया। दरअसल पत्रकार की इतिहासदृष्टि शहर के कुख्यात अपराधियों से शुरू हुई, जो मारे जा चुके थे या फरार थे या फिर जेल में बंद थे। दाढ़ीजार पत्रकार की भाषा ऐसी थी कि देश की जनता सहज ही भरोसा कर लेगी कि इस शहर की माएं बेटों के साथ साथ उनकी रक्षा के लिए कवच कुंडल के रूप में एक देशी कट्टा और कम से कम दो गोली जरूर पैदा करती होंगी।

ऋषभ जिस हिसाब से इस शहर से नफरत करने लगा था उस हिसाब से उसे खुश होना चाहिए था। पर ऋषभ को अचानक हो क्या रहा था? टीवी रिपोर्टर की हर बात पर वह मन ही मन नाराज होता चला गया।

तभी हादसा हुआ। हादसे को तन्वी ने ही अंजाम दिया "हम दर्शकों को बता दें कि जीवेश्वर मुखिया की हत्या का संदेह जिन लोगों पर किया जा रहा है उनमें से एक कुख्यात नाम छबीला सिंह का भी है, हमारे संवाददाता ज्ञानरंजन आगे की जानकारी दे रहे हैं... हां ज्ञान, बतायें।"

ज्ञानरंजन के थोबड़े से पहले एक जेल जैसी चीज कैमरे से दिखी। फिर मुख्यद्वार दिखा जिसके ऊपर की सफेद पट्टियों पर काले रंग से लिखा था 'बल सधार गह।' दरअसल वहां लिखा गया था 'बाल सुधारगृह' पर राज्य सरकार की पैसे की तंगी से उन अक्षरों में से खड़ी पायी, छोटा उ और ऋ की मात्राएं प्लास्टर सहित झड़ गयी थीं और उनका कभी सुधार नहीं हो पाया। जो राज्य अपनी

राजभाषा की मात्राएं नहीं सुधार सकती वह वहां कैद बालकों को क्या सुधारेगा? खैर! ज्ञानरंजन ने बड़े दार्शनिक अंदाज में मुस्कराते हुए कहा “हम दर्शकों को बता दें कि यह जेल नहीं बाल सुधारगृह है जहां भटके हुए नौनिहालों को सुधारने का अवसर दिया जाता है। यह हमारे कानून व्यवस्था की वह महत्तम उपलब्धि है जहां संगीन से संगीन अपराध करने वाला भी यदि ‘जुवेनाइल’ हो तो उसे यह छत नसीब हो जाती है। छबीला सिंह... उम्र से निर्दोष था पर अपनी आदतों से नहीं। आइये अब हम इस सुधारगृह के भीतर चलते हैं।” कैमरामैन के साथ ज्ञानरंजन भीतर दाखिल हुए “ये हैं बैजनाथ सिंह, बाल सुधारगृह के सुप्रिंटेंडेंट... क्या हुआ था उस रात?”

बैजनाथ सिंह ने तुरंत अपनी टोपी उतार दी और कैमरे से अपनी गंजी खोपड़ी चिपका दी “इ देख रहे हैं न सर... यहां... अब तो टांका कट गया है... यहीं मारा था छबीला सिंह हमको... सोल्लह ठो टाका पड़ा था।” फिर बैजनाथ ने आवाज दी “आओ रे बच्चा लोग बताओ तो छबीला के बारे में।” फिर खुद ही बाल अपराधियों की शर्ट पीठ तक उठा दी “इ देखा जाय सर... इ बड़ा बड़ा निशान... पिशाच था छबीला... बच्चा लोग को पीटता था।”

“फिर आप यहां किसलिए थे?” रिपोर्टर थोड़ा सख्त हो गया। पर बैजनाथ सिंह वैसे ही नम्र बना रहा “अब हुजूर, बच्चा लोगों पर हाथ उठाने का हम लोगों को एकदम आदेश नहीं, अलाऊ ही नहीं है... फिर उसको सिंगल कमरा में रखा हमने... नाश्ता, खाना सब कुछ टाइम से जाता था सर एकदम पौष्टिक... उस रात अपनी कोठरी में चीखने लगा कि पेटदर्द है फिर जैसे ही हम उसका दरवाजा खोले, खोलते ही हमको इतना कस कर धक्का दिया कि मेरा कपार (सिर) खम्भा से लड़ कर फट गया। फिर वह इस परछती से उस परछती पर होते हुए इमली का गांछी का डाढ़ पकड़ कर छेदवाली पर चढ़ा और उस पार टप गया।” छबीला के भागने की कथा की अंतिम देशज पंक्तियां ऋषभ की अनुवाद कला के बूते की न थीं। ऋषभ की आंखें टीवी स्क्रीन पर थीं पर आंखों के भीतर कहीं दूर स्मृतियों में बैजनाथ के चंगुल से छूट कर छबीला भाग रहा था एकदम नंगा। फिर ऋषभ के कान बजे “भइया जी... भइया जी हम भिखारी नहीं हैं भइया जी...।” उसने तुरंत अपनी आंखें बंद कर लीं और जोर से सिर झटक दिया। शब्द और स्मृतियां दोनों गायब हो गयीं। पर कुछ भी ‘क्लियर’ नहीं था यहां।

ऋषभ फिर उलझ गया। वह एक निश्चित निष्कर्ष चाहता था, हर चीज का निश्चित निष्कर्ष। निष्कर्ष के अभाव में बेचैन हो जाने की उसकी पुरानी आदत थी। आदत अब बीमारी का रूप ले चुकी थी। एक बार फिर वह सोच की सूखी नदी में गोते खाने लगा अनुभूति, सत्य, यथार्थ, धर्म, दर्शन, अध्यात्म, तकनीक, मीडिया, पत्रकार सब साले निकम्मे हो गये, कुछ भी ठोस नहीं, कुछ भी साफ नहीं। चूतिया सब। और उसके मुंह से अनजाने में निकल पड़ा “भाऽऽआग स्साला...।” यह आवाज चीखने जैसी थी। एसी फस्टक्लास का वेटिंग रूम हल्के से गुंजा, तन्वी की मधुर ध्वनियों के बीच। अपनी ही आवाज से ऋषभ सकपका गया और अपनी झुकी नजर उठा ली। आंखों के आगे वही भद्र मुसाफिर बैठा था, उसका चेहरा लाल हो गया था और उसकी आंखें बाहर की ओर लुढ़कने वाली थीं, वह गरजा “का बोला बे हमको?” गहरी सोच में डूबे हुए दार्शनिक के भाषायी अपशिष्ट को जाहिल मुसाफिर ने ‘पर्सनली’ ले लिया। ऋषभ ने सफाई दी “हम तुमको नहीं बोले हैं।” प्रतिक्रिया में वह मुसाफिर खड़ा हो गया “नहीं, नहीं, हम कबसे तुमको देख रहे हैं, बहुत एंगल दे रहे हो...।” बात संभालने के लिए ऋषभ उठा तो उस मुसाफिर के पीछे बैठे दो और मुसाफिर खड़े हो गये। पहले वाले मुसाफिर को थोड़ा बल मिल गया। फिर उस गुस्ताये मुसाफिर ने ऋषभ के गले पर हाथ रख दिया। कहना चाहिए कि उस मुसाफिर ने गले पर नहीं बल्कि बिजली की नंगी तार पर हाथ रखा था, जिसमें पिछले दो दिन से हाइपर वोल्टेज में बिजली दौड़ रही थी।

दृश्य बदलने लगा, बाद वाले दो मुसाफिर डर कर पीछे खड़े हो गये, गुस्ताया मुसाफिर अब बिजली के तार में फंसी पतंग की तरह फड़फड़ाने लगा फिर वह पतंग झटका खाकर उड़ी और टीवी के टेबल के चौथे स्तम्भ पर जा गिरी। चौथे स्तम्भ की ईंटें सरक गयीं और बोलती हुई तन्वी टीवी समेत धरती पर गिरी मानो वह सीता की तरह धरती में समाना चाहती हो। टीवी 'भड़ड़ा' की आवाज के साथ फट पड़ा। तनया कुमारिका अपनी आवाज समेत अंतर्ध्यान हो गयी। सन्नाटा फैल गया।

जब भी कोई हादसा होता है तब गरीब सबसे पहले भागता है। गरीब किस्म के वो चार पांच मुसाफिर जो टीवी देखने के लालच में फर्श पर बैठ हुए थे सबसे पहले तेजी से भाग खड़े हुए; उन्हें डर था कि इल्जाम उनके सिर पर आ जायेगा। हड़कम्प मच गया पर शेष भद्र समाज वहीं डटा रहा, लगा गालियां बरसाने। 'हूह' सुन कर स्टेशन मास्टर का चपरासी पहले आया फिर स्टेशन मास्टर। फटी हुई पतंग ने अपनी दयनीयता दिखायी और सारा दोष ऋषभ पर आ गया।

एसी फर्स्ट क्लास के वेटिंग रूम से रेलवे प्रोटेक्शन फोर्स का मजबूत सिपाही ऋषभ को लगभग घसीटते हुए ले गया। अपने गिरेबान सहित घिसटते जा रहे ऋषभ को प्लेटफॉर्म पर जोगी का वह बच्चा दिखा जोकि एकदम नंगा था। बच्चा अभी अभी सार्वजनिक नलके से नहा कर आया था और अपनी गीली हाफ पैण्ट को दोनों हाथों से हवा में लहरा कर सुखा रहा था। जब दिगम्बर की निगाह ऋषभ पर पड़ी तो दिगम्बर मुस्करा उठा। जवाब में ऋषभ ने उत्साही मुस्कान बिखेर दी और अपनी दायीं आंख जोर से दबा दी। दिगम्बर हंसने लगा। ऋषभ बेपरवाह था कि लोग उसे देख रहे हैं। उधर '2410 डाउन' तिनसुकिया एक्सप्रेस के प्लेटफॉर्म नम्बर तीन पर आने की घोषणा हो रही थी।

इस शहर में मोक्ष वोक्ष

बतबुझड़ी : निर्वाण तभी सम्भव है जब आत्मा के प्रति अखंड भक्ति हो। यह शहर जिस देवी को 'आयरन देवी' के नाम से पुकारता है उसका शुद्ध उच्चारण दरअसल 'अरण्य देवी' है। प्राचीन भारत में जब जैन मुनि अहिंसा के प्रचार में पूरे भारत का तूफानी दौरा कर रहे थे तब वे इस इलाके से भी गुजरे। गांगी के किनारे बसे इस आरण्यक पर मुनिजन मोहित हो गये। जैन मुनियों की एक टोली ने यहीं पर बसने का फैसला कर लिया और यहां देखते देखते एक नगर बसने लगा जो 'अरण्य नगरी' के नाम से मशहूर हुआ। 'अरण्य' शब्द से ही मिलते जुलते शब्द से अब इस शहर को पुकारा जाता है।

उसके बहुत बाद शायद मध्यकाल में यहां के बाशिन्दों को अचानक एक आपरूपी देवी के प्रकट होने की सूचना गांगी के मल्लाह ने दी। देवी ने गरीब मल्लाह को साक्षात् दर्शन दिये थे। पूरा नगर देवीस्थान पर पहुंच गया और गाजे बाजे के साथ देवी का नामकरण किया गया 'अरण्य देवी'। कहते हैं कि देवी पर अखंड श्रद्धा रख कर कुछ भी मांग लो, देवी निराश नहीं करती। सन् सत्तावन में बूढ़े कुंवर सिंह को इच्छामृत्यु का वरदान इसी देवी ने दिया था। कुंवर सिंह देवी के प्रचंड भक्त थे। गदर के समय में वीर कुंवर के लम्बे समय तक टिके रहने के मूल में यह देवी ही थी। अंग्रेजी राज के ढलते वर्षों में भी इस इलाके के कई क्रांतिकारी देवी के चरणों में देशी पिस्तौल रख कर वरदान मांगते थे। वरदान में अक्सर ये लोग अंग्रेज अधिकारियों की जान मांगते थे। देवी मां भवानी की अवतार ठहरें,

निराश कैसे करतीं? इस वरदानी देवी का आतंक अंग्रेज अधिकारियों को रात में चैन से सोने नहीं देता था। इन्हीं कारणों से इस इलाके के अंग्रेज गुप्तचरों ने इस देवी को डरते डरते 'ऑयरन डेवी' कहा। देश आजाद हो गया।

आजादी के बाद इलाके के क्रांतिकारी एक एक करके स्वर्ग सिंधार गये पर उनकी देशी पिस्तौलें यहीं रह गयीं। शहर की अर्थव्यवस्था तेजी से पनपी और साथ ही साथ उसके नये हिस्सेदार भी पनपे। कुछ हिस्सेदार बिना मेहनत किये ही हिस्सा चाहते थे, व्यापारियों ने उन्हें 'रंगबाज' कहा। शहर अपनी गरिमा को खोता गया और 'अरण्य नगरी' के व्यापारी नये तरह का 'टैक्स' देने के लिए मजबूर किये गये। यह 'टैक्स' अंग्रेजी राज के 'टैक्स' से कई गुना ज्यादा था। फिर रंगबाजों के भी कई गुट बने और शहर खून की होली खेलने लगा। लेकिन इस खूनी खेल में रंगबाज नहीं व्यापारियों की बलि चढ़ने लगी। शहर के बड़े व्यापारी एक एक करके या तो दुनिया छोड़ने लगे या फिर शहर। शहर का भद्र समाज और व्यापारियों का पूरा हुजूम एक बार फिर सरकार के बदले अरण्य देवी की चौखट पर बिलखता हुआ जा पहुंचा। उस व्यापारी दल में प्रिंसिपल महावीर जैन के परदादा भी थे। व्यापारियों के हाहाकर से मंदिर की घंटियां बज उठीं। उनके आंसुओं से देवीस्थान डूबने लगा।

तभी आसमान में बादल छा गये, जोर से बिजली कड़की और एक हुंकार के साथ लाल आंखों वाली देवी प्रकट हुई। 'त्राहिमाम् त्राहिमाम्' करके रोते व्यापारियों का दर्द देवी से देखा नहीं गया, देवी की आंखों से आंसू की जगह खून टपकने लगा। देवी का गुस्सा प्रचंड हो गया और उन्होंने शहर के 'रंगबाजों' को शाप दे डाला "जा तीन साल, बस!" इतना कह कर देवी अंतर्धान हो गयी। व्यापारी देवी के जयघोष के साथ वापस व्यापार करने लौट गये। अब कोई भी 'रंगबाज' इस शहर के व्यापारी को परेशान नहीं कर पायेगा, अगर कर दिया तो समझो कि अब उसके पास जीने के लिए बस तीन ही साल हैं। इन्हीं कारणों से ये व्यापारी देवीस्थान के आसपास अपनी दुकानें सजाने लगे। व्यापारी फिर फलने फूलने लगे। व्यापारियों के इस नये व्यापारिक गढ़ को आज शहरवाले 'आयरन चौक' के नाम से पुकारते हैं। बहरहाल।

गांगी की एक धारा इस इलाके से होते हुए सोन नदी में मिल जाती है। सोन नदी इस इलाके के दूसरे छोर पर है। सोन नदी हिन्दुस्तान की एकमात्र ऐसी नदी है जिसकी धारा दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है।

हांलाकि अब भी इस शहर में बिजली की स्थिति बहुत बुरी थी फिर भी अन्य दिनों की तरह ही एक दिन यह सूचना बिजली की गति से दौड़ी कि कोईलवर पुल के नीचे सोन नदी के तट पर रेत में दबी एक सड़ी हुई लाश मिली है, पर दावे के साथ कोई नहीं कह सकता था कि यह लाश किसकी थी? भाऽऽऽआग ंसाला।

प्रभुता का पराभव अर्थात् ईश्वरता का 'उपसंहार'

नारायण सिंह

कृष्ण पर लिखी जाने वाली अनगिनत रचनाओं में काशीनाथ सिंह का ताजा उपन्यास 'उपसंहार' भी शामिल हो गया है। उपन्यास की कथा कृष्ण की तो है किन्तु इसके कृष्ण में ब्रज और गोकुल का कम द्वारका का अंश ज्यादा है। और यह द्वारका प्रकारांतर से, किसी अन्य नाम से, आज की राजनीति और उससे भी ज्यादा (कारपोरेट) मीडिया में पूरी तरह धमाचौकड़ी मचाये हुए है। आज की द्वारका 'हर हर' के बड़बोले उद्घोष के माध्यम से 'घर घर' में पहुंच कर यह सिद्ध करने के लिए आकुल व्याकुल है कि 'आर्यावर्त की मुख्यधारा हस्तिनापुर से नहीं द्वारका से निकलती है।'

तथापि यहां यह भी विचारणीय है कि महत्वाकांक्षाओं के महाभारतकाल में जहां आर्यावर्त में ब्राह्मण, महिलाएं और बच्चों को छोड़ कर कुछ भी नहीं बचा रह पाया, द्वारका भी विनाश की आग से अछूती नहीं रह सकी और अंत में खुद भी नष्ट हो गयी। इस उपन्यास का रूपक शायद आज के संदर्भ में भी यही इंगित करने का प्रयास करता लग रहा है, हालांकि इसे सिद्ध होना अभी भविष्य के गर्भ में है।

जब अपनी ईश्वरता पर कृष्ण स्वयं प्रश्न उठा सकते हैं तो फिर उनकी महत्वाकांक्षा पर क्यों नहीं बात की जा सकती! कृष्ण स्वयं यह रहस्य खोलें उसके पहले बलराम की यह भर्त्सना द्रष्टव्य है 'तुम अधर्म की नींव पर धर्म की जर्जर इमारत खड़ी कर रहे थे। कह कर गये थे द्वारका से कि यह अधर्म के विरुद्ध धर्मयुद्ध है, धर्म की स्थापना करनी है। किस धर्म को स्थापित किया? न्याय को? ईमानदारी को? भाईचारे को? प्रेम को? किसको? प्रेमयोग का ज्ञान देते घूम रहे हो और दादा को पोते से, मित्र को मित्र से, गुरु को शिष्य से और भाई को भाई से मरवा रहे हो। पूरे आर्यावर्त में घूम कर देखा मैंने, ब्राह्मणों, महिलाओं और बच्चों को छोड़ कर कोई नहीं बचा है। इसे किस धर्म की स्थापना कहेंगे? ...हां, इस युद्ध के बाद इतना जरूर हुआ कि जो पहले दबे स्वर में तुम्हें अवतार

या ईश्वर कहते थे, वे खुल कर स्तुतिगान करने लगे। ...तुम्हें भी अच्छा लगता था और मुझे भी खुशी होती थी कि चलो मेरा छोटा भाई ईश्वर है, मैं ईश्वर का बड़ा भाई हूँ। ...लेकिन एक प्रश्न मेरे मन में बराबर उठता है कि ईश्वर का काम केवल संहार करना है? निरर्थक, निरुद्देश्य, निःस्वार्थ संहार?"

‘उपसंहार’ के कृष्ण में ईश्वर बनने की जबरदस्त एषणा है, लेकिन यह एषणा किसी निजी भौतिक लिप्सा से नहीं, अपने और अपने कुल के अपमान के गर्भ से पैदा हुई है। अपने आदिपुरुष यदु के शापित होकर कुल के क्षत्रियत्व से वंचित होने के कारण उन्हें जगह जगह क्षत्रिय राजाओं द्वारा अपमानित होना पड़ता है। उन्हें किसी कर्ता के रूप में नहीं मात्र एक भीड़ का एक बेनाम चेहरा बना दिया जाता है। उनके अंदर यह विचार उठता है कि क्या मनुष्य का मनुष्य होना काफी नहीं है। प्रकारांतर से उनकी ईश्वरता अवतार के विमान से धरती पर नहीं उतरी है, उसे अपमान के पंक और पीड़ा से गुजर कर प्राप्त किया गया है। वे यादव, ग्वाले, चरवाहा, रासरचैया, बंसीबजैया सुनते सुनते थक चुके हैं। इस संदर्भ में बलराम की डांट के उत्तर में दिया गया उनका भी वक्तव्य देखा जा सकता है

“और रही बात ईश्वर की /तो मैं ईश्वर कहो या वासुदेव होना चाहता था/ क्योंकि उसकी कोई जाति नहीं होती, वर्ण नहीं होता, गोत्र नहीं होता/अकेला वही है जो वर्णाश्रम के बंधनों से मुक्त है/और दाऊ, कोई हारने के लिए नहीं लड़ता/लड़ता है विजय के लिए/और विजय गांडीव के रास्ते नहीं मिलती/मिलती है रणनीति से/जिसे तुम छल कपट, झूठ, अधर्म कहते हो/वे रणनीति के ही अंग हैं और मैंने रणनीतिकार की भूमिका उसी दिन तय कर ली थी जिस दिन स्वयं को निःशस्त्र घोषित किया था।”

इसका यह अर्थ भी लगाया जा सकता है कि निःशस्त्रीकरण रणनीति के अंतर्गत आता है। यहां यह विचारणीय है कि ‘उपसंहार’ के कृष्ण पैराशूटी (अवतारी) ईश्वरता की अवधारणा को ध्वस्त करते हुए इसे नये सिरे से परिभाषित करते दिखाई देते हैं “बस यह समझो कि प्रत्येक मनुष्य कभी न कभी कुछ ही पलों या क्षणों के लिए ही सही, किसी न किसी का ईश्वर हुआ करता है। ऐसा एक बार नहीं, कई बार हो सकता है। आखिर ईश्वर है क्या? मनुष्य के श्रेष्ठतम का प्रकाश ही तो। और यह प्रकाश प्रत्येक मनुष्य के भीतर होता है। लेकिन फूटता तभी है जब किसी को कातर, बेबस, निरुपाय और प्रताड़ित देखता है। मैं भी था ईश्वर। हां मेरी अवधि किन्हीं कारणों से थोड़ी लम्बी खिंच गयी रही होगी।”

यहां पुस्तक में वर्णित समुद्र, विश्वकर्मा आदि देवताओं का प्रकट होकर उनके द्वारा द्वारका और कृष्ण के ऐश्वर्य को निर्मित करने की मिथकीय रहस्यमयता का रूपक खुलने लगता है और इस मियादी प्रभुता के पराभव काल में, महाभारत युद्ध के लगभग तीन चार दशक बाद, नाती पोतों और वृद्ध होती अपनी पीढ़ी के बीच, प्रभुता के वे तमाम उपस्करण और उपकरण उनका साथ छोड़ने लगते हैं, आत्ममंथन के दौर में अपने अकेले हो चुके ईश्वर और उसके अतीत कर्म पर प्रश्न उठाने लगते हैं।

यह संशय और द्वैध कभी कभी चुनौती बन कर उभरता है और उन्हें एक त्रासद... चरित्र में परिवर्तित कर देता है। द्वारका गणराज्य की नारायणी सेना के मृतकों के परिजनों का रुदन मानों यह कहता प्रतीत होता है “क्या पता कि हमें उजाड़ कर उन्हें भगवान बनना था, उनके तो अस्सी के अस्सियों बेटे संड मुसंड घूम रहे हैं।” नागरिकों की इस कटूक्ति को सुन कर ही शायद जो पहले कभी नहीं कह पाये थे पहली बार कह पाते हैं “दारुक, किसी राज्य का महल इतनी ऊंचाई पर नहीं होना चाहिए कि वह लोगों का रोना गाना न सुन सके।”

जो भी हो, युद्ध के परिणाम पर वे संशयग्रस्त नहीं, सन्न हैं। हस्तिनापुर में अकाल है, महामारी है। नदियां सूख गयी हैं। जंगल जल गये हैं, धरती जल कर राख हो गयी है और युधिष्ठिर राजधर्म का पालन न करके तीर्थाटन की बातें कर रहे हैं। तो क्या वह विनाश ऐसे ही राज्य की स्थापना के लिए हुआ था कि लोग चोर लुटेरों से असुरक्षित भूख से मरते रहें। तब दुर्योधन ही क्या बुरा था?

तब क्या उन्हें युद्ध नहीं करना चाहिए था? क्या वे चाहते तो युद्ध रुक सकता था? ऐसे अनगिनत सवाल उन्हें मथे दे रहे हैं।

‘उपसंहार’ अकिंचन से ऐश्वर्य की ओर प्रयाण करने और प्रभुता पाने के क्रम में संवेदनाओं और रिशतों नातों के छूटने टूटने और पराभव काल में महसूस किये जाने वाले अकेलेपन और असमर्थता का महाआख्यान है। यह बांसुरी के आह्लादकारी राग के कर्कश पांचजन्य के आतंककारी फुफकार में रूपांतरित हो जाने और असफल प्रेम के ईश्वरता की विध्वंसकारी एषणा में परिवर्तित हो जाने की करुण कथा है।

कृष्ण की भले ही आठ रानियां रही हों, द्रौपदी जैसी सखी रही हो, प्रेम तो उन्हें केवल राधा से है। और यह प्रेम कुछ रचनाकारों द्वारा महिमामंडित आलौकिक और अशरीरी प्रेम नहीं। ‘उपसंहार’ में इस प्रेम में देह भी पूरी तरह शामिल है। गोकुल से मथुरा जाना, उस प्रेम को तात्कालिक रूप से स्थगित करना है। ‘जल्दी ही आऊंगा, घबराना नहीं’ के जवाब में ‘तुम क्या आओगे? आऊंगी मैं और तुम्हें ले जाऊंगी’, कहने वाली राधा अन्य रचनाकारों की आम गोपिका नहीं जो किसी संवादिये के समक्ष हजार आंसू रोये। जब कंस वध के बाद भी कृष्ण नहीं लौटते तो राधा कृष्ण से मिलने स्वयं मथुरा के अतिथि आगार में जा पहुंचती है। उस समय तक कृष्ण में गोकुल कहीं न कहीं जिन्दा है। इसलिए वहां दो भावाकुल प्रेमियों का मिलन है। राधा अपनी पूरी देह के साथ कृष्ण के समक्ष समर्पण करने को उत्सुक है, किन्तु उसकी बस एक ही शर्त है कि प्रेम में अब तक बचा बाकी सब कुछ का समर्पण मथुरा के महल में नहीं जमुना के कछारों में, करील के कुंजों में सम्पन्न होगा, जहां उनका प्यार जनमा है। यह मनुहार शायद शर्त बन कर इसलिए आती है ताकि ईश्वरता के पथ पर चलने को उद्धत कृष्ण वापस गोकुल में लौट आवें और एक साधारण मनुष्य बन कर रहें। लेकिन कृष्ण नहीं समझे। या समझना नहीं चाहा। वे चले जाते हैं और भूल जाते हैं। उन्हें राधा याद आती भी है तो प्रभुता के पराभव काल में। प्रेम और विध्वंस एक दूसरे के विरोधी हैं। यह भी हो सकता था कि यह प्रेम महाभारत के विध्वंस से आर्यावर्त को बचा ले जाता। हां, कृष्ण जरूर ईश्वर होने से वंचित रह जाते। शायद इसीलिए विध्वंसकारी, ईश्वर प्रेम से डर कर भाग गये लेकिन एक एक करके आठों रानियों में प्रेमयोग की प्रथम दीक्षागुरु की तलाश करते रहे।

विडम्बना यह है कि यह विनाश भी उनसे स्वयं सम्पन्न नहीं हो सका। उन्होंने इसके लिए दूसरों को तैयार किया और अर्जुन तैयार नहीं हुआ तो ऐन युद्ध से पहले युद्ध के पक्ष में तमाम तर्क देते हुए टेलीपैथी और मेस्मरिज्म के सहारे उसे तैयार किया। गौर करने की बात है कि मथुरा से जो कृष्ण जरासंध के आक्रमण से अपने लोगों को बचाने और शांति से रहने रखने के उद्देश्य से द्वारका गये थे, वही कृष्ण अर्जुन को इस विनाशकारी युद्ध के लिए तैयार करते हैं और इसे हमारे शास्त्र और पुराण श्रीमद्भागवतगीता का नाम देते हैं। यह वही गीता है जो बौधकालीन भारत के दौर में गुमनामी की धुंध का शिकार हो गयी थी और पुनरुत्थान काल में (आचार्य) शंकर ने इस पर अपना भाष्य लिख कर आर्यावर्त के इस कोने से उस कोने तक भ्रमण करते हुए हिन्दुत्व से भी ज्यादा ब्राह्मणवाद और अवतारवाद की पुनर्स्थापना की थी।

‘उपसंहार’ के कृष्ण उसी गीता के कृष्ण हैं, राधा द्वारा भेंट की गयी जिनकी बांसुरी द्वारका तक आते आते कुचले मुंह वाले बांस के हाथ भर के फट्टे भर रह गयी है। और ‘परित्राणाय साधूनाम विनाशाय च दुष्कृताम’ के छद्मवेश में अब उनका पांचजन्य, जिसकी ध्वनि से धरती कांपने लगती थी, पहाड़ हिल उठते थे, समुद्र किनारा छोड़ कर भाग खड़ा होता था, विनाशसूचक उद्घोषणा करने

लगा है। यह भी जानना दिलचस्प है कि कौन हैं ये साधु जिनके परित्राण के लिए विष्णु को बार बार अवतार लेना पड़ता है। जाहिर है कि विनष्ट हो चुकी अठारह अक्षौहिणी सेना में शामिल साधारण जन तो नहीं ही रहे होंगे। तब?

महाभारत में साधु की पहचान इस प्रकार बतायी गयी है जो पुरुष (ध्यान दीजिए केवल पुरुष) अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि समस्त सामान्य धर्मों तथा यज्ञ, दान, तप एवं अध्यापन, प्रजापालन आदि अपने अपने वर्णाश्रम धर्मों का भलीभांति पालन करते हैं, दूसरों का हित करना ही जिनका स्वभाव है, जो सद्गुणों के भंडार और सदाचारी हैं, तथा श्रद्धा और प्रेमपूर्वक भगवान के नाम, रूप, गुण, प्रभाव लीला के श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि करने वाले भक्त हैं उनका वाचक यहां 'साधु' शब्द है।

इन गुणों से सम्पन्न कोई भी साधु पूरे महाभारत में कहीं भी नहीं दिखायी देता। अनंतमूर्ति के प्रसिद्ध उपन्यास 'संस्कार' में नारणप्पा द्वारा इन तथाकथित साधुओं या ब्राह्मणों की बखिया खूब उधेड़ी गयी है। 'उपसंहार' में भी कृष्ण का एकालाप क्या कहता है, इसे देखना दिलचस्प है "ये जिसकी दान दक्षिणा और सेवा सत्कार से प्रसन्न हों उसे नारायण बना दें और जिससे असंतुष्ट हों उसे असुर और राक्षस।" दुर्वासा ऐसे ही साधुओं के भी साधु हैं। उनके आदेश से कृष्ण खुद के साथ रुक्मिणी को भी नंगा होने देते हैं और इसी स्थिति में जिस छकड़े पर दुर्वासा बैठे हैं, उसे सरेबाजार खींचते चलते हैं। अराजक और क्रोधी दुर्वासा के जाने के बाद तनावमुक्त हो चुके कृष्ण कहते हैं "क्यों आया था? क्या यह जताने आया था कि देख लो अपनी औकात/हम हैं जो तुम्हें ईश्वर बना सकते हैं/तो मटियामेट भी कर सकते हैं/...आप ब्राह्मण हैं इसीलिए अवध्य हैं?/आपने अपने पास शाप या वरदान देने की ऐसी शक्ति रख ली है/ जिसकी काट सृष्टि के पास नहीं है/न उसका कुछ खड्ग बिगाड़ सकता है, न तीर धनुष/यह कैसी मानव संहिता बनायी है मुनिवर।"

और मजाक के मूड में कृष्णपुत्र साम्ब जब जंगल में ऋषियों को छेड़ता है तो वे उसे पहचान कर पूरे यदुकुल को विनष्ट होने का शाप दे डालते हैं। इस घटना पर कृष्ण कहते हैं "यहीं चूक हुई तुमसे/ वे हंसी मजाक नहीं जानते/ वे कमंडल में शाप और मृत्यु लिए घूमते रहते हैं। ऋषि हैं, सिर्फ रोष करना जानते हैं।" अगर ये ऋषि और साधु इतने ही शक्तिशाली हैं तो फिर इन्हें अपनी रक्षा के लिए किसी अवतार की आवश्यकता क्यों पड़ती है, ये तो कमंडलों में रखे शाप और मृत्यु से अपने विरोधियों का स्वयं विनाश कर सकते थे। यह भी तो हो सकता है इनकी यह शक्ति अपने उन संकटमोचक भक्तों पर ही काम करती हो। तब ऐसे दुष्ट और एहसानफरामोशों की रक्षा की जरूरत ही क्यों होती है? मुझे तो यह पूरा मिथक तंत्र ही एक निराधार अतार्किक इंद्रजाल लगता है।

गांधारी का शाप नाकाफी था। अब इन ऋषियों का शाप कैसे झूठा साबित हो सकता है? लेकिन 'उपसंहार' में खुद बलराम ने भी सावधान किया था "और क्या, समझते हो, जो कुछ कुरुक्षेत्र में हुआ है, या तुमने किया है, द्वारका उससे अछूती रहेगी?"

महाभारत के युद्ध के तीसरे दिन के बाद से कृष्ण के रथ पर बैठे अर्जुन जहां भी आक्रमण करते हैं, अपने सामने कौरवों की ओर से द्वारका की नारायणी सेना को पाते हैं और कृष्ण से अर्जुन के हाथों अपनी ही सेना का संहार होते जब नहीं देखा जाता तो चौथे दिन का युद्ध स्थगित होने पर भीष्म से कह उठते हैं कि यह ठीक नहीं हो रहा। भीष्म का उत्तर कृष्ण को निरुत्तर कर देने के लिए काफी है "वासुदेव! ठीक तो बहुत कुछ नहीं हो रहा है/अब्वल तो तुम्हें कहना ही नहीं चाहिए था लेकिन कहा तो सुनो/किसको किस मोर्चे पर लड़ना है व्यूह रचना में कौन कहां होगा/इसका निर्णय कौरव करेंगे तुम नहीं/और वासुदेव यह न भूलो कि तुम और नारायणी सेना एक कुल हो/तो कौरव और पांडव भी एक कुल हैं।"

जो भी हो 'उपसंहार' के कृष्ण का अकेलापन वह आत्मनिर्वासन नहीं है जिसे दोस्तोवस्की ने अस्तित्ववादी दर्शन के संदर्भ में कहा था। तमाम संशयों और आत्मप्रताड़ना के बाद भी कृष्ण आस्थावान हैं। उनकी इस आस्था में देवत्व से ज्यादा मनुष्यत्व का अंश है। उनके लिए यह संसार उनका अपना संसार है। वे यहां बाहरी आदमी के रूप में न रहते हैं न दिखायी देते हैं। उन्होंने स्वर्ग के समान द्वारका का निर्माण जरूर किया है, किन्तु उन्हें स्वर्ग से ज्यादा यह मृत्युलोक प्यारा है। उन्हें इस पर गर्व है। कृष्ण के जीने में कर्ता के भाव का लोप, साक्षी भाव या टीएस एलियट के शब्द में कहें तो निर्व्यक्तिकता का अंदाज है। इसी अंदाज में वे भाई, पिता, प्रेमी, पुत्र, पति, मित्र, सखा आदि की भूमिका निभाते हैं। और इसी संदर्भ में कृष्ण की द्वारका आज की द्वारका से नितान्त विलग दिखायी देती है। यहां तक कि जिस महाविनाश की चर्चा महाभारत में हुई है उसे भी वे प्राकृतिक मानते हैं। युद्ध को नहीं रोक पाने का पश्चाताप भी उनके भीतर अंत तक नहीं आ पाता।

'उपसंहार' के कृष्ण ने द्वारका में जातिविहीन गणराज्य की स्थापना करने का प्रयास किया था। किन्तु वह अराजकता और भीड़तंत्र में बदल गया। अब उसका भी विनाश होना अवश्यम्भावी था। साम्ब प्रकरण में उनका वक्तव्य उनके जीवनदर्शन का 'उपसंहार' माना जा सकता है "देखो साम्ब! मरता वही है जो पैदा होता है। जो पैदा नहीं होता वह मरेगा कैसे? जैसे स्वर्ग! न वहां कोई पैदा होता है, न मरता है। पता नहीं कोई जीता भी है या नहीं। वह बंजर प्रदेश है। यह मृत्युलोक है। इसी को सृष्टि कहते हैं। जीवन यहीं है और जीवन जीने के लिए होता है। इसलिए होता है कि जिया जाये रस लेकर, मजे लेकर। इसलिए नहीं कि मरते दम तक रोते रहें, कराहते रहें, तड़पते रहें। आह उह करते रहें। तो मरने की चिन्ता में जीना स्थगित मत करो। हां, दूसरे के जीने में खलल न पड़े इतना ध्यान रहे। रही बात द्वारका के नष्ट होने की, तो बेटा होता ही इसलिए है कि बाप के किये कराये पर पानी फेर दे, उसके बने बनाये घरोंदे को तोड़फोड़ दे। सम्भव है, इसके बाद जो बने इससे बेहतर बने और टूटेगा नहीं तो बनेगा कहां से?" यह उनका अंतिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्बोधन है। उन्हें इस सत्य का पता चल चुका है कि ईश्वर की भूमिका में वो मात्र एक अभिनेता थे। जैसे ही मंचन समाप्त हुआ उनसे सारी नाट्य सामग्री ले ली गयी और अदृश्य निदेशक द्वारा यह कह दिया गया कि आप घर जायें, अब आपकी जरूरत नहीं। इतना सब कुछ समझने के बाद, अपने आदिवासी सौतेले भाई जरा (जरा का मतलब वृद्ध भी होता है) का तीर लगने पर वे मरणासन्न अवस्था में भी जिज्ञासु की भांति आचरण करते हैं और कहते हैं कि जब मैं ही नहीं समझ सका इस जीवन और जगत के रहस्य को, तो भला दूसरा कोई क्या समझेगा?"

मैथिली शरण गुप्त के लिए 'सहज संभाव्य' रहा होगा, हमारे समयों में तो राम, कृष्ण या किसी भी ईश्वर पर लिखना असहज और कठिन है। ...कृष्ण पर शायद यह पहला आख्यान है, जिसे पढ़ते हुए पाठक अंध श्रद्धा वाला भक्त नहीं बल्कि मात्र जिज्ञासु पाठक बन कर कृष्ण के समीप पहुंचता जान पड़ता है। हम सभी के भीतर एक न एक लघु महाभारत मौजूद रहा करता है जिसमें हमने कभी दुर्योधन कभी अर्जुन तो कभी कृष्ण की भूमिका में जीवन जिया होता है। हम सभी के पास कोई न कोई बांसुरी भी रहा करती है, जो महत्वाकांक्षाओं के युद्ध में कूदने से पहले छूट जाया करती है, और जब फिर से उसकी याद आती है तब न तो हमारी और न उसकी ऐसी स्थिति होती है कि कोई भी राग निकल सके। 'उपसंहार' में कृष्ण जो भी सोचते हैं करते हैं, वह प्रभु के नहीं मनुष्य के ज्यादा करीब लगता है। हमें लगता है, अगर हम उनकी भूमिका में होते तो शायद वही सोचते करते जो कृष्ण सोचते और करते हैं। इस पुस्तक की प्रासंगिकता और सफलता शायद इसी भाव और भाषा के आधुनिकबोध में निहित है।

उपसंहार : काशीनाथ सिंह, **प्रकाशक :** राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, **मूल्य :** 250 रु.

जहां से अनहद शुरू होता है

अनिल त्रिपाठी

सृष्टि पर पहरा समकालीन भारतीय कविता के विख्यात कवि **केदारनाथ सिंह** का ताजा संग्रह है। छः दशकों से भी अधिक समय तक विस्तृत उनकी रचनायात्रा 'सृष्टि पर पहरा' कविता संग्रह के माध्यम से एक नये दिक् और धरती के साथ उपस्थित होती है। इस संग्रह में केदार जी एक क्लासिक की उदात्त भूमि पर पहुंचते हैं जहां सृष्टि और स्रष्टा के तादात्म्य को पूरी धारोष्णता के साथ देखा जा सकता है। संग्रह की पहली कविता 'सूर्य 2011' पर जरा गौर करें जिसमें वे लिखते हैं कि *और इस समय जबकि हम/यानी लाखों वर्ष पुराना वह/और पचहत्तर वर्षी मैं/दोनों एक ढाल से उतर रहे हैं/मैं उसे जानता हूं/जैसे एक समकालीन जानता है/दूसरे समकालीन को।* सूर्य के साथ यह रिश्ता प्रकृतस्थ रिश्ता नहीं है बल्कि सर्जनात्मक रूपांतरण के साथ यह एक नया राग है जिसे केदारनाथ सिंह अपने तई हांसिल करते हैं। यह सूर्य पहले प्रेम के प्रतिद्वंद्वी तरह कभी आता है या कभी ब्रह्मांड के सबसे सम्पन्न सौदागर की तरह जो (मेरी) पृथ्वी के साथ ताप और ऊर्जा की तिजारत करता है। कोष्ठक में 'मेरी' को रखने का मेरा उद्देश्य रिश्ते के बलाघात पर है। एक अन्य कविता में यह सम्बंध और खुलता है। कविता का शीर्षक है *'ओ पृथ्वी तुम्हारा घर कहां है?'* उसकी अंतिम पंक्तियां हैं *ओ पृथ्वी/ओ मेरी हमरक्स/ तुम्हारा घर कहां है!* कवि के साथ पृथ्वी का रिश्ता हमरक्स का है। हमरक्स यानी साथ नाचने वाली। सूर्य और पृथ्वी पर पहले भी कवि ने लिखा है लेकिन इस सूर्य और इस पृथ्वी से कवि के रिश्ते का एक नया पुनर्जन्म होता है। जहां प्रकृति की आदिम लीलाएं कवि के आनुभविक संसार में सर्वथा नया विस्तार पाती हैं। 'सृष्टि पर पहरा' कविता को इसी क्रम में यहां देखा जा सकता है। कविता इस प्रकार है *जड़ों की डगमग खड़ाऊं पहने/वह सामने खड़ा था/सिवान का प्रहरी/जैसे मुक्तिबोध का ब्रह्मराक्षस/एक सूखता हुआ लम्बा झरनाठ वृक्ष/जिसके शीर्ष पर हिल रहे थे/तीन चार पत्ते...कितना भव्य था/एक सूखते हुए वृक्ष की फुनगी पर/महज तीन चार पत्तों का*

हिलना... उस विकट सुखाड़ में/सृष्टि पर पहरा दे रहे थे/तीन चार पत्ते।

सृष्टि पर पहरा देते वृक्ष की फुनगी पर बचे तीन चार पत्ते हमारे समय की भयावहता और हाहाकार रूपी सुखाड़ के बीच उम्मीद का एक नया रूपक बांधते हैं। 21वीं सदी के पूरे दशक में विचारों की ही नहीं हमारी अपनी दृश्य दुनिया का कोहराम उस विकट और विराट सृष्टि तक व्याप्त सुखाड़ का दृश्यबिम्ब रचता है। 20वीं सदी में भी तीसरे और चौथे दशक की निराशा (जलप्लावन जिसका एक रूपक था) को प्रसाद ने कामायनी में व्यक्त किया था। हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठे बचे मनु का बिम्ब यहां सहज याद आता है। तब की बकौल विजयदेव नारायण साही अपराजेय विवशता को मनु के अपराजेय संकल्प ने चुनौती दी थी। केदार जी की इस कविता में महज तीन चार पत्ते सुखाड़ रूपी अपराजेय विवशता को चुनौती देते हैं। काल के विभिन्न दो संदर्भ कैसे समय की एकतानता में कीलित होते हैं यह देखना कवि कर्म की सृजनात्मक अपार क्षमता से रूबरू होना है। कामायनीकार, मुक्तिबोध और केदारनाथ सिंह शताब्दी से अधिक कुछ समय की एकतानता के तीन विभिन्न कालखंड के द्योतक हैं।

केदारनाथ सिंह के यहां कविता का ज्योग्राफिया खुद समय है। उनका 'लोकल' वर्तमान को अतिक्रमित कर समय के सातत्य को वर्तमान के संधिस्थल पर बार बार ले आता है। वर्तमान की धुरी पर सृष्टि के आदिम और अद्यतन तत्व (सूर्य पृथ्वी भाषा से लेकर घास तक) कैसे कविता के संक्षिप्त रूप में पल भर में घटित हो जाते हैं। यह केदारनाथ सिंह की रचनाप्रक्रिया का बेहद महत्वपूर्ण तत्व है। 'कवि कुम्भन दास के प्रति' कविता में सदियों पुरानी एक छोटी सी पंक्ति 'संतन को कहा सीकरी सो काम' कैसे पांच सौ वर्षों से हिन्दी की अकेली सबसे दुखती हुई पंक्ति हिन्दी को आज भी हिला रही है, इसकी शिनाख्त है। यह शिनाख्त संवाद में घटित होती है। संवाद में इस दुखती हुई पंक्ति का रहस्य खुलता है। इस प्रक्रिया में सीकरी का 'पावर डिस्कोर्स' वर्तमान को 'डिकोड' करता है और दिल्ली आज की सीकरी संत प्रवर/तब तो एक थी/अब एक के अंदर एक/जाने कितनी सीकरियां हैं। सिर्फ इतना ही नहीं वह इस सत्य तक पहुंचते हैं कि यह कैसी अनबन है/कविता और सीकरी के बीच/कि सदियां गुजर गयीं/और दोनों में आज तक पटी नहीं। यहां कविता और सीकरी प्रतिरोध बनाम सत्ता का मेटाफर बन जाते हैं। केदारनाथ सिंह के यहां प्रतिरोध रचने एवं रखने का यही अंदाज है। मीर याद आते हैं गोश को होश के, टुक खोल के सुन शोर ए जहां/सबकी आवाज के पर्दे में सुखन साज है एक। ध्यान रहे कि सीकरी सत्ता प्रतिष्ठान थी, आज दिल्ली सत्ता प्रतिष्ठान है। कविता की इन प्रतिष्ठानों से पटरी नहीं बैठ सकती। जो पटरी बैठाने में कामयाब भी होते हैं, उनका हथ इतिहास में ओझल नहीं है। यहां इस संदर्भ में केदारनाथ सिंह कविता की भूमिका को भी रेखांकित करते हैं। 'कविता' शीर्षक कविता में लिखते हैं सरकारें परेशान कि क्या करें क्या करें इस कविता का/कि हवा दो/पानी दो/टैक्स में दे दो चाहे जितनी छूट पर वोट मांगने जाओ/तो कभी अपने पते पर मिलती ही नहीं। जाने कैसी बनैली प्रजाति की लतर है/किसी राष्ट्रीय उद्यान में/खिलती ही नहीं। यहां हम सामंती सीकरी और लोकतांत्रिक सीकरी दोनों ही सीकरियों के राष्ट्रीय उद्यान से कविता की अनबन या रुसवाई को देख सकते हैं। कुम्भनदास के प्रति कवि की कृतज्ञता सत्ता संरचना से प्रतिरोध के कारण है। 'आवत जात पनहिया घिस गयी बिसरि गयो हरिनाम' कवि कुम्भन के संघर्ष की याद दिलाता है। पनही माने जूता। 'जूते का घिसना' मुहावरा है जो जिन्दगी के गाढ़े दिनों का साक्षी है। इसी संग्रह में 'कवि देवेन्द्र कुमार' पर केदार जी ने एक कविता लिखी है जिसकी पंक्तियां हैं दलित थे वे/पर कविता लिखते थे/कविता की शर्त पर/एक ऐसा कवि जो एकदम

बेलाग/कह सकता था दुनिया से 'पैरों को चाट गये जूते/जिन्दा है हम अपने बूते।' 15-16वीं सदी के कवि के पैरों की पनही घिसी थी, यहां तो पैर ही चट गये हैं। आखिर जूते कैसे पैरों को चाटेंगे। दलित जीवन और विमर्श के आर्डिने में भी इस कविता के मर्म को समझा जा सकता है। एक समय जूते दलित ही बनाता था (अब भी) बनाने से लेकर उसके पारिश्रमिक की प्राप्ति का रास्ता बाजार से जाता है। बनाने से लेकर बेचने तक जीवनयापन हेतु पैर जरूर घिसे होंगे ऐसा सहज ही है। एक बात और मोची को कभी काम करते हुए देखिये तो पता चलेगा उसके पैर उसके हाथ से कम सिलाई में मदद नहीं करते। यानी पैर भी हाथ का काम करते हैं। कहने का आशय यह कि पैर यहां भी चटते हैं। ऐसे में कवि देवेन्द्र कुमार का यह कहना 'जिन्दा हैं हम अपने बूते' मानवीय संघर्ष का सघनतम साक्ष्य बन कर आता है। कुम्भन और देवेन्द्र कुमार के पैर पनही रिश्ते के संदर्भ में यदि परसाई जी का निबंध 'प्रेमचंद के फटे जूते' भी याद आ जाता है, तो कुछ भी गलत नहीं। केदार जी की खासियत है कि उनकी कविताओं में इस तरह की अनुगूँजें मौजूद हैं। मेरे मित्र और कवि आलोचक पंकज चतुर्वेदी ने कवि केदारनाथ सिंह के इस वैशिष्ट्य को अपने आलेख 'पूरे इतिहास में चल रहा हूँ' में रेखांकित किया था। केदारनाथ सिंह के समूचे काव्य परिदृश्य में उस तथ्य को लक्ष्य किया जा सकता है। साहित्य, जीवन, धरती और समय की परम्परागत विरासत से साझा किये और उसमें नया कुछ जोड़े बिना कोई बड़ा कवि नहीं हो सकता है। केदारनाथ सिंह इस विरासत का साझा तो करते ही हैं उसमें बहुत कुछ जोड़ते भी हैं। इसलिए वे हमारे समय के बड़े कवि हैं।

पिछले संग्रह 'टालस्टाय और साइकिल' में कुछ अनासक्ति, विरक्ति कुछ निर्वेद के दबे स्वर दिखायी दिये थे। 'कवि जी आओ घर चलें रैन भई एहि देस', अब जाओ मेरी कविताओं/सामना करो तुम दुनिया का/यदि बजता है तो सिर्फ वहीं/यह इकतारा निरगुनिया का। आदि पंक्तियां इसका साक्ष्य हैं लेकिन इस संग्रह में कवि जीवन के सपने या अपनी अभीष्ट दुनिया को एक नया रूप आकार देता है। एक नागरिक होने के नाते वह ईश्वर को सुझाव देता है। उसका पहला सुझाव यही है कि सबसे पहले/अणुबम को पृथ्वी से उठा कर/रख लेना स्वर्ग में/स्वर्ग का तो शायद कुछ न बिगड़े/ पर हम पृथ्वीवासी/एक भयानक दुःस्वप्न के आतंक से/उबर जायेंगे। पूरी कविता कवि की विश्वदृष्टि का आईना है जिसमें वह एक बेहतर दुनिया का अक्स रखता है। वही धरती जो उसकी हमरक्स है, कैसे अपनी इयत्ता को मनुष्य या मानव जाति के लिए बचाये यही कवि का अभीष्ट है। पूंजी, तकनीक, जाति आदि प्रति मानवीय शक्तियां कैसे निष्प्रभावी हों ऐसी कामना कविता की संरचना में विन्यस्त है। कविता खत्म होती है सुझाव तो डेरों हैं/पर जल्दी जल्दी में/यह अंतिम सुझाव/इधर मीडिया में विनाश की अटकलें/बराबर आ रही हैं/सो पृथ्वी का कापीराइट संभाल कर रखना/यह क्लोन समय है/कहीं ऐसा न हो कोई चुपके से रच दे/एक क्लोन पृथ्वी। ध्यान दें कि 'क्लोन समय' और 'क्लोन पृथ्वी' प्रयोग अपने अर्थगर्भ में कितनी दूर तक संकेत कर रहा है। क्लोन के परम्परागत जैविक बोध से अलग रफलरीय 'फ्यूचर शाक' वाली आभासी दुनिया के संकेत तक इसमें शामिल हैं। यह किसी नये और युवा कवि का प्रयोग नहीं है बल्कि एक वरिष्ठ कवि का है। इसलिए कई बार इस संग्रह को पढ़ते हुए लगता है जो हमारा वरिष्ठ है वही सबसे युवा भी।

केदारनाथ सिंह की कविता की दुनिया अपनी पहचानी दुनिया लगती है। आसपास चिरई चुरंग, पेड़, लोग, धूल धरती, कस्बा गांव, नगर, शहर, देश सब परिचित की सीमा में ही आते हैं। लेकिन जब हम इन कविताओं से गुजरते हैं तो हमारे इस परिचित आनुभविक रिश्ते की बुनियाद में भारी परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन कैसे घटित होता है क्या उसके आनुभविक अभिग्रहण में कवि की दृष्टि का मेल हमारे अति परिचित सम्बंधात्मक आधार को बदल देता है? दरअसल केदार

जी के यहां यह प्रविधि जिस तरह से आती है उसे ब्रेख्त के अपरिचयीकरण (डिफैमिलियराइजेशन) से हम जोड़ सकते हैं और कुछ हद तक जादुई यथार्थवाद से भी। (बहरहाल अभी भी मेरे लिए उस प्रविधि के रहस्य खोल पाना पूरी तरह सम्भव नहीं इसलिए जब तक कोई ठोस अवधारणात्मक नाम सामने नहीं ला पाता तब तक इन्हीं से काम लेना है) इसलिए एक झटके में पल भर घटित करने की सामर्थ्य और दक्षता से जब हम रूबरू होते हैं तो सामने बिल्कुल साधारण और परिचित घटना या दृश्य असाधारण में तब्दील हो जाता है। नोबेल लोरेट आक्टोवियो पाज के शब्दों में कहूं तो केदारनाथ सिंह की कविता को पढ़ना अपनी आंखों से सुनना है और उसे सुनना अपनी आंखों से देखना है। कपास के फूल, नदी का स्मारक, विज्ञान और नींद, गमछा और तौलिया, बबूल के नीचे सोता बच्चा जैसे दिया सिराया जाता है, आंसू का वजन आदि कविताएं इसका साक्ष्य हैं। ‘गमछा और तौलिया’ कविता देखें

गमछा और तौलिया/दोनों एक तार पर टंगे/सूख रहे थे साथ साथ/वे टंगे थे/जैसे दो संस्कृतियां/जैसे दो हाथ बायां और दायां/झूलते हुए अगल बगल...तेज धूप में/थोड़ी सी गरमा गरमी के बाद/मैंने सुना तौलिया गमछे से कह रहा था/तू हिन्दी में सूख रहा है/सूख/मैं अंग्रेजी में कुछ देर/झपकी लेता हूं। गमछा और तालिया क्रमशः देसज और नागर संस्कृतियों के प्रतिनिधि यहां हैं। हिन्दी में सूखना और अंग्रेजी में झपकी लेना दो भिन्न क्रियाएं उपरोक्त दोनों संस्कृतियों एवं परिस्थितियों के संघर्ष के अंतर को दर्शाती हैं। केदारजी कथन में कमसुखनी हैं मितव्ययी हैं, लेकिन ‘ईगित’ की अपार क्षमता से अर्थ की अपार सम्भावना बनती है। बबूल के नीचे सोते हुए बच्चे को देखने पर वे कहते हैं

दिल्ली से कह दो/हरिकोटा से कह दो/दुनिया के सारे राडारों से कह दो/एक अभी अभी बना अंतरिक्षयान सो रहा है/बबूल के नीचे। कविता खत्म होती है इन पंक्तियों से

..नहीं.../अभी उल्टी गिनती शुरू मत करो/अभी उड़ने में देर है/मां अभी व्यस्त है, सोहनी में/दूध अभी गरम हो रहा है/पसीने की आंच पर/बनिहारी अभी मिलेगी छह घंटे बाद। यह प्रत्याशित जगहों की अप्रत्याशित और मौलिक शिनाख्त नहीं है तो फिर क्या है? बच्चा स्त्री के श्रम लोकराग से जुड़ा हुआ है। लेकिन यह खबर कवि के लिए कितनी महत्वपूर्ण है कि वह उसे ‘अंतरिक्षयान’ की तरह केन्द्र (यानी दिल्ली) से लेकर राडार तक को सुध लेने को कहता है। दिल्ली (सत्ता) हरिकोटा या राडार को क्या गरज पड़ी है? लेकिन कवि को गरज है क्योंकि कवि हाशिये का पक्षधर है। ये जो पक्षधरता और प्रतिबद्धता की राजनीति है वह इसी तरह केदार जी के यहां मिलती है। अलग से बोलती हुई वह नहीं दिखायी पड़ेगी। वह घटनाओं, दृश्य बिम्बों, कविता के हफ्तों के बीच आपको मिलेगी। कभी कभी तो वहां भी जहां शब्द आपको दिखायी भी न देंगे। मसलन दो शब्दों, दो पंक्तियों के अंतराल की खाली जगहों में। कुंवर नारायण ने एक जगह लिखा है कि ‘श्रेष्ठ कविता रिवाजी किस्म की समीक्षा को बिल्कुल सह नहीं पाती उसे तत्काल खारिज कर देती है! केदार पर काफी लिखा जाता रहा है लेकिन उनकी कविताओं का और धीर विश्लेषण और गहन अध्ययन जरूरी है। मुक्तिबोध और शमशेर की तरह केदारजी, अपनी सारी प्रतिबद्धता के बावजूद कविता की बुनियादी जरूरतों के साथ समझौता नहीं कर पाते।’

कविता की सबसे बुनियादी जरूरत भाषा की सिद्धि है। यह सिद्धि ही कवि को स्रष्टा और इस सृष्टि का पहरुआ बनाती है। केदार उन विरले कवियों में शुमार हैं जिन्हें यह जादुई सिद्धि प्राप्त है। शिल्प और संरचना में शब्दों की सही प्लेसिंग के वे मास्टर हैं। आंतरिक लय, संगतियां, अनंत लीलाएं शब्दों से ही नहीं बल्कि वर्ण पद और ध्वनियों के प्रयोगों से उन्होंने सम्भव की हैं। सृष्टि के विराट और सूक्ष्म से लेकर आदिम और अद्यतन के बोध और राग को उन्होंने इसी से हासिल किया है। वे जानते हैं कि चलना, पांवों की भाषा है। इसी से कबूतरों को गजल गुनगुनाते हुए सुना है। इसी से भागीरथी से वे निवेदन करते हैं मां का खयाल रखना क्योंकि उसे सिर्फ भोजपुरी आती है।

इसी से वे कह सकते हैं कि पक्षियों को अपने फैंसले खुद लेने दो। इसी से वे पूछ सकते हैं कि कौन बतायेगा बूंद से आंसू कितना भारी है? इसी से वे ईश्वर से लेकर धूल तक से संवाद कर सकते हैं। इस भाषा का सिम्त है कि 'तरफें रखे हैं एक सुखन चार चार मीर; क्या क्या कहा करें जबाने कलम से हम।'

भाषा लिपि के माध्यम से लिखित रूप पाती है। जबकि ध्वनियां ही वर्ण की खोज एवं आकार का रूप हैं। भाषा की यह धाती मनुष्य के इतिहास की सबसे मूल्यवान धाती है। ये बने होंगे कैसे? केदारनाथ सिंह का कवि वर्णमाला की कुछ ध्वनियों के बनने की प्रक्रिया को कैसे देखता है, देवनागरी कविता में इसे देखा जा सकता है 'क' किसी कुल्हाड़ी से पहले नहीं आया था दुनिया में/ 'च' पैदा हुआ होगा/ किसी शिशु के गाल पर/ मां के चुम्बन से/ 'ट' या 'ठ' तो इतने दमदार हैं/ कि फूट पड़े होंगे/ किसी पत्थर को फोड़ कर/ 'न' एक स्थायी प्रतिरोध है। हर अन्याय का/ 'म' एक पशु के रंभाने की आवाज/ जो किसी कंठ से छन कर/ बन गयी होगी 'मां'/ 'स' के संगीत में/ सम्भव है एक हल्की सी सिसकी/ सुनायी पड़े तुम्हें!... कविता समाप्त होती है पर कौन कह सकता है/ उसके अंतिम वर्ण 'ह' में/ कितनी हंसी है/ कितना हाहाकार।

इस संग्रह में कुछ कविताएं 'मीटर' में हैं, एक दिन अचानक, नयी सदी की एक सुबह गुमशदा कवि इसके साक्ष्य हैं। इस संग्रह में एक 'गजल' भी है। सम्भवतः केदारनाथ सिंह द्वारा लिखी और कही गयी यह पहली गजल है जो यहां शायी है। अरूज से कोई मैं बहुत वाकिफ नहीं। मतला से मकता तक कुल छः शेर हैं। इन अशआरों में जिसने मुझे कुछ ज्यादा ही प्रभावित किया अपने जमाल की वजह से, वह शेर है अब घिस गयी जंजीर बजायें तो भला क्या/ क्या देंगे कोई साज नया पूछ लीजिए। 'सृष्टि पर पहरा' की कविताएं इस वरिष्ठ कवि का साज ही तो हैं जहां से नित नये राग आयत्त हो रहे हैं।

'सृष्टि पर पहरा' संग्रह की कविताओं में अपार विविधता है। कई ऐसी कविताएं हैं जिनकी चर्चा यहां नहीं है लेकिन मुझे बेहद प्रिय हैं जैसे कि घास विद्रोह, एक पुरबिहा का आत्मकथ्य, देश और घर, मंच और मचान, त्रिलोचन को पढ़ना, प्रो बरयाम सिंह, नदी का स्मारक, बैलों का संगीत प्रेम। इन कविताओं के सम्मोहन के जादू से अपने को बचा पाना बहुत मुश्किल है लेकिन जिस कविता ने मुझे अपने पाठ से 'रसदशा' तक पहुंचाया वह है 'एक लोकगीत की अनुकृति' यहां कविता अविफल उद्धृत है आम की सोर पर/ मत करना वार/ नहीं तो महुआ रात भर/ रोयेगा जंगल में... कच्चा बांस कभी काटना मत/ नहीं तो सारी बांसुरिया/ हो जायेंगी बेसुरी... कल जो मिला था राह में/ हैरान परेशान/ उसकी पूछती हुई आंखें/ भूलना मत/ नहीं तो सांझ का तारा/ भटक जायेगा रास्ता... किसी को प्यार करना/ तो चाहे चले जाना सात समुंदर पार/ पर भूलना मत/ कि तुम्हारी देह ने एक देह का/ नमक खाया है।

कवि की इस इच्छा में 'मंगल का सौन्दर्य' है। किसी कवि की काव्यानुभूति और सौन्दर्यानुभूति का यह काम है। यही अनहद है, नादसौन्दर्य है। 'सृष्टि पर पहरा' संग्रह की कविताएं अपनी तमाम खूबियों एवं विलक्षणताओं के कारण न केवल कवि की बल्कि हमारी हिन्दी कविता की उपलब्धि हैं। इन कविताओं के अंतःकरण का आयतन बेहद बड़ा है जहां कवि की रचनाप्रक्रिया की अपार लीलाएं जगर मगर करती हैं। समय के किवाड़ पर इन कविताओं के हाथ के निशान अमिट रहेंगे। यह अकारण नहीं कि कवि लिखता है कि जाऊंगा कहा/ रहूंगा यहीं/ किसी किवाड़ पर/ हाथ के निशान की तरह/ पड़ा रहूंगा। अभी इतना ही।

सृष्टि पर पहरा : केदारनाथ सिंह, **प्रकाशक** : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, **मूल्य** : 250 रु.

लिखना अपनी आंख पाना है!

विशाल श्रीवास्तव

वीरान मैदान, अंधेरी रात, खोया हुआ रास्ता, हाथ में एक पीली मद्धिम लालटेन। यह लालटेन समूचे पथ को पहले से उद्घाटित करने में असमर्थ है। केवल थोड़ी सी जगह पर ही उसका प्रकाश है। ज्यों ज्यों वह पग बढ़ाता जायेगा, थोड़ा थोड़ा उद्घाटन होता जायेगा। चलने वाला पहले से नहीं जानता कि क्या उद्घाटित होगा? उसे अपनी मद्धिम लालटेन का ही सहारा है। इस पथ पर चलने का अर्थ ही पथ का उद्घाटन होना है, और वह भी धीरे धीरे, क्रमशः। वह यह भी नहीं बता सकता कि रास्ता किस ओर घूमेगा या उसे किन घटनाओं या वास्तविकताओं का सामना करना पड़ेगा। कवि के लिए, इस पथ पर आगे बढ़ते जाने का काम महत्वपूर्ण है। वह उसका साहस है। वह उसकी खोज है... इस रास्ते पर चलने के लिए आत्मसंघर्ष करना पड़ता है केवल एक लालटेन है, जिसके सहारे उसे चलना है।

(नयी कविता का आत्मसंघर्ष में **मुक्तिबोध**)

पता नहीं क्यों मुझे लगा कि सामने मौजूद कविताओं पर अपनी बात कहने से पहले ऊपर लिखी पंक्तियों को याद करना चाहिए। वैसे तो, यह बात रचनाप्रक्रिया के संदर्भ में कही गयी है, लेकिन कविता के प्रति कोई समझ बनाने से पहले 'समझदार' को भी अपने हाथ में कोई लालटेन या चोरबत्ती ले ही लेनी चाहिए। बहुत चकाचौंध की भी जरूरत नहीं, वरना जो देखना है, उसके अतिरिक्त सब कुछ दिखेगा। जरूरत भर की रोशनी में देखते हुए कवि चुपचाप जिस पथ पर चला गया है, उस पर उसके पीछे पीछे चलना आसान काम नहीं है। जिस रास्ते पर चलते हुए कवि के पांव लहलुहान हुए, उस पर नरम पादुका पहन कर चलते रहने से भला कैसे उसकी कविता समझ में आयेगी, और क्यों समझ में आयेगी।

अपनी उक्त प्रसिद्ध पक्तियों के पूर्व के अनुच्छेद में मुक्तिबोध कहते हैं कि कवि एक विचित्र प्रकार का अकेलापन महसूस करता है, क्योंकि जिस काम में वह व्यस्त है उसमें शायद ही कोई संलग्न हो। आज के दौर में इस अकेलेपन में एक चीज और जुड़ गयी है, और वह है उस पर लगातार लगने वाले आरोप और उससे की जाने वाली सतत अपेक्षाएं। ...आज के समय में, हिन्दी के कवियों से (अच्छे और अनुशासित बच्चों की तरह) कुछ खास किस्म की उम्मीदें लगातार बांधी जाती हैं। मसलन, उन्हें नयी बात कहनी चाहिए, नये तरीके से कहनी चाहिए, नयी भाषा में कहनी चाहिए और वैचारिक प्रतिबद्धता तो जरूरी ही है... और इस तरह की तमाम बातें जिनका शुमार हिन्दी कविता पर होने वाली हर बातचीत में होता है। इसके बाद कविता के खात्मे की बात भी कह दी जाती है, तो थोड़े से विलाप और बहुत सारे प्रलाप के साथ हिन्दी की समकालीन कविता का मर्सिया आये दिन पढ़ दिया जाता है।

फिर भी, इतनी उपेक्षा के घनीभूत वातावरण के बीच भी आश्वस्ति यह है कि लगातार अच्छी कविताएं लिखी जा रही हैं (इसका मतलब यह कतई नहीं कि बुरी कविताएं नहीं लिखी जा रहीं) और वे अपनी जगह भी तय कर रही हैं। कुछ ऐसी ही आश्वस्ति से भरा हिन्दी के युवा कवि और आलोचक **अनिल त्रिपाठी** का दूसरा कविता संग्रह है **अचानक कुछ नहीं होता**। उनकी यह काव्यपक्ति शब्दकोश के एक चर्चित शब्द के अस्तित्व को दी गयी काव्यात्मक चुनौती है। कुछ भी अचानक नहीं होता, सब कुछ नियोजित और तय होता है। कभी होता रहा होगा कुछ भी अचानक, शायद यह शब्द भी तभी गढ़ा गया होगा। अब कहां कुछ अचानक होता है, मेहमान अचानक नहीं आते (बाकायदा फोन करके और पूर्वानुमति के साथ आते हैं), ऋतुएं अचानक नहीं आतीं (कमबख्त बहुत इंतजार कराती हैं), हमें अचानक कुछ नहीं पता चलता (अंदेशों का धड़का पहले से बना रहता है); जिस तरह का तयशुदा और प्रबंधित जीवन हम जी रहे हैं उसके रोजनामचे से लेकर त्रासदियां तक पहले से तय रहती हैं। 'अचानक' शीर्षक से लिखी अपनी कविता में वे कहते हैं *सब पहले से तयशुदा है/सबके अपने अपने हिस्से हैं.../अब अचानक और औचक/कुछ भी नहीं होता/सब अपनी अपनी गोटी बिछाते हैं/और तुम्हें पता भी नहीं/शिकारगाह में शिकारी ताक में हैं।*

अनिल त्रिपाठी हिन्दी के बहुत से दूसरे कवियों की तरह गांव छोड़ कर शहर में बसे कवि हैं। उनकी कविताओं में गांव के जीवन की स्मृतियां तो हैं ही, उनके साथ ही मध्यमवर्ग के नागरिक जीवन की विडम्बनाएं भी पूरी तरह मौजूद हैं। विशेष बात यह है कि उनका निरूपण वे बेहद मामूली प्रतीकों के साथ करते हुए भी उन्हें बड़े और सार्वभौम संदर्भों के साथ सम्बद्ध करने में सफल होते हैं। उनकी 'रेफ की तरह' कविता को पढ़ते हुए मन एक बार सोचने लगा कि इस तरह के विषय पर क्या हिन्दी में कोई दूसरी कविता भी है? वरिष्ठ कवि अष्टभुजा शुक्ल की कविता 'हलंत' जरूर याद आयी, लेकिन उसका काव्यफलक इस कविता से भिन्न है। यह कविता जरूरत के सांचे में ढले जीवन में अनुपयोगी वस्तुओं और सम्बंधों के नेपथ्य में चले जाने के विषय को केन्द्र में रखती हुई हमारी निरंतर क्षरित होती संवेदना को उद्घाटित करती है *वे हफों की दुनिया में/रेफ की तरह हैं/जो कभी कभार ही आते हैं काम/लेकिन वे होते हैं विकल्पहीन/जिनके बिना शब्द हकलाने लगते हैं/आखिर कैसा है यह समय/कि अपना ही बेगाना होकर/शांमिल नहीं है/हमारी अपनी दुनिया में।*

कवि की चिन्ता, इस तय तौर तरीकों से चलने वाले समाज में सम्बंधों के नकलीपन और एक अजीब तरह की बाजीगरी के प्रति भी है। हमारी दुनिया इस तरह बदल गयी है कि

उसमें अब एक सहज और निश्चल आदमी के लिए कोई जगह नहीं बची है। वे जो तोलमोल करना जानते हैं, जिनके लिए सम्बंध आवश्यकताओं की पूर्ति का जरिया हैं, वे विशेष किस्म के संतुलन के साथ अपना जीवन जीते हैं। कवि अपनी कविता 'सुरक्षित कोनों के बरक्स' में लगभग उसी अकेलेपन की बात करता है, जिसका जिक्र मुक्तिबोध ने अपनी पुस्तक में किया था (ऊपर का संदर्भ देखें) और ईमानदारी से कहें तो/भरोसा भी उसी पर/वह जो अकेला है/उस बहाव के विरुद्ध भी अकेला है/और संतोष है कि उसने/विरुद्ध चलना सीख लिया है।

'अपनी आंख' इस संग्रह की वह कविता है, जिसने मुझे व्यक्तिगत रूप से सबसे ज्यादा प्रभावित किया है। नये सांस्कृतिक और वैचारिक विमर्शों से पटे इस समय में साहित्य को लेकर एक सवाल सबके मन में मौजूद रहता है। पाठकों की विमुखता और किसी आंदोलन या क्रांति के संदर्भ में उदासीनता से ग्रसित इस वातावरण में आखिर क्यों लिखा जाय? यह सवाल कमोबेश हर लिखने वाले के मन में मौजूद रहता है। पुराने कवियों ने 'स्वांतःसुखाय' कह कर इस सवाल को कुछ तनु करने की कोशिश भी की है (लेकिन फिर वही कि सुख ही पाना है तो लिखना क्यों... और भी काम हैं जमाने में)। कवि की यह कविता बेहद सहज रूपकों के साथ शुरू होती है, पर अंत तक आते आते यह अत्यंत महत्वपूर्ण बात कहती है जब जो जैसा देखता हूँ/बस लिखना चाहता हूँ/मैं नहीं चाहता/उधार का चश्मा पहन/सावन का अंधा बनूँ/मैं अपनी आंख पाना चाहता हूँ/मैं लिखना चाहता हूँ।

अच्छी बात यह है कि संग्रह की इन कविताओं में नाउम्मीदी और विलाप भर नहीं है, बल्कि मुश्किल दौर में भी उम्मीद की ओर इशारा है। 'यूटोपिया' और 'डिस्टोपिया' के बीच एक सम्भव धरातल तलाशने की कोशिश इन कविताओं में है। सब कुछ खिलाफ है, इस तथ्य की स्वीकृति में कवि को परहेज नहीं, फिर भी कुछ अनुकूल है इसका यकीन कवि को है। 'तुम अकेले नहीं हो', शीर्षक कविता की पंक्तियां हैं जैसे भी ठहरना/मौत के पूर्व का सन्नाटा है/जबकि गति मृत्यु के खिलाफ/आदिम मानवीय कारवाही।

'किसी का जाना' कविता जीवन में लगातार पैदा होती रिक्ति को लेकर लिखी गयी एक मार्मिक कविता है। यह कविता उन्होंने अपने बाबा की मृत्यु के बाद जीवन में तमाम चीजों के अवसान की कथा पर केन्द्रित की है। यह हम सबके जीवन में लगातार हो रहा है। जिस तरह बाबा की मृत्यु की बाद गुड़, गट्टे, शकरकंद का स्वाद कवि के जीवन से उठ जाता है, उसी तरह अन्य वृत्तांतों में खोजने पर हम पा सकते हैं कि गांव में रहने वाली दादी या चाची के अवसान के साथ लोकजीवन से कुछ गीत खत्म हो गये (इसका व्यक्तिगत अनुभव भी मुझे है, मेरी दादी खालिस अवधी की कुछ मसलें कहा करती थीं, जिनके बिना प्रायः उनके वाक्य बनते ही नहीं थे, उनके जाने बाद लगातार मुझे यह लगता रहा है कि वे लोकोक्तियां मर गयी हैं)। तब अगर कवि यह कहता है कि जाने वाला अब अपने साथ पूरा एक समय लेकर जाता है, तो उचित ही है। पर गजब तो वे तब करते हैं जब जड़ों से इस कटने को वे पुलई से गिरने की चोट से सम्बद्ध करते हैं फिलवक्त इतना ही कहना है कि/किसी का जाना जड़ों से दूर/पुलई से गिरना है/जिसमें चोट बहुत देर तक दुखती है। छूटने और कटने का यह दर्द उनकी अगली कविता 'एक क्षण भी भारी है समूची धरती पर' में और भी गाढ़ा होता है। मृत्यु और प्रकृति ही छुड़ाती और काटती, तो स्वीकार्य था; आज बाजार के आतंक के समय में ऐसे बहुत से कारण पैदा हो गये हैं, जो हर शय को अपनी जड़ से अलग कर देने पर आमादा हैं। कवि की चिन्ता है कि यह विस्थापन सब कुछ गड्डमड्ड कर देगा। पेड़ों का उदाहरण देते हुए वे बताते हैं कि

जो अपनी जगह नहीं छोड़ेगा उसे नष्ट होना पड़ेगा। वे उस नष्टप्राय के सात्विक प्रतिरोध को चिह्नित करने की बात करते हैं *पेड़ों को दुख है कि/वे चल नहीं सकते/नहीं है उनके पास कोई उपाय/आरों से अपना सीना/चाक करने के अलावा।*

सुखद आश्चर्यजनक रूप से अपनी एक अन्य कविता 'जिन्हें बचाना जरूरी है' में वे कुछ चीजों को बचाने के माध्यम से लगभग पूरी दुनिया को बचाने की कोशिश करते दिखते हैं। उनकी लिस्ट में कुंआ है, खुरपी है, पेड़ है, हंसी है, चेतना है, आग है, राख है, रंग है, राग है, प्यार है, रंज है और भाषा भी है। यही वे चीजें हैं जिनसे जीवन की वास्तविक आभा सम्भव है, इस आलोक के लिए सब कुछ बचाना चाहता है कवि। ध्यान देने योग्य है कि वह सुगढ़ और पकी हुई चीजें नहीं बल्कि कच्ची और अनगढ़ चीजों को बचाना चाहता है *कच्चापन तो बेहद जरूरी है/जिसे बचाया ही जाना चाहिए/वह चाहे भाषा का हो/या स्वाद का/क्योंकि पकी हुई चीजों पर/भरोसा करना मूर्खता ही होगी/एक सीमा के बाद।*

शहर में रह रहे कवि को अत्याधुनिक सुविधाओं से लैस शहर 'उजाड़' लगता है। पहले पहल ऐसा लग सकता है पर यदि ध्यान से देखें तो इसका कारण कोई रोमानी नॉस्टैल्जिया नहीं है; शहर के डिब्बिनुमा कमरों में 'अदहन में चुरते पानी की तरह' उबलते हुए कवि को गांव की वत्सल छांह की स्मृति हो आना स्वाभाविक ही है। (वे जब 'पेड़ और मैदान और उछाह और खेल भी कहां अब?' कहते हैं तो जायसी का 'कित यह खेल' याद आ जाता है; इसके लिए उन्हें सलाम!) लेकिन, उनकी असली चिन्ता यह नहीं है, असली चिन्ता है कि उनके पास तो यह सब याद करने के लिए है भी लेकिन अगली पीढ़ी स्मृतिहीनता का शिकार होने वाली है, जिसके पास गांव के सुनहरे जीवन का शायद कोई अनुभव नहीं होगा *मुझे दुख है कि मेरा बेटा/आम के पेड़ पर तो क्या/अमरुद के पेड़ पर चढ़ कर/अमरुद खाये बिना ही/बड़ा हो जायेगा/और बेटी को एक सोहर तक भी/नहीं याद होगा।*

'अचानक कुछ नहीं होता' यह मानने के साथ ही कवि यह भी मानता है कि 'अचानक कुछ भी नहीं मिलता', बल्कि मिलना जरूरी भी नहीं है। कुछ पाने के लिए आसान और तेज रास्तों की कवायद भी प्रायः कुछ नहीं देती। धीरे धीरे सब आता है। 'धैर्य' और 'आधार' शीर्षक कविताओं में कवि इसी सचाई को मानता और गुनता दिखायी देता है। 'सुगम उपाय तो बेदखल होने का रास्ता दिखाता है' और 'जीवन से दूर भरोसों को कट्टा कट्टा सिरजेंगे' जैसी पंक्तियों के माध्यम से वे इसी वैचारिकता को दृढ़ता से दर्ज करते हैं।

लोक और अपनी नागरिकता के दौराहे पर खड़ा यह कवि अपनी राजनैतिक समझ में भी बेपरवाह नहीं है। गांव उसके लिए सिर्फ गुजरे हुए सुनहरे अतीत का हिस्सा भर नहीं है। गांव के कठिन वर्तमान और किसान के जीवन की चुनौतियों से भी वह न सिर्फ पूरी तरह वाकफियत रखता है बल्कि उसके अनुभवों से वह एक संश्लिष्ट रूपक भी रचता हुआ दिखायी देता है। किस तरह दिल्ली की नींद का सुकून गांव के किसान का रतजगा है, इसकी बानगी देखें *जब किसान की आंखों से/बेदखल हो चुकी है नींद/मुझे पता है/उनींदी दिल्ली को/आज बहुत दिनों बाद/आयेगी अच्छी नींद।*

एक और कविता, जिसका जिक्र किये बिना शायद बात पूरी नहीं होगी, वह है 'पिता एक इंतजार का नाम है'। हिन्दी कविता में मां को लेकर ढेरों कविताएं लिखी गयी हैं, आज भी लिखी जा रही हैं किन्तु पिता को लेकर लिखी गयी कविताओं की संख्या अपेक्षाकृत कम है (हालांकि एक सुखद सूचना है कि दिल्ली के दो कविमित्र पिता पर लिखी कविताओं का

संचयन निकाल रहे हैं)। उत्तर भारत की हिन्दी पट्टी में पिता पुत्र का सम्बंध कुछ ऐसी दूरी से भरा रहा है कि उसमें भावनात्मक गर्माहट होते हुए भी उसके बारे में सोच पाना या कविता लिख पाना एक संकोच के कारण बाधित रहता है। आशंका और चिन्ता से भरा हुआ पिता, पुत्र के प्रति अपने भावों की प्रवणता को हमेशा एक आवरण के नीचे छिपाये रखता है और पुत्र भी पिता के प्रति अपने तमाम प्रेम को भयमिश्रित आदर के फ्रेम से बाहर नहीं आने देता। ऐसे में रोजी के लिए विस्थापित एक पुत्र की प्रतीक्षा में पड़े पिता की ओर से लिखी यह कविता बेहद मार्मिक है (जिन्होंने देर रात घर लौटने पर अपने पिता को जागते हुए और दरवाजा खोल देने के बाद चुपचाप जाकर सोते हुए देखा है, वे इस कविता के मर्म को बहुत ठीक से समझ पायेंगे)। पिता के पास केवल और केवल प्रतीक्षा है *दरस परस का समय है यह/वह जरूर आयेगा/सोचते हैं पिता/और मैं बेहद परेशान/और डरा हुआ कि/आखिर क्यों/पिता एक इंतजार का नाम है।*

यह एक आलोचक कवि का दूसरा संग्रह है, निश्चित रूप से इससे 'अपेक्षाएं' भी अधिक ही होंगी। अनिल त्रिपाठी अपने पहले संग्रह 'एक स्त्री का रोजनामचा' की कविताओं से निःसंदेह प्रौढ़ हुए दिखते हैं। फिर भी, यह प्रौढ़ता ओढ़ी हुई या सायास नहीं दिखती। दरअसल, अनिल त्रिपाठी के कवि का वैशिष्ट्य ही यही है कि न तो वैचारिकता का कोई मुहावरा और न ही शिल्प की कोई प्रायोगिकता ही उनकी कविता में प्रयासगत दिखती है। उनकी सभी कविताएं उनकी भावनात्मक और संवेदनागत सचाई से उपजी हैं, उसमें कुछ भी क्राफ्टेड नहीं है। 'जो जैसा दिखा लिखा' की शैली में ही वे कविताएं लिखते हैं, शिल्प को लेकर कोई अतिरिक्त सावधानी भी उनकी कविता में नहीं दिखती। उनकी कविताओं में सबसे अधिक ध्यान खींचती है उनकी भाषा और आंचलिक बोलियों के शब्दों का उनका चयन, 'ओछांह', 'ओरदावन', 'पानीदार', 'बतधर' जैसे तमाम अवधी के शब्द उनकी कविता में पूरी अर्थवत्ता के साथ प्रयुक्त हुए हैं। ये शब्द आरोपित नहीं लगते, बल्कि यह महसूस होता है कि इन कविताओं के बारे में सोचते हुए उन्होंने इन शब्दों के बिना नहीं सोचा होगा। यही कारण है कि वे अपनी कविताओं में लोक का एक सशक्त मुहावरा गढ़ने में समर्थ हो पाते हैं। भाषा और विचार दोनों ही स्तरों पर यह संग्रह कवि के पक्के होते जाने के साथ अपने भीतर के कच्चेपन को बचाये रख पाने के कौशल का प्रतीक है। समकालीन हिन्दी कविता के परिदृश्य में यह संग्रह अपनी पठनीयता और प्रासंगिकता के कारण अपनी जगह बनाने में समर्थ होगा।

अचानक कुछ नहीं होता : अनिल त्रिपाठी : प्रकाशक : शिल्पायन, नयी दिल्ली, मूल्य : 150 रु.

मानुष गंध से उर्वर होती है कविता की जमीन

रविशंकर उपाध्याय

मनुष्य होने का अर्थ संवेदनशील और सजल होने से है, जो किसी भावुकता के दायरे में नहीं, बल्कि प्रतिबद्धता के रास्ते विकसित हुआ हो। भावुकता व्यक्ति को सजल नहीं दुर्बल बनाती है। मनुष्य होना दुर्बलता से मुक्ति है। यह मुक्ति वैज्ञानिक चेतना की बदीलत ही सम्भव है। आज भावुकता का घटाटोप रच कर एक अवैज्ञानिक और क्रूर सत्ता को लाने की तैयारी जोरों पर है। इस स्थिति में यह बात स्पष्ट रूप से कहीं जा सकती है और कही भी जानी चाहिए कि यह तर्कहीन, आस्थामूलक दुनिया की निर्मित की तैयारी है। संस्कृतिकर्मी, कवि, रचनाकार इस दुनिया के सच को उजागर कर मनुष्य की स्वतंत्रता और उसकी मुक्ति का आख्यान रचता है। **एकांत श्रीवास्तव** का नया काव्य संग्रह **धरती अधखिला फूल है** मनुष्य की मुक्ति के लिए उस लय की खोज है, जो प्रकृति और मनुष्य दोनों के भीतर गूंज रही है।

कवि एकांत श्रीवास्तव का यह संग्रह प्रकृति के कोमल पक्षों को मनुष्य के भीतर उतरते हुए उसकी अनुभूत लय को पकड़ने की कोशिश है। *बारिश नहीं होती/फिर भी/भीग जाता हूं* जैसी पंक्तियां शुष्क होती संवेदना को तरल बना कर गहरी आत्मीय उमंग पैदा करती हैं। जीवन की गतिकी में जितना स्पंदन बाहर होता है, उतना ही भीतर भी। कविता बाहर और भीतर की यात्रा की पगडंडी है। *सुनो! तीतुर बोलते हैं/आधी रात को/माघ के महीने में/वन में डोंगरी में/जो नदी सूख जाती है/उसका जल/स्वप्न में बहता रहता है/जो वृक्ष जल जाते हैं उनके फूल/महकते रहते हैं स्मृतियों में*। स्मृतियों की उपस्थिति अपनी परम्परा और संस्कृति को Revisit करना है।

एकांत श्रीवास्तव नवें दशक में कविता की दुनिया में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने वाले उन कवियों में हैं, जिन्होंने 'लोक' को अपना आधार बनाया। इस प्रवृत्ति और इस दशक की कविता पर

यदि हम विचार करें तो उसमें मदन कश्यप, अनामिका, बद्रीनारायण और निलय उपाध्याय की उपस्थिति महत्वपूर्ण है। इस काव्य प्रवृत्ति ने 'लोकगाथा, लोकगीत, लोकस्मृति और लोकजीवन' को अपनी कविता का केन्द्रीय विषय बनाया है। लोक से अपना रिश्ता बनाना अपनी परम्परा और संस्कृति से नाता जोड़ना भी है और उसे विस्तार देना भी। 'लोक' की यह खास विशेषता है कि उसकी ताजगी सदैव बनी रहती है। संवेदना और भाषा दोनों स्तरों पर। यह ऐसा अक्षय स्रोत है, जिसका सोता कभी सूखता नहीं। एकांत श्रीवास्तव के पिछले संग्रहों के शीर्षक पर एक नजर डालें तो यह तस्वीर और साफ होगी। 'अन्न' में 'हरे शब्द', 'मिट्टी से कहुंगा धन्यवाद', 'बीज से फूल तक' और लम्बी कविता 'नागकेसर का देश'। ये शीर्षक कृषक जीवन और उसके रागरंग को अभिव्यक्त करने वाले हैं। जब हम इन शीर्षकों के जरिये उनकी कविता की दुनिया में प्रवेश करते हैं, तो लोकजीवन की विविध अर्थछवियां, रूपछवियों में परिवर्तित होती दिखायी देती हैं। 'धरती अधखिला फूल है' संग्रह की एक कविता है 'सांझ का आकाश'। उड़े सारस/हिलीं फनगियां/धवल कांस फूलों पर गिर गया गुलाल/नाव के पाल सा/सांझ का आकाश/जोर जोर/हिलता हुआ हवा में/दिया बाती के बेर/मंजूर के पंख सा/धरती की थकी हुई देह पर फैला हुआ/दुःस्वप्नों के तीर से/बिंधी हुई नींद/राख के रंग का सांझ का आकाश। यहां दिन के ढलते पल का कवि ने पक्षी, फसल, फूल, नाव के साथ ऐसा कोलाज बनाया है, जो गतिशील जीवन का चित्र उपस्थित करता है। यहां शब्द और रंग एक दूसरे के साथ घुल गये हैं। इस कविता को पढ़ते हुए बरबस 'इम्प्रेशनिस्ट चित्रकार' कवि (बकौल मुक्तिबोध) शमशेर की कविता 'उषा' की याद ताजा हो जाती है।

एकांत श्रीवास्तव का यह संग्रह पाठक के मन में एक गहरी छाप छोड़ने का आकांक्षी है। वह इसलिए नहीं कि कवि की कोई बड़ी छवि उभरे बल्कि अपनी धरती से मनुष्य का ऐसा नाता जुड़े जिसमें उसकी आदिम मानुष गंध मौजूद हो। जीवन के उल्लास, दुख सुख, प्यार, अनुराग की अभिमत छाप अंकित हो जाये। संग्रह की पहली कविता 'छाप' मनुष्य के शाश्वत रंग को सूखते देखते हुए कवि के भीतर थोड़ी बेचैनी पैदा करती है। कविताएं जीवन के उज्ज्वल पक्षों के साथ ही सत्ता द्वारा निर्मित स्याह पक्ष को भी उसी मुखरता से प्रस्तुत करती हैं। संग्रह की 'लोहा' कविता जीवन को बचाने के लिए संघर्षरत हर मनुष्य के रक्त के भीतर के लोहे के हर कण को बचाने की जद्दोजहद है, जिसे बाजार और उपभोक्तावादी संस्कृति निगलने के लिए तैयार है। देश का एक बड़ा तबका हर रोज संघर्ष करता है दो जून रोटी के लिए और विडम्बना यह कि उस रोटी को इज्जत से खाने के लिए पुनः संघर्ष जीने के लिए इस संसार में/रोज लोहा लेना पड़ता है/एक लोहा रोटी के लिए लेना पड़ता है/दूसरा इज्जत के साथ उसे खाने के लिए।

एकांत श्रीवास्तव प्रकृति से मनुष्य के रिश्ते को भावुकता में डूब कर किसी नियतिवादी नजरिये से नहीं देखते, वे श्रमशक्ति को बार बार उद्घाटित करते हैं, जिससे मनुष्य की क्रियात्मकता ने प्रकृति को और सुंदर और धरती को उर्वर बनाया है इस चेतना के साथ कि प्रकृति हमारे दोहन के लिए नहीं है। आज खुद को आधुनिक कहने वाला मनुष्य अपनी लिप्सा में इस कदर अंधा हो चुका है कि बेतहाशा वह प्रकृति की लूट में लगा है। यह लूट इतनी भयंकर रूप लेती जा रही है कि प्रकृति का स्वरूप ही नष्ट होने के कगार पर है। उसका चेहरा विकृत किया जा रहा है। दुनिया के विकसित राष्ट्र यदि विकास के इसी स्वरूप को बनाये रखें तो अगली शताब्दी जंगलविहीन होगी, नदियां रेल की ढूंढ बन चुकी होंगी और भूमि बंजर। 'एक बंजर भूमि' शीर्षक कविता में एकांत कहते हैं मनुष्य ने तोड़ी धरती की बंजरता/मनुष्य ने उगाया अन्न/मनुष्य ने तोड़ी संसार की बंजरता/मनुष्य ने बनाये घर। कवि यह बात तब कह रहा है, जब घर बनते थे। आज घर गायब हैं, और भवन खड़े। मनुष्य

के श्रम से सिंचित उर्वर भूमि बमों और मिसाइलों के परीक्षण से बंजर हो रही है। कारखानों के कचड़ों से नदियां जहर का नाला बन चुकी हैं। विश्व बाजार और पूंजी का नियंता अमेरिका और यूरोप, जिनकी 4 से 5 प्रतिशत जनसंख्या है और वे 20 से 25 प्रतिशत संसाधनों पर अकेले कब्जा जमाये हुए हैं इनकी गढ़ी हुई सुंदरता कितनी विद्रूप है, इसकी पहचान उनके करीब जाने पर होती है।

सुंदरता की परिभाषा उसके शब्द में नहीं बल्कि अर्थ में है। संग्रह की एक कविता है 'सुंदरता। इस पर गौर करना जरूरी है *शब्द सुंदर नहीं है/सुंदर है उसमें छुपा विचार/विचार की इस धूप को/दुनिया में उतारने की इच्छा सुंदर है/भूख सुंदर नहीं है/भूख से लड़ने की इच्छा सुंदर है/दुख सुंदर नहीं है/सुंदर है दुख को सहने की ताकत।* कवि संघर्ष की सुंदरता का हिमायती है। दुख नहीं दुख से लड़ने की शक्ति, उसे हिम्मत देती है और संसार को रचने का विवेक भी। इसीलिए कवि 'अनक्तु' कविता में इस उम्मीद पर विचार करता है कि *सावन में सांवा फूला है/भादों में कांसी/वह कौन ऋतु होगी जिसमें फूलेगा/अरण्य इस उजाड़ जीवन का।*

इस संग्रह के दो खंड हैं। पहला 'घास की हरी पत्तियों में' और दूसरा 'ग्वालिन महकती है रात में'। पहले खंड में विभिन्न काल और मूड की लिखी कविताएं हैं। मसलन जीवन संघर्ष, प्रकृति से रिश्ता, बनुकरों के जीवन यथार्थ, बाजार और साम्प्रदायिक विद्वेष से उपजी स्थितियां आदि। इस खंड की कुछ कविताएं एक खास अनुभव जगत से उपजी हैं, जिनमें पारिवारिक रिश्ते अहम हैं। जैसे 'बिटिया के लिए लोरी', 'पितरपाख', 'भाई', 'बहन', 'पिता की समाधि' आदि। इन कविताओं में कवि रिश्तों की परख नहीं करता है, बल्कि उसमें प्रवेश करता है। जैसे पानी का मछली से रिश्ता नहीं, वह उसका जीवन होता है। पक्षियों के लिए पेड़ महज आश्रय नहीं उनके होने के आधार होते हैं।

'बिटिया के लिए लोरी' शीर्षक कविता में कवि अपनी बिटिया के ज्वर को कम करने के लिए ओस की बूंद बन जाना चाहता है, जिससे फूल की पंखुड़ियां भीग कर शीतल और नम हो जाती हैं। इन कविताओं में 'बेटे के लिए विदागीत' अपने पूरे रचाव में अलग ही कारुणिक स्थिति उत्पन्न करती है। यहां विदा का गीत उस बेटे के लिए है, जिसके लिए यह दुनिया अदेखी ही रह गयी *धरती पर पांव धरे बिना/गुंजाए बिना अपनी किलकारी से ब्रह्मांड/खेले बिना मेरी गोद में सुने बिना मेरे होठों से अपना नाम/मेरे बेटे, तुम चले गये कितनी दूर/बालों की पालकी में बैठ कर।* पिता पुत्र का रिश्ता जीवन के विकास के साथ सघन होता है। लेकिन एक ऐसा पल जिसने असंख्य उम्मीदों और उल्लास को एक झटके में रौंदा डाला हो, उस पल को याद करना कितना पीड़ादायक होता है यह वही समझ सकता है, जिसने उसे भोगा हो। यह कविता आत्मीय अनुभूति का उत्कर्ष रचती है। प्रेम अनुभूति को सघन बनाता है और घृणा उसे छिन्न भिन्न कर देती है। कविता शब्द व्यापार है। वह भाषिक संरचना में अपने अर्थ को रूप देती है। इस संग्रह की भाषायी रूपयोजना या कहें कि कवि की भाषा का स्वरूप कैसा है, इसे 'उपहार' शीर्षक कविता में बखूबी देखा जा सकता है *नफरत में फन काढ़ कर/फुंफकारती है भाषा/धधकती है/जंगल में लगी आग की तरह/बस प्यार में लीचियों की तरह सुख जो जाती है/गाढ़ी धूप में/पकाती हुई हृदय का रस/शब्द अधखिले रह जाते हैं/भोर के कंवल की तरह/और वाक्य साथ छोड़ देते हैं/यही वो समय/जब वसंत आता है/और मधुमक्खियां धरती को/शब्द का उपहार देती हैं।* एकांत श्रीवास्तव ने लोक की जमीन को विविध स्तरों पर तोड़ा और रचा है। यदि इसी त्वरा से वर्तमान राष्ट्रीय और वैश्विक सत्ता के बहुरूपियेपन को राजनीतिक त्वरा से अपनी कविता के केन्द्र में लायें तो उनकी परिधि विस्तृत होगी और काव्यभूमि ज्यादा उर्वर। आज जैसा समय रचा गया है, सके प्रति थोड़ा तल्लख और निर्मम होने की भी जरूरत है।

संग्रह के दूसरे खंड में एक अकेली और लम्बी कविता 'डूब' है। यह विस्थापन की त्रासदी को बड़े फलक पर प्रस्तुत करती है। यह विस्थापन रोजगार की तलाश में गये श्रमिकों से भी ज्यादा पीड़ादायी है, क्योंकि इसमें किसी भी सूरत में वापस लौटने की सम्भावना शेष नहीं है। अमेरिकी और यूरोपीय देशों में आउटडेटेड हो चुके बड़े बांधों की परियोजनाओं को बिजली उत्पादन और सिंचाई के नाम पर बस इसलिए लागू किया जा रहा है कि उनकी फालतू और बेकार हो चुकी मशीनों का प्रयोग हो सके।

जब किसी गांव को विस्थापित किया जाता है तो महज उस गांव के लोगों को ही नहीं, उनकी संस्कृति, उनकी स्मृतियां, उनकी लोकपरम्पराएं सब एक साथ समाप्त हो जाती हैं। कवि ने इस बात की ओर इशारा किया है कि डूब गयी सभ्यताओं के तो इतिहास भी लिखे जायेंगे, लेकिन जबरन विस्थापित किये गये ये गांव इतिहास के लिए कोई विषय नहीं होंगे। वे बस बचे रहेंगे, विस्थापितों की दंतकथाओं में

डूब गयी सभ्यताओं के इतिहास लिखे जायेंगे/और डूब गये गांव की केवल दंतकथा/रह जायेगी शेष/दंतकथा कि, कभी इस जल के नीचे/हुआ करता था एक गांव/जहां ये घर रास्ते, चौपाल, खेत खलिहान/कोठार डोंगरी और जंगल/कि यहां बाघ और हिरण पीते थे एक साथ/एक ही घाट का पानी/लोग जो इच्छा से छोड़ देते हैं गांव/रोजी रोटी, बनी मजूरी के लिए/एक दिन लौट सकते हैं पुनः/पा सकते हैं फिर खोया हुआ गांव/और हम हैं कि लौट नहीं सकेंगे कहीं/पा नहीं सकेंगे इसे कभी/हम स्वप्न में देखेंगे इसे/स्मृति में बसा रहेगा आबाद यह प्रांत। टिहरी, मणिवेली, हरसूद आदि कई गांव और जनपद डूब गये हैं, बल्कि कहे कि डूबो दिये गये हैं। लोगों के लिए गांव और जनपद डूब गये हैं, लेकिन आज भी आ रही है, उस प्यार की महक जो उन्होंने इस धरती से किये थे प्यार महकता रहेगा सब दिन/जो हम इस धरती से करते हैं/आठों पहर तीनों काल/ग्वालिन महकती है रात में/दिन में हजार मोंगरा फूल। यह कविता उन आदिवासियों की पीड़ा का स्वर है, जो हमेशा के लिए बलात, विस्थापित कर दिये गये हैं। लेकिन यह विस्थापन जारी रहे और आदिवासी विस्थापित होते रहें यह अब चलने वाला नहीं। अब कहीं मेधा पाटकर की आवाज चिनगारी बन कर उठेगी तो चंडी प्रसाद के विरोध के स्वर गुंजेंगे! दावानल बन बरसेंगे आदिवासियों के विष बुझे तीर।

उक्त विस्थापन को पूंजी के भरोसे पुनर्वास का जामा नहीं पहनाया जा सकता है। कवि विस्थापितों के संघर्ष के साथ खड़ा है और उसे विश्वास है कि सत्ता के बस में नहीं है पुनर्वास। कवि कहता है *तुम किस किस चीज को पुनर्वास दोगे/छीन सको तो छीन लो/पके धान की खुशबू मेरी सांसों से/और दो उसे पुनर्वास/दो दीवाल में थापे गये/कंडे के सूखे हुए निशान को पुनर्वास/असम्भव है पुनर्वास/पुरखों के पांवों से बने हुए रास्ते का/सूख जाने पर भी वृक्ष को छोड़ते नहीं पक्षी/कैसे दोगे तुम उन्हें दूसरे वृक्षों पर पुनर्वास/कदम्ब के तने के छेद में/रहने वाली दतैया/दूंदती है उसी कदम्ब का तना/उसी कंठ को दूंदता है गान/उसी गोरसी को दूंदती है आग/कोठार को दूंदता है अन्न/पांव दूंदते हैं उसी रास्ते की धूल/असम्भव है पुनर्वास।* यह कविता एक बड़े फलक को रचती है, जहां विस्थापितों की पीड़ा है तो उनका संघर्ष भी है। उनकी सांस्कृतिक चेतना की उपस्थिति भी है और राज्यतंत्र और विकासतंत्र के अत्याचार को विफल करने के लिए जाग उठी शक्ति भी। पर्यावरण के संरक्षण के नाम पर किये जाने वाले सम्मेलनों के छद्म को भी यह कविता उजागर करती है। यह अपने बड़े कलेवर में सार्थक प्रतिरोध और प्रतिपक्ष की आवाज है जिसे अब आने से रोका नहीं जा सकता है।

धरती अधखिला फूल है : एकांत श्रीवास्तव, **प्रकाशक :** राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, **मूल्य :** 250 रु.

कहानी का कमल व्यूह

विन्ध्याचल यादव

शम्भु गुप्त अपनी समीक्ष्य पुस्तक **कहानी : वस्तु और अंतर्वस्तु** की शुरुआत इसी चिन्ता और संकल्प से करते हैं कि “हिन्दी की कहानी समीक्षा पर अधिकांशतः एक आरोप यह लगाया जाता रहा है कि उसके प्रतिमान कविता समीक्षा के क्षेत्र से आयत्त किये जाते हैं, हिन्दी आलोचना के पास कहानी समीक्षा के ऐसे प्रतिमान लगभग न के बराबर हैं, जो कहानी को कहानी की तरह देख सकें, जो नितांत कहानी विधा के और उसी के लिए हों।” (‘पूर्वकथन’ से, पृ.9)

शम्भु गुप्त की चिन्ता आलोचना और रचना के अधिगम की ऐसी प्रक्रिया को ईजाद करना है जिससे यह साफ हो सके कि बावजूद अपने तमाम आग्रहों और विचारधारा के एक कहानी अपनी पूरी रचनात्मक ऊर्जा और सृजन के साथ हमें एक नया और टटका जीवनानुभव या विचार कैसे दे, या कैसे देती है?

बहुत साफतौर पर शम्भु गुप्त का आग्रह ‘कहानी को कहानी की तरह देख सकने’ पर है जोकि एक विधागत आग्रह है। गौरतलब है कि वस्तु या अंतर्वस्तु के स्तर पर साहित्यिक विधाएं तो क्या, कला के विविध रूप नृत्य, संगीत, चित्र, वास्तु, साहित्य आदि तक में एक प्राणधारा का समान प्रवाह सन्निहित होता है। उनका अलगाव व कलात्मक वैशिष्ट्य तो उसके रूपपक्ष पर निर्भर है। कहानी को कहानी की तरह देखने का आग्रह असल में उसकी वस्तु से ज्यादा उसकी शिल्प प्रविधि, उसकी टैकनीक व ट्रीटमेण्ट में निहित है। कविता और कहानी में बड़ा बुनियादी विधागत अंतर है। कविता और कहानी दोनों कला हैं, साहित्य हैं और दोनों जीवन की पुनर्रचना अपने अपने ‘फार्म’ और इस ‘फार्म’ के स्वभाव के अनुरूप करते हैं।

कहानी जीवन को उसकी पूरी स्वाभाविकता, यथार्थ व सच्चे सीधे तरीके से पकड़ती है जबकि कविता यही काम कल्पना और लाक्षणिकता से करती है। कल्पना का स्मृति से बड़ा गहरा सम्बंध है

और स्मृति का यथार्थ से। कविता भी कहानी की तरह हमारी स्मृति का उत्खनन करती है और हमारे अनुभव व चेतना का प्रसार करती है। लेकिन दोनों के 'ट्रीटमेण्ट' में अंतर है। कवि श्रीप्रकाश शुक्ल की एक कविता है 'अंकुरण' ('रेत में आकृतियां' से), जिसमें 'रेत में रेत का अंकुरित होना' कल्पित है। यह रचाव कविता में ही सम्भव है जहां रेत की प्रसवधर्मिता और उसमें निहित नन्हीं जान जो जनम सकती है किसी का कर्म गर्भ पाकर को रचा जा सकता है। 'कहानी' में रेत की कोख से रेत के अंकुरित होने की कोई सम्भावना नहीं! असल में यही कल्पना, स्मृति, अनुभव, यथार्थ के रचाव व ट्रीटमेण्ट का विधागत फर्क है।

कहानी और कविता की मूल प्रकृति में एक अंतर यह भी है कि कविता रचनाकार की केन्द्रीयता व स्वायत्तता के लिए ज्यादा स्पेस रखती है जबकि कहानी पाठक के लिए। दूसरे शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि कविता अपने विधागत सांचे में कहानी की तुलना में कम पाठक केन्द्रित है तो कहानी 'नाटक' की तुलना में। कहानी और कविता के इस विधागत सम्बंध पर राजेन्द्र यादव ने बड़ी सटीक टिप्पणी की है "अनुभूति के साथ उसका परिवेश और अभिव्यक्ति के साथ उसका पाठक कहानी कला के तीन आयाम हैं; क्योंकि वह आत्मसम्बोधन नहीं, दूसरों के लिए सम्बोधन है। ...यहां समस्या यह होती है कि अनुभूति और परिवेश दोनों को किन सार्थक चुने हुए बिम्बों, घटनाओं और स्थितियों द्वारा जीवित मुहावरे में अनुवादित सम्प्रेषित किया जाये कि पाठक की चेतना का ही अंश बन सके। ...पाठक उस अनुभूति का हिस्सेदार होकर उसे अपनी संवेदना का ही एक अंग बना ले उस जीवन को पुनः रागबोध के स्तर पर जी ले! कहानी के दोनों ओर समाज होता है। वह अधिक मूर्त (कंक्रीट) विधा है। वहां अमूर्त भावों को मूर्त रूप देने की प्रवृत्ति है... कविता की प्रकृति शायद उल्टी है।" (एक दुनिया समानांतर, पृ. 48)

और अब इसी बिन्दु पर कहानी के अपने शास्त्र निर्माण का स्वप्न बुनती हुई आलोचक शम्भु गुप्त की दृष्टि से जुड़ना ठीक रहेगा जिसके केन्द्र में कहानी का कहानीपन, उसकी सृजनशीलता और इन सबका स्रोताधार पाठक है "कहानी की सृजनशीलता की परख का सर्वोपरि आधार है पाठक। पाठक पर पड़ने वाला कहानी का प्रभाव। इस प्रभाव की गहराई और व्यापकता। कहानी एक नितांत पाठकोन्मुख विधा है। किसी जमाने में जब पाठक नहीं थे और छापाखाना नहीं था तो कहानी के श्रोता हुआ करते थे। एक कथा कहने वाला और एक या बहुत सारे उसे सुनने वाले। कहानी सुनने सुनाने की इस क्रिया की अपनी एक विशिष्ट प्रक्रिया होती थी जो कहानी के लिखने और पढ़ने की मौजूदा प्रक्रिया से काफी कुछ भिन्न थी, लेकिन यह एक वास्तविकता है कि एक पाठक के रूप में आज भी हमारी यह आकांक्षा रहती है कि कहानी पढ़ते हुए ऐसा लगे जैसे कहानी पढ़ी नहीं, सुनी और देखी जा रही है और लेखक कहानी लिख नहीं, कह और सुना रहा है।" (शम्भु गुप्त 'कहानी : वस्तु और अंतर्वस्तु', पृ. 14)

नामवर सिंह जी ने भी अपनी पुस्तक 'कहानी : नयी कहानी' में कहानी की सृजनशीलता को 'जीवन की छोटी से छोटी घटना में भी अर्थ खोज लेने या उसे अर्थ प्रदान कर देने' की दृष्टि से व्याख्यायित किया था। उन्होंने कहानी के 'कहानीपन' (कविता में 'लय' की तरह) और कहानी के कहे जाने यानी कि 'पाठक केन्द्रीयता' को 'मनुष्य की काफी पुरानी कलात्मक वृत्ति' तथा 'अपने आप में एक सांस्कृतिक कार्य' के रूप में पहचाना था। कहानी विधा के विधागत स्वरूप के भीतर से कहानी समीक्षा का शास्त्र गढ़ने व कसौटियां ले आने का यह काम शम्भु गुप्त की दृष्टि की विश्वस्नीयता का साक्ष्य है।

यद्यपि पुस्तक का शीर्षक 'कहानी : वस्तु और अंतर्वस्तु' कहानी के फार्म, टैकनीक व ट्रीटमेण्ट से अलहदा 'कन्टेण्ट बेस्ड' है। लेकिन ध्यातव्य है कि कहानी का विधागत फार्म उसे 'कहानी'

चाहे जितना बना दे लेकिन उसके 'कहानीपन' और पाठक पर उसके असर का मूल मीटर उस फार्म में ढल कर आये विचार, वस्तु या फिर अंतर्वस्तु पर ही निर्भर करता है। असल में वस्तु और अंतर्वस्तु के फर्क की समझ शम्भु गुप्त को फार्म और कन्टेण्ट के संपृक्त स्वरूप के भीतर से कहानी के प्रतिमान निर्मित करने की दृष्टि देती है। दरअसल, कृति की अंतर्वस्तु उसका कथ्य (वस्तु) नहीं होता, बल्कि वे मूल्य होते हैं जिन्हें कृति रचना की पूरी प्रक्रिया में अर्जित करती है। यही कारण है कि शम्भु गुप्त हिन्दी कहानी में इतिवृत्त और स्मृति के और सार्थक व सघन होते रचाव को कहानी की प्रतिरोधी क्षमता के रूप में रेखांकित कर सके हैं और कहानी में घटनात्मकता और मूर्तता को एक कसौटी के रूप में विकसित कर पाये हैं।

घटनात्मकता को कसौटी बनाते हुए शम्भु गुप्त ने सृज्य की कहानी 'कामरेड का कोट' की वृहद् समीक्षा की है। उन्होंने प्रश्न उठाया है कि *“निश्चय ही पार्टी मीटिंग के रूप में यहां इस कहानी में कोई विशेष घटना नहीं घटती। सिर्फ एक लम्बी बहस होती है। लेकिन देखने की बात यह है कि आखिर वह क्या वजह है कि इतनी लम्बी लगभग एक अमूर्त सी वैचारिक बहस के बाद भी, कहानी का अधिकांश हिस्सा एक पाठक के रूप में हमें कतई उबाता नहीं। ...बल्कि हम निरंतर गहरे से गहरा धंसते और एक तरह से इसका सजीव हिस्सा बनते चलते हैं; तो इसकी आखिर क्या वजह है?”* सृज्य की इस कहानी को जनचेतना और जन प्रतिरोध के एक बड़े लक्ष्य और कार्यक्रम के तहत लिखी गयी धरती से जुड़े सचमुच संघर्षरत लोगों की, सिद्धांत और यथार्थ के मारक द्वंद्व की कहानी के रूप में विश्लेषित किया गया है।

'कहानी में विचार वाया घटना' उपशीर्षक के अंतर्गत शम्भु गुप्त ने जीवन और कला में संसक्त विचार, कल्पना, यथार्थ और रचना में उसके उतरने की प्रक्रिया पर गहन विमर्श किया है। जीवन में, दरअसल, विचारशून्यता या विचारनिरपेक्षता की कल्पना नहीं की जा सकती। जहां यथार्थ होगा वहां विचार भी होगा। इसी तरह कला और कहानी में भी विचार अनिवार्यतः आयेगा यह शम्भु गुप्त की दृढ़ धारणा है और जो सही भी है। सवाल यह है कि वह कला या कि कहानी में आता कैसे है? शम्भु गुप्त का साफ मानना है कि कहानी में विचार सीधे सीधे कथित या उद्धृत नहीं होना चाहिए वरन् कहानी की रचना प्रक्रिया व प्रविधि में रचनात्मक रूप से अंतर्भुक्त व आत्मसात होता हुआ सम्प्रेषित होना चाहिए; जैसे सृज्य की कहानी 'बैल बधिया', जहां बिना किसी विचारधारा अथवा वाद का नाम लिए सृज्य ने अपने रचनात्मक ध्येय से मुरली बहू की प्रतिरोधी चेतना व वर्गदृष्टि को उभार दिया है। शम्भु गुप्त ने अपनी इसी कसौटी पर दलित लेखन को निशाने पर लेते हुए ऊपर से चस्पा की गयी वैचारिकता को नकारा है।

कल्पना और अनुभव अर्थात् गैरदलित और दलित लेखकों की रचनात्मकता के प्रश्न पर बड़ी गहराई से भिड़ते हुए शम्भु गुप्त ने शरण कुमार लिम्बाले के 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' में स्थापित तमाम मानदंडों की सम्यक जांच की है। वे 'कल्पना' को दलित आलोचकों की तरह महज सवर्ण, ब्राह्मणवादी, आनंदवादी या कि पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र का हिस्सा नहीं मानते हैं बल्कि उसकी पहचान रचना की रचना प्रक्रिया में अंतर्निहित वैचारिकता के रूप में करते हैं और अनुभव के साथ कल्पना के संयोग को रचना में अनिवार्य मानते हैं। 'कल्पना के अभाव में अनुभव के 'अनुभववाद' में ढलने का खतरा बराबर बना रहता है' जैसी बेबाक स्थापनाओं से शम्भु गुप्त ने लिम्बाले के इस प्रश्न का संतुलित उत्तर दिया है *“मृत जानवर खींचना और फाड़ना दलितों के इस अनुभव को कल्पना शक्ति के बल पर दलितेतर कैसे लिखेंगे? अस्पृश्यों के मन में उठते क्षुब्ध विचारों को निरुपाय कल्पना के बल पर कैसे महसूस करेंगे?”* (दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र : लिम्बाले) दलित विमर्श को संतुलित

करने के क्रम में डॉ. गुप्त ने दलित चेतना और सर्वहारा चेतना या कि आम्बेदकरवादी विचार और साम्यवादी विचार के मिलने को क्रांतिकारी अग्रगामी अंतर्दृष्टि क रूप में स्वीकारा है।

समीक्ष्य पुस्तक में धर्म के सार्वजनिक स्वरूप को साम्प्रदायिकता के स्रोत के रूप में पहचानते हुए एम. अखलाक, हरियश राय, विभूति नारायण राय आदि विचारकों के शोध व चिन्तन के साक्ष्य पर यह स्थापना दी गयी है कि *“बहुसंख्यकों का सम्प्रदायवाद अल्पसंख्यकों के सम्प्रदायवाद से कहीं ज्यादा खतरनाक है।”* (पृ. 95)

साम्प्रदायिकता के इस पूरे सैद्धांतिक विवेचन की पृष्ठभूमि में लेखक ने प्रियवंद के उपन्यास ‘वे वहां कैद हैं’ (जिसे शम्भु गुप्त लम्बी कहानी मानते हैं) के माध्यम से फासिस्ट ताकतों तथा उनके कार्यकर्ताओं के पूरे तंत्र को बेनकाब किया है। हिन्दी कहानी के सम्बंध में यह चिन्ता व्यक्त की है *“सम्भवतः अभी तक हिन्दी में ऐसी कोई कहानी नहीं लिखी गयी जिसमें किसी साम्प्रदायिकता की ओर झुकते या कि निराश, हताश, कुठित, किंकर्तव्यविमूढ़ युवकों की जेहन में साम्प्रदायिकता कैसे जगह बनाती है, इसकी प्रक्रिया का ठोस रचनान्वेषण किया गया हो!”*

शम्भु गुप्त ने ‘कहानी में मूल्य’, ‘कहानी में आवेग’, ‘कहानी का खुला अंत’, ‘घटना की नैतिकता और सार्थकता’ एवं ‘कहानी में साधारण’ जैसे कैनन्स के भीतर क्रमशः शिवमूर्ति, उदय प्रकाश, अरुण प्रकाश, रमाकांत श्रीवास्तव एवं स्वयं प्रकाश को रख कर उनकी कहानियों के साक्ष्य पर विचारोत्तेजक बहसों की हैं जो आगे भी बहस की ढेरों गुंजाइशें छोड़ गयी हैं।

समीक्ष्य आलोचना कृति अपनी तटस्थता और मित्र शत्रुवादी रवैये से ऊपर उठने के तमाम दावों के बावजूद ऐसा कर पाने में कितना सफल हो पायी है इसका निर्णय उन तमाम विज्ञ पाठकों पर छोड़ा जा रहा है जिन्होंने शम्भु गुप्त की इस पुस्तक में आलोच्य कथाकारों को स्वयं भी मूल रूप में पढ़ा है!

और रही बात कविता के शास्त्र से इतर कहानी के अपने आलोचनाशास्त्र के निर्माण की कोशिश की, तो शम्भु गुप्त द्वारा आविष्कृत कसौटियां अपनी प्रामाणिकता और प्रतिमान में ठीक होने के बावजूद एकदम नयी हों ऐसा नहीं है। डॉ. नामवर सिंह, राजेन्द्र यादव, इंद्रनाथ मदान, अमरकांत, कमलेश्वर, अमृतराय, मधुरेश, गोपाल राय तथा विजयमोहन सिंह इत्यादि के कथा चिन्तन में ये सारे घटक किसी न किसी रूप में मौजूद हैं। हालांकि इन सबके बावजूद शम्भु गुप्त का यह प्रयास कथा समीक्षा की परम्परा के पिष्टपेषण के रूप में नहीं परम्परा की एक और कड़ी के रूप में दोहराया गया है इसका विश्वास है और यही विश्वास आलोचना की किसी भी स्वस्थ पद्धति व दृष्टि की बुनियाद होती है!

कहानी : वस्तु और अंतर्वस्तु, शम्भु गुप्त, **प्रकाशक** : राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, **मूल्य** : 350 रु.

यथार्थबोध, आधुनिक चेतना एवं भविष्यदृष्टि

राजीव कुमार

पिछले एक दशक से हिन्दी कहानी के परिदृश्य पर जिस युवा पीढ़ी ने निरंतर सार्थक हस्तक्षेप किया है, **मनोज कुमार पांडेय** उसमें प्रमुख हैं। युवा हिन्दी कहानी में मनोज की उपस्थिति को इसलिए भी रेखांकित किया जाना जरूरी है कि यद्यपि उन्होंने 'शहतूत', 'पत्नी का चेहरा', 'सोने का सुअर', 'लकड़ी का सांप' जैसी प्रारम्भिक कहानियों से अपनी सम्भावना के साक्ष्य प्रस्तुत किये, पर मीडिया की भाषा में जिसे धमाकेदार इंट्री कहते हैं, वैसा मनोज के साथ नहीं हुआ; बल्कि हर कहानी के साथ मनोज ने स्थिति को और ज्यादा पुख्ता किया। उनकी परवर्ती कहानियां समीक्ष्य संग्रह **पानी** में संकलित है यह संग्रह पहले संग्रह का एक्सटेंशन न होकर आगे का विकास है। यहां यह भी संज्ञान लिया जाना चाहिए कि मनोज ने अपनी कथाभाषा का न तो कोई 'स्पेशल क्राफ्ट' तैयार किया और न ही किसी बड़े लेखक के 'डिक्शन' अथवा 'रेटोरिक' की नकल की। उन्होंने फड़कते हुए वाक्य विन्यास से परहेज करते हुए कलात्मक आत्मनियंत्रण के साथ कहानियां लिखीं। लेकिन इस कलात्मक आत्मनियंत्रण का अभिप्राय सपाटता कभी नहीं रहा। भाषा में सहजता, रवानगी, लाक्षणिकता एवं व्यंजकता वहां देखी जा सकती है "यह हमारे लिए अविश्वसनीय था... हम इस पर भरोसा नहीं कर पाते। हम इस बात को कुओं का मजाक मानते और अगले दिन फिर से उनके पास जाते। इस तरह कई कई दिन में जाकर हमें यह समझ में आता कि कुएं हमसे मजाक नहीं कर रहे हैं। वह सच में हमारी प्यास नहीं बुझा सकते। वे खुद ही प्यास से तड़प रहे हैं।" (पृ. 121-122)

भाषा की सहजता के साथ ही मनोज के विषय चयन में एक खास किस्म की विशिष्टता रही है। विषय को लेकर युवा पीढ़ी पर अतिरंजित नवाचार का आरोप है (हालांकि यह अलग से जिरह का विषय है), मनोज इससे मुक्त हैं। मनोज ने अपनी कहानियों में जिन विषयों को उठाया है, वे हमारे परिचित संदर्भ रहे हैं, जिन्हें संग्रह की 'जींस' (पुरुष सत्ता द्वारा स्त्री का दमनचक्र), 'और हंसो

लड़की' (जातिगत दर्प एवं रंजिश का शिकार होने को अभिशप्त प्रेम), 'हंसी' (सत्ता की क्रूरता), 'बूढ़ा जो शायद कभी था ही नहीं' (साम्प्रदायिकता) आदि कहानियों में देखा जा सकता है। इन परिचित संदर्भों की बारम्बारता विडम्बनात्मक रूप से इतनी ज्यादा रही है कि कदाचित् ये समाज की औसत प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार लिए गये हैं। मनोज इसे नहीं स्वीकारते। प्रश्न चाहे सनातन हो अथवा चुनौती नवीन हो ('पानी'), चीजें अगर मानवीयता के प्रतिकूल हैं, मनोज उससे जूझते हैं, उसकी विद्रूपताओं को उद्घाटित करते हैं। समाज के समक्ष मौजूद ये चुनौतियां, दरपेश ये प्रश्न भले ही स्थायी से हो गये हों, पर उनमें नित्य नयी जटिलताएं जुड़ती चली जा रही हैं। स्थितियों के तानेबाने का समीकरण बदल रहा है। क्रूरता बढ़ती जा रही है तो प्रतिरोध भी अराजक और हिंस्र हो गया है। 'और हंसो लड़की' में जिस ठंडे शांतिरपने से कुलीबाज सिंह हत्या को अंजाम देता है वह कंपा देने वाला है तो 'पानी' में आशाराम एवं उसके समूह का प्रतिकार भी उतना ही तीक्ष्ण है। अपनी कहानियों में मनोज ने सहज अभिव्यक्ति एवं परिचित संदर्भ के दायरे में या तो विषय के आयाम को बदल दिया है, जैसा कि 'पानी' में जहां लोलुपता पूंजीवादी है, शोषक वर्चस्वशाली है पर संकट इतना व्यापक हो गया है जैसा पहले कभी नहीं था; या फिर विषय की आंतरिक परतों का उखनन किया है जैसा कि 'जींस' में। मनोज में विषय की सूक्ष्मता पर गहरी पकड़ है, जिसे वे व्यौरों से सहज सम्प्रेष्य बना देते हैं। यहां भी वे 'इनफॉर्मेशन फ्लडिंग' से बचते हैं। 'पानी' शीर्षक कहानी में पर्यावरण सम्बंधी कोई रिपोर्टिंग नहीं है, संस्थाओं सम्मेलनों का हवाला नहीं है, इनके उलट उस लोकल में बदलते घटनाचक्र के साथ आदमी के व्यवहार एवं सम्बंधों में आने वाले परिवर्तन, उनकी बेबसी निरीहता, उनके प्रतिक्रियात्मक प्रतिरोध पर ज्यादा फोकस किया गया है। यही स्थिति 'हंसी' में सत्ता की क्रूरता पर किये गये कटाक्षों एवं 'बूढ़ा जो शायद कभी था ही नहीं' में साम्प्रदायिकता की प्रक्रिया के विश्लेषण में दिखायी देती है।

समय के साथ निरंतर बढ़ती जटिलता के कारण कोई भी घटना एक आयामी नहीं रह गयी है। एक कहानीकार का दायित्व घटना को सूचना के रूप दर्ज करना नहीं होता, वरन् उसका कार्य सूचना की आंतरिक तहों में चल रहे खेल को प्रकट करने का होता है। इन तहों के स्तर उपस्तर बढ़ने के कारण आज की कहानी का औसत आकार बढ़ गया है। पानी संग्रह की छः कहानियों में चार कहानियां आज के संरचनात्मक रुझान के अनुरूप ही हैं। 'बूढ़ा जो शायद कभी था ही नहीं' एवं 'हंसी' छोटे कलेवर की कहानी है। लेकिन अपनी संक्षिप्त काया के बावजूद ये कहानियां संश्लिष्ट एवं प्रभावकारी हैं। आत्मालाप की शैली में लिखी गयी 'हंसी' सरोकारविहीन सत्ता व्यवस्था की कारगुजारियों पर कटाक्ष करती है। इसके अनुसार सत्ता एक ओर जनता को झूठे भुलावे में रखती है तो दूसरी ओर हर सम्भव तरीके से प्रतिरोध को मिटाती है, हथियार एवं सैनिक बल पर दहशत पैदा करती है। जनता की जासूसी करती है। शक के दायरे में आते ही दमनचक्र चलाना शुरू कर देती है “...मैं पकड़ लिया गया। सल्लनत के कारिन्दे मुझे अपने अधिकारी के पास ले गये। अधिकारी बहुत दयावान दिखने की कोशिश कर रहा था पर मैं उसके झांसे में नहीं आया। उसने मुझसे पूछा... क्या बात है बेटा. .. तुम रो क्यों रहे थे? मैंने कहा मैं रो नहीं रहा था... मैं तो हंस रहा था। तो क्या हमारे कारिन्दे झूठ कहते हैं, वो मुस्कराया। ऐसी मुस्कान कि मेरी रीढ़ तक कांप गयी। मैंने कहा नहीं हजूर मैं तो हंस रहा था... मैं तो जोर जोर से हंस रहा था... आप कहें तो मैं दोबारा हंस कर दिखा सकता हूं। ...तो फिर दरिया में खरापन कहां से आया, अधिकारी जी ने पूछा।” (पृ. 94)

'हंसी' एक ओर सत्ता के फरेब एवं आतंक के हर आयाम को उद्घाटित करती है वहीं यह कहानी यह भी दिखलाती है कि अपनी तमाम प्रतिबंधकारी शक्तियों एवं आक्रामकता के बावजूद सत्ता स्वयं डरी हुई है और जनता के उपहास का पात्र है।

‘बूढ़ा जो शायद कभी था ही नहीं’ उस प्रक्रिया में जाती है जिससे साम्प्रदायिक पृथक्कीकरण होता है। कहानी में हम पाते हैं कि जिन प्रतीकों के इर्दगिर्द ध्रुवीकरण होता है, रंजिश के बीज बोये जाते हैं, उन्माद फैलाया जाता है, घात प्रतिघात होते हैं, लड़ाइयां लड़ी जाती हैं, साम्प्रदायिकता में संलग्न शक्तियों को उन प्रतीकों की विशिष्टता एवं गरिमा से कोई वास्ता नहीं होता है। कहानी में किस्सागो बूढ़े का तरह तरह से रहस्यीकरण अलौकिकीकरण किया जाता है। इस प्रक्रिया में शामिल हर समूह बूढ़े से अपने मत की पुष्टि करवाना चाहते हैं। बूढ़े के इनकार पर परस्पर विरोधी समूह एकजुट होकर उसकी हत्या कर देते हैं। बूढ़े को खत्म कर देने के बाद रहस्यीकरण अलौकिकीकरण नये सिरे से शुरू होता है। पंथ एवं धड़े का निर्माण होने लगता है। यह कहानी अपने छोटे कलेवर के बावजूद विभाजक शक्तियों की कार्यप्रणाली को बखूबी दर्शाती है। ऐसी शक्तियां पहले उन मूल्यों की हत्या करती हैं जिनका वे झंडाबरदार बनती हैं। फिर वे मिथक गढ़ती हैं और रहस्य बुनती हैं। इन सबके बीच वास्तविक संदेश गुम हो जाता है। मानवीयता की हत्या होती है। सामाजिक सद्भाव टूटता है।

‘हंसी’ और ‘बूढ़ा जो शायद कभी था ही नहीं’ ये दोनों कहानियां शिल्प के स्तर पर संग्रह की अन्य कहानियों से भिन्न हैं। यहां मुद्दों के प्रति कहानीकार का दृष्टिकोण केन्द्र में (प्राथमिक) है, घटनाएं मन्तव्य की पुष्टि के लिए हैं। कार्य व्यापार सहयोगी है। संग्रह की अन्य कहानियों में कथा का ढांचा कार्य व्यापार आधारित एवं अन्वितपरक है। ‘हंसी’ और ‘बूढ़ा जो शायद कभी था ही नहीं’ में संदेश ‘लाउड’ है, जबकि अन्य कहानियों में संदेश कार्य व्यापार के रूप में संवलित है और संवेदनात्मक स्तर पर पाठक से तारतम्य बनाता है। इन कहानियों में ‘पुरोहित जिसने मछलियां पालीं’ एवं ‘पानी’ को विशेष रूप से रेखांकित किया जाना चाहिए। इन दोनों कहानियों में क्रमशः हमारे सामाजिक ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में मौजूद गतिरोध के सनातन बीज (‘पुरोहित जिसने मछलियां पालीं’) एवं मानवता के समक्ष वर्तमान में मौजूद एवं भविष्य में क्रमशः घनीभूत होने की आहट देने वाले संकट की ओर संकेत है। इन कहानियों के माध्यम से मनोज एक ऐसे कहानीकार के रूप में सामने आते हैं जो सत्ता की क्रूरता, पूंजीवादी प्रणाली एवं सामाजिक विडम्बनाओं पर रोष ही नहीं प्रकट करता बल्कि उसके असंतोष में एक स्पष्ट विजन है। विद्रूपताओं के मूल को उद्घाटित करने के साथ ही लोलुपता के प्रसार की सीमा की ओर संकेत भी है, जहां से आगे बढ़ने पर खतरा समस्त मानवीय अस्तित्व के लिए है। इस बिन्दु पर सत्ता, शक्ति, धन हर किस्म की सामर्थ्य बेमानी हो जाने वाली है।

‘पुरोहित जिसने मछलियां पालीं’ कर्मकांडी हिन्दू समाज की पतनगाथा है। हमारे समाज का बड़ा हिस्सा आज भी मध्यकालीन जड़ता एवं मूल्यों के साथ जी रहा है। जहां आज भी प्रेम, वैज्ञानिक चेतना तर्कपद्धति एवं भविष्यदृष्टि का अभाव है। जाति एवं धर्म की बंदिशें हैं एवं आधारहीन आस्था है। समाजोन्मुख नैतिकता की सेन्सरशिप रही भी होगी तो वह विदा ले चुकी है। कर्मकांड करने कराने दोनों के पीछे विशुद्ध सांसारिक लाभ लोभ है। कहानी इन्हीं स्थितियों को सामने लाते हुए दर्शाती है कि आधुनिकता की चेतना के अभाव में जिन्दगी की परिणति कितनी विडम्बनात्मक होती है। कहानी का केन्द्रीय पात्र रामदत्त त्रिपाठी प्रशिक्षित पेशेवर पंडित हैं। कैरियर के प्रारम्भ में पेशागत सम्मान एवं आर्थिक समृद्धि अरजते हैं, लेकिन फरेब के आभामंडल को एक धक्का लगता है तो जिन्दगी विडम्बनाओं की शृंखला बन जाती है और अंततः आत्महत्या को मजबूर होते हैं। इस कहानी में मनोज ने बड़ी बारीकी से कर्मकांडी शिक्षा एवं जीवनपद्धति की अतीतजीविता एवं खोखलेपन को उधाड़ा है। इस जीवन पद्धति में मिथ्याभिमान, अप्राकृतिक वर्जना एवं तर्कपूर्ण सोच का जो अभाव है उसकी त्रासद छाया ताउम्र मौजूद रहती है। संस्कार शिक्षा के स्कूल में एक ओर ईश्वर के नाम पर ठगी के लिए प्रशिक्षित किया जाता है, तो वहीं झूठी श्रेष्ठता एवं दम्भ का बीज बोया जाता है “...कि दुनिया

ब्राह्मणों के ही इर्दगिर्द घूमती है। या नहीं घूमती तो घूमनी चाहिए, कि सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करने के साथ साथ ब्राह्मणों की भी परिक्रमा करते हैं। ...पहले ब्राह्मणों की धोतियां आकाश में सूखती थीं। वे नहा कर धोतियां ऊपर उछाल देते और धोतियां सूखने के बाद तह होकर नीचे आ जातीं।” (पृ. 70) इस तरह की आधारहीन, अवैज्ञानिक बातें बच्चों के मन में शुरू से ही डाल कर उनकी कंडीशनिंग की जाती है। इसका दुष्परिणाम ताउम्र झेलना पड़ता है। वे मिथ्या श्रेष्ठभाव के दुष्क्र से मुक्त नहीं हो पाते और जीवन की सहजता छिन जाती है। ऐसे ही मिथ्याभिमान में रामदत्त मैना के प्रेम को ठुकरा कर जाति दम्भ के खेल में लौट आते हैं “रामदत्त को अपने भविष्य का जीवन दिखा। मिलने वाला सम्मान और प्रतिष्ठा दिखी और अपने भीतर के सदियों पुराने श्रेष्ठता के खयाल दिखे। उन्हें मैना पुराणों की उन अप्सराओं की तरह लगी जो ऋषियों को पतित करने की ताक में ही बनी रहती थीं।” (पृ. 72)

रामदत्त अपनी जाति की खोल में लौट तो आते हैं, पर अवचेतन में मुक्त नहीं हो पाते। प्रेम के नवजात पौधे को पल्लवित नहीं होने देते और वह ठूँठ बन कर उनके अंदर मौजूद रहता है और पूरे जीवन को ट्रैजिक छाया से भर देता है। दूसरी अप्राकृतिक जीवन पद्धति की विद्रूपताएं छात्रों पर कहर बन कर टूटती हैं। अविवाहित आचार्य बच्चों का यौनशोषण करते हैं। इस प्रकार ईश्वर एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए तैयार किये गये मीडिएटर कुठित अतीतोन्मुख जीवनदृष्टि के साथ जीवन में प्रवेश करते हैं।

रामदत्त कर्मकांडी प्रपंच के द्वारा धन तो प्राप्त कर लेते हैं, लेकिन आधुनिक चेतना के अभाव के कारण राह भटकते बेटों को सही राह पर लाने का प्रयास नहीं करते। दूसरी ओर पत्नी पार्वती के साथ दाम्पत्य सम्बंध सहज नहीं रह पाता। अवचेतन में मौजूद मैना बार बार प्रकट होती है, जिसे रामदत्त भांप नहीं पाते। वे अनुष्ठानों में वेदी पर मछली एवं जीभ बनाते हैं। पर पार्वती भांप जाती है। चेतन अवचेतन की जटिल मानसिक स्थिति एवं पार्वती के संशय को दिखलाने के लिए मनोज ने कहानी में मैटाफिजिकल टूल का इस्तेमाल किया है। पार्वती को रामदत्त के शरीर से मछली की गंध आती है। यह गंध कहीं न कहीं अविश्वास की गंध है। बाद में जब रामदत्त के बेटे चम्पक से अप्राकृतिक यौन सम्बंध बनाते हैं इसकी खबर पार्वती तक पहुंचती है, वह इसे अपने पति के पाप का परिणाम मानती है। रामदत्त पर उसकी घृणा, क्रोध फूट पड़ता है। दाम्पत्य में दरार पड़ जाती है। गंध की अफवाह समाज में फैलती है और रामदत्त कर्मकांडी व्यवसाय के अयोग्य ठहरा दिये जाते हैं। कुछ विवशता, कुछ संयोग से ऐसी स्थिति बनती है कि रामदत्त मछली पालन का कार्य करने लगते हैं। दरअसल यहां कहानीकार ने कर्मकांडी मध्यकालीन चेतना पर आधुनिक चेतना के विजय को दर्शाया है। इतिहास प्रक्रिया में आधुनिकता की गति रोकी नहीं जा सकती। दूसरी ओर कहानी से यह बात भी निकलती है कि मध्यकालीन भावबोध कितना संहारक होता है। रामदत्त बेटों की बचपन की शैतानियों से खल सुख पाते हैं, लेकिन वे बेटे आगे जब लुटेरा बलात्कारी निकलते हैं, उनकी हत्या होती है; आहत, कुठित, समाज बहिष्कृत, पत्नी लांक्षित रामदत्त पत्नी सहित आत्महत्या करने पर विवश होते हैं।

‘पुरोहित जिसने मछलियां पालीं’ में मनोज अतीतजीवी मध्यकालीन जीवनदृष्टि के स्थान पर आधुनिकता को प्रतिष्ठित करते हैं, वहीं ‘पानी’ में भविष्यदृष्टि के साथ सामने आते हैं। पूंजीवाद ने एक ओर आधुनिकता के प्रोजेक्ट को आगे बढ़ाया, वहीं दूसरी ओर उसने सुविधाभोगी, लोलुप, मशीनी तथा शोषण एवं विषमता से भरे समाज को जन्म दिया। इस व्यवस्था में पूंजी, सत्ता एवं शक्ति का नये सिरे से गठबंधन हुआ। इस गठबंधन से बाहर के लोगों के लिए जीवन निरंतर कठिन से कठिनतर

होता गया, वहीं इसके अंदर के लोगों ने अपनी लोलुपता को लिए सारी हदें तोड़ दीं। शोषण एवं दोहन का अबाध सिलसिला शुरू कर दिया। उत्तरोत्तर यह प्रवृत्ति इतनी अराजक होती गयी कि मानवीय अस्तित्व के लिए संकट पैदा हो गया। 'पानी' इसी की प्रतिध्वनि है। यह कहानी बताती है कि प्राकृतिक संतुलन में अनावश्यक विशोभ उत्पन्न करने के कितने खतरे हैं।

कहा गया है कि तीसरा विश्वयुद्ध जमीन के टुकड़े के लिए नहीं पानी की बूंदों के लिए होगा। 'पानी' शीर्षक कहानी में हमें इसकी प्रतिध्वनि मिलती है। साथ ही कहानी हमें यह भी संकेत देती है कि मानवीय मेधा से प्राप्त शक्ति तकनीक तभी तक सहयोगी है जब हम उसका प्रयोग प्रकृति के साथ तालमेल बना कर करें। अगर हम इस मर्यादा को भंग करते हैं तो वह सबके लिए विनाशक होगी। प्रकृति पर पूंजीवादी विजय अभियान एक हद तक ही चल सकता है। जब प्रकृति प्रतिकार करती है तो पूंजी, सत्ता, शक्ति एवं मशीन से प्राप्त हर सामर्थ्य चुक जाती है।

'और हंसो लड़की' एवं 'जींस' में क्रमशः प्रेम विरोधी समाज एवं स्त्री प्रताड़ना के प्रश्न को उठाया गया है, जिसका कोई अंत नहीं दिखायी देता। 'जींस' कहानी के शुरुआती पन्नों में दादी एक हिंसक महिला के रूप में सामने आती हैं, लेकिन आगे हम पाते हैं कि पुरुषवादी पारिवारिक सत्ता संरचना में हिंसा एवं वर्चस्व की प्रक्रिया की जो निरंतरता है, दादी उसकी बाई प्रोडक्ट हैं। बचपन में उनकी शादी प्रौढ़ व्यक्ति से कर दी जाती है। वह पहली बार ही जब उनके पास आता है तो रागात्मकता कायम नहीं करता बल्कि हिंसक वर्चस्व स्थापित करता है। बेटी के जन्म के साथ प्रताड़ना बढ़ती जाती है। सात में से पांच बेटियों को गड़ही में डुबा कर मार डाला जाता है। इस प्रकार एक स्त्री की समस्त कोमल संवेदना को दूरेज कर दिया जाता है। इसकी परिणति यह होती है कि वे भीषण रूप से परपीड़क में तब्दील हो जाती हैं। यह कहानी उस प्रक्रिया को सामने लाती है जिसमें पीढ़ी दर पीढ़ी स्त्री प्रताड़ना का दुष्क्र हस्तांतरित होता रहता है। ऐसी प्रक्रिया जिसमें कई बार स्त्री ही स्त्री के विरोध में खड़ी दिखायी देती है, लेकिन पूरी प्रक्रिया की तह में जाने पर पाते हैं कि यह तो पुरुष सत्ता की कंडीशनिंग है।

हमारे समाज की विडम्बनाओं की शृंखला में एक विडम्बना यह भी है कि सभ्यता के तमाम तथाकथित विकास के बावजूद प्रेमविरुद्ध समाज आज बर्बर बना हुआ है। जातिगत अहं एवं टकराव हर सम्भव तरीके से उसके मार्ग को अवरोद्ध करते हैं। 'और हंसो लड़की' कहानी में लड़की अपने मामा के यहां रह रही है। बड़े मामा की दुलारी भी है। लेकिन जब उसके प्रेम की बात मामा तक पहुंचती है तो वह अपने ठाकुर होने की घोषणा करते हुए उसे अपने घर लौट जाने का फरमान सुना देते हैं। दूसरी ओर इस परिवार से रंजित रखने वालों के लिए यह ठाकुरों की इज्जत उछालने का सुनहरा मौका है। इसका वे प्रयास भी करते हैं। इन बातों का पता जब वर्तमान लम्पट एवं भविष्य के बाहुबली लड़की के छोटे मामा कुलीबाज सिंह को पता चलता है तो वह जाल बिछा कर लड़का लड़की तथा इज्जत उछालने का प्रयास करने वाले प्रतिरोधी गुट के शैतान पंडित तीनों की हत्या कर देता है। कहानी जाति दर्प में चूर प्रेम विरोधी समाज की तस्वीर पेश करती है।

यह कहानी संग्रह मनोज के कथा व्यक्तित्व की नयी ऊंचाई को सामने लाता है। एक ऐसा कहानीकार जो सहज सम्प्रेष्य भी है तथा जिसमें वर्तमान के यथार्थ की पकड़ के साथ एक भविष्यदृष्टि भी है।

पानी : मनोज कुमार पांडेय, **प्रकाशक** : भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, **मूल्य** : 180 रु.

असुरक्षित भविष्य का खौफ और तनाव

बसंत त्रिपाठी

राकेश मिश्र युवा कहानीकारों की पीढ़ी में एक जागरूक और जिम्मेदार कथाकार हैं। कहानी की युवा पीढ़ी में आक्रामकता, बहस मुबाहिसा, गुटबाजी, स्वीकार और अस्वीकार के निजी मानदंड उसका एक पक्ष है, और दूसरा पक्ष है रचनात्मक कौशल। रचनात्मक कौशल से तात्पर्य यहां केवल भाषायी प्रयोग नहीं है, कथ्य की तलाश और उसे रख पाने का सामर्थ्य भी है। रचनात्मक कौशल की दृष्टि से राकेश अत्यंत सफल और समृद्ध युवा कथाकार हैं। इसका आभास उनके दोनों कहानी संग्रहों से गुजरते हुए होता है।

लालबहादुर का इंजन राकेश मिश्र का दूसरा कहानी संग्रह है। इन कहानियों को पढ़ते हुए डर लगता है। ऐसा डर जैसे कि आप रस्सी के पुल पर से पार जाने की जोरआजमाइश कर रहे हों और अचानक आपने देख लिया कि सामने कोई रस्सी को लगातार काट रहा है। आप पार पहले लगेंगे या रस्सी पहले कट जायेगी? नीचे अतल घाटी, अंधेरे में डूबी हुई; यही राकेश की कहानियों का केन्द्रीय स्वर है। सबसे ज्यादा डर लगता है कहानी 'स्थगन के शिल्प में' पढ़ने के बाद। राकेश की इस कहानी में नाउम्मीदी ही नाउम्मीदी है। मेरी नजर में, इस कहानी को संग्रह की भूमिका के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। इसमें राकेश लिखते हैं "हम अपने आसपास की बदलती और लगातार अविश्वसनीय होती जा रही स्थितियों से तालमेल बिठा पाने में अक्षम होते जा रहे थे। हमने अस्सी के नागरिकता वाले आईडेंटिटी कार्ड को छुपा कर रख लिया था। जमाना अब हमारे 'उस' पर नहीं था, बल्कि सिर पर सवार हो गया था। नीचे हमने अपने लिए कोई जमीन नहीं रख छोड़ी थी और ऊपर देखने से जमाने की रफ्तार दिखती थी। उस रफ्तार से हम अपने पैरों को तौलते थे और बिना एक कदम चले हांफने लगते थे। हमारा सिर घूमने लगा था। (पृ. 47-48) गोरख पांडेय याद आते हैं जितनी जल्दी हो सके इस दुनिया को बदल देना चाहिए। लेकिन बदलेगा कैसे और कौन लोग

बदलेंगे? जो लोग हिरावल दस्ते के थे और जुझारू थे, वे अब उपेक्षित हैं, लाचार हैं, घिसटते हुए जी रहे हैं, मरते जा रहे हैं या मार दिये जा रहे हैं।

संग्रह में केवल दो कहानियां ऐसी हैं जिन्हें पढ़ कर डर नहीं लगता 'आम्बेदकर हास्टल' और 'लगभग हमउम्र'। 'लगभग हमउम्र' कैशोर्य जीवन के स्वाभाविक आवेग की कहानी है। विवरण और बुनावट की नवीनता के अलावा, राकेश जिस तरह के कथाकार हैं, उसकी कोई छाप यहां दिखायी नहीं पड़ती। 'आम्बेदकर हास्टल' में भी भारतीय समाज, विशेषकर हिन्दी क्षेत्र, में जाति और विरादरी का संघर्ष पिघलता हुआ दिखायी पड़ता है। अपनी तमाम सदाशयता के बावजूद यह कहानी गढ़ी हुई और नाटकीय लगती है। फिर भी, दोनों ही कहानियां रुचिकर हैं और पढ़ने में कहीं भी नीरस या अप्रिय नहीं जान पड़तीं। लेकिन इस संग्रह में जो कहानियां दिमाग में खलल डालती हैं, वे हैं 'शोक', 'परिवार (राज्य) और निजी सम्पत्ति', 'लालबहादुर का इंजन' और 'बुरा है शैतान'। यहां आप यह जान लें कि इस संग्रह में कुल सात कहानियां ही हैं। छः कहानियां हिन्दी क्षेत्र विशेषकर बनारस और उसके इर्दगिर्द घटित होती हैं। केवल एक कहानी 'शोक' का लोकेल भुसावल (महाराष्ट्र) है। यह तो हुआ संग्रह का एक हवाई सर्वेक्षण। इन कहानियों को पढ़ते हुए हमेशा इसका एहसास होता है कि हम एक घटना को नहीं एक समय को पढ़ रहे हैं। एक ऐसा समय, जो कई तरह की चालाकियों, मक्कारियों, अस्मिताओं के संघर्षों, स्मृतियों और विस्मृतियों के बीच झूल रहा है।

राकेश मिश्र अपनी कहानियों में जिस समस्या को उठाते हैं वह कहानी में कहीं भी पिघलती हुआ नहीं दिखायी पड़ती बल्कि अनवरत् गहराती और सघन होती जाती है। उनकी 'कहानियों के केन्द्र में' 90 के बाद का वह युवा वर्ग है जो भविष्य के प्रति कई तरह के संशयों और आशंकाओं से घिरा हुआ है। अध्ययन और आजीविका के बीच किसी संतुलन को पा लेने की कोशिश करता हुआ यह युवा एक ऐसे अंधड़ में फंसा हुआ है जिससे बाहर निकलने का कोई विकल्प उसके पास नहीं है। राकेश मिश्र अपनी कहानी में उसी युवा के अंतर्मन की बेचैनियों को कई कई कोणों से पकड़ने की कोशिश करते हैं और सफल भी होते हैं। उनकी कहानी में इसलिए कथा और इतिहास समांतर चलते हैं। कथा के समांतर यदि इतिहास भी अपने वास्तविक नामों के साथ मौजूद हो तो कहानीकार की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। एक तरफ उसे कहानी के स्वाभाविक विकास को बचाये रखने की चुनौती का सामना करना पड़ता है तो दूसरी ओर इतिहास से उसकी संगति भी बिठानी पड़ती है। यह प्रामाणिकता से बिल्कुल भिन्न कोटि की रचनात्मकता है। राकेश अपनी कहानियों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, काशीनाथ सिंह, टी.एन. शेषन, राजेन्द्र यादव और उनकी पत्रिका 'हंस' आदि का जिक्र कर एक तरह से परिवेश को रचते हैं और इसी परिवेश के मंच पर उनकी कथा घटित होती है।

हमारे निकट का वर्तमान, जो हाल ही का इतिहास है और लोगों की स्मृतियों में सुरक्षित है, उसको सीधे सीधे कहानी में ले आना आसान नहीं होता। यहां यह पूछा जा सकता है कि कहानी अपने समय के इतिहास की नामहीन प्रस्तुति नहीं है तो और क्या है? हां, यह सही है। कहानी समय की पुनर्प्रस्तुति भी है और कहानीकार का हस्तक्षेप भी। लेकिन यह सब कल्पित पात्रों के साथ वास्तविकता की तरह घटित होता है। बड़े से बड़ा लेखक भी, यदि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की कहानी न लिख रहा हो तो वह हाल के इतिहास के प्रसिद्ध पात्रों के जिक्र से बचता है। लेकिन राकेश मिश्र कल्पित पात्रों के ठीक बगल में वास्तविक नामों को भी रख देते हैं। इससे घटनाएं और भी प्रामाणिक हो उठती हैं। चूंकि ये घटनाएं इतिहास के समानांतर कल्पित घटनाएं हैं इसलिए मैं इन्हें 'रचनात्मक प्रामाणिकता' कहना चाहूंगा। रामचंद्र गुहा याद आते हैं जिन्होंने 'भारत : नेहरू के बाद' की भूमिका में लिखा एक इतिहासकार के लिए और एक पाठक के लिए भी जो कोई वर्तमान के जितना नजदीक

जाता है वह उतना ही एक तरफ सोच से ग्रस्त होने की दिशा में बढ़ता जाता है। यह एक कहानीकार पर भी लागू होता है। लेकिन राकेश ग्रस्त होने की बजाय उससे एक नया ही रिश्ता बनाते हैं।

सोवियत विघटन से एक महास्वप्न के बिखरने और समाजवाद के पराभव की जो परिघटना राकेश मिश्र की कहानियों में उभरती है वह युवा कहानी को परिपक्व बनाती है विशेषकर 'परिवार (राज्य) और निजी सम्पत्ति', 'स्थगन के शिल्प में' और 'लालबहादुर का इंजन' तो जैसे एक ही भू दृश्य को दो भिन्न कोणों से देखा गया है। पात्र भी लगभग वही, अंधेरे में डूबे, भविष्य की ओर नजर गड़ाये और लगातार चूकते हुए। 90 के बाद की कहानियों में समाजवाद का एक उपहासात्मक रूप भी उभरा। खासकर ऐसे पात्रों के माध्यम से, जो थे तो समाजवादी क्रांति के पक्षधर, लेकिन निजी तौर पर स्वार्थी और अवरसरवादी थे। ऐसे लोगों ने समर्पित कार्यकर्ताओं का शोषण ही अधिक किया। राकेश की कहानियों में भी ऊपरी तौर एक कारुणिक हास्य उभरता हुआ दिखायी पड़ता है। लेकिन ध्यान से देखें तो उनकी कहानी में समाजवाद से जुड़े हुए तीन तरह के पात्र हैं। एक, प्रवीण (लालबहादुर का इंजन) या नंदकिशोर पांडे के साथी कामरेड या धीरज पांडे (परिवार (राज्य) और निजी सम्पत्ति) जैसे लोग, जिनके भीतर 'यूज एंड थ्रो' वाली वृत्ति है। दूसरी तरफ लालबहादुर या नंदकिशोर पांडे हैं भावुक, समर्पित और कुछ कुछ बौद्ध। तीसरी तरफ संजीत, मंटू, समीर जैसे लोग हैं जो व्यवहारवादी, परिस्थितियों से घिरे हुए, सब कुछ समझ कर भी कुछ न कर पाने की विवशता के मारे छटपटाते तड़पते लोग। ये पात्र दरअसल वैश्विक स्तर पर समाजवाद के बिखरने के प्रभाव को दिखाते हैं। किसी भी महास्वप्न का बिखरना समाज के भीतर भयंकर हलचल पैदा करता है। इसे ऊपरी आंखों से नहीं समाज के भीतर धंस कर ही जाना जा सकता है। इसकी जद में वे ही नहीं आते जो सीधे स्वप्न से जुड़े होते हैं जैसे लालबहादुर, संजीत, नंदकिशोर पांडे बल्कि भाऊ और शंकर बाक्सर जैसे लोग भी आते हैं जो इस नयी तरह की दुनिया में लगातार मिसफिट होते चले गये। राकेश मिश्र के पास इस संग्रह में इतने सजीव पात्र हैं जो किसी के लिए भी अभिमान का विषय हो सकते हैं। ये भारतीय समाज के चिर परिचित पात्र हैं। लेकिन राकेश ने उन्हें जिस अंदाज में अपनी कहानियों में रखा है वह खासा दिलचस्प है। कई बार यह सवाल सामने खड़ा हो जाता है कि आखिर ऐसे मनुष्यों का भविष्य क्या है? क्या लालबहादुर की तरह असम्भव सपने देखते हुए पागल घोषित कर दिया जाना या फिर धीरज पांडे की तरह खुद को बदलने की कोशिश में ऐसी स्थितियों तक पहुंच जाना जिससे उनकी हत्या ही हो जाये। या फिर 'शोक' के भाऊ की तरह एक पराजित और लाचार जीवन।

भारतीय समाज में बौद्धिकता के सबसे जीवंत केन्द्र विश्वविद्यालय हुआ करते थे। विश्वविद्यालय में देखा गया सपना और समाज का कामकाजी हिरावल दस्ता, दोनों ने मिल कर एक महास्वप्न को देखे जाने की सम्भावना पैदा की थी। साहित्य और संस्कृति इसी सम्भावना के विस्तार थे। लेकिन गुजरे बीस वर्ष के भारत में यह सम्भावना लगातार छीजती गयी। विश्वविद्यालय असुरक्षा के केन्द्र होते गये और किसान मजदूर विकास की घोषित परिभाषाओं से बाहर खदेड़ दिये गये। यह खौफ पैदा करने वाला सच है। विश्वविद्यालय के छात्र अंततः गांव देहातों या छोटे शहरों से सम्बंधित हैं और उन्होंने आजीविका की सुरक्षा की तलाश में दाखिला लिया है। ये थोड़े प्रतिभासम्पन्न और चेतस छात्र हैं। औसत छात्रों ने जैसे ब्लैक एंड व्हाइट सिनेमा के गीत 'अगर पढ़ोगे लिखोगे बाबू राजा बनोगे' के गीत का दामन पकड़ कर यहां प्रवेश लिया। और उनके विषय भी अधिकतर साहित्य, समाजविज्ञान या पत्रकारिता ही हैं। लेकिन पढ़ाई खत्म होते होते उन्हें समझ में आ जाता है कि यह दुनिया ठीक वैसी ही नहीं रह गयी जैसा उन्होंने समझी थी। ये ऐसे छात्र हैं जिनके परिवारों की आर्थिक हैसियत डॉक्टरी या इंजीनियरिंग या अन्य व्यावसायिक कोर्स कराने की नहीं हैं। यहां यह बात भी उभरती है

कि कला और समाजविज्ञान, जो समाज को समझने और अभिव्यक्त करने के जरूरी माध्यम माने जाते रहे हैं, लगातार असफल होते गये हैं। 'बुरा है शैतान' कहानी में वे लिखते भी हैं "हमारी स्मृति हमें धोखा नहीं दे रही थी, हमें सब याद था। तमाम कविताएं, तमाम विचार, तमाम भावनाएं और तमाम सिद्धांत, लेकिन हम उन्हें शब्द देते तो वह ह-ह-ह-ह-हा-हा-हा-ही होता।" कह सकते हैं कि कहानीकार हिन्दी समाज के निम्नमध्यवर्गीय चेतनसम्पन्न मस्तिष्क के लगातार बिखरते चले जाने की गाथा लिखता है। इन कहानियों से गुजरते हुए हम महसूस करते हैं कि निम्नमध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय समाज किस भंयकर दौर से गुजर रहा है। राकेश की कहानियों में इनके प्रति उपेक्षा या उपहास का भाव नहीं है जो इधर चल कर कई बड़े रचनाकारों में भी दिखायी पड़ रहा है। राकेश उनके प्रति सहानुभूति और लगाव का भाव रखते हैं।

'शोक' कहानी में संदीप संजय भाऊ के द्वारा अपनी छकुली की मौत की सूचना टेलीफोन पर दिये जाने के उपरांत बरसों बाद अपने गृहनगर भुसावल की बस्ती कंडारी में लौटता है। छकुली भाऊ की बेटी थी यह संदीप को वहीं जाकर पता चलता है। वहां मृत्यु के शोक की रस्म थी लेकिन मृत्यु का कोई चिह्न नहीं। कहानीकार ने जिस अंदाज में कहानी बुनी है उससे छकुली की नहीं बल्कि गुजरे दिनों की एक जीवंत बस्ती की मौत हो गयी सी लगती है। संदीप पर छकुली की नहीं स्मृतियों के मौत का शोक हावी होने लगता है। और उसमें भाऊ, शंकर बाँक्सर, रोजी और उसके पिता सारे लोग मरते हुए से लगते हैं। 'लालबहादुर का इंजन' में लालबहादुर यूटोपिया में जीते हुए एक ऐसे इंजन के निर्माण में जुट जाता है जो हवा से चलने वाला था। यह कल्पना दरअसल उसे सकून देती है। वह खुद को वैज्ञानिक और आविष्कारक मानने लगता है। चूंकि ऐसे इंजन के लिए व्यवस्था के परिवर्तन की आवश्यकता है इसलिए वह व्यवस्था परिवर्तन की मुहिम में जुटे प्रवीण को आर्थिक मदद देने लगता है और मतलब निकल जाने के बाद दुत्कार दिया जाता है। 'परिवार (राज्य) और निजी सम्पत्ति' में भी धीरज पांडे अपने पिता की काल्पनिक समाजवादी दुनिया से अपमानित होकर इस कदर चिढ़ जाता है कि खुद को स्थापित करने के लिए कई तरह के उल्टे सीधे धंधे करने लगता है। और अंततः उसकी हत्या हो जाती है। 'बुरा है शैतान' में भी समीर प्रेम और टूटन के बीच भटकता हुआ एक युवा छात्र नेता है। इन कहानियों की कथाभूमि को देख कर अंदाजा लगाया जा सकता है कि राकेश के पात्रों की समस्या यह नहीं है कि वे यथार्थ की समझ रखते हैं या नहीं। मुख्य समस्या यह है कि यथार्थ उनकी समझ से कहीं ज्यादा आक्रामक और ताकतवर है। और उसका नियंत्रण भी कहीं और से हो रहा है। अवसर इस देश के सामान्य लोगों की पकड़ से छूट कर कहीं और केन्द्रित होने लगे हैं। क्या यह खौफ पैदा करने वाला सच नहीं है? इसलिए मैंने अरम्भ में कहा कि राकेश की कहानियां पढ़ कर डर लगता है।

'आम्बेदकर हॉस्टल' जाति अभिमान और कुंठा के बीच घृणा और प्रतिकार से लैस है। कहानी का अंत सुखद है इसलिए यह पाठक के भीतर कोई विशेष तनाव नहीं पैदा करती। इसे फार्मूले वाली कहानी भी कह सकते हैं। दरअसल राकेश की कहानियों के पात्र यूटोपियन होने के बावजूद एक त्रासदी रचते हैं लेकिन जहां कहानीकार खुद यूटोपियन या समन्वयवादी हो जाता है वहां वह अपनी ही दूसरी कहानियों से अलग जान पड़ता है। इस कहानी को हम हिन्दी क्षेत्र के तमाम जातिवादी संघर्षों के बीच कहानीकार का एक अविस्मरणीय आदर्शवाद भी कह सकते हैं। विगत दिनों प्रेमचंद के 'कफन' और 'रंगभूमि' पर जिस तरह की बहसें हुईं उनमें एक 'मिश्र' नामधारी कहानीकार इसके सिवाय रच भी क्या सकता था! लेकिन समाज का जातिवादी रूप ज्यादा यथार्थवादी ढंग से 'लालबहादुर का इंजन' में व्यक्त हुआ है। इसमें अगड़ों और पिछड़ों का घोषित संघर्ष है जिससे हिन्दी क्षेत्र आज भी जूझ

रहा है। यद्यपि इस कहानी का मूल विषय भिन्न है। यही राकेश का नायाब शिल्प है। एक ही चीज के भीतर कई दूसरी चीजें घुसी और उलझी हुईं और सब गड्ढमड्ढ। उदाहरण के लिए इसी कहानी की इन पंक्तियों को देखा जा सकता है जिसमें वे भारतीय लोकतंत्र की चुनावी प्रणाली पर टिप्पणी करते हैं “हम सिर्फ चेतना के निर्माण के लिए चुनाव की प्रक्रिया में थे। सिर्फ कैम्पस में ही क्यों? समूचे देश में हम चुनाव लड़ते ही इसलिए थे कि संसद और विधानसभाओं की असलियत हम जनता के सामने ला सकें। लेकिन हम महसूस कर रहे थे कि चुनाव आते ही हमारी असलियत हमारे सामने और जनता के सामने आ जाती। हम अपने सिद्धांतों और नारों से अपनी असलियत छुपाने का प्रयास करते। ये नारे, सिद्धांत रंग की शक्ल में हमारे चेहरों से चिपक जाते और रह जाते हम सिर्फ जोकर और विदूषक।” यह केवल छात्रसंघ चुनाव का मामला नहीं है बल्कि भारतीय कम्यूनिस्ट आंदोलन की चुनावी प्रणाली पर भी गम्भीर टिप्पणी है। कथाकार मनोज रूपड़ा फ्लैप पर जिसे रफनेस कह कर उनकी कहानियों का द्वंद्व मानते हैं वह दरअसल एक खदबदाते हुए समाज को पकड़ने की चाह है, गंधक का जैसा उबलता हुआ कुंड। चूंकि इस समाज ने अपना अंतिम रूप नहीं लिया है इसलिए राकेश की कहानियां भी खत्म नहीं होतीं। बस एक सवाल एक संदेह उपजा कर वे कहानी को औपचारिक रूप से खत्म कर देते हैं।

एक खास बात जो इन कहानियों में दिखायी पड़ती है, वह है अप्रिय स्थितियों को पैदा करने वाली शक्तियों की प्रत्यक्ष अनुपस्थिति। ‘आम्बेदकर हॉस्टल’ में यद्यपि प्राचीन जाति व्यवस्था, रणवीर सेना जैसे कुछ कारक तत्वों का जिक्र हुआ है लेकिन अन्य कहानियों में नहीं। ‘शोक’ में कंडारी बस्ती पर क्यों मुर्दानगी छायी हुई है या लालबहादुर की महत्वाकांक्षा के पीछे किन शासकों के षड्यंत्र काम कर रहे हैं इसका सीधा कारण कहानीकार नहीं बताता। ‘परिवार (राज्य) और निजी सम्पत्ति’ में भी शीर्षक में ही कारक तत्व की उपस्थिति का संकेत है। राकेश अपनी कहानियों में किसी भी तरह की एकरेखीयता के कायल नहीं हैं। उनके पात्र भी युवा, जागरूक और सीमित अर्थों में बौद्धिक हैं। इसलिए भी वे समय के बदलते करवट और अंतरराष्ट्रीय कुचक्रों को समझने में असमर्थ हैं। एक कारण तो अधिकतर पात्रों का ‘बनारसी’ होना भी है जो जमाने को अपने ‘उस’ पे रखता है। लेकिन ‘अस्सी की नागरिकता’ ग्रहण करने की ही दिक्कत नहीं है। यह कुचक्र भुसावल तक भी फैला हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है कि राकेश मिश्र यह देखते हुए से लगते हैं कि चाहे सांस्कृतिक ऐतिहासिक महत्व के शहर हों या व्यापारिक केन्द्र, उनके भीतर उपेक्षा का विस्तार होने लगा है। इसलिए इन कहानियों को शहरों के मनोविज्ञान को जानने की दृष्टि से भी पढ़ा जाना चाहिए। कुचक्र रचने वाले तत्व कहीं भी सीधे उपस्थित नहीं हैं। अधिक से अधिक राकेश उन्हें थोड़ा फैंटेसीजनित रूप दे देते हैं बुरा है शैतान।

राकेश मिश्र के इस संग्रह की कहानियां भारतीय समाज का वह सच हैं जो लगभग विस्फोट की स्थिति तक पहुंच कर भी नियंत्रित है। विस्फोट और नियंत्रण के इस अदभुत परिवेश को रचने वाले राकेश ने मानो संग्रह के समर्पण में ही इसका संकेत कर दिया है। समर्पण उनके नाना कृष्णकांत ‘कांत’ को है जो कवि भी थे लेकिन पारिवारिक जिम्मेदारियों ने जिन्हें आगे बढ़ने नहीं दिया और साथ ही कामरेड शशि कुमार को, जिन्हें सामाजिक जिम्मेदारियों ने पीछे लौटने नहीं दिया। समर्पण में जिस द्वंद्व का आभास होता है राकेश उसी द्वंद्व को कहानी में जीते हैं। इसलिए इस कहानी संग्रह को हमारे समय की एक उल्लेखनीय किताब कहा जा सकता है।

लालबहादुर का इंजन : राकेश मिश्र, **प्रकाशक** : आधार प्रकाशन, हरियाणा, **मूल्य** : 200 रु.

इस अंक के लेखकों के पते

भानु भारती : 56 ए, पॉकेट-एफ, मयूर बिहार-II, दिल्ली-110091, मो. 9811320632

मैनेजर पांडेय : बीडी/8ए डीडीए फ्लैट्स, मुनरिका, नयी दिल्ली-110067, मो. 9868511770

आशुतोष पार्थेश्वर : भगवती कॉलोनी, हाजीपुर, बैशाली, बिहार, मो. 9934260232

मो. आरिफ : सेण्ट्रल पब्लिक स्कूल, ताजपुर रोड, समस्तीपुर-848101, बिहार, मो. 9931927140

मनोज कुमार पांडेय : हिन्दीसमयडाटकाम, म.गां.अं.हि. विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा, महा., मो. 9275409685

काशीनाथ सिंह : बी-61 वृज एन्क्लेव कॉलोनी, सुंदरपुर, वाराणसी, उ.प्र., मो. 9452826562

मलय : शिव कुटीर, टेलीग्राफ गेट नं.-4, कमला नेहरू नगर, जबलपुर-2, म.प्र.

नवल शुक्ल : एफ-43/32 साउथ टी.टी. नगर, भोपाल-2, म.प्र., मो. 9425636550

कुमार अम्बुज : सी-10 तृतीय तल, गुलमोहर बिल्डिंग, ग्रीन मैडोज कॉलोनी, अरेरा हिल्स, भोपाल-462011, म.प्र., मो. 9424474678

श्रीप्रकाश शुक्ल : हिन्दी विभाग, बी.एच.यू., वाराणसी, उ.प्र., मो. 9415890513

प्रियदर्शन : ई-4 जनसत्ता सोसायटी, सेक्टर-9, वसुंधरा, गाजियाबाद, उ.प्र., मो. 9811901398

नीलोत्पल : 173/1 अलखधाम नगर, उज्जैन, म.प्र., मो. 9826732121

अरुण कमल : 4 मैत्री शांति भवन, बी.एम. दास रोड, पटना-800004, मो. 9931443866

मधु कांकरिया : फ्लैट-602 एच विंग, ग्रीनवुड काम्प्लेक्स, निकट-चाकला बस स्टॉप, अंधेरी कुर्ला रोड, अंधेरी (ईस्ट), मुम्बई, मो. 9840789506

प्रवीण कुमार : हिन्दी विभाग, शहीद भगत सिंह कॉलेज, दिल्ली वि.वि., दिल्ली, मो. 9971194599

नारायण सिंह : 3 ई आस्था आकृति अपार्टमेंट, जे सी मलिक रोड, हीरापुर, धनबाद-826001, झारखंड, मो. 9430707409

अनिल त्रिपाठी : हिन्दी विभाग, जे.एन.पी.जी. कॉलेज, लखनऊ, उ.प्र., मो. 9412569594

विशाल श्रीवास्तव : 5/2/70 साहबगंज, फैजाबाद, उ.प्र., मो. 8953264603

रविशंकर उपाध्याय : शोध छात्र, हिन्दी विभाग बी.एच.यू. वाराणसी, उ.प्र., मो. 9415571570

विंध्याचल यादव : शोध छात्र, हिन्दी विभाग बी.एच.यू. वाराणसी, उ.प्र., मो. 8004130639

राजीव कुमार : द्वारा श्री प्रेमसिंह चौहान, म.नं.-75 (ओल्ड-85), निकट पुरानी चौपाल, धक्का विलेज, किंग्सवे कैम्प, दिल्ली-9, मो. 9990524542

वसंत त्रिपाठी : 62 वैभव नगर, दिधोरी, उमरेड रोड, नागपुर, महा., मो. 9850313062